Barcode - 5990010044603

Title - Braj bhasha soor kosh part-2

Subject - LANGUAGE. LINGUISTICS. LITERATURE

Author - Deendayal gupta

Language - hindi

Pages - 226

Publication Year - 0

Creator - Fast DLI Downloader

https://github.com/cancerian0684/dli-downloader

Barcode EAN.UCC-13



वजनाया स्र-क्रा

(द्वितीय खंड)

निर्देशक

डॉ॰ दीनदयालु गुप्त, एम॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰, डी॰ लिट्० प्रोपेसर तथा श्रध्यच हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए० रिसर्च एवं मोदी स्कॉलर, लखनऊ विश्वविद्यालय



प्रकाश्क लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डाक व्ययसहित म्ल्य ४) स्थायी ग्राहकों से ३)

शब्द संख्या ५६७३

क—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम ब्यंजन । कंट्य श्रीर स्पर्श वर्ण।

कं—संज्ञा पुं. [सं. कम्] (१) जला। (२) मस्तक।

उ.—सिंभु भष के पत्र वन दो बने चक्र श्रान्प।
देव कं को छत्र छावत सकल सोमा रूप।
(३) श्रानि। (४) काम। (४) सोना। (६) सुख।
कँउधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौंधना] बिजली की चमक।
कंक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सफेद चील। (२) बगुला।
(३) यम। (४) युधिष्ठिर का कल्पित नाम जो उन्होंने राजा विराट के यहाँ रक्खा था। (५) कंस का

एक भाई। कंकड़—संज्ञा पु. [सं. कर्कर, प्रा. कक्कर] छोटा दुकड़ा, पत्थर का दुकड़ा, रोड़ा।

कॅंक ड़ीला—िव. [हं. कंकड़] जिसमें कंकड़ श्रिधिक हों। कंक ग्।—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कड़ा या चूड़ा नामक श्रामूषण जो कलाई में पहना जाता है। (२) एक धागा जिसमें सरसों की पुटली, लोहे का छल्ला श्रादि बाँधकर दुल हिन श्रीर दूलहे के हाथ में पहनाते हैं। विवाह के परचात दुल्हा दुल हिन का श्रीर दुल हिन दुल हे का कंकण खोलती है। (३) ताल का एक

भेद ।

कंकन—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) कलाई में पहनने का एक आभूषण, कंगन, चूड़ा । उ.—तेरो भलो मनैहों भगरिनि, तू मत मनिहं डरें । दीन्हों हार गर, कर कंकन, मोतिनि थार भरे—१०-१७। (२) एक धागा जिसमें सरसों की पुटली, लोहे का छल्ला आदि बाँधकर दुलहिन और दूलहे के हाथ में बाँधते हैं। विवाह के परचात दूलहा दुल्हिन का कंकन खोलता है और दुलहिन दूलहें का खोलती है। उ.—कर कंप, कंकन निहं छूटें। राम-सिया-कर परस मगन भए, कौतुक निरित्व सत्वी सुल लूटें — ६-२५।

कंकना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] कलाई में पहनने का कड़ा। उ.—तज्यों तेल तमोल भूपन श्रंग बसन मलीन। कंकना कर बाम राख्यों गढ़ी भुज गहि लीन— २४५१।

कँकरीला—वि. [हिं. कंकड़, कँकड़ीला] जिसमें कंकड़ श्रधिक हों।

कंकाल—संज्ञा पुं. [सं.] हिड्डियों का ढाँचा, ठठरी, श्रस्थिपंजर।

कंकालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) कर्कशा स्त्री।

वि.—भगड़ालू, हुप्टा।

कंकाली—संशा पुं [सं. कंकाल] किंगरी बजाकर भीख माँगनेवाली जाति।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंकालिनी] दुर्गी। वि.—भगड़ालू, दुष्टा, कर्कशा।

कंकोल—संज्ञा पुं. [सं.] शीतल चीनी की जाति का एक दृच।

कँगन, कँगना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) हाथ में पहनने का एक गहना, कड़ा, कंकण । (२) लोहे का चक्र या कड़ा।

कॅगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कॅगना] छोटा कंगन। संज्ञा स्त्री. [सं. कंगु] एक अन्न, काकुन।

कँगला—वि. [हिं. कंगाल] भुखमरा, गरीब, बहुत लालची।

कंगात्त—वि. [सं. कंकाल] (१) भुखमरा। (२) दरिद्र।

कंगाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंगाल] (१) अखमरी। (२) गरीबी, दरिदता।

कँगुरिया, कँगुरी—संज्ञा स्त्री. [िहिं. कनगुरिया] किंगुनी, वँगली, क्वोटी वँगली। उ.—जैसी तान

तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ । जैसे फिरत रंघ्र मगु कँगुरी तैसे मैंहुँ फिराऊँ—पृ. ३११।

कॅगूरन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कॅगूरा] शिखर, चोटी।
उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये
नैन। कंचन कोट कॅगूरन की छिबि मानहु बैठे मैन
—२५५६।

कॅगूरा—तंज्ञा पुं. [फा. कुँगरा] (१) शिखर, चोटी। (२) किले का बुर्ज। (३) गहनों में शिखर की तरह की बनावट।

कंघा—संज्ञा स्त्री. [सं. कंक] बाल भाड़ने की वस्तु। कंच—संज्ञा पुं. [हिं. काँच] शीशा, काँच। कंचन—संज्ञा पुं. [सं. कांचन] (१) सोना, स्वर्ण। (२) धन, संपत्ति। (३) धत्रा।

वि.—(१) स्वस्थ। (२) सुन्दर।

कंचनराज—संशा पुं. [सं.] एक प्राचीन नगर जो विदर्भ देश में था। यहाँ भीष्मक राज करते थे, जिनकी पुत्री रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर ले गये थे। उ.-कंचनराज को काज सँवारयो भूपन को यह काज-१० उ.-१० ८।

कंचनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचन] (१) वेश्या। (२) अप्सरा।

कंचुक—संज्ञा पुं. [सं] (१) चपकन, ग्राचकन। (२) वस्त्र।
(३) एक प्रकार का कवच जो घुटने तक होता था।
संज्ञा स्त्री.— (१) चोली, ग्रॅंगिया। (२) केचुल।
कंचुिक, कंचुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुकी] (१) ग्रॅंगिया,
चोली। उ—(क) किस कंचुिक, तिलक तिलार,
सोभित हार हिंथे-१०-१४। (स) कोउ केसि कौ
तिलक बनावित, कोउ पहिरित कंचुकी सरीर—
१०-३५। (ग) कबिं गुपाल कंचुिक फारी, कब भये
ऐसे जोग—७७४। (१) कनक-कलस कुच प्रकट
देखियत ग्रानन्द कंचुिक भूली—२५६१। (२)
केचुल। उ.—सुत-पित नेह जगत इहि जान्यौ। ब्रज
जुवती तिनका सो मान्यौ। काचो सूत तोरि सो
डारयौ। उरग कंचुकी फिरिन निहारयौ—ए.
३१६।

संज्ञा पुं. [सं. कंचुिकन्] (१) रिनवास के दास-दासियों का अध्यच जो प्रायः विश्वासपात्र बूढ़ा ब्राह्मण होता था। (२) द्वारपाल। (३) साँप। (४) वह अन्न जो छिलकेदार होता है जैसे चना।

कंचुरि—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुली] साँप का केंचुल। उ.—नैना हरि ग्रांग रूप लुब्धे रे माई। लोकलाज कुल की मर्जादा विसराई। जैसे चन्दा चकोर मृगीनाद जैसे। कंचुरि ज्यों त्यागि फनिक फिरत नहीं तैसे — ए.३२१।

कंचूली—संज्ञा स्त्री. [सं.] साँप की केंचुल। कंचुवा—संज्ञा पुं. [सं. कंचुकी] चोली, श्राँगिया। कंचेरा—संज्ञा पुं. [सं. काँच] काच का काम करनेवाला। कंज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) कमल। (३) श्रमृत। (४) सिर के बाल, केश।

कंजई—वि. [हिं. कंजा] धुएँ के रंग का, खाकी। संज्ञा पुं.—(१) खाकी रंग। (२) कंजई रंग की श्राँख का घोड़ा।

कंजज—संशा पुं. [सं. कंज + ज] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा। कंजा—संशा स्त्री. [सं. कंज] राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो । ब्रज जुवतिन सबहिन मैं जानित घट-घट ले ले नाम बतायो। त्रमला श्रवला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०

संज्ञा पुं. [सं. करॅंज] एक कटीली भाड़ी।
वि.—(१) गहरे खाकी की रंग की।(२) जिसकी
ग्रॉंख गहरे खाकी रंग की हो।

कॅंजियाना—िक. ग्र. [हि. कंजा] (१) काला पड़ना। (२) मुरमाना।

कंजूस—वि. [सं. कण + हिं चूस] धन होने पर भी जो उसे खाये-खरचे नहीं, कृपण, सूम।

कंट—संज्ञा पुं. [सं. कंटक] कॉंटा, कंटक, उ.—द्रुमनि चढ़े सब सखा पुकारत, मधुर सुनावत बेनु। जिन धावहु बिल चरन मनोहर, कठिन कंट मग ऐनु —५०२। कंटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँटा। (२) विघन, बाधा। (३) वह जो विघन या बाधा डाले। (४) रोमांच। (५) कवच।

कंटिकत—िव. [सं. कंटक] (१) काँटेदार। (२) पुलकित, रोमांचयुक्त।

केंटाय—संज्ञा स्त्री. [सं, किंकिणी] एक केंटीला पेड़ जिस की लकड़ी यज्ञ-पात्र बनाने के काम श्राती थी।

कंटिका— संज्ञा स्त्री [सं.] 'पिन' की तरह लोहे-पीतल का पतला काँटा

कॅटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कॉटी] (१) छोटी कील। (२) सिर एक गहना।

कॅटीला — वि. पुं. [हिं. काँटा + ईला (प्रत्य)] जिसमें काँटे लगे हों, काँटेदार।

कंठ—संज्ञा पं. [सं.] (१) गला । (२) म्वर, शब्द। (३) वह रंगीन रेखा जो तोते, पंडुक जैसे पिचयों के गले में युवावस्थामें पड़ जाती है। (४) कंठा, हँ सुली। मुहा—कंठ फूटना—(१) बच्चों का स्वर साफ होना। (२) युवावस्थामें स्वर-परिवर्तन। (३)पिचयों के गले में रेखा पड़ना। कंठ लाइ—गले लगाकर। उ.—श्रुव राजा के चरनिन परयौ। राजा कंठ लाइ हित करयौ—४ ६।

कंठगत—वि. [सं.] जो गले में अटका हो, जो निकलने को हो।

मुह'० —प्राण कंठगत होना—मरने लगना। कंठमाला—सज्ञा स्त्री. [सं.] गले का एक रोग जिसमें बहुत सी गाँठे पड़ जाती हैं।

कँठला—संज्ञा पुं. [हिं.-इंठ +ला (प्रत्य.)] वह गहना जिसमें नजरबट, बाधनख, श्रोर दो चार ताबीज गूँथ कर बच्चे को इसलिए पहनाते हैं कि उसे नजर न लगे श्रोर श्रन्य श्रापत्तियों से वह रचित रहे।

कंठश्री, कंठसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोने का एक जड़ाऊ गहना जो गले में पहना जाता है, कंठी।

कंठस्थ—वि. [सं.] (१) गले में स्थित, कंठगत। (२) कंठाग्र, जो जबानी याद हो।

कॅठहरिया — संज्ञा स्त्री. [सं. कंठहार का ग्रल्प,] कंठी। इ, — सूर सगुन वॅटि दियो गोकुल में ग्रब निर्मन को बसेरो । ताकी छटा छार कॅठहरिया जो ब्रज जानो दुसेरो—३१५४।

कंठहार—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक गहना, कंठी। कंठा—संज्ञा पुं. [हिं. कंठ] (१) पिचयों के गले में पड़ने वाली रंग-बिरंगी रेखा। (२) गले का एक गहना जिसमें सोने, मोती श्रादि के मनके होते हैं। (३) कुरते श्रादि पहनावों का गले पर पड़नेवाला भाग।

कंठाय — वि. [सं.] जो जबानी याद हो। कंठी — संज्ञा स्त्री. [हिं. कंठ का ग्रल्पा.] (१) माला जो छोटी छोटी गुरियों की बनी हो। (२) तुलसी ग्रादि की माला।

कंड्य-वि. [सं] (१) जो गते से उत्पन्न हो। (२) जिसका उच्चारण कंड से हो।

संज्ञा पुं—वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से हो। कॅडरा—संज्ञा स्त्री [सं.] रक्त की नाड़ी।

कंडाल—संज्ञा पुं. [सं. करनाल] (१) तुरही नामक बाजा। (२) डोल नामक बरतन।

कंत—संज्ञा पुं. [सं. कांत] (१) पति, स्वामी। उ.— सूरदास लै जाउँ तहाँ जहँ रघुपति कंत तुम्हार— ६-८६। (२) ईश्वर।

कंता—संज्ञा पुं. [सं. कांत] पति, स्वामी। उ.—छीर सिंधु अहि सयन मुरारी। प्रभु स्वननि तहँ परी गुहारी। तब जान्यौ कमला के कंता। दनुज भार पुहूनी में भंता—२४५६।

कंथ-संज्ञा पूं. [सं. कांत] पति, स्वामी।

कंथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुदड़ी, कथरी। उ.—(क) सीस सेली कंस मुद्रा कनक बीरी बीर। बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी सहज कंथा चीर—३१२६। (ख) सुगी मुद्रा कनक खपर करिहों जोगिन मेष। कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ जटा बँधाऊँ केस—२७५४। (ग) वे मारे सिर पटिया पारे कंथा काहि उदाऊँ—३४६६।

कंथारी—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त । कंथी—संज्ञा पुं. [सं. कंथा=गुदड़ी] (१) फकीर जो गुदड़ी धारण करे। (२) भिखमंगा। कंद - संज्ञा पुं. [सं.] (१) गूदेदार और बिना रेशे की जड़ (२) कोमल मीठी दूव। उ.—विहल भई जसोदा डोलतदुखित नंद उपनंद। धेनु नहीं पय सवित रुचिर मुख चरित नाहिं तुंन कंद—२७६०। (२) बादल। संज्ञा पुं. [फा] जमी हुई चीनी, मिसरी। दन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश, ध्वंस। (२) नाशक,

कंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश, ध्वंस । (२) नाशक, ध्वंस करनेवाला।

कंदना—िक स. [हिं. कंदन] नाश करना, मारना । दर – संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुफा, गुहा। उ.—(क) सज्जा पृथ्वी करी विस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार — २-२०। (ख) अहो विहंग, अहो पन्नन-नृप, या कंदर के राइ। अवकें मेरी विपति मिटावी, जानिक देहु बताइ— ६-६४। (२) अंकुश।

संज्ञा पुं. [सं. कंद] (१) बादल । (२) मूल । उ-सुंदर नंद महर के मंदिर प्रगट्यो पूत सकल सुख-कंदर—१०-३२ ।

कंदरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुफा, गुहा। उ.—(क) कहन लगे सब अपुनमें सुरभी चरें अघाइ। मानहुँ पर्वत-कंदरा, मुख सब गए समाइ—४३१। (ख) स्थाम बलराम गये धनुषसाला। लियो रथ ते उत्तरि रजक मारघो जहाँ कंदरा तें निकसि सिंह-बाला— २५८५।

कंदर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।
वंदा—संज्ञा पुं. [सं. कंद] (१) कंद । (२) शकरकंद।
कंदुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गेंद। (२) गोल तिकया।
कंदुक तीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] बज का एक तीर्थ। श्री
कृष्ण यहाँ गेंद खेलते थे; श्रतएव उनके उपासकों
के लिए यह दर्शनीय स्थान है।

क देला—वि. [हिं. काँदौ + ला (प्रत्य.)] गँदला, मैला, मिला।

कंध—संज्ञा पुं. [सं. स्कंघ] (१) कंधा। उ.—चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघेहो। टूटे कंधऽरु फूटी नाकिन, को लों धों भुस खेहों— १-१३१। (२) सिर। उ.—त् भूल्यो दससीस बीस भुज, मोहि गुमान दिखावत। कंध उपारि डारिहों भूतल, सूर सकल मुख पावत—१-१३३। (३) तने का अपरी भाग जहाँ से शाखाएँ फूटती हैं।

कंधनी—संज्ञा स्त्री [हिं. करधनी] मेखला, करधनी। कंधर—संज्ञा पु. [सं.] (१) गरदन (२) बादला। कंधरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंधर] गरदन। कंधा—संज्ञा पुं. [सं. संघ, प्रा. कंध] (१) गले श्रीर मोढ़े के बीच का भाग। (२) बाहुमूल, मोढ़ा।

कंधार, कंधारी—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] (१) केवट, महाह, माँकी। उ.—कहो किप कैसे उत्तरयो पार। दुस्तर श्रित गंभीर बारिनिधि सत जोजन विस्तार। राम प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कंधार। विन श्रधार छन में श्रवलंध्यो श्रावत भई नवार—६-८०। (२) पार लगानेवाला।

कँधावर — संज्ञा स्त्री. [हिं. कंधा+ग्रावर (प्रत्य.)] चादर या दुपट्टा जो कंधे पर डाला जाय।

कंधेता—संज्ञा पुं. [हिं. कंधा+एला (प्रत्य.)] साड़ी का वह भाग जो स्त्रियाँ दधे पर डालती हैं।

केंधेया—संज्ञा पुं. [हिं. कन्हैया] श्रीकृष्ण। कंप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँपना, कॅपकॅपी, धड़कन। (२) एक सात्विक श्रनुभाव।

कंपकंपी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँपना] थरथराहट, कंपन।
कंपत—िंत. त्रा. [हिं. काँपना] (१) भयभीत होकर,
डरा हुत्रा। उ.—कृपासिंध पे केवट त्रायो, कंपत
करत सो बात। चरन-परिस पाषान उड़त है, कत
बेरी उड़ि जात—६-४१। (२) शीत से काँपता
है। उ.—हा हा करित घोष कुमारि। सीत तें तन
कॅपत थर-थर बसन देहु मुरारि—७८६।

कॅपतिँ—कि. श्र. [सं. कंपन, हिं. कॅपना] शीत से कॉपती हैं। उ.—थर-थर श्रंग कपतिँ सुकुमारी —७६६।

कंपति—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र। कंपन—संज्ञा पुं. [सं.] कॅपना, कॅपकॅपी। कॅपना—कि. ग्रा. [सं. कंपन] (१) हिलना-डोलना, कॉपना। (२) डर से कॉपना। कॅपनी—संज्ञा स्त्री [हिं. कॉपना] कॅपकॅपी।

कपना—संशा खा [हि. कापना] कपकेपी। कंपा—संशा पुं. [हि. कापना] बहे वियों की बाँस की पतली तीलियाँ जिनमें लासा लगाकर वे चिड़ियों को फँसाते हैं।

कॅपाना—िक. स. [हिं. कॅपना का प्रे.] (१) हिलाना-डोलाना। (२) डराना।

कॅपावत—कि. सं. [हिं. कॅपाना] हिलाते हो, हिलाकर धमकाते हो। उ.—तुम्हरे डर हम डरपत नाहिन कहा कॅपावत बेत—सारा. ८६२।

कँ गायो — कि. स. [हिं. कँपाना] भयभीत किया, डराया। उ.— मनौ मेघनायक रितु पावस, बान बृष्टि करि सैन करायौ — ६ – १४१।

कँपावात—कि. स. [हिं. 'कॅपना' का प्रे. कॅपना] हिलाता-डुलाता (है), किपत करता (है)। उ.— मुँह सम्हारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात। पावहुंगे अपनी कियो अबहीं, रिसनि कॅपावत गात—५३७।

कंपित—वि. [सं] कॉपता हुआ, अस्थिर, चलायमान। उ.—छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग—६-१५८।

कंपे — कि. ग्र. [हिं. कॅपना] कॉपता या हिलता होता है। उ.— (क) कंपे भुव, वर्षा नहिं होइ — १-२८६। (ख) कर कंपे, कंकन नहिं छूटै— ६-२५। (ग) जसुदा मदन गुपाल सुवावे। देखि सपन-गति त्रिभुवन कंपे, ईस विरंचि भ्रमावे— १०-६५।

कँ त्यो — कि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—रिषिन कह्यो, तुव सतम जज्ञ आरम्भ लिख, इन्द्र को राज--हित कँप्यो हीयो—४-११।

कंबर, कंबल—संज्ञा पुं. [सं. कंबल] ऊन का बना मोटा

कंबु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शंख। उ.—कंबु-कंठ-धर, कौस्तुभ-मनि-धर, बनमालाधर, मुक्तमाल-धर— ५७२। (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कंबुक—संज्ञा पुं. [सं] (१) शंख, (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कॅवल-संशा पुं. [सं. कमल] कमल।

कंस-संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथुरा का अत्याचारी राजा

जो उप्रसेन का पुत्र और श्रीकृष्ण का मामा था। इसने अपनी बहिन देवकी को पित-सहित जेल में डाल रखा था। इसके अत्याचार से जब त्रिहे-त्राहि मच गयी तब श्रीकृष्ण ने इसे मार कर अपने माता-पिता का उद्धार किया और नाना उप्रसेन को गद्दी पर बैठाया। (२) काँसा। (३) कटोरा (४) सुराही (४) भाँम।

कंसताल—संज्ञा पुं. [सं.] भाँभ । उ.—कंसताल कठ-

कंसासुर—संज्ञा पुं. [सं. कंस+ग्रसुर] मथुरा का श्रत्या-चारी राजा जो ग्रपने श्रत्याचारों के कारण श्रसुर समका जाता था।

क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) कामदेव। (४) सूर्य। (५) यम। (६) मयूर। (७) शब्द। (८) जल। (६) ग्रग्नि। (१०) वायु। (११) ग्रात्मा।

कड़क—िव. [हिं. कई + एक] कई एक, कुछ । उ.—राम दिन कड़क ता ठौर अवरो रहे आइ वल्वल तहाँ दई दिखाई-१० उ.-१८० ।

कइत-संज्ञा स्त्री. [हिं. कित] त्रोर, तरफ।

कई—िव. [सं. कित, प्रा. कह] एक से अधिक, श्रानेक।
संज्ञा स्त्री. [सं. कावार, हिं. किई] हल्के हरे रक्ष
की महीन घास जो जल या सील में होती है। उ.—
श्रव इह बरवा बीति गई। "धटी घटा सब श्रिमन
मोह मद तिमता तेज हई। सिरता संयम स्वच्छ
सिलल जल फाटी काम कई—२८५३।

ककड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कटी, पा. ककटी] (१) एक बेल जिसमें पतले-पतले पर लंबे फल लगते हैं। (२) एक बेल जिसमें धारीदार बड़े खरबूजे की तरह के फल लगते हैं श्रीर 'फूट' कहलाते हैं।

ककना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण, हिं. कँगना] हाथ का एक गहना, कँगन।

ककनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कॅगना] हाथ का कॅग्रेदार चूड़ीनुमा गहना।

ककनू-संज्ञा पुं. [देश.] एक पन्ती जिसके गाने से

- घोसले में श्राग लग जाती है श्रीर वह स्वयं जल मरता है।
- ककमारी—सं. स्त्री. [सं. काक = कौवा+मारना] एक तरह की लता जिसके फल मछलियों और कौओं के लिए मादक होते हैं।
- ककरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ककड़ी] ककड़ी का फल । उ. -(क) ककरी कचरी श्रक कचनारचौ । सुरस निमोननि स्वाद सँवारचौ—२३२१। (ख) सुनत जोग लागत हमें ऐसो ज्यों कहई ककरी—३३६०।
- ककहरा—संज्ञा पुं. [हिं.] (१) 'क' से 'ह' तक वर्ण-माला। (२) प्रारंभिक बातें, साधारण ज्ञान।
- ककही—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंघी] कंघी । संज्ञा स्त्री. [सं. कंकती, प्रा. कंकई] एक तरह की कपास जिसकी रुई कुछ लाल होती है।
- ककुद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल के कन्धे का कूबड़। (२) राजिह ।
- ककुभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अजु न का पेड़। (२) वीणा का ऊपरी भाग। (३) दिशा। (४) एक राग। ककुभा—संज्ञा स्त्री. [सं. ककुभ] दिशा।
- ककोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कर्कोटक, पा. कक्कोडक] खेखसा या ककरोल नामक तरकारी।
- ककोरना—कि: स. [हिं. कोड़ना] (१) खुरचना, क्रेदना। (२) मोड़ना, सिकोड़ना।
- ककोरा—संज्ञा पुं [सं. ककंटिक, प्रा. कक्कोडक, हिं. ककोड़ा] खेलसा, ककरोल, । उ.—कुँदरू ग्रीर ककोरा कौरे। कचरी चार चचेड़ा सीरे—२३२१।
- कत्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँख, बगल। (२) काँछ, कछोटा, लाँग। (३) कछार। (४) कमरा, कोठरी। (४) दुपट्टे या चादर का आँचल। (६) श्रोणी, दर्जा। (७) पटुका, कमरबंद।
- कद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समता, बराबरी। (२) श्रेणी, दर्जा। (३) काँख, बगल। (४) काँछ, कछोटा, लाँग।
- कि विश्राँ, कि वियाँ—संशा स्त्री. [सं. कत्त, हिं. काँख] वाहुमूल, काँख। उ.—चल्यो न परत पग गिरि परी सूधे मग भामिनि भवन ल्याई कर गहे कि विश्राँ— २३६६।

- कर्योरी—संज्ञा स्त्री. [हं. काँख] काँख, बगल । कगर—संज्ञा पुं. [सं. क = जल+ग्रग्र = समाना] (१) ऊँचा किनारा, बाढ़ । (२) मेंड, डाँड़ । (३) काँगनी । क्रि. वि.—(१) किनारे पर । (२) पास, निकट । (३) ग्रलग, दूर ।
- कगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कगर] (१) किनारा, करार। (२) टीला। उ.—ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। हंस सुता की सुंदर कगरी ग्रह कुंजन की छाहीं।
- कगरो—िक. वि. [हिं. वगर] अलग, दूर। उ.— जसुमित तेरो बारो अतिहि अचगरो। दूध दही माखन लै डारि दयौ सगरो। लियो दियो कञ्ज सोऊ डारि देहु कगरो—१०५६।
- कगार—सज्ञा पुं. [हिं. कगर] (१) किनारा जो उँचा हो। (२) नदी का किनारा। (३) टीला।
- कच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाल । (२) मुंड। (३) बादल । (४) बृहस्पति का पुत्र जो दैत्यगुरु शुक्रावार्य के पास संजीवनी-विद्या सीखने गया था।

संज्ञा पुं. [अनु.] चुभने का शब्द या भाव।

- कचनार संज्ञा पुं. [सं. कांचनार] एक छोटा पेड़ जो सुन्दर फूलों ग्रीर किलयों के लिए प्रसिद्ध है।
- कचनारगी—संज्ञा, पुं, [हिं, कचनार] कचनार की कली। उ.—ककरी कचरी ग्रम कचनारगी। सुरस निमोननि स्वाद सँवारगी—२३२१।
- कचपच—संज्ञा पुं. [ग्रानु.] बहुत सी चीजों को गचपच करके थोड़े से स्थान में रखना।
- कचपची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] (१) छे।टे-छोटे तारों का गुच्छा या समूह, कृतिका नचत्र। (२) चमकीली टिकलियाँ या बुँदे जिन्हें स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं।
- कचबची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] चमकीले बुंदे या बिंदियाँ जिन्हें स्त्रियाँ माथे या गाल पर लगाती हैं, सितारा, चमकी।
- कचरना—िक. स. [सं. कचरण्=बुरी तरह चलना] (१) रोंदना, कुचलना,दबाना। (२) चबाना, खाना।
- कचरा—संज्ञा पुं. [हिं. कच्चा] (१) खरबूजा या ककड़ी का कचा फल। (२) सेमल का डोडा। (३) कूड़ा-करकट। (४) सेवार।

कचरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कच्चा] (१) ककड़ी की तरह की एक बेल जिसे सुखाकर और तलकर खाया जाता है। कहीं-कहीं इसकी चटनी भी बनती है। उ.—(क) पापर बरी फुलौरी कचौरी। कूरवरी कचरी औ मिथौरी। (ख) ककरी कचरी अरु कचनारचौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारचौ—२३२१। (२) काट कर सुखाये हुए फल-मूल आदि जो आगे तरकारी बनाने के लिए सुखाकर रख लिये जाते हैं। उ.—कुँदरू ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेंडा सौरे–२३२१। (३) छिलकेवाली दाल।

कचहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचकच = वादिववाद + हरी (प्रत्य.)] (१) जमाव, गोष्टी। (२) दरबार, राज-सभा। (३) न्यायालय, ग्रदालत, कोर्ट (४) कार्या-लय, दफ्तरं।

कचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कच्चा + ई (प्रत्य.)] (१) कचा होना, पक्का न होना (२) ग्रज्ञानता, ग्रनुभवी हीनता।

कचाना, कचियाना—िक. स्र. [हिं. कच्चा] (१) हिम्मत हार कर पीछे हटना। (२) डरना।

कचीली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपची] (१) तारों का समूह, कृत्तिका। (२) जबड़ा, दाढ़।

कचूर—संज्ञा पुं. [सं. कचूर] हल्दी की जाति का एक पौधा।

संज्ञा पुं. [हिं. कचोरा] कैंटोरा।

कचोटना—कि. ग्र. [हिं. कुचोना] चुभना, गड़ना।

कचोरा — मंज्ञा पुं. [हिं. काँसा + श्रोरा (प्रत्य.)] कटोरा, प्याला। उ. – मुकुलित केस सुदेस देखियत नीलबसन लपटाये। भरि श्रपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहि चुखाये – १० उ. – १३८।

कचोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कचोरा + ई (प्रत्य.)] कटोरी, प्याली।

कचौड़ी, कचौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचरी] मोटी पूरी जिसमें उरद या और किसी दाल की पीठी भरी जाती है। उ.—पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्जवल सुन्दर सौरी—२३२१।

कचा—िव, [सं. कषण = कच्चा] (१) जो (फल आदि)
पका न हो, अपक्व । (२) जो आँच पर अच्छी तरह
पका या सिका न हो । (३) जिसका पूरा विकास
न हुआ हो (४) जो ठीक से तैयार न हो ।
(४) जो मजबूत या स्थायी न हो । (६) जो ठीक
या जिनत न हो । (७) जो प्रामाणिक तोल या नाप
से कम हो । (=) नासमक्ष, जो कुशल या चतुर
न हो ।

संज्ञा पुं.—(१) बिखिया, सींवन। (२) ढाँचा, खाका। (३) जबड़ा, दाढ़। (४) पांडुलेख। कच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] कछुत्रा। संज्ञा पुं. [सं.] नदी या जलाशय के किनारे की

जमीन, कछार । संज्ञा पुं.— तुन का पेड़ ।

कच्छप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ नामक जलजंतु।
(२) विष्णु के २४ अवतारों में से एक। उ.—हिर जू
की आरती बनी। अति विचित्र रचना रिच राखी,
परित न गिरा गनी। कच्छप अध आसन अनूप
अति, डाँडी सहस फनी—२–२८।

कच्छपी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कछुई। (२) छोटी वीगा। (३) सरस्वती की वीगा का नाम।

कच्छा—संज्ञा पुं. [सं. कच्छ] एक तरह की नाव। कच्छू—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] कछुग्रा। कछना—संज्ञा स्त्री. [हिं. काछना] पहिनना, धारण करना।

कछनी—संज्ञा स्त्री. [हं. काछना] घुटने के ऊपर चढ़ा कर पहनी हुई छोटी घोती। उ.—(क) कोउ निरिष्ट किट पीत कछनी मेखला रुचिकारि। कोउ निरिष्ट हृद-नाभि की छिब डारची तन-मन-बारि—६३४। (ख) खेलत हिर निकसे ब्रज खोरी। किट कछनी पीताम्बर बाँधे, हाथ लए भौरा, चक, डोरी—६७२।

कछप—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक। उ.—सुरिन-हित हरि कछप-रूप धारयो। मथन करि जलिध, अंमृत निकारयो — ८-८। (२) कछुआ।

कछरा—संज्ञा पुं. [सं. क = जल + च्रण = गिरना]

मिही का चौड़े मुँह का एक पात्र जिसकी अवँठ ऊँची
श्रीर दृढ़ होती है।

कछान—संज्ञा पुं. [हिं, काछना] घुटने से ऊँची घोती पहनना।

कछार—संज्ञा पुं. [हिं. कच्छ] नदी या श्रन्य जलाशय के किनारे की नीची श्रीर तर भूमि, खादर, दियारा।

कि छु — वि. [सं. किंचित्, पा. किंची, पू. हिं. कि छु, हिं. कु छु] थोड़ी संख्या या मात्रा का, जरा, थोड़ा, दुक । सर्वे. [सं. किश्चत, पा. कोचि] कोई (वस्तु या बात)।

कछुत्र—वि. [हिं. कुछ] कुछ, थोड़ा। उ.—ऊघो जो तुम बात वही। ताको वछुत्र न उत्तर त्रावै समुिक्त बिचारि रही—३३७०।

कछुत्रा—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] एक जल-जन्तु जिसकी पीठ बड़ी कड़ी होती हैं। यह जमीन पर भी चल सकता है।

कळुक — वि. [हिं. वळु + एक] कुछ, थोड़ा। उ.— (क) जब आवों साधु-संगति कळुक मन ठहराइ—१ -४५। (स) सूर कही क्यों कहि सकै, जन्म-कर्म-श्रवतार। कहे कळुक गुरु-कृपा तें श्री भागवतऽनुसार —२-३६।

मुहा.—कञ्जक कही नहिं जात—दुविधा या श्रस-मंजस के कारण कुछ कहा नहीं जाता। उ.—स्रवन सुनत श्रकुलात साँवरों कञ्जक कही नहिं जात— सारा०-६४६।

कछुव—िव. [हिं. कुछ] कुछ । उ.—(क) तुम प्रभु श्रजित, श्रनादि, लोकपित, हों श्रजान मितिहीन । कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन—१-१८१ । (ख) जोग-जिक्त हम कछुव न जानें ना कछु ब्रह्मज्ञानो—३०६४ ।

कछुवा—संज्ञा पुं. [हिं. कछुत्रा] कछुत्रा।

फलुवे—िवं. [हं. कुछ] कुछ भी। उ.—(क) जय ग्रह विजय कथा निहं कछुवे, दसमुख बध-बिस्तार—१— २१५। (ख) बालापन खेलत ही खोयो, जोबन जोरत दाम। ग्रब तो जरा निपट नियरानी, करवो न कछुवे काम-१-५७। (ग) तीरथ व्रत कछुवै नहिं कीन्हो, दान दियो नहिं जागे-१-६१।

कळू—सर्व. [सं. कश्चित, पा. कोचि, हिं. कुछ] (१) कोई वस्तु। (२) कोई काम, कोई विशेष बात। उ.—जौ सुरपति कोप्यो व्रज ऊपर, क्रोधन कळू सरे—१-३७।

कड़ोटा—संज्ञा पुं. [हिं. काछ] घुटने के ऊपर तक पहनी हुई धोती, कछोटी, ऊपर चढ़ायी हुई धोती।

कछोटी—संशा स्त्री. [हिं. कछोटा] छोटी धोती। कज—संशा पुं: [फा.] (१) टेढ़ापन। (२) दोष, ऐब, कसर।

कजरा— संज्ञा पुं. [हिं. काजल] (१) काजल । उ.— ता दिन तैं कजरा मैं देहों । जा दिन नॅदनंदन के नैनन अपने नैन मिलैहों—२७७६ । (२) बैल जिसकी आँखें काली हों ।

वि.—काली श्राँखोंवाला।

कजराई-संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल] कालापन।

कजरारा—िव. [हिं. काजल+ग्रारा (प्रत्य.)] (१) जिस (नेत्र) में काजल लगा हो, श्रंजनयुक्त। (२) (काजल के समान) काला।

कजरी—संशा स्त्री. [हिं. काजल, कजली] काली आँखों वाली गाय। उ.—(क) कजरी की पय पियहु लाल जासों तेरि बेनि बहैं—१०-१७४। (ख) स्त्रपनी श्रपनी गाइ खाल सब श्रानि करो इक ठौरी। ""। पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती—४४५। (ग) कजरी, धौरी, सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया—६६६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल] (१) कजराई, काला-पन। (२) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को श्रीर कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाला है। इस दिन से कजली गाना बन्द कर दिया जाता है। (३) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है।

संज्ञा पुं. [सं. कजल] एक तरह का काला धान। कजरौटा—संज्ञा पुं. [हिं. कजलौटा] काजलकी डिबिया। कजला—संज्ञा पुं. [हिं. काजल] (१) काली श्रांखों वाला बैल। (२) एक काला पत्ती।

वि .—काली आँखों वाला।

कजलाना—िक. त्र. [हिं. काजल] (१) काला हो जाना। (२) त्राग बुक्तना।

क्रि. स.—काजल लगाना, ऋाँजना।

कजली—संज्ञा स्त्री, [हिं, काजल] (१) कालापन, कालिख। (२) काली आँख वाली गाय। (३) सफेद भेंड़ जिसकी आँख के बाल काले होते हैं। (४) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है। (४) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को और कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाता है। इस दिन से कजली का गीत गाना बन्द कर दिया जाता है। (६) वे हरे अंकुर जिन्हें कजली का त्योहार मनाकर स्त्रियाँ अपने संबंधियों को बाँटती हैं।

कजलीबन—संज्ञा पुं. [सं. कदलीवन] केले का बन। कजलीटा—संज्ञा पुं. [हिं. काजल+श्रौटा (प्रत्य.)] काजल रखने की डिबिया।

कजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कांजी] कॉंजी, मॉंड। कजाक—संज्ञा पुं. [तु. क़ज्ज़ाक़] खुटेरा, डाकू, ठग। कजाकी—संज्ञा पुं. [हिं. कजाक] (१) लूटमार। (२) छल-कपट, घोखाधड़ी।

कज्ञल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रंजन, काजल ! उ.— (क) लित कन-संजुत क्योलिन लसत कजल श्रंक । मनहु राजत रजिन, पूरन कलापित सकलंक— ३५३। (ख) उनै उनै घन बरषत चष उर सरिता सिलल भरी। कुमकुम कज्जल कीच बहै जनु कुच जुग पारि परी—२८१४। (२) सुरमा। (३) कालिख, स्याही, (४) बादल।

कज्जलित—वि. [सं.] (१) जिस नेत्र में काजल लगा हो, ऋाँजा हुआ। (२) काला।

कट—संज्ञा पुं. [सं,] (१) हाथी का गंडस्थल । (२) नर-कट की घास या उसकी बनी चटाई । (३) खस की घास या उसकी बनी टट्टी । (१) शव । (४) टिकटी, ग्राथी । (६) शमशान । (७) समय । संज्ञा पुं. [हिं. कटना] (१) एक प्रकार का कालों रंग। (२) 'काट' का संचिप्त रूप।

वि.—(१) बहुत (२) उग्र।

कटक—संज्ञा पुं. [सं. कंटक]-कॉंटा, दुख ।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेना, दल । उ.—
महाराज, तुम तो हो साध । मम कन्या तें भयो अपराध । या कन्या कों प्रभु तुम बरो । कटक-सूल
किरपा करि हरो—६-२ । स्याम बलराम जब कंस
मारयो । सुनि जरासंध बृतांत अस सुता तें युद्ध
हित कटक अपनो हँकारयो --१० उ.-१ । (२)
राजशिविर । (३) चूड़ा, कंकण, कड़ा । (४) चक्र ।
(५) समूह ।

कटकई—संज्ञा स्त्री. [सं. कटक+ई (प्रत्य.)] सेना, दल, लश्कर।

कटकट—संशा पुं. [श्रनु.] (१) दाँत बजने का शब्द। (२) लड़ाई, भगड़ा।

कटकटान, कटकटाना—कि. श्र. [हिं. कटकट] क्रोध से दाँत पीसना।

कटकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटक-म्त्राई (प्रत्य,)] सेना, दल, लश्कर।

कटजीरा—संज्ञा पुं. [सं. कणजीरक] काला जीरा।

उ.—कूट कायफर सोठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत।

त्राल मजीठ लाख संदुर कहुँ ऐसेहिं बुधि अवरेखत

—११०८।

कटत—िक. त्रा. [हिं. कटना] (१) कटते हैं, खंड खंड होते हैं। (२) नष्ट या दूर होते हैं, छीजते हैं। उ.—(क) जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत त्राघ भारे—१-६४। (ख) कमल नैन की लीला गावत कटत त्रानेक विकार—२-२।

कटताल—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+ताल] करताल नामक काठ का बाजा।

कटनंस—संज्ञा पुं. [हिं. काटना-नाश] काए कर नष्ट करने की किया।

कटना कि. त्र. [सं. कर्तन, प्रा. कट्टन] (१) हुकड़ेहुकड़े होना। (२) (किसी नोक न्नादि से) कट
फट जाना। (३) (किसी ग्रंश या भाग का) ग्रलग
हो जाना। (४) मरना। (४) कतरना। (६) नष्ट या
दूर होना। (७) समय बीतना। (६) समाप्त होना।
(६) चुपचाप खिसक जाना। (१०) लिजत होना।
(११) ईंप्यों से जलना। (१२) मोहित होना।
(१३) बेकार खर्च होना। (१४) बिक जाना। (१५)
प्राप्त होना। (१६) (सूची से नाम) हटा दिया
जाना।

कटनास—संज्ञा पुं. [सं. कीट श्रथवा हिं, कटना + नाश] नीलकंड पची।

कटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटना] (१) काट। (२) रीभ, प्रीति, ग्रासितः।

कटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं कटना] (१) काटने का काम । (२) काटने का ग्रोजार। (३) फसल काटना। (४) ग्राड़े-तिरछे भागना।

कटरा—संज्ञा पुं. [हिं. कटार] कटार। कटवा—संज्ञा पुं. [देश.] गले का एक गहना। कटसरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटसारिका] एक कॅटीला पौधा।

कटहर, कटहल-संज्ञा पुं. [सं. कंठिक फल, हिं. काठ + फल] (१) एक पेड़ जिनमें बड़े-बड़े फल लगते हैं। (२) इस पेड़ का फल जिसके ऊपरी मोटे छिलके पर नुकीले कँगूरे होते हैं।

कटा—संज्ञा. पुं. [हिं. काटना] (१) मार-काट। (२) वध, हत्या। (३) प्रहार, चोट।

कटाइक वि. [हिं. काटना] काटनेवाला। कटाई — कि. स. [हिं. कटाना] (१) कटाया। (२) अपयश कराया। उ. — कौन कौन कौ बिनय की जिए कहि जेतिक कहि आई। सूर स्याम अपने या अज की इहि बिधि कान कटाई — ३०७७।

कटाउ-संज्ञा पुं. [हिं. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) काटकर बनाये हुए बेल-बूटे।

कार कि. स. [हिं. कटाना] काट लो, काटने का काम करो। उ.—पालनौ श्राति सुन्दर गढ़ि ल्याउ

रे बहुँया। सीतल चंदन कटाउ धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बहुँया— १०—४१।

कटाऊ—संज्ञा पुं. [हिं. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) बेल-बूटे।

कटाच-संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिरछी चितवन या नजर। उ, — चंचलता निर्तान कटाच रस भाव बतावत नीके —सा. उ.—६। (२) व्यंग्य, ताना। (३) लीला या अभिनय के अवसर पर पात्रों के नेत्रों के बाहरी कोरों पर खींची जानेवाली पतली काली रेखाएँ।

कटाच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कटाच] (१) चितवन, दृष्टि। उ.—(क) नमो नमो हे कृपानिधान। चितवत कृपान्कटाच्छ तुम्हारी, मिटि गयौ तम ग्रज्ञान—२-३३। (ख) कृपा-कटाच्छ कमल-कर फेरत सूर-जनि सुख देत—१०-१५४। (२) कृपादृष्टि। उ.—काली विषग्जन दह ग्राइ। देखे मृतक बच्छ वालक सब लये कटाच्छ जिवाइ—५७८। (३) तिरृष्टी चितवन या नजर, कटाच । उ.—कबिं करन गयौ माखन चोरी। जानै कहा कटाच्छ तिहारे, कमलनैन मेरी इतनक सो री—१०-३०५।

कटाछनि—संज्ञा पुं. सिव, [सं. कटान्त] तिरछी दृष्टि या चितवन। उ.—भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ.–१६।

कटान—संज्ञा स्त्री, [हिं. काटना + ग्रान (प्रत्य.)] काटने की किया या भाव।

कटाना — कि. स. [हिं. 'काटना' का प्रे०] काटने के काम में लगाना या नियुक्त करना।

कटार, कटारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कट्टार] एक छोटा दुधारी हथियार।

कटाव—संज्ञा पुं. [हिं. काटना] (१) काट-छाँट, कतर-ब्योंत। (२) काटकर बनाये गये बेल-बूटे।

कटाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा कढ़ाव। (२) कछुए की खोपड़ी। (३) कुआँ। (४) नरक। (५) भैंस का बछड़ा जिसके सींग निकलते हों। (६) ऊँचा टीला।

कटि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमर। उ,—गये कटि नीर लौं नित्य संकल्प करि करत स्नान इक भाव

- देख्यौ-२५५४। (२) मंदिर का द्वार। (३) हाथी का गंडस्थल। (४) पीपल।
- कटिजेब—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि + फ़ा जेब] करधनी, किंकिणी।
- कटिबंध संज्ञा पुं. [सं,] (१) कमरबंद । (२) गरमी-सरदी के आधार पर किये हुए पृथ्वी के पाँच भाग।
- कटिबद्ध—िव. [सं.] (१) कमर बाँधे हुए। (२) तैयार, उद्यत।
- किट-बसन—संज्ञा स्त्री. [सं. किट-बसन] कमर में पहनने का वस्त्र, साड़ी।
- कटियाना—िक. त्र. [हिं. काँटा] हिष्त या पुल-
- कटिसूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] सूत की करधनी, मेखला। कटी—कि. त्र. भूत [हिं. कटना] (१) कट गयी। (२) दूर होती है, नष्ट होती है, छँटती है। उ०—हृदय की कबहु न जरिन घटो। बिनु गोपाल विथा या तन की कैसें जाित कटी—१-६८।
- कटीला--वि. [हिं. काँटा] (१) तेज, तीच्ण। (२) खूब चुभने या गहरा प्रभाव करनेवाला। (३) मोहित करनेवाला। (४) छैल-छबीला।
- कटी लियाँ—िव. [हिं. कटीली] (१) बहुत शीघ्र प्रभाव डालनेवाली, गहरा असर करनेवाली, मोहित करनेवाली। उ०—(क) स्रोढ़े पीरी पावरी हो पहिरे लाल निचील। मौहैं काट कटीलियाँ मोहिं मोल लई विन मोल—८३। (ख) मौहें काट कटीलियाँ सखि बस की-हीं विन मोल—१४६३।
- कटीले—िव. [हिं. काँटा] काँटेदार, काँटों से भरे हुए। उ०—कमल-कमल कहि बरनिए हो पानि पिय गोपाल। अब किव कुल साँचे से लागे रोम कटीलें नाल—ए० ३४८ (५८)।
- कटु—वि. [सं.] (१) मन को बुरा लगनेवाला, कडुश्रा। उ०—के सरनागत कों निहं राख्यो। के तुमसों काहू कटु भाख्यो।—१-२८६। (२) छः रसों में से एक, चरपरा, कडुश्रा। उ०—कंचन-कांच कपूर कटु खरी एकहिं सँग क्यों तोले—३२६४।
- कटुआ-वि. [हिं. काटना] कटा हुआ, दुकड़े-दुकड़े।

- कटुक—िव. [सं.] (१) कड्या, कट्टा (२) जी चित्त को खुरा लगे। उ०—(क) मुख जो कही कटुक सब बानी हृदय हमारे नाहीं—११६१। (ख) एते मान भये बस मोहन बोलत कटुक डराई। दीपक प्रेम कोध मारुत छिन परसत जिनि खुक्ति जाई—१२७५। (३) खट्टा उ०—सबरी कटुक बेर तिज, मीठे चाखि, गोद भिर ल्याई। जूठिन की कछु संक न मानी भच्छ किए सत-भाई—१-१३।
- कटुके—िव. [सं. कटुक] (१) कडुग्रा, कटु। (२) ग्रिय, जो चित्त को भला या प्रिय न हो। उ०—लीजो जोग सँमारि ग्रापनो जाहु तहीं तटके। सूर स्याम तिज को उन लैहै या जोगहिं कटुके—३१०७।
- कटुता संज्ञा स्त्री. [सं.] कडुग्रापन, ग्रियता। कटूति—संज्ञा स्त्री. [सं. कटु + उति] कडुई या ग्रिय वात।
- कटे—िक. स्र. भूत. [हिं. कटना] छीज गये, नष्ट हुए, दूर हो गये। उ०—िवप बजाइ चल्यो सुत कें हित कटे महा दुख भारे—१-१५८।
- कटें कि. ग्र. [हिं. कटना] कटते हैं, बंधन कटते हैं, मुक्ति पाते हैं। उ०—जरासंध बंदी कटें नृप-कुल जस गावें—१-४।
- कटैया संज्ञा पुं. [हिं. काटना] (१) काटनेवाला। (२) फसल काटनेवाला।
- कटोरा—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + ग्रोरा (प्रत्य.) = कँसोरा] कटोरी से बड़ा बरतन, प्याले के ढंग का बना धातु का बरतन।
- कटोरे—संज्ञा पुं. [हिं. कटोरा] कटोरे में । उ०—जोग कटोरे लिए फिरत है ब्रजबासिन की फाँसी-— ३१०८।
- कटोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कटोरा का अल्पा.] (१) प्याली। (२) अँगिया का वह भाग जिसमें स्तन रहते हैं।
- कट्टर—वि. [हिं काटना] (१) अपने विश्वास के अति-रिक्त कुछ न सहन करनेवाला। (२) हठी। (३) पका।
- कट्टे— कि. स. [सं. कत्तन, पा. कट्टन, हिं. काटना] दो दुकड़े या खरड किये। उ.—तब बिलंब नहिं कियो, सीस दस रावन कट्टे—१-१८०।

कट्यानी—क्रि. श्र. [हिं कटियाना] हर्षित या पुलकित हुई।

कठताला, कठताला—संग्रा पुं. [हिं. काठ+ताल) करताल नाम का बाजा जो काठ का बना होता है। उ.— कंसताल कटताल बजाबत सङ्ग मधुर मुँहचंग। मधुर, खंजरी, पटह, पण्व, मिलि सुख पावत रत भंग।

कठमिलया—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+माला] (१) काठ की कंठी या माला पहननेवाला, वैष्णव। (२) बना-वटी या भूढा साध।

कठला—संज्ञा पुं. [सं. कंठ+ला (प्रत्य.)] बच्चों को पहनाने की माला जिसमें सोने-चाँदी की चौकियों के साथ बघनख, ताबीज आदि गुथे रहते हैं।

कठारा—संज्ञा पुं. [सं. कंठ = किनारा+हिं. त्र्यारा (प्रत्य.)] जलाशय या नदी का किनारा।

कठारी—संज्ञा स्त्री.[हिं काठ+स्त्रारी (प्रत्य.)] (१) काठ का पात्र। (२) कमंडल।

कठिन—वि. [सं.] (१) कड़ा, सख्त । उ.—(क) रुधिर-मेद मल मूत्र कठिन कुच उदर गंध-गंधात । तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात-२-२४। (स) बालक बदन बिलोकि जसोदा कत रिस करति श्रचेत । छोरि उदर तें दुसह दाँवरी डारि कठिन कर बैंत-३४६। (२) दयारहित, निर्देयी, कठोर। उ.—तें ककई कुमंत्र कियो। अपने कर करि काल हँकारची, हठ करि नृप अपराध लियौ। श्रीपति चलत रह्यौ किह कैसैं, तेरौ पाहन कठिन हियौ- ६-४८। (३) मुशकिल, दुःसाध्य, दुष्कर। उ.—ग्रह-पति सुत-हित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस । जलपति भूषन उदित होत ही पारत किन कलेस—सा. २७। संज्ञा स्त्री.—(१) कठिनता। उ.—(क) उत बृष-भानुसुता उठी वह भाव बिचारै। रैनि बिहानी कठिन सौं मन्मथ बल भारे—१५४१। (ख) जब जब दीननि कठिन परी। जानत हों करुनामय जन कों, तब-तब सुगम करी-१-१६। (२) विपत्ति, कष्ट, संकट। उ.—(क) महाकष्ट दस मास गर्भ वसि ऋधोमुख सीस रहाई। इतनी कठिन सही तब निकस्यौ अजहुँ न तू समुभाई। (ख) कपट-रूप निसिच्चर तन धरिकै

श्रमृत पियौ गुन मानी। कठिन परें ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुख-दानी—१-११२।

कितई—संज्ञास्त्री. [हिं. कठिन] (१) कड़ाई। (२) कठोरता। (३) संकट।

कठिनता, कठिनताई—संज्ञास्त्री. [सं. कठिन] (१) कड़ा-पन, सख्ती। (२) मुश्किल, दिक्कत। (३) निर्देयता, कठोरता। (४) मजबूती, दढ़ता।

कठुला—संज्ञा पुं. [हिं. कंठ+ला (प्रत्य.) _ कठला] बचों के गले में पहनाने की एक माला जिसमें चाँदी, सोने की चौकियों के साथ बाध के नल, नजर से बचाने की ताबीज आदि गुथे रहते हैं। विश्वास है कि इसको पहनाने से बच्चे को नजर नहीं लगती। उ.—कठुला कंठ वज्र केहरि-नल, मिस-विंदुका सुमग-मद भाल। देखत देत असीस नारि-नर, चिर-जीवौ जसुदा तेरौ लाल—१०-५४।

कठेठ—वि. पुं. [सं. कंठ+एठ (प्रत्य,)] (१) कड़ा, कठोर, सस्त । (२) बली, बलवान ।

कठेठी—वि. स्त्री. [हिं. कठेठा] कड़ी, कठोर, सख्त। (२) बलवाली।

कठोर—िव. [सं.] (१) कड़ा, सख्त । उ.— केस ग्रोर निहार फिर फिर तकत उरज कठोर—सा. ३४। (२) निर्देश, निठुर। उ.— केस गहे ग्रिर कंस पछ-रिहों। श्रमुर कठोर जमुन ले डिरहों—११६१।

कठोरता, कठोरताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कड़ापन, सक्ती। (२) निर्दयता, निरुरता।

कठोरपन—संशा पुं. [हिं. कठोर + पन (प्रत्य.)] (१) कठोरता। (२) निर्देयता।

कठोरी—वि. [सं. कठोर] कठोर, कड़ा। उ.—दै दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटति उरज-कठोरी —१०-३०५।

कठोता—संज्ञा पुं. [हि. काठ-। श्रोता (प्रत्य.)] काठ का एक पात्र जो परात से ऊँचा होता है।

कठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कठौता] छोटा कठौता। कड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़कड़] (१) कड़कड़ाहट का शब्द। (२) कड़कने की क्रिया या भाव। (३) गाज, बज़। (४) रुक रुक कर उठनेवाला दर्द, कसक।

कड़कड़ाना-कि. स. [अनु.] घी को आँच पर तपाना।

कड़कना—िकि. त्र. [हिं. कड़कड़] (१) 'कड़कड़' शब्द करना। (२) गरजना, तड़पना। (३) फटना, दरकना।

कड़खा—संज्ञा पुं. [हिं. कड़क] स्रोजपूर्ण प्रशंसात्मक गीत जिन्हें सुनकर युद्ध में जानेवाले बीर उत्तेजित हो जाते हैं।

कड़खेत—संज्ञा पुं. [हिं. कड़खा+ऐत(प्रत्य.)] (१) कड़खा गानेवाले । (२) भाट, चारण ।

कड़ा— 'ज्ञा पुं. [सं. कटक] (१) हाथ-पैर का एक गहना। (२) धातु का गोल छल्ला या कुंडा।

वि, [सं. कड्ड] (१) कठोर, कठिन, ठोस। (२) जो कोमल न हो, रूखा। (३) उग्र, दृढ़। (४) तगड़ा, हृष्ट-पुष्ट। (५) तेज। (६) सहनशील, धेर्य-वान। (७) जिसका करना सरल न हो, सुरिकल। (८) तीत्र। (१) बुरा लगनेवाला। (१०) कर्कश, कठोर।

कड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] कड़ापन, कठोरता, सख्ती। कड़ाही—संज्ञा स्त्री. [हिं.] लोहे पीतल ग्रादि का पात्र जिसे चूल्हे पर चढ़ाकर पूरी-िमठाई बनाते हैं।

कड़ियल-वि. [हिं. कड़ा] कठोर, सख्त ।

कड़िहार—वि. [हिं. काढ़ना, कढ़िहार] (१) काढ़ने या निकालनेवाला। (२) उद्घार करने वाला।

कड़ी--संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] (१) जंजीर का छुल्ला। (२) गीत का एक चरण। (३) लगाम। संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा=कठिन] विपत्ति, कठिनाई। वि.—कठिन, कठोर।

कड़्वा—वि. [सं. कटुक, प्रा. कड़ुत्रा] (१) जिसका स्वाद उग्र या तीच्ण हो। (२) उग्र या तीच्ण स्वभाव-वाला। (३) अप्रिय, अरुचिकर। (४) कठिन, मुशकिल।

कड़्याना-कि. य. [हिं. कड़्या (१) स्वाद में उप्र या

तीच्ण लगना। (२) बिगड़ना, खीमना। (३) नींद न त्राने पर आँख में दर्द होना।

कड़्ला—संज्ञा पुं. [हिं. वड़ा+ऊला] छोटा कड़ा जो बच्चे को हाथ-पैर में पहनाते हैं।

कड़ेरा—संशा पुं. [हिं. कैंड़ा] वस्तु को खरादकर ठीक करनेवाला।

कदत—कि. श्र. [हिं. कढ़ना] निकलता है, बाहर श्राता है। उ.—नाहिन कढ़त श्रीर के काढ़े सूर मदन के बान—२०५१।

कड़ित — िक. श्रः स्त्री. [हिं. कढ़ना] निकलती हैं, बाहर श्राती हैं। उ.—श्रव वे बातें इहचाँ रही।....। श्रव वे सालति हैं उरमहियाँ कैसेहु कढ़ित नहीं —२५४२।

कढ़ना—िक. श्र. [सं. कर्षण, पा. कड्ठन] (१) निक-लना, बाहर श्रामा। (२) उदय होना। (३) होड़ में श्रामे बढ़ना। (४) स्त्री का प्रेमी के साथ निकलना। (४) श्रोटने से दूध का गाढ़ा होना। (६) लाम होना।

कढ़नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कढ़ना] मथानी घुमाने की डोरी, नेती।

कढ़राना, कढ़लाना - कि. स. [हिं. काढ़ना+लाना] घसी-टना, घसीटकर बाहर करना।

कढ़वाना-कि. स. [हिं. काढ़ना+लाना] निकलवाना।

कढ़ाइ—कि. स. [हिं. कढ़ाना] खींचना, श्रलग करना।

उ.—दिन दिन इनकी करौं बड़ाई श्रहिर गये इतराइ। तौ मैं जो वाहो सौं कहिकै उनकी खाल कढ़ाइ—
२५७८।

कढ़ाई—कि. स. स्त्री. [हिं. कढ़ाना, कढ़वाना] निकल-वायी, बाहर की, खींच ली। उ.—सुनु मैया, याके गुन मोसों, इन मोहिं लयो बुलाई। दिध मैं पड़ी सेंत की मौपें चीटी सबै कढ़ाई—१०-३२२।

संज्ञा स्त्री. [हिं, कड़ाह] कड़ाही।

संशा स्त्री. [हिं. काढ़ना] (१) निकालने की किया या मजदूरी। (२) बूटा-कसीदा काढ़ने की किया या मजदूरी।

कढ़ाना—कि. स. [हिं. काढ़ना का प्रे०] निकलवाना, बाहर कराना, खिंचाना।

कढ़ावना—कि. सं. [हिं. काढ़ना का प्रे०] निकलवाना, बाहर कराना, खिचाना।

किंदाइ—िक. स. [हिं कढ़लाना] घसीटकर, घसीटकर बाहर करके । उ.—नाहिं काँची कृपानिधि हों, करों कहा रिसाइ। सूर तबहुँ न द्वार छाँड़े, डारिहों किंदराइ—१-१०६।

किंहिर—वि. [हिं. काढ़ना] (१) निकालनेवाला। (२) उबारने या उद्धार करनेवाला।

कहो—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना—गाहा होना] बेसन को पतला करके और श्राग पर गाहा करके बनाया जाने-वाला एक प्रकार का सालन या भोजन। उ.—(क) दाल-भात घृत कही सलोनी श्रष्ठ नाना पकवान। श्रारोगत नृप चारि पुत्र मिलि श्राति श्रानन्द निधान। (ख) खाटी कही विचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि श्राई—२३२१।

कढ़े—िकि. श्र. [सं. कर्षण, पा. कड्डन, हिं. कहना] निकले, बाहर हो, दूर हो। उ.—सूर निरित्व मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कहै—१०-१७४।

कढ़ैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ाह] कड़ाही। संज्ञा पुं. [हिं. काढ़ना] (१) निकालनेवाला। (२) उद्धार करनेवाला।

कड़ोरना—िक. स. [सं. कर्षण] घसीटना।
कढ़ोरि—िकि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटकर।
कढ़ोरिबो—िकि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटना।
कढ़ोलना—िकि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटना।
कढ़ोलना—िकि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटना।
कढ़थो—िकि. श्र. [सं. कर्षण, पा. कडढन, हिं. कढ़ना]
निकला, बाहर श्राया। उ.—(तब) लादि पंकज कढ़थों बाहिर, भयो ब्रज-मन भावना—५७७।

करा।—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनका, रवा या जरी। (२) चावल का छोटा दुकड़ा। (३) श्रन्न के दो-चार दाने। (१) भिन्ना।

क्रणकण—संज्ञा पुं. [सं. कंकणक] कंकण के बजने का शब्द।

किंगका—संशास्त्री [सं] किनका, कण, छोटा दुकड़ा। कण्य—संशापुं. [सं.] एक ऋषि जिन्होंने शकुन्तला को पाला था।

कत—ग्रव्य. [सं. कुतः, पा. कुतो] क्यों, किस लिए, काहे को। उ०—(क) स्रदास भगवंत भजन विनु धरनी जननि बोभ कत मारी ?—१-३४। (ख) काल-व्याल, रज-तम-विप-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत—१-५५। (ग) छ्ये पति कत जात खेलत कान मेरे प्रान—सा० ६३।

कतई—कि. वि. [ग्र.] निपट, बिलकुल । कतक—ग्रन्य. [सं. कुत:] किस लिए, क्यों । वि. [सं. कियत, हिं. कितना] किस परिणाम या मात्रा का ।

कतरना—कि. स. [सं. कर्तन] किसी श्रोजार या केंची से कतरना।

संज्ञा पुं. (१) बड़ी कैंची। (२) वह व्यक्ति जो बीच में बात काट देता हो।

कतर-व्योंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतरना + व्योंतना] (१) काट-छाँट।(२) उलट-फेर।(३) सोच-विचार।(४) युक्ति, जोड़-तोड़।

कतलबाज—संज्ञा पुं. [ग्रा. कत्ल + फ़ा. बाज़] बिधक, हत्यारा, मारनेवाला।

कतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतरना] एक प्रकार की मिठाई या पकवान।

कतवार--संज्ञा पुं. [हिं. कातना] कातनेवाला।
संज्ञा पुं. [हिं. पतवार = पताई] कूड़ा-करकट।

कतहुँ, कतहूँ—-अव्य. [हिं. कत + हूँ] कहीं, किसी जगह। उ०—-ममता-घटा मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारी! बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन ओट अधारी—१-२०६।

कता—संज्ञा स्त्री. [श्र. क़तश्र] बनावट, श्राकृति । (२) ढंग, रीति । (३) काट-छाँट ।

कतान—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का बिहया कपड़ा। कतार—संज्ञा स्त्री. [त्र्य. कतार] (१) पाँति, पंक्ति, श्रेगी। (२) समूह, भुंड।

कतारी - संशा स्त्री, [हिं. कतार] ढंग।

कति—वि. [सं.] (१) (संख्या में) कितने। (२) (तौल या माप में) कितना। (३) कौन। (४) बहुत, ग्रगणित।

कतिक—वि. [सं. कति + एक] (१) कितना। (२) थोड़ा, जरासा। (३) बहुत, अनेक।

कतिपय—िव [सं.] (१) कई, कितने ही। (२) इछ, थोड़े से।

कते क-वि. [सं. कति+एक] (१) कितने । (२) थोड़े, कुछ। (३) अनेक।

कतौनी—संज्ञा स्त्री [हिं. कातना] (१) कावने की क्रिया, भाव या मजदूरी। (२) काम में विलंब। (३) वेकार काम।

कत्ता—संज्ञा पुं. [सं. कर्तरी] (१) बाँका नामक श्रोजार। (२) छोटी टेड़ी तलवार। (३) चौपड़ का पासा।

कर्ता—संज्ञा स्त्री, [हिं. कत्ता] (१) छुरी। (२) छोटी तलवार या कटारी। (३) पगड़ी जो बटकर पहनी जाती है।

कत्थक—संज्ञा पुं. [सं. कथक] वे जो गाने-बजाने का पेशा करते हों।

कत्था—संज्ञा पुं. [सं. क्वाथ] (१) खैर की लकड़ियों का जबाल कर निकाला हुआ रस जो पान में लगाकर खाया जाता है। (२) खैर का पेड़।

कथक - संज्ञा पुं. [स.] कथा-पुराण कहने वाला।

कथत—िक. स. [हिं. कथना] (१) कहते हो, बखानते हो। उ.—(क) बेनु बजाय रास बन कीन्हो श्रित श्रानँद दरसायो। लीला कथत सहस मुख तौऊ श्रजहूँ पार न पायो। (ख) हमतौ निपट श्रहीरि बावरी जोग दीजिए जानन। कहा कथत मौसी के श्रागे जानत नानी-नानन—३३२६। (ग) ए श्रिल चपल मोद रस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—३०४२। (२) निंदा या बुराई करते हो।

कथित — कि. स. स्त्री. [हिं. कथना] कहती है, बखानती है। उ.--दिवस बितवित सकल जन मिलि कथित गुन बलबीर—-३४७६।

कथन-संज्ञा पुं. [सं.] (१) कहना। (२) कही हुई बात, उक्ति। (३) वक्तव्य, बयान।

कथना-- क्रि. स. [सं. कथन] (१) कहना, बोलना। (२) निंदा या बुराई करना।

कथनी--संज्ञास्त्री. [सं. कथन+ई (पत्य.)] (१) बात, कथन। (२) बकवाद, विवाद।

कथनीय — वि. [सं.] कहने या वर्णन करने योग्य। (२) बुरी, निंदनीय।

कथरी--संज्ञा पुं. [सं. कंथा + री (प्रत्य.)] चिथड़े-गुदड़ों से बनाया हुआ बिछीना, गुदड़ी।

कथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धार्मिक ग्राख्यान। (२) वात, चर्चा। उ.—नाहक में लाजिन मिरयत है, इहाँ ग्राइ सव नासी। यह तो कथा चलैगी ग्रागे, सव पिततिन में हाँसी—१-१६२। (३) समाचार, हाल, रहस्य। उ.—(क) सरदास बिल जात दुहुन की लिखि-लिखि हृदय-कथा चित पाती—सा. ५०। (ख) सुनहु महिर, तेरे या सुत सौं हम पिच हार रहीं। चोर ग्राधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही—१०-२६१। (४) वाद-विवाद, कहा-सुनी, मगड़ा।

कथानक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथा। (२) कथा का सारांश, कहानी।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री, [सं] नाटक, उपन्यास त्रादि की कहानी।

कथीर, कथील, कथीला — संज्ञा पुं. [सं. कस्तीर, पा. कत्थीर] राँगा।

कथोपकथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वार्तालाप। (२) बातचीत।

कदंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर, फुरड । उ.— सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे श्रितिसय दयाल, भागे जंजाल-जाल दुख-कदंब हारे—१-२०५। (२) कदम का यृच । उ.—श्रित रमनीक कदंब-छाँह-रुचि परम सुहाई—४९२।

कदंश—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा या सारहीन भाग। कद्—संज्ञा स्त्री. [ग्र. कद] (१) ईप्यो, द्वेष। (२) हठ, जिद।

> संज्ञा पुं. [श्र. कद] डील, ऊँचाई। संज्ञा पुं. [सं. कं = जल + द] बादल।

श्रव्य. [सं. कदा] कब, किस दिन, किस समय। कद्धव—संज्ञा पुं. [सं. कदध्वा] कुपथ।

कदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध, संग्राम, नाश । उ.— परें भहराइ भभकंत रिपु घाइ सों, करि कदन रुधिर भैरों श्रघाऊँ—६-१२६। (२) मरण, विनाश। (३) हिंसा, पाप। (४) दुख। (५) घातक, हत्यारा।

कद्न-संज्ञा पुं [सं.] वह अन्न जिसका खाना मना हो। कद्म-संज्ञा पुं. [सं. कदंब] (१) एक बड़ा पेड़ जिसमें पीले फूल श्रोर हरे फल लगते हैं। उ.—(क) सीतल कुंज कदम की छिहियाँ छाक छहूँ रस खैए—४४५। (ख) किह धौं कुंद कदम बकुल बट चंपक लता तमाल —१८०८।

संज्ञा पुं. [ग्रा. क़दम] (१) पैर, पग। (२) पैर का चिह्न। (३) दो पगों का ग्रांतर, पेंड।

कद्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) श्रंकुश। (२) गाँठ। संज्ञा स्त्री. [श्र. क़दर] (१) मात्रा। (२) मान, बड़ाई।

कद्रई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कादर] कायरता। कद्रज--संज्ञा पुं. [सं. कदर्य] एक प्रसिद्ध पापी। कद्रम स--संज्ञा स्त्री. [सं. कदन + हिं. मस (प्रत्य.)] मारपीट, लड़ाई।

कदराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कादर + ई. (प्रत्य.)] कायरता। कदरात—कि. ग्र. [हिं. कदराना] कायर बनते हो, कचि-याते हो, खिन्न होते हो, मन छोटा करते हो। उ.—स्याम भुज गहि दूतिका कहि मृदुबानी। काहे को कदरात हो मैं राधा ग्रानी—१८६०।

कद्राना—िक. श्र. [हिं. कादर] (१) डरना। (२) काय-रता दिखाना, कचियाना, पीछे हटना।

कदरो--संज्ञा स्त्री. [सं. कद + रव = शब्द] मैना के बरा-बर एक पत्ती।

कद्थ--संज्ञा पुं. [सं.] बेकार चीज। वि.--बुरा, व्यर्थ, बेकार, कुत्सित।

कदर्थना—संज्ञा स्त्री. [सं. वदर्थन] (१) बुरी दशा, दुर्गित। (२) निंदा, बुराई। कदर्थित—वि. [सं.] जिसकी दुर्दशा हुई हो। कद्ध्य—वि. [सं.] कंजूस, लोभी, कृपगा।

कदिल, कदली—संज्ञा स्त्री. [सं.] केला। उ०—कमलं जपर सरस कदली कदिल पर मृगराज—सा० १४। कदली-छिकुला—संज्ञा पुं. [सं. कदली+हिं. छिलका] केले का छीलन, केले के छिलके। उ०—प्रेम-विकल, अति ग्रानँद उर-धिर, कदली-छिकुला खाये—१-१३। कदा—कि. वि. [सं.] कब, किस समय। कदाच, कदाचि—िक. वि. [सं. कदाचन] शायद, कदा-िचत, कभी।

कदाचार—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा ग्राचरण, दुराचार। कदाचित—कि. वि. [सं.] कभी, शायद कभी। कदापि — कि. वि. [सं.] कभी भी, किसी समय। कदी—कि. वि. [सं. कदा] कभी। कदे—कि. वि. [हं. कदी] कभी।

कद्रुज—संज्ञा पुं. [सं. कद्रू+ज] करयप की एक स्त्री कद्रू के पुत्र, सर्प, नाग। उ० — इम टूटत ग्ररु ग्रसन पंक भये विधिना ग्रान बनाइ। कद्रुज पिठ पताल दुरे रहे खगपति हरि-बाहन भये जाइ— २२२४।

कद्र — संशास्त्री. [सं.] कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पैदा हुए थे।

कनंक-संज्ञा पुं. [सं. कनक] सोना।

कन—संज्ञा पुं. [सं. कण] (१) अन्न, अनाज के दाने।
उ०— (क) जो लों मन-कामना न छूटे। तो कहा
जोग-जज्ञ-व्रत कीन्हें, बिनु कन तुस कों कूटे—२-१६।
(ख) ऐसी को ठाली वैसी है तोसों मूड़ लड़ावे। मूठी
बात तुसी सी बिन कन फटकत हाथ न अप्रवे—
३२८७। (२) बालू या रेत के कणा। उ०—कौने
रंक संपदा बिलसी सोवत सपने पाई। अरु कन
के माला कर अपने कौने गूँथ बनाई—३३४३। (३)
किसी वस्तु का बहुत छोटा ठुकड़ा, कणा। (४) प्रसाद,
जूठन। (४) भीख, भिचान्न। (६) चावल की कनी।
(७) शक्ति, सत। (८) कान का संचिप्त रूप जो
यौगिक शब्दों के आदि में जुड़ता है। (६) बूँद।
उ०—गिरिजा-पितपितनी पित ता सुत गुन गुन गनन
उतारे। तन-सुत-कन से धन-बिचार के तुरत भूमि पै
डारे—सा०-५।

कनई—संशा स्त्री. [सं. कांड या कंदल] कला, कोंपल ।

कनडँगली—संशा स्त्री. [सं. कनीयान, हिं. कानी + उँगली] सबसे छोटी उँगली।

कनडँड - वि. [हिं. कनौड़ा] दासी, सेविका।

कनउड़—वि. [कनौड़ा] (१) दीनहीन। (२) लिखत। (३) कृतज्ञ, उपकृत। (४) काना, ग्रपंग।

कनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्रोना, स्वर्ण। उ०— सखी री वह देखो रथ जात'''। छत्र पत्र कनकदल मानो ऊपर पवन बिहात। (२) धत्रा। (३) टेस्,पलाश। (४) नागकेसर।

संशा पुं. [सं. किएक = गेहूँ का श्राटा] (१) गेहूँ का श्राटा। (२) गेहूँ।

कनकक्ली— संज्ञा. पुं. [सं. कनक+हिं. कली] कान में पहनने की लोंग।

कनकना—वि. [हिं, कन+कना (प्रत्य०)] जो जरा सा जोर लगने से टूट जाय।

वि. [हिं. कनकनाना] (१) कनकनाने या चुम-चुनानेवाला। (२) अरुचिकर। (३) जो जरासी बात में चिढ़ जाय।

कनकपुर—संज्ञा. पुं. [सं.] सोने का नगर, लंका नगर। उ.—मलें राम को सीय मलाई, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५।

कनकपुरि, कनकपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कनकपुरी] लंका।

उ.—(क) सौ जोजन विस्तार कनकपुरी, चकरी
जोजन बीस। मनौं विश्वकर्मा कर ऋपुनें, रचि राखी
गिरि-सीस—६-७४। (ख) सुनौ किन कनकपुरी के
राइ। हौं थि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न
सीस उचाइ—६-७८। (ग) लुटत सक के सीस चरन
तर जुग गत समए। मानहु कनकपुरी-पति के सिर
रघुपति फेरि दए—६८४।

कनकपाल—संज्ञा. पुं. [सं.] धत्रे का फल।
कनकबेलि—संज्ञास्त्री. [सं.] स्वर्णवल्लरी, स्वर्णलता।
उ.—रसना जुगल रसनिधि वोलि। कनकबेलि तमाल
श्रम्भी सुभुज बंध श्राखोलि—सा. उ. ५।
कनका—संज्ञा पुं. [सं. कण] कनकी, कण।
कनकाचल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने का पर्वत। (२)
सुमेरु पर्वत।

कनकानी—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों की एक जाति। कनकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनका] करण। कनखा—संज्ञा पुं. [सं. कांड] (१) कोंपल। (२) शाखा, डाल।

कनखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोन+ग्रांख] दूसरों की दृष्टि बचाकर देखना। (२) ग्रांख का संकेत।

कनखैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवन। कनगुरिया – संज्ञा स्त्री. [हिं. कानी + क्रॅंगुरी या क्रॅंगुरिया] सबसे छोटी जँगली।

कनछेदन, कनछेदिन—संज्ञा पुं. [हिं. कान + छेदना] एक संस्कार जो प्राय: मुंडन के साथ होता है श्रीर जिसमें बचों के कान छेदे जाते हैं। उ.—कान्ह कुँबर कौ कनछेदन है हाथ सोहारी मेली गुर की-१०-१८०।

कनधार—संज्ञापुं [सं. कर्णधार] मल्लाह, केवट। उ.— हाटकपुरी कठिन पथ, बानर, श्राए कौन श्रधार ? राम प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार। तिहिं श्रधार छिन में अवलंध्यो, श्रावत भई न बार— ६-८।

कनफुँका, कनफुँकवा—वि. [हि. कान+फूँकना] (१) कान फूँकने वाला, दीचा देनेवाला। (२) जिसने दीचा ली हो।

संशा पुं. -- (१) गुरु जिसने दीचा दी हो। (२) चेला जिसने दीचा ली हो।

कनफूल--संज्ञा, पुं. [हिं. कान + फूल] फूल की तरह का एक गहना जो कान में पहना जाता है।

कनविया - संज्ञा. स्त्री. [हिं. कान + बात] धीरे से या कान में कही हुई बात।

कनमनाना—िक श्र. [श्रनु॰] (१) सोते-सोते हिलना-डुलना । (१) थोड़ी-बहुत चेष्टा करना, हाथ-पैर हिलाना।

कनय--संद्या पुं. [सं. कनक] सोना, सुवरा ।

कनरस—संज्ञा पुं. [हिं. कान-रस] (१) संगीत का आनन्द। (२) संगीत का व्यसन या रुचि।

कनसार—संजा पुं. [हिं. काँसा+ग्रार (प्रत्य.)] ताम्रपन्न पर लिखनेवाला।

कनसुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कान+सुनना] आहट, टोह ।

किनहार, कतहारू—संज्ञा. पुं. [सं. कर्णधार, प्रा. करणाहार] मल्लाह, केवट।

कनाउड़ा, कनाउड़ो—वि. [हिं. वनौड़ा] (१) दीन-हीन।

(२) लिजत। (३) कृतज्ञ, उपकृत 🕹

कनात—संज्ञा स्त्री. [तु. कनात] कपड़े का ऊँचा परदा जिससे दीवार की तरह कोई स्थान घेरते हैं।

कृताबड़ा-वि.[हिं.कनौड़ा] (१) दीनहीन। (२) लिजत। (३) कृतज्ञ, उपकृत।

कनागत—संज्ञा पुं. [सं. कन्यागत] पितृपच ।
किनश्रारी—संज्ञा स्त्री. [सं. किए कार] कनकचंपा का
पेड़ । उ.—श्रित ब्याकुल भई गोपिका दूँ दृति गिरधारी । बूक्ति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी । जाहीजुही सेवती करना कनिश्रारी । बेलि चमेली मालती
बूक्ति दुम डारी—१८२२ ।

किनक—संशा स्त्री. [सं. किश्विक]। (१) गेहूँ। (२) गेहूँ का आटा। उ.—पटरस ब्यंजन को गनै बहु-भाँति रसोई। सरस किनक बेसन मिलै रुचि रोटी पोई—-१५५५।

किनका—संज्ञा पुं. [सं. किणिका] करण, बूँद्। उ.—मुख श्राँस श्रुरु माखन किनका (कनुका) निरिख नैन छिबि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन श्रविल समेत—३४६।

किनगर-संज्ञा पुं. [हिं. कानि+फ़ा० गर] मान-मर्यादा श्रीर कीर्ति का ध्यान रखनेवाला।

किनयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँध] गोद, कोरा, उछंग।
उ.—(क) नैंकु गोपालहिं मोंकों दैरी। देखों बदन
कमल नीकें करि, ता पाछैं तू किनयाँ लै री—१०-५५।
हिर किलकत जसुदा की किनयाँ—१०-८१। (ग)
हि आँगन गोपाल लाल को कबहुँक किनयाँ लेहों
—२५५०।

किनियाना—कि, श्र. [हिं, कतराना] कतराकर या बच कर निकल जाना।

कि. त्र. [हिं. किनया] गोद में उठाना। किनयार—संज्ञा पुं. [सं. किर्णिकार] कनक चंपा। किनिष्ठ—ित्र. [सं.] (१) छोटा। (२) जो पीछे जनमा हो। (३) हीन।

कितिष्ठा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) छोटी उँगली। (२) नव विवाहिता छोटी पत्नी जिसपर पित का प्रेम कम हो। कितिहार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] मल्लाह, केवट। कनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्ण] (१) कर्ण, छोटा दुकड़ा। (२) हीरे का कर्ण। (३) चावल का कर्ण। (४) बूँद। उ.—(क) कहा काँच संग्रह के कीने हिर जो श्रमोल मनी। विष सुमेरु कछु काज न श्रावे, श्रमृत एक कनी—८६४। (स्त) ससि सम सुन्दर सरस श्रँदरसे। ऊपर कनी श्रमी जनु बरसे—२३२१।

कनीनिका— संज्ञा स्त्री [सं.] आँख की पुतली का तारा।

उ.—सजल चपल कनीनिका पल अहन ऐसें डोर

(ल)। रस भरे अंखुजनि भीतर, भ्रमत मानों भोंर

—३६४।

कनीर—संज्ञा पुं. [हिं. वनेर] कनेर का वृत्त या फूल।
कनु—संज्ञा पुं. [सं. कण] (१) कण। (२) बूँद।
कनुका, कन्का,—संज्ञा पुं. [सं. कणिका] (किसी वस्तु का)
छोटा दुकडा या थोडा अंश, कण। उ.—मुख आँसू
अरु माखन कनुका, निरित्त नैन छिन देत। मानौ
स्रवत सुधानिधि मोती, उड्डुगन, अविल समेत—३४६।
कने—िक. वि [सं. कोण] (१) पास, समीप (२) ओर,
तरफ।

कनेखी—संशा स्त्री. [हिं. कनवी] तिरछी चितवन। कनेर, कनेर—संशा पुं. [सं. करनेर] एक पेड़ जिसमें लाल या सफेद फूल लगते हैं। यह पेड़ वड़ा विषेला होता है।

कनेरिया-वि. [हिं. कनेर] कनेर के फूल के रंग का, श्यामता लिये हुए लाल रँग का।

कनेखा-वि. [हिं. कनखी] कटाच्युक्त ।

कनीड़ा—वि. [हिं काना + श्रीड़ा (पत्य.)] (१) काना। जिसका कोई श्रंग टूटा या हीन हो। (३) जो बदनाम हो। (४) दीन-हीन। (५) लिजत। (६) कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद।

कनौड़े—िव. [हिं. वनौड़ा = काना + ग्रौड़ा (प्रत्य.)] कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद, दबेल । उ.—ग्रिति ग्राधीन सुजान कनौड़े, गिरधर नार नवावति । ग्रापुन पौढ़ि ग्रधर सजा पर, कर-पह्नव पलुटावति—६५५ ।

- कनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं, कान + श्रौती (प्रत्य,)] (१) पशुत्रों के कानों की नोक। (२) कानों को उठाने का ढंग। (३) कान में पहनने की बाली।
- कन्ना—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कंड] (१) किनारा, कोर। (२) संबंध।

संज्ञा पुं. [सं. क्रण] चावल का कन।

कन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कन्ना] (१) किनारा, कोर। (२) धोती या चादर का किनारा।

संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] कोंपल ।

- संज्ञा पुं. [सं. कान्यकुब्ज, प्रा. क्रण्णउज] फरुखाबाद जिले का एक नगर जो किसी समय बड़े विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था।
- कन्यका—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) पुत्री। (२) ग्रविवा- हित लड़की।
- कन्यनि संज्ञा स्त्री. सिव. बहु. [सं. कन्या] पुत्रियों ने। उ० सब कन्यनि सौभरि कौं बरयौ ६ ८ ।
- कन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अविवाहित लड़की।
 (२) पुत्री, बेटी। (३) एक राशि। उ०—(नंद जू)
 आदि जोतिषी तुम्हरे घर को पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
 लगन सोधि सब जोतिष गनिक, चाहत तुम्हिं
 सुनायौः । पचएं बुध कन्या को जौ है, पुत्रनि
 चहुत बढ़ेहैं—१०-८६।
- कन्हाई—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कण्ह] श्रीकृष्ण। कन्हावर संज्ञा पुं. [हिं. कँधावर] कंधे पर डाला जाने वाला दुपद्य।
- कन्हेया—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कणह] (१) श्री कृष्ण। (२) प्रिय व्यक्ति। (३) सुंदर बालक। (४) बाँका युवक।
- कपट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छल, दंभ, धोला। उ०-बकी कपट करि मारन आई, सो हरिजू बैकुंठ पठाई—१-४। (२) दुराव, छिपाव। उ०—कपट हीन न मीन एरी मरत विछुरत प्यार—सा० २४।
- क्ष.पटना—क्रि. स. [सं. कपट] (१) काटना, छाँटना। (२) चुपके से किसी चीज का कुछ ग्रंश निकाल जेना।

- कपटिन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कपट] छली-धूर्तों की। उ०—भँवर कुरंग काग ग्रह कोकिल कपटिन की चटसार—२६८७।
- कपटी वि. [हिं, कपट] छली, धूर्त । उ०—साधु-निंदक, स्वाद-लंपट, वपटी, गुरु-द्रोही । जेते अपराध जगत, लागत सब मोही—१-१२४।
- कपड़ा संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, प्रा. कप्पट, कप्पड़] (१) वस्त्र, पट। (२) पहनावा।
- कपनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंपन] कॅपकॅपी, कॉपना, थर-थराहट। उ०—चारि चारि दिन सबै सुहागिनि री ह्वै चुकी में स्वरूप अपनी। कोउ अपने जिय मान करै माई हो मोहि तौ छुटति अति कपनी—१६६२।
- कपरा—संज्ञा पुं. [हिं. कपड़ा] (१) वस्त्र, पट। (२) पहनावा।
- कपर्द, कपर्दक, कपर्दिका—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव की जटा। (२) कोड़ी।
- कपर्दिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, शिवा, भवानी। कपर्दी—संज्ञा पुं. [सं. कपर्दिन्] शिव।
- कपाट—संज्ञा पुं, [सं,] किवाड़, पट। उ०—(क)
 प्रगट कपाट विकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे।
 तैंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुम सौं क्यों हारे—
 ६-१०५। (ख) काजर कुलफ मेलि मैं राखे पलक
 कपाट दये री—सा० उ०७। (ग) नहसुत कील
 कपाट सुलच्छन दे हग द्वार अकोट—सा० उ०१६।
- कपाटिन संज्ञा पुं. [सं. कपाट + नि (प्रत्य०)] दर-वाजे। उ० — तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत। लालच लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटिन खोलत— १-१७७।
- कपार, कपाल—संज्ञा पुं, [सं. कपाल] (१) खोपड़ी। (२) मस्तक। (३) श्रदृष्ट, भाग्य। (४) खप्पर।
- कपालक—संज्ञा पुं. [सं. कापालिक] साधु जो हाथ में नर-कपाल लिये रहते हैं और शैव मत मानते हैं।
- कपालमाली—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव जो मनुष्य की खोपड़ियों की माला पहनते हैं।

कपालिक—संज्ञा पुं. [सं, कापालिक] साधु जो मनुष्य की खोपड़ी लिये रहते हैं ग्रीर भैरव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं। उ.—जा परसें जीतें जग-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी—६-११।

कपालिका—मंत्रा स्त्री. [सं,] खोपड़ा । संज्ञा स्त्री, [सं, कापालिक = शिव] काली, रखचंडी।

कपालिनी-संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, काली।

कपाली—संज्ञा पुं. [सं. कपालिन्] (१) शिव। (२) भैरव। (३) भिच्क।

कपास—संज्ञा स्त्री. [सं. कपिस] (१) रुई का पौधा। (२) रुई।

कपासी—वि. [हिं. कपास] कपास के फूल की तरह बहुत हल्के रंग का।

कपिंजल-संशा पुं. [सं.] (१) चातक, पपीहा। (२) तीतर। (३) एक सुनि।

किप - संज्ञा पुं. [सं.] (१) बंदर । (२) हनुमान। उ०—काकी ध्वजा बैठि किप किलिकिहि, किहिं भय दुरजन डिरहै—१-२६। (३) हाथी। (४) सूर्य।

किपिकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] ऋजु न जिनके रथ की ध्वजा पर हनुमान जी थे।

किपिध्वज - संज्ञा पुं. [सं.] अर्जु न जिसकी ध्वजा में किपि का चिह्न था। उ.—स्यंदन खंडि महारिथ खंडों, किपध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

किंपिपति—संज्ञा पुं. [सं.] दरों का राजा सुत्रीव। त.— इहिं गिरि पर किंपिति सुनियत है, बालि-त्रास कैरौं दिन जात—६-६६।

किपराष्ट्र—संज्ञा पुं [हिं. किपराय] श्रेष्ठ बंदर हनुमान। उ.—कैसैं पुरी जरी किपराइ। बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, श्रंतर श्राप बचाइ—६-१०५।

किपिल—संशा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि जिन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को अस्म कर द्या था। (२) श्राग्ना। (३) महादेव। (४) सूर्य। (४) विष्णु।

वि,—(१) भूरा। (२) सफेद।

किपिला—िव स्त्री. [सं.] (१) भूरे या सकेंद्र रंग की। (२) सीधी-सादी।

संज्ञा स्त्री.—(१) सफेद रंग की गाय। (२) दक्तप्रजापति की एक कन्या।

कपिश-वि. [सं.] भूरे रंग का, मटमैला।

किपसि—वि. [सं. किपश] भूरा या मटमेला। उ.—पुरइन किपस निचोल विविध रँग विहँसत सचु उपजावै। स्रस्याम आनंन-कंद की सोभा कहत न आवै।

संज्ञा पुं.-रेशमी वस्त्र।

कपी—संज्ञा पुं. [सं. कपि] बंदर। उ.—मिक्त के बस स्याम सुन्दर देह घरे आवें। नंदघरिन बाँधि बाँधि कपी जयों नचावें—३६४।

कपीश-रंजा पुं. [सं.] बानरों का राजा।

कपूत—संज्ञा पुं. [सं. कुपुत्र] बुरे चाल-चलन का लडका। कपूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कपूत] पुत्र का बुरा आचरण। कपूर—संज्ञा पुं. [सं. कपूर, पा. कप्पूर, जावा कापूर] सफेद रंग का जमा हुआ एक सुगन्धित द्रव जो जलाने से जलता है और खुला रहने पर हवा में उड जाता है।

कपोत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कबूतर। (२) परेवा। (३) चिडिया।

कपोतन्नत—संशा स्त्री, [सं.] (१) कब्तर की शिति-नीति। (२) कब्तर की तरह श्रत्याचार सहन करना। कपोल—संशा पुं. [सं.] गाल।

संज्ञा स्त्री. [सं.] नृत्य या श्रभिनय में कपोल की किया श्रथवा चेष्टा।

कपोलकल्पना—संशा स्त्री. [सं.] मनगढ़ंत या बनावटी बात।

क्योल, क्योलो—संज्ञा पुं. [सं. क्योल] गाल पर। (क) मकराकृत कुंडल छिब राजित लोल क्योले—३१२६। (ख) चंदन मिटाये तनु ऋति ही ऋलसात नागरी की पीक लगी तो क्योलो—१६५६।

कप्पर—संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, हिं. कपड़ा] वस्त्र, कपड़ा, पट।

कफ - संशा पुं. [सं.] खाँसने-थूकने से निकलने वाली लसदार चीज, बलगम। उ.—परमारथ उपचार करत हो बिरह-बिथा है जाहि। जाको राजरोग कफ बाढ़त दह्यो खवावत ताहि—३१४५।

संज्ञा पुं. [म्र. कफ़] लोहे का दुकड़ा जो चकमक से ग्राग भाडने के काम ग्राता है।

कफन—संज्ञा पुं. [त्र्य. कफ़न] वस्त्र जो शव पर लपेटा जाता है।

कफनी—संज्ञा स्त्री. [हिं, कफन] साधुक्रों के पहनने का बिना सिला कपड़ा, जिसमें सिर डालने के लिए एक बड़ा छेद होता है।

कवंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिना घड़ का शरीर। उ.—
(क) पारथ विमल बभ्रु बाहन कों सीस-खिलौना दीनों। इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचननीर। पुत्र-कवंध ग्रंक भिर लीन्हों, धरित न इक छिन धीर—१-२६। (ख) पिर कवंध भहराइ रथिन तें, उठत मनो भर जागि—६-१५८। (२) एक राचस जिसके पेट में मुँह था। यह श्रीरामचन्द्र जी द्वारा दंडकारण्य में पराजित हुआ था। हाथ,पैर काटकर इन्होंने उसे जीता ही भूमि में गाड़ दिया था। उ.—मारग में कबंधिरपु मारयौ सुरपित काज सँवारयौ—सारा.-२७१। (३) बादल। (४) पेट। (५) राहु।

कब-कि. वि. [सं. कदा, हिं. कद] (१) किस समय। (२) नहीं, कदापि नहीं।

कबरा—वि. [सं.कर्वर, पा. कव्वर] सफेद रंग पर काले-पीले-लाल या काले-पीले-लाल रंगों पर सफेद दाग वाला, चितकबरा।

कबरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कवरी] स्त्रियों की चोटी, वेगी।
उ.—ग्रति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गुँथे सुमन
रसालहि। कबरी ग्रति कमनीय सुमग सिर राजति
गोरी बालहि—ए. ३४५ (४१)।

कबहुँक—िक. वि. [हिं. कब] कब, कभी तो। उ.— (क) कबहुँक तृन बूड़े पानी मैं, कबहुँक सिला तरें— १-१०५। (ख) इहिं श्राँगन गोपाल लाल को कबहुँक कनियाँ लहों—२५५०। (ग) कबहुँक कर करताल बजावत नानां भाँति नचावत—सारा. ४५८।

कवाय—संज्ञा पुं. [त्र्य. कवा] एक ढीखा-ढाला कपड़ा जो प्रायः संत पहनते हैं।

कबार—संज्ञा पुं [हिं. कारोबार या कबाड़] (१) व्या-पार। (२) बेकार चीजें। कबाहर, कबाहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) ब्रगई। (२) अङ्चन।

कि बि—संज्ञा पुं [सं. कि] कि ब्य-रचियता, कि । उ.—तौ जानौं जौ मोहिं तारिहो, सूर कृर कि बि-ठोट —१-१३२।

कबीर—संज्ञा पुं [अ. कबीर = बड़ा, अेष्ठ] (१) एक प्रसिद्ध संत किव। (२) एक प्रकार के अश्लील गीत जो होली में गाये जाते हैं।

कबीला—संज्ञा पुं. [श्र. कबीलः] (१) समूह, सुंड। (२) एक परिवार का सदस्य। संज्ञा स्त्री.—पत्नी, स्त्री।

कबुलाई — कि. स. [हिं, कबुलाना] (कोई बात)स्वीकार करायी।

कबुलाना — कि. स. [हिं, कबूलना का प्रे.] (कोई बात) स्वीकार कराना।

कवृतर—संज्ञा पुं. [फ़ा. (सं. कपोत)] एक पची, कपोत।

कबै—िकि. वि. [हिं. कब] किस समय, कब। उ०— कमल कोस मैं आनि दुरायो बहुरि दरस धौं होइ कबै—१३००।

कभी, कभू—िक, वि. [हिं. कव + ही] किसी समय, किसी अवसर पर।

कमंडल—संज्ञा पुं. [सं. कमंडलु] साधु-संतों का जल-पात्र जो दिरयाई नारियल या तुमड़ी आदि का होता है।

कमंडलो—संज्ञा पुं. [सं. कमंडल + ई (प्रत्य०)] ब्रह्मा। उ०—उते देखि धावे, इत आवे, अचरज पावे, सूर सुरलोक ब्रजलोक एक हैं रह्यों। विवस ह हार मानी, आपु आयो नकवानी, देखि गोप मंडली कमंडली चिते रह्यों—४८४। (२) साधु।

वि [सं. कमंडलु + ई (प्रत्य०)] पाखंडी, आडंबर रखनेवाला।

कमंडलु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधु-संन्यासियों का जल-पात्र जो प्रायः धातु, मिट्टी, तुमड़ा, दिखाई नारियत श्रादि का होता है। (२) एक पेड़।

कमंद—संज्ञा पुं. [सं. कबंध] बिना सिर का धड़। संज्ञा स्त्री. [फ़ा,] रेशम, सूत या चमड़े का फंदा।

कमंध—संज्ञा पुं. [सं. कवंध] (१) बिना धड़ का शरीर।
उ०—(क) राधे सो रस बरिन न जाई। जा रस को
सुर भान सीस दियों सो तें पियो अकुलाई। पिच हारे
सब बाल कमलमुख चंद्र बदन ठहराई। अजहुँ कमंध
फिरत तेहि लालच संदिर सैन बुक्ताई—१२३५।
(ख) मन हठ परयौ कमंध जोधा लौं हारेहु नाहीं
जीति—३२३७। (२) कलह, कगड़ा।

कम-वि. [फ़ा.] (१) थोड़ा, तनिक। (२) बुरा। कि. वि.-प्राय: नहीं, बहुत थोड़ा, कदाचित ही।

कमठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब छु आ, क च्छप। उ०—
(क) वासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ में अपनी
पीठ धारों—२-८। (ख) मिथ समुद्र सुर असुरन के
हित मंदर जलिंघ धसाऊ। कमठ रूप धरि धरयौ
पीठि पर तहाँ न देखे हाऊ—१०-२२१। (२)
साधुओं का तुंबा। (३) पुराने ढंग का एक बाजा
जिस पर चमड़ा महा जाता था।

कमठा—संज्ञा पुं. [सं. कमठ = बाँस] घनुष।
कमठो—संज्ञा पुं. [सं.] कछुई।
कमत—कि. त्र. [हि. कमना] कम होता है।
कमना—कि. त्र. [हि. कम] कम होना, घटना।
कमनी—वि- [सं. कमनीय] सुंदर।
कमनीय—वि. [सं.] (१) सुंदर, मनोहर। (२) कामना
करने या चाहने योग्य।

कमनीयता—संज्ञा स्त्री. [सं. कमनेय] सुंदरता। कमनेत—संज्ञा पुं. [फ़ा. कमान + हिं. ऐत (प्रत्य०)] धनुष चलानेवाला, तीरंदाज।

कमनैती—संशा पुं. [हिं. कमनैत] तीर चलाने की कला या विद्या, धनुर्विद्या।

दमर-संज्ञा स्त्री. [फा.] कटि।

कमरख—संज्ञा पुं. [सं. कर्मरंग, पा० कम्मरंग] (१) एक पेड़ जिसके फल खटिमट्टे होते हैं, कमरंग। (२) कमरंग का फल।

कमिरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमली] कमली, कंबल। उ.—(क) काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरित साथ—४८७। (ख) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजै—सारा. ७४१। संज्ञा स्त्री, [हिं. कमर] कमर।

कमरी—संज्ञा स्त्री. [हं. कमली] कमली, कंबल। कमल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पानी में होने वाले एक पौधे का फूल जो अधिकतर लात, सफेद या नीले रंग का होता है। (२) इस पेड का फूल। (३) जल। कमलनाम— संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

कमलनाल - संज्ञा स्त्री. [सं,] कमल की डंडी, मृणाल। कमज़नेन — संज्ञा पुं. [सं, वमलनयन] (१) कमल के समान नेत्र हैं जिसके वह श्रीकृष्ण। उ. — कमल-नेन काँधे पर न्यारो पीत वसन फहरात — २५३६।

(२) विध्या। (३) राम।

वि.—सुंदर नेत्रवाला।

कमलबंधु - संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य। कमलभव, कमलभू - संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

कमला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लच्मी। (२) धन, संपत्ति। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.— कहि राधा किन हार चुरायो।... सुखमा सीला अवधा नंदा बृंदा यमुना सारि। कमला तारा विमला चंदा चंदाविल सुकुमारि—१५८०।

संज्ञा स्त्री. [सं. कमल] कमिलनी । उ.—चिल सिख तिहिं सरोवर जाहिं। जिहिं सरोवर कमल-कमला, रिवं बिना विकसाहिं— १-३३८।

कमलाकंत, कमलाकांत— संज्ञा पुं. [सं. कमला = लद्मी+ कांत = पित] विष्णु, श्रीकृष्ण । उ. - सूर कश्चू यह ह्याँ री श्रद्भुत लीला कमलाकंत — २२२२।

कमलाक्र- संज्ञा पुं [सं.] सरोवर।

क्मलायजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कमला = लद्दमी+त्र्ययजा= वही वहन] लद्दमी की बड़ी बहन, दरिद्रा।

वमलापित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लच्मीपित विष्णु के अवतार श्री रामचंद्र। उ.—तीनि जाम अरु वासर बीते, सिंधु गुमान भरयौ। कीन्हौ कोप कुँवर कमलापित, तब कर धनुष धरयौ—६-१२२। (२) श्रीकृष्ण। उ.—हमसों कठिन भए कमलापित काहि सुनावौ रोई—२८८१। (३) विष्णु।

कमलावलो—संशा स्त्री. [सं. कमल-श्रवली] कमलों की पाँति, कमल-समूह। उ.— विकसत कमलावली, चले प्रपुंज-चंचरीक, गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि, कंज न्यारे—१०-२०५।

कमलासन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। कमिलनी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) कमला (२) वह तालाब जिसमें कमल हों।

कमली—संशा स्त्री. [हि, कंबल] छोटा कंबल । कमाइच – संशा स्त्री. [हिं. कमानी] सारंगी बनाने की कमानी ।

कमाई—कि. स. स्त्री. [हिं. कमाना] संचय की, एकत्र की। उ.—लंका फिरि गई राम दोहाई। कहति मंदोदरि सुनि पिय रावन, तें कहा कुमित कमाई— ६-१४०।

संज्ञा स्त्री.—(३) कमाया हुन्ना धन। उ.—भानु भानुसुत सी सुभान मम सविहत सरस कमाई—सा.-१६।(२) कमाने का धंधा, व्यवसाय।

कमाऊ-वि. [हं. कमाना] धन कमानेवाला।

कमान—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) धनुष । उ.—(क) कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ—१-६४। (छ) पिय विन बहत बैरिन बाय। मदन बान कमान ल्यायौ करिष कोप चढ़ाय—सा. ३२। इद्रधनुष। (३) तोप, बंदूक।

कमाना—क्रि. स. [हिं. काम] (१) धन पैदः करना। (२) सेवा के काम करना। (३) कर्म करना।

क्रि. ग्र.— तुच्छ काम करना।

क्रि. स. कम करना।

कमानियाँ—संज्ञा पुं. [फा. कमान] धनुष चलानेवाला। कमानिया—वि. [हं. कमानी] मेहराबदार।

कमानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमान] धातु की लचीली तीली।

कमायो — कि. स. भूत. [हिं. कमाना] कर्म संचय किया, कर्म किया। उ.— (क) जोग-जज्ञ जप तप नहिं कीन्हों, बेद विमल नहिं भाख्यों । श्राति रस-लुब्ध स्वान जुठिन ज्यों, श्रमत नहीं चित राख्यों । जिहिं जिहिं जोनि फिरयों संकट बस, तिहिं तिहिं यहैं कमायों । (ख) कहा होत श्रव के पिछताएँ, पहि तें पाप कमायों—१-३३५।

कमाल—संज्ञा पुं. [ग्र.] (१) कुशलता, निपुणता। (२) अनोखा काम। (३) कारीगरी। (४) कबीर के पुत्र का नाम।

वि.—(१) पूरा। (२) सबसे श्रेष्ठ। (३) ग्रत्यंत। कमासुत—वि. [हिं. कमाना + सुत] कमा कर रूपया लाने वाला।

कि. हा. [हं. कमना] कम होगा, घट जायगा। कमी—संज्ञा स्त्री. [फा. कम] (१) न्यूनता, द्रामाव, द्रामाव, द्रामाव, उ.—(क) कहा कमी जाके राम धनी —१-३६। (ख) तुमही कही कमी काहे की नवनिधि मेरें धाम—३७६। (२) हानि, घाटा।

कमुकंदर—संज्ञा पुं. [सं. कार्मुकं + दर] शिवजी का धनुष तोडनेवाले राम।

कमोदन-संज्ञा स्त्री. [हिं. कुमुदिनी] कोई, कुमुदिनी।

कमोदिक—संज्ञा पुं. [सं. कामोद = एक राग न क] (१) वह संज्ञीतज्ञ जो कामोद राग गाता हो। (२) गवैया, संगीतज्ञ। उ.—वेगि चलौ बिल कुँ श्रिर सयानी। समय बसंत बिपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप-फीज पलानी।...। बोलत हँसत चपल बंदीजन मनहुँ प्रसंसित पिक बर बानी। धीर समीर रटत बर श्रिलगन मनहुँ कमोदिक मुरिल सुठानी।

कमोदिन, कमोदिनो—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी] कोई, कुमुदिनी।

कमोरा—संज्ञा पुं. [सं. कुंम + स्रोरा (प्रत्य)] (१) मिट्टा का चौड़े मुँह का पात्र जिसमें दूध, दही रखा जाता है। (२) घडा।

कमोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमोरा] मिट्टी का चौड़े मुँह का बर्तन जिसमें दूध-दही रखा जाता है, मटका। उ.—
(क) माखन भरी कमोरी देखत, लै लै लागे खान।
......। जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, श्रित मीठौ कत डारत—१०-२६५। (ख) मीठौ श्रिधक, परम रुचि लागे, तौ भरि देउँ कमोरी—१०-२६७। (ग) हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात। श्रापुन गई कमोरी माँगन हिर पाई ह्याँ घात।। श्राइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल—१०-२७०। (घ) कहि धौं मधुन बारि मिथ माखन काढ़ि जो भरो कमोरी—३०२८।

कया—संशा स्त्री. [हिं. काया] शरीर, काया। कये— कि. स. [सं. करण, हिं. करना] किये, करने से।

3,—नीर छीर ज्यों दोउ मिलि गये। न्यारे होत न न्यारे कये -११-६।

करक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मस्तक। (२) कमंडलु। (३) नारियल की खोपड़ी। (४) ठठरी, ढाँचा, कंकाल।

करंज, करंजा—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) काड़ी, कंजा नाम की कटीली काड़ी। उ.—भटकत फिरत पात द्रुम बेलिन कुसुम करंज भये। सूर विमुख पद श्रंखु न छाँड़े विषैनि बिष बर छये—-२६६२। (२) एक पेड़। वि.—(१) भूरी श्रांख वाला। (२) खाकी।

करंड—संज्ञा पुं [सं.] (१) शहद का छत्ता। (२) तल-वार। (३) करंडव हंस। (४) डलिया, पिटारी। (४) हथियार तेज करने का पत्थर।

कर-संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ।

मुहा.—कर जोरे—(१) प्रार्थना करती हुई। (२) अनुन य-विनय करती हुई। उ.—मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई— सारा, ३८६। (३) प्रणाम करती हुई। (४) सविनय, विनम्न होकर, सेवा के लिए तत्पर। उ.— अष्टिसिद्धि नवनिधि कर जोरे द्वारें रहत खरी-१०-७६। कर देति- (१) हाथ पकड़ती है, सहारा देती है। उ.—सूच्छम चरन चलावत बल करि। श्रय्ययात कर देति सुन्दरी उठत तबै सुजतन तन-मन धरि-१०-१२०। (२) रोकती ्र है, मना करती है। कर पसारौं— (किसी से कुछ) माँगूँ, याचना करूँ, कुछ देने के लिए विनती करूँ। उ.— अब तुम मो कों करी अजाँची जो कहुँ कर न पसारौं-- १०-३७। कर मारै -- हाथ मलता है, भूँभलाता है, निराश या दुखी होता है। उ.—केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज मुरारे।। नगन न होति चिकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारे-१--२५७। कर मीड़त-- हाथ मलता है, ं पछ्लाता है, निराश या दुखी होता है। उ.—(क) हरि दरसन कौं तड़पत श्रें खियाँ। भाँकति भपति भरोखा बैठी कर मीड़त ज्यों मिखयाँ—२७६६। (ख) सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन कों कर मीइत पछितात- ३३५०। कर मीड़े-दुखी होता है,

पछताता है। उ.—सुदामा मन्दिर देखि डरयो। सीस धुनै, दीऊ कर मीड़े ग्रांतर साँच परयो—१०उ. –१६८। कर मीजै—हाथ मलकर, दुखी या निराश होकर। उ.—सूरदास विरहिनी विकल मित कर मीजै पछिताइ—२७१८।

(२) हाथी की सूँड। उ.—देखि सखी हरि-श्रंग श्रान्प।....। कबहुँ लकुट तें जानु फेरि ले, श्रपने सहज चलावत। स्रदास मानहु करभी कर बारंबार हुलावत—६३२। (३) सूर्य की किरण। (४) प्रजा की श्राय या उपज से लिया गया राजा का भाग। (५) उत्पन्न करनेवाला। (६) छल, पाखंड।

प्रत्य. [सं. कृतः] का। उ.—जिनके क्रोध पुहुमि नम पलटे सूखे सकल सिंधु कर पानी—६-११६। करइये—िकि. स. [हिं. 'करना' का प्रे. 'कराना'] करा-इये, करने में लगाइये। उ.—दुरजोधन कें कौन काज जहँ आदर-भाव न पइये। गुरुमुख नहीं, बड़े अभिमानी, काप सबे करइये—१-२३६।

करई—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] करता है।

उ.—(क) नसे धर्म मन बचन काम करि, सिंधु

श्रचंभो करई—६-७८। (स) इतनी कहत गगनबानी

भई, हन् सोच कत करई—६—६६। (ग) बिधु

वैरी सिर पर बसे निसि नींद न परई। हरि सुर भान

सुभट बिना यहि को बस करई—२८६१।

संज्ञा स्त्री [हिं करवा] एक पात्र, करवा। संज्ञा स्त्री [सं करक] एक छोटी चिड़िया।

करक—संज्ञा पुं [सं] (१) कमंडलु, करवा। (२) श्रनार, दािड्म। उ — सहज रूप की रासि नागरी भूषन श्रिषक बिराजे...नासा नथ मुक्ता विवाधर प्रतिविधित श्रसमूच। बीध्यो कनक पास सुक सुन्दर करक बीच गहि चंच। (३) पलाश।

संशो पुं [हिं कड़क] (१) कसक, चिनक। (२) शरीर पर रगड़ से पड़ने वाला चिन्ह।

करकट—संशा पुं [हिं खर + सं कट] कूड़ा। करकना—िक स्रा [हिं कड़क (करक)] (१) किसी वस्तु का चिटकना। (२) दर्द करना, कसकना, खटकना। करकरा—संशा पुं [सं कर्करेटु] एक तरह का सारस, करकटिया। वि [सं कर्कर] खुरखुरा, जो चिकना न हो। करकस — वि [सं कर्कश] कड़ा, कठोर,सख्त। करखना — कि अ [सं कर्षण] (१) खीचना। (२) जोश, उमंग या आवेश में आना।

करखा—संज्ञा पुं [हिं कड़खा] युद्ध के अवसर पर गाये जाने वाले वीरोत्तेजक गीत।

संज्ञा पुं [सं कर्ष] उत्तेजना, बढ़ावा,जोश, लाग-डाँट। उ.—नैनिन होड़ बदी बरखा सौं राति दिवस बरसत भर लाये दिन दूना करखा सों—३४५७। संज्ञा पुं [हिं कालिख] करिखा, कालिख।

करगत—वि [स] हाथ में आया हुआ, हस्तगत। करगस—संज्ञा पुं [सं कर + हिं गाँस] तीर, भाला, काँटा।

करगह - संज्ञा पुं [हिं करघा] कपड़ा बिनने का यंत्र। करगी--संज्ञा स्त्रों [हिं कर + गहना] बाढ़। करघा--संज्ञा पुं [फा कारगाह] कपड़ा बिनने का यंत्र। करचंग-संज्ञा पुं [हिं कर + चंग] (१) एक बाजा जिससे ताल दी जाती है। (२) डफ।

करछा—संज्ञा पुं. [हिं करौछ = काला] एक पत्ती। करछैयाँ—संज्ञा स्त्री]हिं करौछ = काला] हलके काले रंग की गाय।

करछौंह—संज्ञा पुं [हिं करौंछ = काला] हलका काला रंग।

करज—संशा पुं. [सं कर + ज = उत्तनन] (१) नख, नाखून। उ.—उरज करज मनो सिव सिर पर सिस सारंग सुधागरी—२१११ । (२) जँगली। उ.—(क) सिय अन्देस जानि सूरज प्रभु लियौ करज की कोर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ ज्यों तरागन भोर—६-२३। (ख) करज मुद्रिका, कर कंकन छबि, किट किंकिन नूपुर छिब भ्राजत। (ग) बिलहारी वा बाँस-बंस की बंसी-सी सुकुमारी। सदा रहत है करज स्याम के नेक हु होत न न्यारी—३४१२।

संज्ञा पुं. [अ कर्ज, कर्ज] ऋण, उधार । उ — किर अवारजा प्रेम प्रीति की, असलत हाँ खितयावै। दूजे करज दूरि किर देयत नैंकु न तामें आवै— १-१४२ ।

करट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौग्रा। (२) हाथी का गंडस्थल।

करटी-संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

करण—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक कारक। (२) ग्रीजार। (३) देह। (४) किया, कार्य। (४) हेतु। (६) इन्द्रिय।

करिएक—संज्ञा पुं. [सं.] काम का कर्ता, कार्यकर्ता। करिएा, करिएाय — वि. [सं. करिएाय] करने योग्य। करत—कि. स. [सं. करा, हिं. करना] करते हैं।

उ.—(क) बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई—१-३। (ख) हों कहा कहीं सूर के प्रभु के निगम करत जाकी क्रीति—१० उ.-१७५।

मुहा० — करत (रैनि) — रात करते हो, रात तक बाहर रहते हो, देर लगाते हो। उ. — जसुमिति मिलि सुत सौं कहत रैनि करत किहिं काज — ४३७।

करतब—संज्ञा पुं. [सं. कर्तव्य] (१) करनी, करत्त । उ.—देखी त्राइ पूत के करतब, दूध मिलावत पानी—१०-३३७। (२) कला, गुण। (३) जादू।

करतरी, करतल, करतली—संज्ञा पुं. सवि. [सं.] (१) हाथ। उ.—करतल-सोभित बान धनुहियाँ—६-१६। (२) हथेली, हाथ की गदेरी।

करतव्य - संज्ञा पुं. [सं. कर्तव्य] करने योग्य कार्य या धर्म।

वि. - करने योग्य।

करता—संज्ञा पुं. [सं. कत्ती] (१) रचने या करनेवाला।

उ.—(क) नर के किएँ कछू निहं होइ। करताहरता त्रापुहिं सोइ—१-२६१। (ख) में हरता करता
संसार—५-२। (ग) येई हैं श्रीपित भुवनायक, येई
करता हैं संसार—४९७। (२) विधाता, ईश्वर। (३)
एक कारक।

करतार—संज्ञा पुं. [सं. कर्तार] सृष्टि करनेवाला, ईश्वर। उ.—धर्मपुत्र तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार—१-२६१।

करतारी — संज्ञा स्त्री. [हिं. करतारी] ईश्वरीय लीला। संज्ञा स्त्री. [सं. कर+हिं. ताली] (१) हाथ से

ताली बजा की किया। (२) ताल देने का एक बाजा।

करताल, करताली—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दोनों हथे-लियों के परस्पर बजाने का शब्द, ताली। उ.— दै करताल बजावित, गावित राग श्रन्प मल्हावै— १०-१३०। (२) एक बाजा जो लकड़ी या काँसे का होता है। इसका एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं। (३) भाँभ, मजीरा।

करतालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] हथेली। उ.— गाबत हँसत, गँवाय हँसावत, पटिक पटिक करतालिका —८०६।

करताहि—संशा पुं. [सं. कर्ता+हि (हिं. प्रत्य.)] कर्ता को, ईश्वर को। उ.— रही ग्वालि हिर को मुख चाहि। कैसे चरित किए हिर श्रवहीं बार-बार सुमिरहि करताहि—१०-३१६।

करति — कि. स. [हिं. करना] (१) करती है, संपादन करती है। उ० — करति बयारि निहारति हरि-मुख चंचल नैन बिसाल — ३६७। (२) पकाती है, बनाकर तैयार करती है। उ० — नंदधाम खेलत हरि डोलत। जसुमित करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत — १० — १११।

करतूत, करतूति—संशा स्त्री. [सं. कतृत्व] (१) कर्म, करनी, काम, करतब। उ०—(क) जग जाने करतूति कंस की, बूप मारयो, बल-बाहीं—२-२३। (ख) सब करतूति केंकई कें सिर, जिन यह दुख उपजायो—१-५०। (ग) कहा कठिन करतूति न समुफत कहा मृतक अबलिन सर मारति—२८४९। (२) कला, हुनर, गुगा।

करती—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] (काम) चलाता, संपादित करता, करता। उ०—(क) मिक्त िषना जो कृपा न करते, तो हीं आस न करती—१-२०३। (ख) जो तू हिर को सुमिरन करतो। मेरें गर्भ आनि अवतरती—४-६।

वरद्-वि. [सं. कर + द=देनेवाला] (१) कर देने वाला, श्रधीन । (२) सहारा देनेवाला । संज्ञा स्त्री. [फ़ा. कारद] छुरा, चाकू । करदम-संज्ञा पुं. [सं. कर्दम] (१) कीचड़। (२) पाप। (३) मांस।

करदा—संज्ञा पुं. [हिं. गर्द] (१) बट्टा, कटौती। (२) बदलाई।

करधिनि—रंजा स्त्री. [हिं. करधनी] कमर में पहनने का एक गहना। बच्चों के लिए यह घुँघरूदार होता है; जब वे चलते हैं तब इसके घुँघरू बजते हैं। उ०—तनक कटि पर कनक-करधिन छीन छिं चम-काति—१०-१८४।

करधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. किट+ग्राधाना। सं. किंकिणी]
(१) कमर में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना
जिसमें बच्चों के लिए घुँघरू लगाये जाते हैं। (२)
कई लड़ों का सूत जो करधनी की तरह कमर में
पहनने के काम श्राता है। इस सूत का रंग प्राय:
काला होता है।

करधर—संज्ञा पुं. [सं. कर=वर्षोपल + धर = धारण करनेवाला] बादल, मेघ। उ०—करधर की धरमैर सखी री की सुक सीपज की बगपंगति की मयूर की पीड़ पखी री।

करन—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्य काल में ही सूर्य से उत्पन्न हुत्रां था। उ०—करन-मेध बान-बूँद भादौँ-भरि लायौ। जित-जित मन ग्रर्जुन को तितहिँ रथ चलायौ—१-२३।

क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) करना, (२) संपादित करना। (क) पारथ-तिय कुरराज-सभा में बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करना-सिरता भये बाढ़े बसन उमंगी—१-२१। (२) पकाना, बनाना, तैयार करना। उ.—जेवन करन चली जब भीतर छींक परी तों आजु सबारे—५६५।

वि [सं करणीय] करने योग्य, जिसका संपादन करना संभव हो। उ — दयानिधि तेरी गति लिखिन परे। धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करे—१-१०४।

संज्ञा पुं [सं करण] (१) करनेवाले, कर्ता। उ.-भिज मन नंद-नंदन चरन । परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन-१-३०८। (२)इन्द्रिय। उ.— छल-पल राउरे की श्रास। करन नाव सुपंच संज्ञा जान के सब नास—सा उ ४१।

संज्ञा पुं [देश] एक भ्रोषधि।

करनख—संज्ञा पुं [सं कर + नख] हाय की छे।टी उँगली का नाखून।

मुहा.—वर-नख पर धारी—हाथ की छोटी उँगली पर उठाना, बहुत थोड़े परिश्रम से उठाना। उ,— राख्यो गोकुल बहु। विघन तें, कर-नख पर गोवर्धन धारी—१ २२।

करनधार—संज्ञा पुं. [सं कर्णधार] माँकी, मल्लाह, केवट।

करनिपतु—संज्ञा पुं [सं कर्ण + हिं पिता] कर्ण का पिता सूर्य। उ — माधो की जिए बिस्नाम । उदौ चाहत लेन बेरी करन-पितु हितु जाम—सा ८८।

करनफूल—संज्ञा पुं- [सं. कर्ण + हिं फूल] कान में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना जो सादा श्रोर जड़ाऊ, दोनों तरह का होता है, तरीना, काँप। उ.—जिन स्रवनन ताटंक खुभी श्रम्र करनफूल खुटिलाऊ। तिन स्रवनन कस्मीरी मुद्रा ले ले चित्र भुलाऊ —३२२१।

करनबेध—संज्ञा पुं [सं कर्णवेध] बच्चों का एक संस्कार जिसमें कान छेदे जाते हैं, कर्णछेदन संस्कार।

करनहार—शंजा पुं. [सं. करण + हिं. हार (प्रत्य)]
करने वाला, रचनेवाला। उ.—...। तब भीषम नृप
सौं यों कह्यौ। धर्मपुत्र तू देखि बिचार कारन करनहार
करतार—१-२६१।

करना — कि. स. [हिं. करना] (१) (काम को) चलाना या संपादित करना। उ.—(क) काहूँ कहाँ। मंत्र जप करना। काहूँ कछु, काहूँ वछु बरना—१-३४१। (ख) तातें संत-संग नित करना। संत-संग सेवौ हरि-चरना—५-२। (२) पकाना, रींधना, तैयार करना। (३) रखना। (४) पति या पत्नी बनाना। (४) व्य-वसाय करना। (६) सवारी ठहराना। (७) बनाना, या नया रूप देना। (८) कोई पद देना।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं, सुदर्शम। उ,—जाही जूही सेवती करना अनियारी। वेलि चमेली मालती बूमति द्रुम-डारी—१८२२।

संज्ञा पुं. [सं. करुण] पहाड़ी नीबू। संज्ञा पुं. [सं. करण] किया हुआ काम, करनी, करत्ता।

करनाई—संज्ञा स्त्री. [त्र्रा. करनाय] तुरही। करनाज—संज्ञा पुं. [त्र्रा. करनाय] (१) सिंघा, भोंपा, नरसिंहा। (२) बड़ा ढोल। (३) लोप।

करनावली—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. करना-सं. ग्रवली]
सुदर्शन के पौधों का समूह जिनमें सफेद फूल लगते
हैं। उ.—कमल विकच करनावली मुद्रिका बलय
पुट भुज बेलि शुकचारी—२३०६।

करनि – संज्ञा स्त्री. [हिं. करनी] (१) कार्य, कर्म, करनी, करत्ता । उ.—(क) विनती करत डरत करनानिधि, नाहिंन परत रह्यों । सूर करनि तरु रच्यों जु निज कर, सो कर नाहिं गह्यों—१-१६२। (ख) सुनहु सूर वह करनि कहिन यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५६८। (ग) सुनहु सूर ऐसेड जन-जग में करता करनि करे —ए. ३३२। (२) मृतक-संस्कार।

कर्नी - संज्ञा स्त्री. [हिं, करना] (१) सुकृत्य, कार्य, कर्म, महिमा। उ.—(क) करनी करनासिंधु की मुख कहत न ग्रावै - १-४। (ख) गनिका तरी श्रापनी करनी नाम भयौ तोरो--१-१२२। (ग) सूर-दास प्रभु मुदित जसोदा पूरन भई पुरातन करनी-१०-४४। (घ) मुरली कौन सुकृत-फल पाये। ***** लघुता श्रंग, नहीं कुछ करनी, निरखत नैन लगाये-६६१। (इ) लिखी मेटे कौन, करे करता जौन, सोइ ह्र हे ज होनहारि करनी—६६८। (च) देखो करनी कमल की, कीनो जल सों हेत। प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत। (२) करत्त (हीनता या उपेचा सूचक प्रयोग)। (३) मृतक-क्रिया या संस्कार, ग्रन्तेष्ठि कर्म। (४) दीवार पर गारा लगाने की कन्नी। (१) करना, करने की क्रिया। उ. - मंदा-किनितर फरिक सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी। कहा कहीं, कछु कहत न आवे, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी-६-११०।

संज्ञा स्त्री [सं. करिणी] हथिनी, हस्तिनी।
उ.—मानो ब्रज ते करनी चली मदमाती हो। गिरधर गज पै जाइ ग्वारि मदमाती हो। कुल श्रंकुस
मानै नहीं मदमाती हो। संका बढ़े तुराइ मदमाती हो
—२४०१।

कि. स. [सं. करण, हिं. करना] करना, संपा-दित करना। उ.—मेरी केंती बिनतो करनी। पहिले करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाय हाथ लें धरनी—६-१०१।

करनेता—संज्ञा पुं. [हिं. कर्नेता] रंग के ऋाधार पर किये गये घोड़ों के मेदों में एक।

करपर — संज्ञा स्त्री. [सं. कर्पर] खोपड़ी। वि. [सं. कृपणा] कंजूस।

करपरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पीठी की पकौड़ी। करपाल—संज्ञा पुं. [सं.] खड्ग, तलवार।

करबर—संज्ञा स्त्री. [हिं. करवर] श्रलप, घात, विपत्ति, श्रापत्ति। उ.—(क) ढोटा एक मयौ कैसैहुँ करि, कौन कौन करबर विधि मानी—३६८। (ख) कौन-कौन करबर हैं टारे। जसुमित बाँधि श्रजिर लै डारे— ६१। (ग) श्रानँद बधावनो मुदित गोप गोपीगन श्राज्ञ परी कुसल कठिन करबर तें। (घ) बड़ी करबर टरी साँप सों ऊबरी, बात के कहत तोहि लागत जरनी। (ङ) जबते जनम भयौ हिर तेरौ कितने करबर टरे कन्हाई।

करबार—संज्ञा स्त्री. [सं. करबाल] तलवार। उ०—कोपि करबार गहि कह्यौ लंकाधिपति, मूढ़ कहा राम कों सीस नाऊँ—६-१२६।

करभा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का बच्चा। (२) हथेली के भीछे का भाग। (३) किट, कमर। करभ-कर—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी के बच्चे की सूँड़। करभा—संज्ञा पुं. [सं. करभ] हाथी का बच्चा। उ०— (क) देखि सखी हिर स्रंग स्त्रन्प। ""। कबहुँ लकुट तें जानु फेरि लै, स्त्रपने सहज चलावत। सूर-

लकुट तें जानु फेरि ले, अपने सहज चलावत। सूर-दास मानहुँ करभा कर बारंबार चलावत—६३२। (ख) चरन की छबि देखि डरप्यो अरुन गगन छपाइ। जानु करभा की सबै छबि निदरि लई छड़ाइ—१०-२३४। करभीर—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह।
करभूषन—संज्ञा पुं. [सं. कर + भूषण] हाथ का भूषण,
ग्रारसी, श्राइना। उ०—कर भूषन तन हेरन लागी
गयो देख मन चोरे—सा० १००।

करभोरु—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथी की सूड़ की तरह चिकनी और सुडौल जाँघ। उ०—पृथु नितंब कर-भोरु कमल-पद-नख-मिन चंद्र अनूप। मानहु लुब्ध भयो बारिज दल इंदु किये दस रूप।

वि — सुंदर या सुडौल जाँघवाली। करम—संज्ञा पुं. [सं. कर्म] (१) कर्म, करनी। (२) कर्म का फल, भाग्य।

मुहा० — करम का टेढ़ा या तिरछा होना — भाग्य फूटना, किस्मत खोटी होना। उ० — पालागों छाँड़ी श्रव श्रंचल बार-बार बिनती करों तेरी। तिरछो करम भयो पूरव को प्रीतम भयो पाँय की बेरी। करम के श्रोछे — भाग्य हीन, श्रभागा। उ० — कौन जाति श्रक पाँति बिदुर की ताहीं कें पग धारत। भोजन करत माँगि घर उनकें राज मान-मद टारत। ऐसे जन्म-करम के श्रोछे श्रोछिन हूँ ब्योहारत। यह सुभाव सूर के प्रभु को, भक्त-बछल प्रन पारत — १ – १२। करम को मारो — प्रवहीन, श्रभागा। उ० — जो प तुमहीं बिरद बिसारो। तो कही कहाँ जाइ करनामय कृपिन करम को मारो — १ – १५७।

संज्ञा पुं. [देश०] हरदू या हलदू नामक पेड़। करमचंद — संज्ञा पुं. [सं. कर्म] कर्म, करनी, भाग्य। करमट्ठा — वि. [सं. कृपण] सूम, कंजूस। करमठ — वि. [सं. कर्मठ] (१) कर्म करने में आनन्द लेने वाला। (२) कर्मकांडी।

करमात—संज्ञा पुं. [सं. कर्म] कर्म, भाग्य, किस्मत। उ.— वह मूरित द्वे नयन हमारे खिखी नहीं करमात। सूर रोम प्रति लोचन देतो बिधिना पर तर मात— १४१८।

करमाली—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य। करमी—वि. [तं. कर्म] कर्म में ग्रानंद लेनेवाला, कर्म-निष्ट।

करमुखा, करमुहाँ—वि. [हिं. काला + मुख] (१) कलंकी, पापी। (२) काले मुँह वाला। करर—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक जहरीला कीड़ा। (२) एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है जिससे मोमजामा बनाया जा सकता है।

कररना, करराना—कि. ग्र. [ग्रनु.] (१) चरमर या मरमर शब्द करके टूटना। (२) कड़ा शब्द करना।

कररान-संज्ञा स्त्री. श्रिनु. धनुष की टंकार।

करि, कररी - संज्ञा पुं. [सं. कर्बुर] वनतुलसी, ममरी। उ.—ऊधो तनिक सुपस स्नौनन सुन । कंचन काँच कपूर करिर रस, सम दुख-सुख गुन-श्रौगुन—३००१।

करल-संज्ञा पुं. [सं. कटाह] कड़ाह, कड़ाही।

करला -- संज्ञा पुं. [हिं. कला] कोंपल, कोमल पत्ता।

करली - संज्ञा स्त्री. [सं. करील] कल्ला, कोंपला।

करवट—संज्ञा स्त्री. [सं. करवत, प्रा. करवह] एक बगल होकर लेटना।

संज्ञा पुं. [सं. करपत्र, प्रा' करवत्त] (१) करवत्, श्रारा। (२) प्रयाग, काशी श्रादि स्थानों में जो श्रारे या चक्र होते थे, वे करवट कहलाते थे। इनके नीचे लोग सुफल की श्राशा से प्राण देते थे। काशी-करवट लेना विशेष फलदायक समका जता था।

करवत—संज्ञा पुं. [सं. करपत्र, प्रा. करवत्त] (१) त्रारा नामक दाँतेदार श्रोजारं। (२) प्रयाग, काशी श्रादि स्थानों में करवत रहते थे जिनके नी चे प्रत्य देने से सुफल मिलने की श्राशा होती थी। उ.—(क) कहा कहौं को उमानत नाहीं इक चंदन श्रो चंद करासी। सूरदास प्रभु ज्यों न मिलेंगे लेहीं करवत कासी। (ख) गोपी खाल-बाल बृन्दाबन खग मृग फिरत उदासी। सबई पान तत्यौ चाहत है को करवत को कासी— ३४२२।

करवर—सज्ञा स्त्री. [देश.] ग्रलप, विपत्ति, संकट, किनाई। उ.—(क) त्राहि त्राहि किह ब्रज-जन धाए, ग्रव बालक क्यों बचे कन्हाई।.....। करवर बड़ी हरी मेरे की, घर घर ग्रानंद करत बधाई—१०-५१। (ख) मैं निहं काहू को कछु घाल्यो पुन्यनि करवर नाक्यो—२३७३।

करवरना—कि. श्र. [सं. कलरव, हिं. करवर, कलबल] चहकना, कलरव करना।

करवाई—कि. स. [हिं. करवाना] करने को प्रवृत्त किया। उ.—रिषि नृप सौँ जग-विधि करवाई। इला सुता ताकैं गृह जाई—६-२।

करवाये—कि. स. [हिं. करवाना] करने को प्रेरित किया। उ.—राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरु सेवा करवाये — सारा. ५३८।

करवायौ—िक. स. [हं. करवाना] (1) करने को प्रवृत्त किया। उ.—िदन दस लों जलकुम्भ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ—६-५०। (२) सिद्ध किया, संपादित किया। उ.–करि दिग्वजय विजय को जग में भक्त पद्म करवायौ—सारा. ८४१।

करवार, करवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. करवाल] तलवार। उ.—दामिनि करवार करिन कंपत सब गात उरिन जलधर समेत सेन इन्द्र धनुष साजे—२८१६।

करवाली—संशा स्त्री. [सं. करबाल] करौली, छोटी तलवार।

करवावित—कि. स. [हिं. करवाना] संपादन कराती है, (कार्य आदि) कराती है, (कर्म आज्ञापालन आदि) करने को प्रवृत्त करती है। उ.—कोमल तन आज्ञा करवावित, किटटेढ़ी ह्व आवित—६५५।

करवीर—संशा पुं. [सं.] (१) कनेर का पेड़। (२) तलवार। (३) चेदि देश का एक प्राचीन नगर जहाँ के राजा शिशुपाल ने कृष्ण-बलराम से यु किया था।

करवील—संज्ञा पुं. [सं.] करील, टेंटी का पेड़, कचरा।

उ.—कुमुद कदब को विद कनक आदि सुवंज।

केतकी करवील बेलउ विमल बहुविधि मंत-२८२८।

करवैया—वि. [हिं. करना + वैया (प्रत्य.)] करनेवाला।

करवोटी—संज्ञा पुं. [देश.] एक चिड़िया।

करष—संज्ञा पुं. [सं. कर्ष] (१) खिचाव। (२) मन-मोटाव, द्रोह। (३) क्रोध, ताव।

करपक-संज्ञा पुं. [सं. कर्पक] किसान, खेतिहर।

कर्षत—िक. स. [हिं. करपना] खीचता है, घसीटत समय। उ.—करपत सभा द्रुपद-तनया को श्रंबर श्रक्ठय कियो। सूर स्याम सरबज्ञ कृपानिधि, करुना मेदुल हियो—१-१२१। करण ते— कि. स. स्त्री. [हिं. करणना] खीचती है, तानती है, घसीटती है। उ.—दिन थोरी, भोरी, ऋति गोरी, देखत ही जु स्थाम भए चाढ़ी। करणति है दुहु वरिन मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढ़ी— १०-३००।

करषन कि. स. [हिं. करषना] खीचना, खीचने का प्रयत्न करना। उ.—हरष हरष करपन चित चाहत तेहितें वा प्रतिनीक — सा. ५८।

करष्ना—िक. स. [सं. कर्षण] (१) खीचना, घसीटना। (२) सोख लेना, सुखाना। (३) बुलाना, निमंत्रित करना। (४) इकटा करना, समेटना।

करषहिं - कि. स. [हिं. करपना] खींचते हैं, आकर्षित करते हैं।

करिष — कि. स. [सं. कर्षण, हिं. करपना] (१) श्राक-पंण करके, समेंट या बटोर कर। उ.—(क) छिन इक मैं भृगपित प्रताप बल करिष हृदय धिर लीनौ— ६-११५। (ख) सकुचासन कुल सील करिष किर जगत बंध कर बंदन। मौनऽपबाद पवन श्रारोधन हित कम काम निकंदन—३०१४। (२) खीचकर, तान-कर। उ. —(क) पिय विनु बहत बैरिन बाय। मदनबान कमान ल्यायो करिष कोप चढ़ाय—सा. ३२। (ख) केस गहि करिष जमुना धार डारि दै सुन्यौ नृप नारि पति कृष्न मारयौ — २६१८। (ग) इन श्रीरन श्रमरन सुख दीनो करिष केस सिर कंस-३०१८।

करषे—कि. स. [सं. कर्पण, हिं. करपना] आर्कषण किये, समेटे, इक्टा किये, बटोरे, खीचे। उ.—अंकम भरि भरि लेत स्याम कौं ब्रज नर-नारि अतिहिँ मन हरपे। सूर स्याम संतन सुखदायक दुष्टन के उर सालक करपे—६०७।

करषे—िक. स. [स. कर्षण, हिं. करपना] (१) खींचती है, त्राक्षित करती है, घसीटती है, तानती है। उ.— (क) मंजुल तारिन की चपलाई, चित चतुराई करपे री—१०-१३७। (ख) जसुमति रिसकरि करि रजु करपे—१०-३४२। (२) समेटती है, बटोरती है, इकहा करती है। उ.—स्रदास गोपी बड़मागिनि हरि-सुख कीड़ा करपे हो—२४००।

करष्यौ—िक. स. [सं. कर्पण, हिं. करपना] (१)

श्राकर्षित किया, समेट लिया, बटोर लिया। उ.—

जिहिँ भुज परसुराम वल करप्यौ, ते भुज क्यौँ न

सँभारत फेरी १—६-६३। (३) खीचा, एकाम्र

किया, लगाया। उ.—जब पूरी सुनि हरि हरप्यौ।

तब भोजन पर मन करप्यौ—१०-१८३। (३)

ताना, बसीटा, दबाया। उ.—श्रंकुस राखि कुंभ पर

करष्यौ हलधर उठे हॅकारी—२५६४।

करसना—क्रि. स. [सं. कर्पण] (१) खीचना। (२) बुलाना।

करसायल—संज्ञा पुं. [हं. करसायल] काला मृग। करसायर—संज्ञा पुं. [सं. कृषाण] किसान, खेतिहार। करसायल, करसायल—संज्ञा पुं. [सं. कृष्णसार] काला मृग।

करसी—संज्ञा स्त्री [सं. करीष] (१) उपला या कंडा। (१) उपलो या कंडे का दुकड़ा।

करह — संज्ञा पुं. [सं. करभ] ऊँट। संज्ञा पुं. [सं. कलि:] फूल की कली।

करहाट, करहाटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल की जड़। (२) कमल का छत्ता या छत्र। (३) मैनफल।

करहु — कि. स. [हिं. करना] करो। उ. — पहिले हिं रोहिनि सौं कहि राख्यो, तुरत करहु ज्योनार—३६५। कराँकुल — संज्ञा पुं. [सं. कलांकुर] एक वडी चिडिया जो पानी के किनारे रहती है।

करा- संज्ञा स्त्री. [सं. कला] ग्रंश, भाग।
कराइबो-कि. स. [सं. करना] किया, संपादित कराया।
उ.-जुवा-जुवती खेलाइ कुल-ब्यवहार सकल कराइबो।
जननि मन भयो सूर ग्रानँद हरिष मंगल गाइबो
-१० उ.-१२४।

वराई—कि. स. [हिं. वराना] (१) कराते हैं, कराया।
3.—(क) गावें सखी परस्पर मंगल, रिषि अभिषेक
वराई—६-१७। (ख) कर परनाम देवगुरु द्विज
को जल सुरनान कराई—सारा. २१४। (२) कर
दी, (देर) लगा दी। उ.—धेनु नहिं देखियत
कहुँ नियरें, भोजन ही मैं साँभ कराई—४७१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कारा, काला] कालापन, श्या-मता। उ.—मुख मुखी सिर पखीत्रा बन-बन धेनु चराई। जे जमुना-जल रंग रॅंगे हैं ते अजहूँ नहिं तजत कराई।

कराऊँगो—कि. स. [हिं. करना] कराऊँगा, कर लूँगा। उ.—तब तनु परिस काम दुख मेरो जीवन सफल कराऊँगो—१९४३।

कराएँ—कि. स. [हिं. 'करना' का हे. 'कराना'] कराने से, (किसी काम ग्रादि सें) लगाने से। उ.—कहा होत पय-पान कराएँ, विष नहिं तजत भुजंग —१-३३२।

कराना—कि. स. [हिं. 'करना' का प्रे.] करने को प्रवृत्त करना, करने में लगाना।

कराया, करायों – क्कि. स. भूत. [हिं. 'करना' का प्रे.]
(१) कराने को प्रेरित किया। उ.—(क) श्रमुर जोनि
ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायों—१-१०४। (ख)
जानि एकादस बिप्र बुलाए, भोजन बहुत करायों—
६-५०। (२) किये, बनाये, श्रंगीकार किये, माने।
उ.—कही कथा दत्तात्रय मुनि की गुरु चौबीस करायों
—सारा. ८४३।

करार—संज्ञा पं. [सं. कराला—ऊँचा। हिं. कट = करना +सं. त्र्रार=किनारा] नदी का ऊँचा किनारा। उ — मैं तौ स्याम-स्याम के टेरति कालिदी के करार —२७६६।

संज्ञा पुं. [ग्रा. करार] (१) स्थिरता, ठहराव। (२) धीरज, संतोष। (३) ग्राम। (४) वादा, प्रतिज्ञा।

करारत—िक. श्र. [हिं. वरारना] कर्कश स्वर करता है, (कौश्रा) काँ काँ खोलता है। उ.—कुँवरि प्रसित श्री खंड श्रिह भ्रम चरन सिलीमुख लाग। बानी मधुर जानि पिक बोलत कदम करारत काग—१८२६।

वरारना—कि. श्र. [श्रनु.] कर्कश शब्द करना, कीए का का का बोलना।

करारा – संज्ञा पुं. [हिं. करार=किनारा] (१) नदी का ऊँचा किनारा। (२) टीला। संज्ञा पुं. [सं. करट] कौआ।

वि. [हिं. कड़ा, करी] (१)कठोर। (२) इड़ चित्त। (३) कुर कुर सब्द करने वाला। (४) उग्र, तेज। (५) खरा, चोखा। (६) हट्टा-कट्टा।

करारी — वि. स्त्री. [हिं. पुं. कड़ा, कर्रा, करारा] उग्र, तेज, तीच्या। उ.—चिकत देखि यह कहैं नर-नारी। धरिन ऋकास बराबरि ज्वाला क्तपटित लपट करारी — ५९८।

कराल—वि. [सं.] (१) डरावना, भयानक, भीषण। उ.— (क) स्र सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६। (ख) उचटत अति अँगार फुटत भर, भपरत लपट कराल—६१५। (२) बड़े दाँत वाला। (३) ऊँचा।

करालिका, कराली — संज्ञा स्त्री. [सं.] त्राग्तिकी एक जिह्या।

वि.—डरावनी, भयावनी।

करावत—क्रि. स. [हिं कराना] कराते हैं, करने में प्रवृत्त करते हैं। उ.—सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि सुरति करावत—२-१७।

करावति—कि. स. [हिं. कराना ('करना' का पें०)] कराती है। उ०—तुमसौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुद्धि भरमावै—१-४२।

करावते—कि. स. [हिं. कराना] कराते हैं। उ०—सूर-दास स्वामी तिहिं श्रवसर पुनि-पुनि प्रगट करावते— २७३५।

करावन—िक. स. [हिं. कराना] कराने के लिए, संपा-दित करने के उद्देश्य से। उ०—पूतना पयपान करावन प्रेम-सहित चिला ग्राई—सारा० ७४६।

कराबहु—िक. स. [हिं. कराना] कराश्रो, करने को प्रवृत्त करो। उ०—तुव मुख-चंद्र, चकोर-हग, मधु-पान कराबहु—१०-२३२।

करावे — क्रि. स. [हिं. 'करना' का भे. रूप] कराता है, करवाये या करवावे । उ०—ग्रसरन-सरन सूर जाँचत है, को ग्रव सुरति करावे — १-१७।

करावौ — कि. स. [हिं. कराना] करो, करवाओ, करने को प्रवृत्त करो। ठ० — ग्रारी, मेरे लालन की श्राजु वरप-गाँठि, सबै सखिनि को बुलाइ मंगल-गान करावौ — १०-६५ ।

कराह, कराहा—संज्ञा पुं. [हिं. करना + श्राह] पीड़ा या कसक सूचक दुखभरा शब्द।

संज्ञा पुं. [हिं. कराह] कड़ाह, कड़ाही।

कराहना—िक. त्र. [हिं. कराह] पीड़ा या कसक सूचक शब्द करना, आह-आह या हाय-हाय करना।

कराहि—कि. स. [हिं. कराना] (इच्छा आदि) पूर्ण करें, करावें। उ०—यह लालसा अधिक मेरें जिय, जो जगदीस कराहिं। मो देखत कान्हा यहि आँगन, पग द्वे धरनि धराहिं—१०-७५।

कराहि—कि. श्र. [हिं. कराहना] हाय-हाय या श्राह-श्राह करके।

कराहीं—कि. स. [हिं. करना] करते हैं। उ०—घरी इक सजन-कुटँब मिलि बैठैं, रुदन बिलाप कराहीं— १-३१६।

करिंद—संज्ञा पुं. [सं, करीदं] (१) श्रेष्ठ हाथी। (२) ऐरावत हाथी।

करि—संज्ञा पुं. [सं. करी, करिन्] सूड़वाला, अर्थात हाथी।

क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) करके। उ.—बकी वपट करि मारन ग्राई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई—१-३।(२) बनाकर, रूप बदल कर। उ.—सुन्दर गऊ रूप हरि कीन्हों। बछरा करि ब्रह्मा संग लीन्हों—७-७।

श्रव्य.—द्वारा, से, जिरये से। उ.—तें कैकई कुमंत्र कियौ। श्रपने कर किर काल हँकारयौ, हठ किर नृप श्रपराध लियौ—६-४८।

प्रत्य. [हिं. की] की। उ.—बाला बिरह दुसह सबहीं की जान्यी राजकुमार। बान बृष्टि स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार—६—१२४।

करिखई, करिखा—संज्ञा स्त्री. [हिं.कालिख] कालापन। करिणी, करिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. करि] हथिनी। करिबदन—संज्ञा पुं. [सं.] जिनका मुँह हाथी का सा है, गणेश।

करिबे—िक स. [हि. करना] (१) करने में, करने (के लिए)। उ.—(क) अब यह बिथा दूरि करिबे कौं श्रीर न समरथ कोई—१-११८। (ख) सूर सु भुजा

समेत सुदरसन देखि विंरचि भ्रम्यो । मानौ श्रान सृष्टि करिबे को, श्रंबुज नाभि जम्यो—१-२७३ । (ग) थिकत बिलोिक सारदा बर्नन करिबे बहुत प्रसंग —सारा. ६६६ । (२) रचने (को), बनाने (के लिए) उ.—दियो बरदान सृष्टि करिबे को श्रस्तुति करि प्रमान—सारा. ५२ ।

करिबो—िक. स. [हिं. करना] करना, संपादन करना। उ.—सूर सुकमलन के बिछुरे भूठो सब जतनि को करिबो—र८६०।

करियत—कि. स. [सं. करण, हिं. करना] करते हैं। उ.—स्धी निपट देखियत तुमकों तातें करियत साथ —६७४।

करिया—िक. छा. [हिं. करना] (१) किये, कर दिये। उ.—उपमा काहि देऊँ, को लायक, मन्मथ कोटिं वारने करिया—६८८।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] (१) पतवार, कलवारी।
उ.—सारंग स्यामहिं, सुरित कराइ। पौढ़े होंहि जहाँ
नँदनंदन ऊँचे टेर सुनाइ। गए ग्रीषम पावस रितु
त्राई सब काहू चित चाइ। तुम बिनु ब्रजबासी यौं
जीवैं ज्यों करिया बिनु नाइ—२८४४। (२) माँभी,
केवट, मल्लाह। (३) पतवार या कलवारी थामने
वाला।

वि-—काला, श्याम।

करियाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. करिया+ई (प्रत्य.)] (१) कालिया, श्यामता। (२) कालिख।

करियारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिकारी] (१) विष । (२) बगाम, बाग ।

करिये—िकि.स.[सं.करण, हि.करना] करिए (ग्रादरसूचक) कीजिए। उ.—या देही को गरब न करिये, स्यार काग, गिद्ध खेहैं—१-८६।

करियों—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] करना। उ.-बंधू, करियों राज सँमौरे। राजनीति ऋरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे—६-५४।

करिल—संज्ञा स्त्री, [हिं. कोंपल] नया कल्ला, कोंपल। वि.—काला।

करिहाँ, कारेहाँउँ, करिहाँव, करिहेंयाँ—संज्ञा स्त्री [सं. कटिभाग] कमर, कटि।

करिहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कितकारी] (१) कितवारी, विष । (२) लगाम ।

करिहें—कि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) करेंगे, निबटाएँगे, संपादित करेंगे। उ.—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहें ? — १-२६। (२) व्याहेंगे, अपनाएँगे। उ.— (नंद ज्) ग्रादि जोतिपी तुम्हारे घर की पुत्र-जनम सुनि ग्रायो। लगन सोधि सब जोतिप गनिकें, चाहत तुम्हहिं सुनायो। •••। ऊँच-नीच जुवती बहु करिहें, सतएँ राहु परे हैं—१०-८६।

करिहै—िक. स. [हिं. करना] (१) करेगा, बिगाड़ सकेगा। उ.—जो घट ग्रंतर हिर सुमिरे। ताको काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरे—१-८२। (२) संपादित करेगा। उ.—तें हूँ जो हिर-हित तप करिहै। सकल मनोरथ तेरी पुरिहै—४-६। (३) करेगा, घटित करेगा। उ.—पुनि हिर चाहै, करिहै सोइ—७-२-

करिहों—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) करोगे, संपादित करोगे। उ.—पतित-पावन-विरद साँच कौन भाँति करिहों—१-१२४। (२) पैदा करोगे, अर्जन करोगे। उ.— स्रुति पहिके तुम नहिं उद्धरिहों, बिद्या बेंचि जीविका करिहों—४-५।

करी — कि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) की। उ.— (क) ऐसी को करी अरु भक्त काजों। जैसी जगदीस जिय धरी लाजें—१-५। (ख) अबलों ऐसी नाहीं सुनी। जैसी करी नंद के नंदन अद्भुत बात गुनी—सा. १०४। उ.— पावक जठर जरन नहिं दीन्हों, कंचन सी मम देह करी--१-११६। (२) रची, बनायी।

संज्ञा पु. [सं. किर, किरन्] हाथी। उ.—पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हो राखि करी—१-१६। संज्ञा स्त्री. [सं. कांड, हिं. कली] अधिखला फूल, कली।

करीजें कि. स. [हिं. करना] की जिए। उ.—(क) ग्रव मोपे प्रभु कृपा करीजें। मिक्त ग्रनन्य ग्रापुनी दीजें—

३-१३। (ख) साधु-संग प्रभु मोकौँ दीजै। तिहि संगति निज भिक्त करीजै—७--२।

करीना—संज्ञा पुं. [हिं. केराना] मसाला। करीब—कि. वि. [ग्र.] (१) पास, समीप। (२)

लगभग । मि, करीमा—वि. ऋि.] कृपालु, दयालु ।

करीम, करीमा—वि. [ग्र.] कृपालु, दयालु। संज्ञा पुं.—ईश्वर।

करीर — संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँस का नया कल्ला। (२) करील का माड़ीदार पेड़। (३) घड़ा।

करील—संज्ञा पुं. [सं. करीर] एक तरह की भाड़ी जिसमें पितयाँ नहीं होतीं, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली डंठलें फूटती हैं। ब्रज में करील बहुत होते हैं। इसका फल कसेला होता है जिसे टेंटी कहते हैं। उ.—जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यी, क्यों करील-फल भावे—१-१६८।

करीश, करीस—संज्ञा पुं. [सं. करि + ईश] गजेंद्र। करीष—संज्ञा पुं. [सं.] गोबर जो जंगलों में पड़े-पड़े सूख जाता है और जलाने के काम आता है।

करु—िक, स. [सं. करण, हिं करना] करो, श्रमल में लाश्रो। उ.—सूर बुलाइ पूतना सौं कह्यो, कर न विलम्ब घरी—१०-४८।

करुत्रा—वि. पुं. [सं. कडुक] (१) कडुन्ना, तीच्ण। (२) न्नाप्तिय।

करुआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. करुआ, कडुआ] कडुआपन। करुआना—कि. अ. [हिं. करुआ] दुखना।

क्रि. स.—कडुवा लगने पर मुँह बनाना।

कर्रा वि. स्त्री. [हिं. करुत्रा] जिसका स्वाद कडुग्रापन लिए हुए हो, कडुई। उ.—(क) सुनत जोग लागत हमें ऐसी ज्यों कर्रा कक्री—३३६०। (ख) फलन माँभ ज्यों कर्रा तोमिर रहत घरे पर डारी। ग्रव तो हाथ परी जंत्री के बाजत राग दुलारी—२६३५।

करु खिद्यनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवन, तिरछी नजर। उ.—स्रदास प्रभु त्रिय मिली, नैन प्रान सुख भयौ चितए करु खिग्रनि ग्रनकिन दिये— २०६६।

करुखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवम या नजर।

करुग-संज्ञा पुं. [सं.] (१) दया। (२) शोक। वि.—दया से युक्त।

करुगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दया। (२) शोक। (३) करना का पेड़।

करुणाहरि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुपा।

करुणानिधान, करुणानिधि—वि. [सं.] करुणा से युक्त, दयालु।

करुगावान—वि. [सं. करुगा + हिं. वान] दयालु।
करुना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुखी का दुख दूर करने के
लिए अंतःकरण की प्रेरणा, दया। उ.—कछुक
करुना करि जसोदा करित निपट निहोर। सूर स्याम
त्रिलोक की निधि, भलैंहि माखन चोर—३६४।
(२) दुख, शोक। उ.—करुना करित मेंदोदिर रानी।
चौदह सहस सुंदरी उमहीं, उठै न कंत महा अभिमानी
— ६-१६०।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी का नाम। उ.— किह राधा किन हार चोरायो। ब्रजजुवतिन सबहीं भें जानति घर घर ले लें नाम बतायो।। रत्ना कुमुदा मोहा करना ललना लोभा नूप—१५८०।

कहनाकर — वि. [सं. करुणा + ग्राकर (निधि)] बहुत दवालु, करुणानिधि, करुणा की खानि।

संज्ञा पुं. [सं.] दयाख ईश्वर। उ.—नरहरि रूप धरयौ करुनाकर छिनक माहि उर नखनि बिदारयौ—१-१४।

करुनानिधान—वि. [सं. करुणानिधान] जो बहुत दयालु हो।

करुनानिधि—वि. [सं. करुणानिधि] जिसका हृदय दया से युक्त हो, दयालु।

करुनामय—वि. [सं. करुणामय] जिसका हृदय दया से भरा हो, दयालु, करुणा से युक्त।

करुनामयी—िव. स्त्री. [सं. करुणामयी] जिसका हृदय करुणा से भरा हो, दयालु। उ.—श्रुव विमाता-बचन सुनि रिसायो। दीन के द्याल गोपाल, करुनामयी मातु सौं सुनि, तुरत सरन श्रायो—४-१०।

करुनामृत — संज्ञा पुं. [सं. करुणा + मृत] करुणाजनक, करुणामय। उ.—थक्यो बीच बिहाल, बिहवल, सुनौ

करुनामूल-१-६६।

कहना-सरिता—संज्ञा स्त्री. [सं. करुणा + सरिता] दया की नदी, जिसके हृदय में करुणा की धारा-सी प्रवाहित हो, अत्यंत दयालु। उ.—पारथ-तिय कुरुराज सभा में बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़यो वसन उमंगी—१-२१।

करुनासागर—वि. [सं. करुणा + सागर] द्या के समुद्र, बड़े द्यालु।

कर्तनासिंधु — वि. [सं. करुणासिंधु] करुणा का समुद्र, जिसकी करुणा का भाव समुद्र के समान प्रथाह हो, ग्रत्यंत दयालु।

संज्ञा पुं.—दयाखु भगवान।

करुर, करुवा—वि. [सं. कटुक, हिं. कडुवा] कडुवा, कटु।

करुवार, करुवारि—संज्ञा पुं. [हिं. कलवारी] नाव खेने का डाँड ।

कर्वावत—कि. श्र. [हिं. कड़ श्राना] कड़ श्रा लगने का-सा मुँह बनाते हैं। उ.—पट्रस के परकार जहाँ लगि लै लै श्रधर छुवावत। बिस्संभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत—१०-८६।

करवी—वि. [हिं. कड्ग्रा, करवा] अप्रिय, चुभने वाले, जो भला न लगे। उ.—करवी वचन स्रवन स्रवन स्रवन सेरी, श्रित रिस गही मुवाल—६-१०४।

करू-वि. [हिं. कडु] कड् थ्रा, तीखा।

करे—िक. स.[सं. करण, हिं. करना] (१) रचे, बनाये।

उ.—सज्जा पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर

करे अपार—२-२०।(२) उपजाये, उत्पन्न किये।

उ.—मैं तो जे हरे हैं ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं

कौनें आन, अँगुरीनि दंत दै रह्यों—४८४।

करेजा—संज्ञा पुं. [सं. यक्त] कलेजा, हृदय।
करेगा — संज्ञा ं. [सं.] हाथी।
करेगा जा, करेनुका — संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. करेगा] हथिनी।
करेर, करेरा — वि. [हिं. कठोर] कड़ा, सख्त, कठिन।
करेरन — संज्ञा स्त्री. [हिं. करेर] कड़ीचोटें, थपेड़े, प्रहार।
उ. — सूर रिंक बिन को जीवित है निगुन कठिन करेरन — ३२७७।

करे रुआ संज्ञा पुं. [देश,] एक कँटीली बेल जिससे

परबल के बराबर फल लगते हैं जो खाने में बहुत कड़ए होते हैं।

करेला—संशा पुं. [सं. कारवेल्ल] एक बेल जिसमें गुल्ली की तरह लंबे हरे-हरे कडुए फल लगते हैं जो तर-कारी के काम आते हैं। उ.—बने बनाइ करेला कीने। लोन लगाइ तुरत तिल लीने—२३२१।

करेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. करेला] छोटे-छोटे जंगली करेले जो बहुत कड्ए होते हैं।

करें—िकि.स. [हिं. करना] करती हैं, लगाती हैं। उ.— हरद अञ्छत दूब दिध लै तिलक करें ब्रजबाल— १०-२६।

करें—िक. स. [हिं. करना] (१) करें, करता है। उ.— स्रदास जसदा की नंदन जो कछ करें सो थोरी— १०-२६३।(२) पद देता है, बनाता है, पद पर प्रति-धित करता है। उ.—उग्रसेन की ग्रापदा सुनि सुनि बिलखावें। कंस मारि, राजा करें, ग्रापहु सिर नावें —१-४।

करेगी—िक. स. [सं करण, हि. करना] करेगा, काम चलाएगा, संपादित करेगा। उ.—(क) जब जम जाल-पसार परेगी, हिर बिनु कौन करेगी धरहरि—१-३१२। (ख) बदन दुराइ बैठि मंदिर में बहुरि निसापति उदय करेगी—रू७०।

करैत—संज्ञा पुं. [हिं. काला] काला साँप।

मरैया—िव. [हिं करना+ऐया (प्रत्य.)] करने वाला।
उ.—(क) जब तें ब्रज अवतार धरयो इन, कोउ नहिं।
घात करैया—४२८। (ख) तुमसों टहल करावति
निसिदिन, और न टहल करैया—५१३।

करोंट—संज्ञा स्त्री. [हं. करवट] करवट। करोटो—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोपड़ी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. करवट] करवट। उ.—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरपीं नेंदरानी। विश्र बुलाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिनि नैन सिरानी—सारा. ४२१।

करोड़—वि. [सं. कोटि] एक संख्या जो सौ लाख के बराबर होती है।

करोती—संज्ञा स्त्री. [हं. करौती] काँच का छोटा पात्र। उ.—वै अति चतुर प्रवीन कहा कहाँ जिनि पठई

तोको बहरावन । सूरदास प्रभु जिय की होनी की जानति काँच करोती में जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन—२२०४।

करोद, करोदना, करोना—कि. स. [सं. कर्तन] खुर-चना, खरोचना।

करोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. करोना] (१) दूध-दही की खुरचन। (२) खुरचन नाम की मिठाई।

करोर—वि. [हिं. करोड़] करोड़ । उ.—ग्रबकै जब हम दरस पावें देहिं लाख करोर—३३८३ ।

करोरी—वि. [हिं. करोड़ी] करोड़ों, बहुत, अनेक। उ.—कंचन की पिचकारी छूटति छिरकति ज्यों सचु पावे गोरी। अतिहि ग्वाल दिध गोरस माते गारी-देत कहो न करोरी—२४३६।

करोला—संज्ञा पुं. [हिं. करवा] गडुआ।

करोवत—िक, स. [हिं. करोना] खुरचते या खरोचते हैं।

उ.—(क) लाल निटुर ह्व बैठि रहे। प्यारी हा हा

करित न मानत पुनि पुनि चरन गहे। निहं बोलत
निहं चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत—

पृ० ३१२। (ख) मैं जानी पिय मन की बात। धरनी

पग नख कहा करोवत ऋब सीखे ए घात—२०००।

करोवित-- कि. स. स्त्री. [हिं. करोना] कुरेदती या खुरचती है। उ.—नीची दृष्टि करी घरनी नखिन करोवित एहो पिया तब हों एक एक घूँघट तन चिते रही श्राहि कहा हो करो श्रव सोऊ—२२४०।

करों—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) संपादित करूँ, पूर्ण करूँ। उ.—रसना एक अनेक स्याम-गुन कहँ लिंग करों बखानों—१-११। (२) रचूँ, बनाऊँ, निर्माण करूँ। (३) जन्माऊँ, पैदा करूँ।

करोंछा-वि. [हिं. काला] काला।

करोंजी—संज्ञा स्त्री. [हं. कलोंजी] एक पौधा, मरगल, मँगरेला।

कर्ोंट-संज्ञा स्त्री. [हिं, करवट] करवट।

करोंदा—संज्ञा पुं. [सं. करमर्ह, पा. करमह, पु. हिं. करवँद] एक छोटा सुंदर फल जो कुछ सफेद और कुछ लाल होता है। इसका स्वाद खटा होता है और यह अचार-चटनी के काम आता है।

करोंदिया—वि, [हिं. करौंदा] हल्की स्थाही लिये हुए लाल रंग का।

करों — कि. स. [हिं. करना] (१) करो। (२) बनाग्रो, स्वीकार करो, प्रतिष्ठित करो। उ. — ग्रब तुम बिस्व-रूप गुरु करो। ता प्रसाद या दुख कों तरों — ६ — ५। (३) बनाग्रो, रचाग्रो, जन्माग्रो, पेदा करो। उ. — माधों मोहिं करों बृंदावन रेनु जिहिं चरनिन डोलत नॅदनंदन दिनप्रति बन-वन चारत धेनु — ४८६।

करोगो—क्रि. स. [हिं. करना] करोगी, संपादित करोगी। उ.—सूर राधिका कहत सखिन सौं बहुरि ब्राइ घर काज करोगी—१२८६।

करौत,करौता—संज्ञा पुं. [हिं. करवत] ग्रारा। करौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. करौता = ग्रारा] लकड़ी चीरने की ग्रारी।

संज्ञा स्त्री.[हिं. करवा] (१) काँच का छोटा पात्र या वरतन, शीशो। उ.—(क) जाहीं सो लगत नैन, ताही खगत बैन, नख सिख लौं सब गात प्रसति। जाके रँग राँचे हिर सोइ है अंतर संग, काँच की करौती के जल ज्यों लसित। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहीं जिन पठई तो को बहरावन। सूरदास प्रभुजी की होनी की जानित काँच करौती में जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन। (२) काँच की भट्टी।

करौला - संज्ञा पुं. [हिं. रौला = शोर] हाँक या हकवा देनेवाला, शिकारी।

करौली—संज्ञा स्त्री. [सं. करवाली] छोटी छुरी। कर्क, कर्कट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) के कड़ा। (२) बारह

राशियों में से चौथी राशि। (३) ग्रिगि।

कर्कटी—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) कछुई। (२) ककड़ी। (३) सेमल का फल। (४) साँप।

कर्कश—संज्ञा पुं. [सं.] खड्ग, तलवार। वि.—(१) कठोर, कड़ा। (२) काँटेदार। (३) तेज, प्रचरड। (४) कठोर हृदय, कर।

कर्कशा—वि. स्त्री. [हिं. कर्कश] मगड़ा करनेवाली, कडु या कठोर बोलनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—भगड़ालू स्त्री। कर्ज-संज्ञा पुं. [त्र्र. कर्ज़ी, कर्ज़ी] ऋग, उधार। कर्गा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कान नाम की इंद्रिय।
(२) कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्याकाल
में सूर्य से उत्पन्न हुआ था। (३) नाव की पतवार।
कर्णाकटु—वि. [सं.] जो (बात, शब्द या अचर)
सुनने में कटु या अप्रिय लगे।

कर्णाकुहर—संज्ञा पुं. [सं.] कान का छेद। कर्णाधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) माँभी, मल्लाह। (२) पतवार, कलवारी।

कर्णपाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कान की बाजी या लौ। कर्णफूल—संज्ञा पुं. [सं.] कान का एक आभूषण। कर्णवेध—संज्ञा पुं. [सं.] बाजकों के कान छेदने का संस्कार, कनछेदन।

कर्णाट—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग जो मेव राग का दूसरा पुत्र माना जाता है ग्रीर जो रात के पहले पहर में गाया जाता है।

कर्णाटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी जो मालवा या दीपक राग की पत्नी मानी जाती है श्रीर रात में दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाथी जाती है। उ.—मुरली वजाऊँ रिक्ताऊँ गिरिधर गाऊँ न श्राज सुनाऊँ। तेइ तेइ तान तुम सी गीत गावत जेइ कर्णाटी गौरी मैं गाय सुनाऊँ—ए. ३११।

कर्णाभार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] केवट, नाविक। किर्णिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कान का एक गहना, कर्णफूल। (२) हाथ में बीच की जँगली। (३) हाथी के सूँ इ की नोक। (४) कमल का छत्ता।

कर्णिकार—संज्ञा पुं. [सं.] कनक चंपा। कर्त्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कतरना, काटना। (२) स्त का उना।

कर्त्तनी—सं ज्ञास्त्री. [सं.] केंची। कर्तारे, कर्त्तरी—सं ॥ स्त्री. [सं. कर्त्तरी] (१) केंची, कतरनी। उ.—ग्रद्भुत राम-नाम के ग्रंक। जनम-मरन-काटन कों कर्तरि तीछन बहु विख्यात — १-६०। (२) छुरी, कटारी। (३) एक बोजा।

कर्तव्य—वि. [सं.] करने के योग्य, करणीय। संज्ञा पुं.—करने योग्य काम।

कर्तव्यमूढ़, कर्तव्यविमूढ़—वि. [सं.] घबड़ाहट के कारण जो कार्य को न समक स ।

कर्सी—संज्ञा पुं. [सं. 'कतृ' की प्रथमा का एक.]
(१) रचनेवाला, निर्माता । उ.—हर्त्ता-कर्त्ता ग्रापे
सोइ। घट-घट व्यापि रह्यो है जोइ—७-२। (२)
करनेवाला। (३) विधाता, ईश्वर। (४) व्याकरण
में पहला कारक।

कत्तीर—संज्ञा पुं. [सं. 'कतृ', की प्रथमा का बहु०] (१) करनेवाला। (२) विधाता, ईश्वर।

कर्दम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य का एक पुत्र, छाया से जत्यन्न होने के कारण जिनका 'कर्दम' नाम पड़ा। इसकी पत्नी का नाम देवहूित और पुत्र का कपिल-देव था। उ.—दच्छ प्रजापित कौं इक दई। इक रुचि, इक कर्दम-तिय भई। कर्दम कैं भयो कपिल-ऽवतार—३-१२। (२) की चड़, की च। (३) मांस। (४) पाप। (४) छाया।

कर्नता—संज्ञा पुं. [देश.] रंग के आधार पर किये गये घोड़े के भेदों में एक।

कर्पट-संज्ञा पुं. [सं.] फटा-पुराना कपड़ा।

कर्पटी—संज्ञा पुं. [सं. हिं. कर्पट = चिथड़ा = गुदड़ा] भिखारी, भिखमंगा जो गूदड़ पहले-ग्रोहे।

कर्पर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खोपड़ी, कपाल। (२) खपर। (३) एक शस्त्र।

कपूर-संज्ञा पुं. [सं.] कपूर।

कबुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना, स्वर्ण। (२) धत्रा। (३) जला। (४) पाप। (५) राचस। वि.—रंग-विरंगा, चितकबरा।

कर्म—संज्ञा पुं. [सं. कर्मन् का प्रथमा रूप] (१) किया, कार्य, काम । उ.—ग्रसी-इक कर्म विष्र को लियो । रिषम ज्ञान सबही को दियो — ५-२। (२) विहित ग्रोर निषिद्ध कार्य जिनका फल जाति, ग्रायु ग्रोर भोग माने जाते हैं। (३) वह कार्य या किया जिसका करना कर्तव्य है। (४) कर्मफल, भाग्य। उ.—(क) पगपग परत कर्म-तम-कूपिंह, को किर कृपा बचावे — १-४८। (स) जाकों नाम लेत भ्रम छूटे, कर्म-फंद सब काटे — ३४६ । (४) मृत-संस्कार, किया-कर्म । उ—जब तनु तज्यो गीध रघुपित तब कर्म बहुत विधि कीनी। जान्यो सखा राय दशरथ को तुरतिंह निज गित दीनी। (६) व्याकरण में दूसरा कारक।

कर्मकांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ तथा अन्य धर्म के काम। (२) वह शास्त्र या प्रथ जिसमें धर्म-कर्म की चर्चा हो।

कर्मकांडी—संशा पुं. [सं.] यज्ञ आदि करानेवाला व्यक्ति।

कर्मचे न-संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह स्थान जहाँ काम किया जाय। (२) संसार जहाँ कर्म करना पड़ता है। (३) भारतवर्ष।

कर्मचारी—सज्ञा पुं. [सं. कर्मचारिन्] (१) काम के लिए नियुक्त, काम करनेवाला। (२) किसी विभाग में काम करनेवाला।

कर्मज-वि. [सं.] (१) कर्म करने से उत्पन्न। (२) किये हुए पाप-पुराय से उत्पन्न। संज्ञा पुं.—क शिद्धग।

कर्मठ—वि. [सं.] (१) काम में चतुर। (२) धर्म-कर्म करनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) वह मनुष्य जो नियमित रूप से धर्म-कर्म करे। (२) कर्मकांडी।

कमेणा-कि, वि.[सं. कर्मन् का तृतीय एक.] कर्म से, कर्म द्वारा।

कर्मण्य—वि. [सं.] काम करने में आनंद लेनेवाला, उद्योगी, कर्मठ।

कर्मन—संशा पुं. सिव. [सं. कर्म+न (प्रत्य.)] कर्मी का, भाग्य, प्रारब्ध । उ. — जैसोई बोइयें तैसोइ लुनिऐ, कर्मन मोग ग्रामागे—१-६१।

कर्मना—कि. वि. [सं. कर्मणा] कर्म सं, कर्म द्वारा।

3.—(क) मैं तौ राम-चरन चित दीन्हों। मनसा,
बाचा ग्रोर कर्मना, बहुरि मिलन कों ग्रागम कीन्हों

—६-२। (ख) मनसा बाचा कहत कर्मना नृप कबहूँ
न पतीजै—१०-६! (ग) मनसि बचन ग्रह कर्मना
कक्ष कहति नाहिंन राखि—३४७५।

क्रमंनि—संज्ञापुं. [हिं. कर्म +िन (प्रत्य.)] कर्मों की।

मुहा.—कम नि की मोटी—ग्रत्यंत भाग्य-शालिनी, श्रच्छे कमों का सुख लूटने की ग्रधिका-रिणी। उ—दोउ मैया मैया पै माँगत, दै री मैया माखन-रोटी ।....। सूरदास मन मुदित जसोदा, भाग बड़े, कम निकी मोटी—१०-१६५।

कर्मनिष्ठ—वि. [सं.] धर्म-कर्म तथा संध्या, श्राग्निहोत्र श्रादि में निष्टा रखनेवाला।

कर्मभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म का फला। (२) पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना। उ.—जो कही कर्मभोग जब करिहैं, तब ये जीव सकल निस्तरिहैं —७-२।

कर्मथ्रा—संज्ञा पुं. [सं.] कलियुग।

कर्मयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चित्त की शुद्धि के लिए किए जानेवाले शास्त्र-सम्मत कर्म । उ.—(क) कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो । श्री बल्लम गुरु तत्व सुनायो लीला मेद बतायो—सारा० ११०२। (ख) तपसी तुमको तप करि पावे । सुनि भागवत गुही गुन गावे । कर्मयोग करि सेवत कोई। ज्यों सेवे त्योंही गति होई—१० उ –१२७। (२) सिद्धि-श्रसिद्धि को समान समक्त कर कर्म करना। कर्मरेख—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाग्य का लेखा, तकदीर का

कर्मरेख— संज्ञा स्त्री. [सं.] भाग्य का लेखा, तकदीर का लिखा। उ.—वाको न्याउ दोप सब हमको कर्मरेख को जानै। गोरस देखि जो राख्यौ गाहक बिधिना की गति श्रानै—३४४१।

कर्मवाद— संज्ञा पुं. [तं.] (१) कर्म की प्रधानता मानना।
(२) चित्त की शुद्धि के लिए किया जानेवाला शास्त्रसम्मत कर्म। ज.— कर्मवाद थापन को प्रगटे पृश्निगर्भ अवतार। सुधापान दीन्हों सुरगन को भयो जग
जस बिस्तार—३२१।

कर्मवादी—संज्ञा पुं. [सं. कर्मवादिन्] कर्म को प्रधान माननेवाला।

कर्मवान वि. [सं.] शाखसम्मत कर्म नियमित रूप से करनेवाला।

कर्मविपाक—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्वजन्म के कर्मों का भला-बुरा फल।

कर्मशील — संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिद्धि-ग्रसिद्धि को समान समभ कर कर्म करनेवाला। (२) परिश्रमी, प्रयत्न-शील।

कर्मसंन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म न करना। (२) कर्म के फल की चाह न करना।

कर्मसाची—वि. [सं. कर्मसाचिन्] जिसके सामने कर्म किया गया हो।

संज्ञा पुं.—वे नौ देवता—सूर्य, चन्द्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—जो प्राणी को कर्म करते देखते रहते हैं।

कर्महीन—वि. [सं.] (१) जो शुभ कर्म करने में समर्थ न हो। (२) ग्रभागा, भाग्यहीन।

कर्महीनी वि. [हिं. कर्महीन] अभागा, भाग्यहीन। उ.-गंदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए। प्रानपति सौं नेह बाँध्यो कर्म लिख्यो सो पाइए।

कर्मा—संज्ञा पुं. [हिं. कर्म] कर्म करनेवाला। उ.— जज्ञ करत वैरोचन की सुत, वेद-विदित-विधि-कर्मा। सो छलि बाँधि पताल पठायो, कौन कृपानिधि धर्मा— १-१०४।

कर्मिष्ठ—वि. [मं.] कर्म में ग्रानंद लेनेवाला, कर्मण्य, कर्मनिष्ठ।

कर्भी—वि. [सं] (१) कर्म करनेवाला। (२) कर्म के फल की इच्छा करनेवाला।

कर्में द्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] काम करनेवाली इंद्रियाँ। ये पाँच हैं — हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ।

करणी—कि. स. भूत. [सं. करण, हिं. करना] किया। उ.—द्रुपद सुता की तुम पति राखी ग्रंबर-दान करणी —१-१३३।

कर्प-संज्ञा पुं. [सं] (१) खिंचाव। (२) खरोचना। संज्ञा पुं.—ताव, बढ़ावा।

कर्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींचनेवाला। (२) किसान, खेतिहर।

वर्ष्या—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींचना। (२) जोतना। (३) खेती का काम।

कर्पना - कि. स. [सं. कर्पण] खींचना।

कर्षमर्प- संज्ञा पु. [सं. कर्पण] खींच तान, संघर्ष।

वालंक— संज्ञा पुं. [स.] (१) लांछन, बदनामी। उ.— मो देखत मो दास दुखित भयो, यह वलंक हों कहाँ गाँवहाँ—७-५। (२) चंद्रमा का काला दाग। (१) दोष। (४) धडबा।

संज्ञा पुं. [सं.किल्क, हिं. कलंकी] किल्क अवतार। उ.—हिर करिहैं कलंक अवतार—१२-३। कलंकि—संज्ञा पुं [सं. किक] किक अवतार। उ.—यों हो इहै कलंकि अवतार—१२-३।

कलंकित—वि. [सं.] जिसे कलंक लगा हो, दोषी। कलंकी, कलंकी—वि. [सं. कलंकिन] (१) जिसे कलंक लगा हो। उ.-का पटतरयो चंद्र कलंकी घटत बढ़त दिन लाज लजाई—२२२७।

संज्ञा पुं. [सं. कि ह] कि कि अवतार । उ.-कि कि अप्रादि अप्रंत कृतयुग के है कलँकी अप्रवतार—सारा. ३२०।

कलंदर—संज्ञा पुं. [ग्रा कलंदर] (१) एक तरह के मुसलमान फकीर। (२) रीछ-बंदर नचाने वाला।

कलंद्रा—संज्ञा पुं. [हिं.] (१) एक तरह का रेशमी कपड़ा। (२) खेमें का श्रॅंकुड़ा जिस पर रेशम या कपड़ा लिपटा रहता है।

कल संज्ञा स्त्री. [सं. कल्य, प्रा. कल्ल] (१) श्राराम, चैन, सुख। उ.—(क) पिलत केस, कफ कंठ बिरुं-ध्यो, कल न परित दिन-राती—१-११८। (स) डेट ल ल कल लेत नाही प्रान प्रीतम प्रान-सा २१। (ग) जसुमित बिकल भई छिन कल ना। लेट्ट उठाई पूतना-उर तें, मेरी सुभग साँवरो ललना—१०-५४। (घ) एक बार कुलदेवी पूजत भयो दरस सिल मोहिं। ता दिन ते छिन कल न परत है सत्य कहत हों तोहिं। —सारा.२२१। (२) स्वास्थ्य, श्रारोग्य। (३) संतोष। संज्ञा गुं. [सं.] (१) मधुर ध्विन। उ.—श्रष्टन श्रुधर छिव दास बिराजत। जब गावत कल मंदन—४७६। (२) वीर्य।

वि.—(१) सुन्दर, मनोहर। (२) कोमल, मधुर। कि. वि.—[सं. कल्य—प्रत्यूष, प्रभात] (१) आने वाला दिन। (२) आगे किसी समय। (३) बीता हुआ दिन।

संज्ञा स्त्री. [सं कला—ग्रांग, भाग] (१) श्रोर, पहलू। (२) श्रंग, ग्रवयव।

संज्ञा स्त्री—[सं कला=विद्या] (१) कला।

उ.—राधे त्राज मदनमद माती। सोहत सुन्दर संग
स्याम के खरचत कोट काम कल थाती—सा ५०।

(२) युक्ति, ढंग। (३) यन्त्र। (४) पंच, पुरजा।

वि—[हिं काला] काला' का संचिष्त रूप जो

यौगिक शब्दों के शुरू में जुड़ता है।
कर्लाई—संज्ञा स्त्री. [श्र.] (१) राँगा। (२) राँगे का लेप
जिसके चढ़ाने से बरतन में रखी हुई चीजें कसाती
नहीं, मुलम्मा। (३) वह लेप जो किसी वस्तु पर
रंग चढ़ाने के लिए लगाया जाय। (४) चमक-दमक,

मुहा०--कर्लाई ग्राई उघरि—कर्लाई खुल गयी, सचा रूप सामने ग्रा गया, वास्तविकता ज्ञात हो गयी। उ.—(क) कीन्ही प्रीति पुहुप शुंडा की ग्रपने काज के कामी। तिनको कौन परेखो कीजे जे हैं गरुड़ के गामी। ग्राई उघरि प्रीति कर्लाई सी जैसी खाटी ग्रामी—३०८०। (ख) देखो माधौ की मित्राई। ग्राई उघरि कनक कर्लाई सी दै निज गये दगाई— २७१८।

(४) चूना।

तड़क-भड़क।

कलकंठ — संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोयला। (२) कबूतर। (३) हंस।

वि.—जिसका स्वर मीठा, कोमल या सुंदर हो। कलक—संज्ञा स्त्री. [त्र्य. कलक] दुख, चिंता। कलकना—कि. ग्रा. [हिं. कलकल = शब्द] शब्द करना, चिल्लाना।

कलकल—संज्ञा पुं. [सं,] (१) जल के गिरने या बहने का शब्द। (२) कोलाहल, शोर।

संज्ञा स्त्री.--सगड़ा, कलह।

कलकान, कलकानि, कलकानी—संशा स्त्री. [आ.— कलक = रंज] हैरानी, दुख। उ.—नारी गारी बिनु नहिं बोलै पूत करें कलकानी। घर में आदर कादर कोसों सीभत रैनि बिहानी।

कलकू जिका—वि. स्त्री. [सं.] मधुर या कोमल ध्वनि करनेवाली।

कलन्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्री, पत्नी। (२) दुर्ग, गइ। कलधून—संज्ञा पुं. [सं.] चाँदी।

कलघौत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना। (२) चाँदी।

(३) सुंदर, मधुर या कोमल ध्वनि । न—संज्ञा पं िसं ो (१) उत्पन्न करना । (२)

कलन—संशा पुं. [सं.] (१) उत्पन्न करना । (२) धारण करना । (३) संबंध ।

कलना—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) ग्रहण करना।

(२) विशेष ज्ञान प्राप्त करना। (३) गणना, विचार।

(४) लेन-देन, व्यवहार।

कलप—संज्ञा पुं. [सं. कल्प] (३) ब्रह्मा का एक दिन। (२) विधान, रीति। (३) कल्प।

कलपत-कि. श्र. [हिं. कल्पना] दुखी होना, सोचना, खिन्न होकर विचारना। उ.—ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि, कलपत दोउ कर जोर। बृन्दावन ए तृन न भये हम लगत चरन के छोर—४७७।

कलपतर, कलपतरु – संज्ञा पुं. [सं. कलपतरु] एक वृत्त जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माना जाता है श्रीर जो सभी इच्छाएँ पूरी करता है। उ. — सूरदास यह सब हित हरि को रोप्यो द्वार सुभगति कलपतर —१० उ.-७०।

कलपना—कि. ग्र. [सं. कल्यना = (दुख की) उद्भावना करना] (१) दुखी होना, बिलखना। (२) कल्पना करना।

संज्ञा स्त्री = उद्भावना, श्रनुमान, कल्पना।
कलपाना कि. स. [हिं. कलपना] दुखी करना, रुखाना।
कलपे कि. श्र. [हिं. कलपना] विलाप करता है, विलख्ता है, दुखी होता है। उ.—प्रभु तेरी बचन भरोसी साँची। पोषन भरन विसंभर साहब जो कलपे सो काँची—१-३२।

कलबल—वि. [ग्रनु.] ग्रस्पष्ट (स्वर)। उ.—(क) ग्रलप दसन, कलबल करि बोलिन, बुधि निहंपरत विचारी। बिकसित ज्योति ग्रधर-बिच, मानौ विधु.मैं बिज्जु उज्यारी—१०--६१। (ख) स्याम करत माता सौं, भगरौ, ग्रटपटात कलबल करि बोल—१०-६४। (ग) गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलैं। कलबल बचन तोतरे बोलैं—१०-११७।

संज्ञा पुं.-शोरगुल, हल्ला।

संशा पुं. [सं. कला + बल] उपाय, युक्ति। उ.— लगे हुलसन मेघ मंगल भरे बिथक सजोर। करन चाहत राख रोके काम कलबल छोर—सा. ६१।

कलबूत—संज्ञा पुं. [फा. कालबुद] (१) साँचा। (२) हाँचा।

कलभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का बच्चा। (२) ऊँट का बच्चा। (३) धत्रा।

कलम—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखने का उपकरण, लेखनी। (२) किसी पेड़-पोधे की वह मुलायम श्रोर नयी टहनी जो दूसरी जगह या पेड़ में लगाने के लिए काटी जाय। (३) वह पोधा जो कलम से तैयार हो। (४) चित्रकारों की कृची।

कलमख - संज्ञा पुं. [सं. कलमष] (१) पाप, दोष। (२) कलंक। (३) धव्बा।

कलमना – कि. स. [हिं. कलम] काटना, ठुकड़े करना। कलमलना, कलमलाना—कि ग्र. [ग्रनु.] ग्रंग या शरीर का इधर-उधर हिलना-डोलना।

कलमलात—िक. श्र. [हिं. कलमलाना] शरीर के श्रंग इधर-उधर हिलते-डोलते हैं, कुलबुलाते हैं। उ.— कौन कौन की दसा कहीं सुन सब ब्रज तिनते पर। निसि दिन कलमलात सुन सजनी सिर पर गाजत मदन श्रर—२७६४।

कलमष, कलमस—संज्ञा पुं. [सं. कल्मष] पाप, श्रघ। उ.—जो पे यहै बिचार परी। तो कत कलि-कल्मष लुटन कों, मेरी देह धरी—१-२११।

कलमा—संज्ञा पुं. [ग्र. कलमः] (१) वाक्य, बात। (२) इसलाम के मूलमंत्र का वाक्य।

कलगुहाँ—वि. [हिं. काला + मुँह] (१) जिसका मुँह काला हो।।(२) कल कित, लांक्ति।

कलरव—संज्ञा पुं. [सं. कल = सुंदर + रव = शब्द] (१) मधुर शब्द । उ.—नृपुर-कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़, दे बाहँ बसाए—१०-१०४। (२) कोयल। (३) कबूतर।

कलरोे—संज्ञा पुं. [सं. कलरव] मधुर ध्वनि । कलविरया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कलवार] शराब की दूकान । कलवार—संज्ञा पुं. [सं. कल्यपाल, प्रा. कलवाल] शराब बनाने-बेचने वाला।

कलश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, गगरा। उ.—कनक कलश कुच प्रगट देखियत ग्रानँद कंचुिक भूली— २५६१। (२) मंदिर का शिखर। (३) चोटी, सिरा। (४) प्रधान व्यक्ति।

कलशी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] (१) गगरी। (२) मंदिर आदि का कँगूरा।

कलस—संज्ञा पुं. [सं. कलश] मंदिर-महल आदि का शिखर या कॅंगूरा। उ.—ऊँचे मंदिर कैन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाए। भक्त-भवन में हों जु बसत हों, जद्यपि तृन करि छाए—१-२४३।

कलसा—संज्ञा पुं. [सं. कलश] गगरा, घड़ा। उ.— हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर सिंस भान—२१६१।

कलसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] (१) गगरी, कल्सिया। (२) छोटे कँगूरे। (३) मंदिर का छोटा शिखर या कँगूरा।

कलहंस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजहंस। (२) श्रेष्ठ राजा। (३) ईश्वर, ब्रह्म।

कलह—संज्ञा पुं. [सं.] विवाद, भगड़ा। उ.—(क) काहे कों कलह नाध्यो, दाहन दाँवरि बाँध्यो, कठिन लकुट लें तें त्रास्यों मेरें भैया—३७२। (ख) सुनत स्याम कोिकल सम बानी निकसे अति अतुराई (हो)। माता सौं कल्ल करत कलह हे रिस डारी विसराई (हो)—७००। (२) युद्ध, संवर्ष। उ.—िनरिख नैन रसरीति रजनि रुचि काम कटक फिरि कलह मच्यो—पृ० ३५० (६७)।

कलहकारी—वि. [सं. कलह + हिं. कारी (स्त्री.)] कलह करनेवाली।

कलहनीपतिपितापुत्री— संज्ञा स्त्री. [सं. कलहिनी = (शिन की स्त्री का नाम)+पित (कलहिनी का पिता=श्राम)+ पिता (शिन का पिता=स्र्य)+ पुत्री (स्र्य की पुत्री=यमुना)] यमुना नदी। उ०—कलहनी-पिता-पिता-पुत्री तकत बनत न त्राज। कौन जानत रहे यह बिनु संभवन को काज—सा० ३८।

कलहांतिरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो पहले तो नायक का तिरस्कार करे, फिर पछताने लगे।

कलहा—वि. [सं. कलह] भगड़ालू, कलहिंपय। उ.—कलहा, कुही, मूष रोगी श्ररु काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६।

कलहास—संज्ञा पुं. [सं.] वह हास जिसमें कोमल ध्विन हो।

कलहिनी—वि. स्त्री. [सं.] भगड़ाला। संज्ञा स्त्री.—शिन की खी।

कला-संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्रंश, भाग। (२) चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग। (३) कार्य-कुशलता। (४) विभूति। (५) शोभा, छटा, प्रभा। (६) ज्योति, तेज। (७) विद्या, शास्त्र। उ.—कोक-कला वितपन भई हो कान्हरूप तनु आधा-१४३७। (८) सूर्य का बारहवाँ भाग। (६) अग्निमंडल के दस भागों में एक। (१०) समय का एक छोटा भाग। (११) कर-त्त, करनी, कौतुक, लीला (न्यंगात्मक)। उ.— माधौ, नेकु हटकौ गाइ। '''। छहौं रस जौ धरौं ग्रागें, तउ न गंध सुहाइं। श्रीर श्रहित श्रमञ्छ भच्छति कला बरनि न जाइ-१-५६। (१२) कौतुक, खेल, ऋीदा। उ.—(क) अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल। " । माया कों कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियौ भाल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल-१-१५३। (ख) ना हरि भिक्त, न साधु समागम, रह्यौ बीच ही लटकें। ज्यौं बहु कला काछि दिखरावे, लोभ न छूटत नट कें-१-२६२। (ग) अज, अविनासी अमर प्रभु जनमें मरे न सोइ। नट वत करत कला सकल बूभै बिरला कोइ---र-३६। (१३) चतुरता, कुशलता। उ.— रचि-पचि सोंचि सँवारि सकल श्रँग चतुर चतुराई ठानी। दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति इतनहिं कला नसानी-१३२१। (१५) छल, कपट, धोखा। (१४) हीला, बहाना। (१६) उपाय, ढंग, युक्ति। उ.--रहेउ दुष्ट पचि-हार दुसासन कछू न कला चलाई—सारा. ७६६। (१७) यन्त्र, पेंच।

कलाई—संशा स्त्रो. [सं. कलाची] हथेली से जुड़ा हुत्रा हाथ का भाग, मिर्सिबंध, गद्दा, पहुँचा।

कलाकर—संज्ञा पुं. [सं.] चन्द्रमा।

कलाकौशल—संशा पुं. [सं.] (१) कला में कुशलता, कारीगरी। (२) शिल्प।

कलात्मक—वि. [सं.] (१) कलापूर्ण। (२) कला सम्बन्धी।

कलाद्—संज्ञा पुं. [सं.] सोनार।

कलादा—संज्ञा पुं. [सं. कलाप, हिं, कलावा] हाथी की गर्दन का वह भाग जहाँ महावत बैठता है, कलावा, किलावा।

कलाधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चन्द्रमा। (२) शिव। (३) कला का ज्ञाता।

कलानाथ, कलानिधि—संज्ञा पुं. [सं.] चन्द्रमा।

कलानिधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कला का आश्रय। (२) विविध कलाओं का स्वामी।

कलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। (२) मोर की पूँछ। (३) तरकश। (४) चंद्रमा। (४) भूषण, गहना।

कलापति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

कलापिनी—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) रात्रि। (२) मोरनी। कलापी—संज्ञा पुं. [सं. कलापिन्] (१) मोर (२) कोयल। वि.—(१) तरकश बाँधे हुए। (२) समूह में रहने वाला।

कलार, कलाल--संज्ञा पुं. [सं कल्यपाल] मद्य बेचने

कलावंत—संज्ञा पुं. [सं. कलावान] (१) संगीतज्ञ। (२) कलाकुशल, नट।

कलावती—वि. स्त्री. [सं] (१) जो कला में कुशल हो। (२) सुन्दर, शोभायुक्त।

कलास—संशा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा जिसपर चमड़ा चड़ा रहता था। उ-धनुष कलास सही सब सिखि के भई सयानी गानति। सूर सुन्दरी आपुही कहा तू सर संधानति—२६५१।

कलाहक — संशा पुं. [सं.] काहल नामक बाजा।

किलंद—संशा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत जिससे जमुना नदी निकलती है। उ—उर किलंद ते धँसि जल धारा उदर धरिन परबाह। जाति चली धारा है ग्रध कों, नाभी हृद ग्रवगाह—६३७। (२) सूर्य।

किंदजा—संज्ञा स्त्री. [सं. व लिंद+जा] कलिंद पर्वत से निकलने वाली जमुना नदी।

किलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किलयुग, चार युगों में चौथा युग, इसमें ४३२००० वर्ष होते हैं। ईसा के ३१०२ वर्ष पूर्व से इसका श्रारम्भ माना जाता है। शास्य पौराणिक विचारानुसार ग्रधर्म श्रीर पाप की इस युग में प्रधानता रहती है। (२) कलह, भगड़ा। (३) पाप। (४) वीर। (४) तरकश। (६) दुख। (७) युद्ध।

वि.--श्याम, काला।

कलिकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] युद्ध ।

किलिका - संशा स्त्री. [सं.] (१) कली। (२) एक प्राचीन बाजा। (३) मुहूर्त्त। (४) भाग।

किलकान—वि. [सं. किल + हिं. कान] हैरान, परेशान। किलकाल—संज्ञा पुं. [सं.] किलयुग।

कित—िव. [सं.] (१) सुन्दर, मधुर । उ.—जानु जंघ त्रिमंग सुंदर किति कंचन दंड—१-३०७। (२) प्रसिद्ध । (३) मिला हुन्ना, प्राप्त । (४) सजा हुन्ना, शोभायुक्त ।

किलिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. कली] किलियाँ, किलिकाएँ। उ.—श्रॅंकुरित तरु पात, उकिठ रहे जे गात, बनबेलि प्रफुलित किलिन कहर के—१०-३०।

कलिमल-संज्ञा पुं. [सं.] पाप, कलुष।

कितमलिहें—संशा पुं. सिव. [सं. कितमले+हिं (प्रत्य.)] पाप या कलुष को । उ.—यह भव-जल कितमलिहें गहे है, बोरत सहस प्रकारों । स्रदास पिततिन के संगी, बिरदिहं नाथ सम्हारों—१-२०६।

कितयाना—कि. ग्र. [हिं. कली] किलयाँ निकलना, किलयों से युक्त होना।

किलयारी—संज्ञा स्त्री. [सं. किलहारी] एक विषेला पौधा।

कलियुग--वि. [सं.] चार युगों में चौथा।

किलयुगी —िवं. [सं.] (१) किलयुग का। (२) बुरी आदतवाला।

कलिल-वि. [सं.] (१) मिला हुआ, मिश्रित। (२) धना, दुर्गम।

संज्ञा पुं.— समूह।

कलो—संशा स्त्री. [सं.] (१) बिना खिला फूल, बोंडी, कलिका। (२) कन्या।

व लुख, कलुष — संज्ञा पुं. [सं. कलुष] (१) मेल । (२) पाप, दोष।

कलुखी—वि. [सं. कलुष] कलंकी, पापी। कलुषाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कलुष+ग्राई (प्रत्य.)] (१) बुद्धि या चित्त का विकार, दोष। (२) पाप, मिलनता।

कलुषित—िव. [सं.] (१) दोष युक्त । (२) मिलन । कलुषी—िव.स्त्री. [सं.] (१) पापिनी । (२) मेली, गंदी । वि. पुं. [सं. कलुषिन्] (१) मेला, गंदा। (२) पापी, दोषी । उ.—श्रसरन-सरन नाम तुम्हारी, हौं कामी, कुटिल निभाउँ। कलुषी श्रक्त मन मिलन बहुत मैं सेंत-मेंत न विकाउँ—१-१२८।

कल्टा—िव. [हं. काला+टा (प्रत्य.)] बहुत काला। कलेऊ—संशा पुं. [हं. कलेवा] जलपान, कलेवा। उ.—(क) करि मनुहारि कलेऊ दीन्हो, मुख चुपरघौ श्रक चोटी—१०-१६३। (ख) उठिए स्याम कलेऊ कीजे—१०-२११। (ग) तिनहिं कह्यो तुम स्नान करौ ह्याँ हमहिं कलेऊ देहु—२५५३। (घ) चारो श्रात मिल करत कलेऊ मधु मेवा पकवान— सारा. १७१।

कलेजा—संशा पुं. [सं. यकृत] (१) हृदय, दिल । (२) छाती, वत्तस्थल । (३) साहस, जीवट ।

कलेवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शरीर, देह। उ.— चर-चित चंदन, नील कलेवर, बरषत बूँदिन सावन— ८-१३। (२) ढाँचः।

कलेवा—संशा पुं- [सं. कल्यवर्त्त, प्रा. कल्लवट्ट] (१)
प्रातःकाल का हल्का भोजन, जलपान । उ. कमल
नैन हिर करौ कलेवा । माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दिधि
भाँति-भाँति के मेवा— १०-२१२ । (२) यात्रा के
लिए साथ लिया हुन्ना भोजन, पाथेय, संबल । (३)
विवाह के दूसरे दिन वर का सखान्नों सहित ससुराल
जाकर भोजन करने की प्रथा, खिचड़ी, बासी ।

कलेस—संज्ञा पुं. [सं. क्लेश] दुख, कष्ट, व्यथा। उ.—(क) प्रभु, मोहिं राखिये इहिं ठौर। केस गहत कलेस पाऊँ, किर दुसासन जोर—१-२५३। (ख) जलपति-भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस—सा. २७। (ग) सूर स्थाम सुजान संग है चली विगत कलेस—सा. ५६।

कलें—संज्ञा स्त्री. [सं. कला] (१) कला, चतुरता, कुशलता। (२) युक्ति, उपाय, रीति, ढंग। उ.— अजहूँ कह्यो मानि री मानिनि उठि चिल मिलि पिय को जिय लैहै। सूर मान गाढ़ो त्रिय कीन्हो, कहै बात को उ कोटि कलें—२२१०।

कलोर—संज्ञां स्त्री, [सं. कल्या] वह गाय जो बरदाई या ब्याई न हो।

कलोल—संज्ञा पुं. [सं. कल्लोल] आमोद-प्रमोद, ऋड़ा, आनन्द। उ.—(क) बिद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति—१०-६। (ख) मिलि नाचत, करत कलोल, छिरकत हरद दही। मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत दूध दही—१०-२४। (ग) दोउ कपोल गहि के मुख चूमित, बरष-दिवस कहि करित किलोल—१०-६४।

कलोत्तना — कि. ग्र. [हिं. कलोल] ग्रानंद करना, मौज उड़ाना, क्रीड़ा या विहार करना।

कलोले—संज्ञा पुं. [हि. कलोल] श्रानन्द, कीड़ा। उ.— इन द्योसनि रूसनो करति हो करिहो कबहिं कलोले —२२७५।

कलौंस—वि. [हिं. काला + श्रौंस (प्रत्य.)] कालापन लिये हुए।

संज्ञा पुं.—(१) स्याही,कालिष। (२) कलंक। कल्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दंभ, पाखंड। (२) मेल। (३) पाप।

किलक-संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का दसवाँ अवतार।

कल्की—संज्ञा पुं. [सं. कल्कि] विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो संभल (मुरादाबाद) में एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा। उ.—बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयो पुनि सोइ। सोई कल्की होइहै, अरीर न द्वितिया कोइ—२-३६।

कल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विधि, विधान। (२) प्रात:-काल। (३) एक प्रकार का नृत्य। (४) काल का एक विभाग जो ४ ग्ररब ३२ करोड़ वर्ष का होता है ग्रीर ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है।

वि.—तुल्य, समान।

कल्पक—वि.-[सं.] (१)कल्पना करने वाला। (२)काटने वाला।

कल्पतरु—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में गिना जाता है। प्राणी की इच्छा पूरी करने के लिए यह प्रसिद्ध है। उ.—तेरे चरन सरन त्रिभुवनपति मेटि कल्प त् होहि कल्पतरु—२२६६। कल्पद्रम—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृज्ञ जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माना जाता है।

कल्पन—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्पना] कल्पना, श्रनुमान। उ.-जो मन कबहुँक हरि को जाँचे ।। निसि दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै —२-११।

कल्पना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बनावट, रचनाकम। (२) अनुमान, उद्भावना। उ.—जैसी जाकें कल्पना तैसहि दोउ आए। सूर नगर नर-नारि के मन चित्त चोराए—२५७६। (३) एक वस्तु में अन्य का आरोप। (४) मान लेना। (४) गड़ी हुई बात।

कल्पलता — संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वृत्त जिसकी गिनती समुद्र से निकले चौदह रत्नों में है। यह प्राणियों की इच्छा पूरी करता है और इसका नाश कभी नहीं होता।

कल्पवृत्त, कल्पवृच्छ-संज्ञा पुं. [सं. कल्पवृत्त] देवलोक का एक वृत्त ।

कल्पशाखी—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृद्ध।
कल्पांत—संज्ञा पुं. [सं. कल्प + श्रंत] प्रलय।
किल्पत—वि. [सं. कल्पना] (१) रचा हुआ, निकला हुआ, उद्भूत। उ.—चर-श्रचर-गति विपरीत। सुनि बेनु-किल्पत गीत—६२३। (२) मनमाना, मन-गढ़ंत। (३) बनावटी, अयथार्थ, नकली।
कल्मष - संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप। (२) मैल।

कल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सबेरा। (२) मधु, शराब। कल्याण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रुभ, भलाई। (२) सोना। (३) एक राग जो श्रीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है श्रीर जो रात के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—स्रदास प्रभु मुरली घरे श्रावत राग कल्याण (कल्यान) वजावत—२३४७।

वि.—शुभ, कल्याणप्रद।

कल्याणी—वि. [सं.] कल्याण करनेवाली।
संज्ञास्त्री.—(१) गाय। (२) प्रयाग की एक देवी।
यल्यान—संज्ञा पुं. [सं. कल्याण] (१) संगल, शुभ,
भलाई, कल्याण। उ.—श्रापुनौ कल्यान करि लै,
मानुषी तन पाइ—१-३१५। (२) एक राग जो रात
के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—सूर स्याम
श्रित सुजान गावत कल्यान तान सपत सुरन कल इते
पर मुरलिका वरषी री—२३६२।

कल्योना—संज्ञा पुं. [हं. कलेवा] कलेवा। कल्ला—संज्ञा पुं. [सं. करीर = बाँस का करेल] श्रंकर, गोंफा।

> संज्ञा पुं. [फ़ा.] गाल का भीतरी भाग, जबड़ा। संज्ञा पुं. [हिं. कलह] भगड़ा, विवाद।

कल्लाना—िक. ग्रा. [सं. कड्या कल् = संज्ञाहीन होना] (१) जलन होना। (२) दुखदायी होना।

कल्लोन—संज्ञा पुं, [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) उमंग, मौज।

कल्लोलिनी—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) वह नदी जिसमें तरंग या लहरें हों।

कल्हरना—िक. ग्र. [हिं. कड़ाह-ना (प्रत्य०)] भुनना, तला जाना।

कल्हारना—कि. स. [हिं. कल्हरना] भूनना, तलना। कि. श्र. [सं. कल्ल = शोर करना] कराहना, चिल्लाना।

कवच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध में पहनने की लोहे की पोशाक, जिरहवकतर। उ.—बीरा हार चीर चोली छिब सैना सिज सङ्गर। परन बचन सिल्लाह कवच दे जोरी सूर अपार—१५६६। (२) छाल, छिलका। (३) तंत्र-शास्त्र का एक खंग। (४) बड़ा नगाड़ा, डंका।

कत्रन — वि. [हिं. कौन] कैसी, किस प्रकार की। उ.— तोहिं कवन मित रावन ग्राई—६-११७। सर्व.—किसने। उ.—सुधाधर मुख पे रुखाई धौ कवन कह थाप—सा. ३६।

कवने—सर्व, [हिं, कवन, कौन] किसने। उ.—कंचन को मृग कवने देख्यौ किन बाँध्यौ गहि डोरी— ३०२८। हाना है. [सं. कवल] ग्रास, कौर । उ.—कबहूँ कवर खात भिरचन की लागी दसन टकोर। भाज चले तब गहे रोहिनी लाई बहुत निहोर—सारा.—

संशा पुं [सं,] (१) बाल, केश। (२) गुच्छा। (३) लोनापन।

वि.—(१)गुथा हुआ। (२) मिला हुआ।

कत्रशे—संज्ञा स्त्री. [सं.] चोटी, जूड़ा, वेग्गी। उ.—(क)
गित मराल श्रह विंव श्रधर छिवि, श्रिह श्रन्प कवरी
— ६-६३। (ख) श्रित सुदेस मृदु चिकुर हरत चित
गूँथे सुमन रसालिहें। कवरी श्रित कमनीय सुभग सिर
राजित गोरी बालिहें। (ग) सुंदर स्याम गही कवरी
कर मुक्तामाल गही बलवीर—१०-१६१। (घ) श्रहन
नैनमुख सरद निसाकर कुसुम गिलित कवरी—
२१०६।

कवल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौर, ग्रास, गस्सा। (२) कुल्ली का जल।

संज्ञा पुं.—िकनारा, कोना। संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक पत्ती। (२) एक तरह का घोड़ा।

कविति—वि. [सं. कवल] खाया हुआ, प्रसित। क्वष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढाल। (२) एक प्राचीन ऋषि।

कवाट—संज्ञा पुं. [सं.] कपाट, किवाड । किव—संज्ञा पुं.—[सं.] (१) किवता करनेवाला, काव्य रचनेवाला। (२) ऋषि। (३) ब्रह्मा। (४) शुक्रा-चार्य। (५) सूर्य।

कविकुल् — संज्ञा पुं. [सं.] कवियों का समूह या वर्ग। ड. — लाल गोपाल वाल-छिब बरनत कविकुल करिहै हास री—१०-१३६।

कविता, कविताई—संज्ञास्त्री. [सं. कविता] काव्य, कविता।

किवित्त—संज्ञा पुं. [सं. कवित्व] (१)किविता, काव्य। (२) एक प्रसिद्ध छन्द जिसमें ३१ श्रचर होते हैं। किवित्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किविता रचने की शक्ति। (२) काव्य गुगा।

किवनासा—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्मनाशा] कर्मनाशा। किवराज, किवराय—संज्ञा पुं. [सं. किवराज] श्रेष्ठ किव। किवलास—संज्ञा पुं. [सं. केलास] (१) केलाश। (२) स्वर्ग।

कशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रस्सी (२) कोड़ा, चाबुक। किश्चत—वि. सर्व. [सं.] कोई।

कष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सान। (२) कसौटी। (३) परीचा।

कषाय — वि. [सं.] (१) कसैया, बकठा। (२) सुगंधित। (३) रँगा हुआ। (४) गेरू के रंग का।

संज्ञा पुं.—(१) कसैली वस्तु। (२) गोंद। (३) गाढ़ा रस। (४) कलियुग।

कष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीड़ा, दुख, तकलीफ। (२) संकट, मुसीबत।

कस—संज्ञा पुं. [सं. कष] (१) परीचा, कसौटी, जाँच। (२) तलवार की लचक।

संज्ञा. पुं. [हिं. कसना] (१) बल, जोर। (२) दबाव, वश, अधिकार।

संज्ञा पुं. [सं. कषाय, हिं. कसाव] सार, तत्व। क्रि. वि.—(१) कैसे, क्योंकर। (२) क्यों।

कसक--संज्ञा स्त्री. [सं. कष = आघात, चोट] (१)पीड़ा, दर्द, टीस। (२) पुराना बेर। (३) अरमान, अभि- लाषा। (४) दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुखी होना, सहानुभूति।

कसकत कि. श्र. [हि.कसक, कसकना] दर्द करता (है), सालता (है), टीसता (है)। उ—नाही कसकत मन, निरखि कोमल तन, तिक से दिधि काज, भली री तू मैया—३७२।

कसकना — िक. श्र. [हिं. कसक] दर्द करना, टीसना। कसकयो — िक. श्र. [हिं. कसक, कसकना] कसका, दर्द हुश्रा, टीस हुई। उ. — जसुदा तो हिं बाँधि क्यों श्रायो। कसक्यों नाहिं नेकु मन तेरों, यहै को िव को जायों — ३७४ ।

कसत—िक, श्र. [हिं. कसना] परखते हैं, जाँचते हैं। उ.—सूर प्रभु हँसत, श्रिति प्रभु प्रीति उर में बसत इन्द्र को कसत हरि जग धाता।

कसन-संज्ञा स्त्री, [हं, कसना] (१) कसने की किया

या भाव। (२) कसने का ढंग। (३) कसने की रस्सी या डोरी।

कसना—िक. स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण] (१) बंधन खींचना या तानना। (२) जकड़ना, बाँधना। (३) सवारी तैयार करना। (४) दवा दबाकर भरना। कि. श्र.—(१) बंधन खिंच जाना, जकड़ जाना। (२) बँधना। (३) सवारी तैयार होना। (४) खूब भर जाना।

क्रि. स.—(१) कसौटी पर विसकर परखना।
(२) परीचा लेना, जाँचना। (३) घी में तलना।
क्रि. स. [सं. कषण = कष्ट देना] दुख देना,
कष्ट पहुँचाना।

संज्ञा पुं.—कसने या बाँधने की डोरी, रस्सी। कसनि, कसनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कसना] (१) कसने की रस्सी, बेठन। (२) कंचुकी, ग्राँगिया। (३) कसौटी। (४) परख, जाँच।

संशा स्त्री. [हिं. कसाव] कसैली वस्तु का पुट देने के लिए उसमें डुबोना।

कसब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) काम, परिश्रम, मेंहनत। उ.—आन देव की भिक्त-भाइ करि, कोटिक क्सब करेगौ। सब वे दिवस चारि मनरंजन, अंत काल विगरेगौ—१-७५। (२) व्यभिचार।

कसम—संज्ञा स्त्री. [त्र्य. कसम] शपथ, सौगंध।

कसमस्राना – कि. श्र. [श्रनु.] (१) रगड़ खाना, कुल-बुलाना। (२) ऊबना, उकताना। (३) घबराना, बेचैन होना। (४) हिचकना, टाल-मटोल करना।

कसर—संशा स्त्री. [श्र.] (१) कमी, त्रुटि । (२) बैर, मनमोटाव । (३) हानि, घाटा । (४) दोष, विकार । कसरत—संशा स्त्री. [श्र.] व्यायाम, मेहनत ।

कसरि—संज्ञा स्त्री. [श्र. कसर] कमी, न्यूनता, त्रुटि। उ.—श्रव कछू हरि कसरि नाहीं, कत लगावत वार ? सूर प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिं श्रार—१-१६६।

कसाई—संज्ञा पुं. [त्र. कस्साब] बिधक, हत्यारा। उ.— श्रीधर बाँभन करम कसाई। कहा कंस सों बचन सुनाई। प्रभु, में तुम्हरो त्राज्ञाकारी। नंद-सुवन कों त्रावों मारी—१०-५७। कसाना — कि. ग्र. [हिं. काँसा] खट्टी चीज का कसें जा

कि. स. [हिं. 'कसना' का प्रे.] कसवाना। कसार—संशा पुं. [सं. कुसर] भुना आटा जिसमें चीनी मिला दी गयी हो, पँजीरी।

कसाला—संज्ञा पुं. [सं. कष=पीड़ा, दुख] (१) दुख, कष्ट। (२) परिश्रम, मेंहनत।

कमात्र—संज्ञा पुं. [सं. कषाय] कसेलापन। संज्ञा पुं.—खिचाव, तनाव।

कसावर—संज्ञा पुं. [देश०] एक देहाती बाजा। किसि—िक. स. [हिं. कसना] अच्छी तरह बाँधकर, जकड़कर। उ.—(क) तजौ बिरद के मोहिं उधारी, स्र कहै किस फेंट—१-१४५। (स्र) किस कंचुिक, तिलक लिलार, सोभित हार हिये—१०-२४।

कसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कशक] एक पौधा।

वि. [हं. कसना] तनी, तनी हुई। उ.—किरिन

कटाच बान बर साँधे भौंह कलंक समान कसी री—

१८६८।

कसीटना—िक, स. [हिं. कसना] कसना, रोकना। कसीस—संज्ञा पुं. [सं. कासीस] एक खनिज पदार्थ। संज्ञा स्त्री.—(१) निर्दयता। (२) कोशिशा। कसीसना—िक, ग्र. [हिं. कसना = खींचना] खीचना। कस्त्रीं —िव. [हिं. कुसुम] (१) कुसुम के रंग का। (२) कुसुम के फूलों के रंग में रँगा हुआ।

कसूर— संज्ञा पुं. [अ. कसूर] अपराध, दोष। कसे — कि. स. [हिं. कसना] बाँधे हुए, जकड़कर बाँधे हुए। उ.—अलख-अनंत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तूनीर—६-२६।

क देरा-संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + एरा (प्रत्यः)] फूल-काँसे ऋादि के बरतन ढालने-बेचनेवाला।

कसेया—संज्ञा पुं. [हिं कसना] (१) कसकर बाँधने-वाला (२) परखने, जाँचनेवाला, पारखी।

कसेला—वि. [हिं. कसाव+ऐला (प्रत्य.)] जिसके स्वाद में कसेलापन हो।

कसौंजा, कसौंदा—संज्ञा पुं. [सं. कासमई, पा. कासनह] एक पौधा या उसका फूल।

कसोटिया — संज्ञा स्त्री. [सं. कषपद्यी, हि. कसोटी] कसोटी, सोना परखने का पत्थर। उ. — तिनक कटि पर कनक-करधिन, छीन छिब चमकाति। मनौ कनक कसोटिया पर, लीक-सी लपटाति—१०-१८४।

कसौटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कषपट्टी] (१) एक काला पत्थर जिसपर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। शालग्राम इसी पत्थर के होते हैं। (२) परख,परीचा। उ.—गोरस मथत नाद इक उपजत , किंकिनि धुनि सुनि स्रवन रमापित। सूर स्याम श्रॅंचरा धिर ठाढ़े, काम कसौटी किस दिखरावित—१०-१४६। (ख) प्रीति पुरातन मोरी उनसों नेह कसौटी तोलै —३०६१।

कस्तूरि, कस्तूरिका, कस्तूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कस्तूरी] मृग विशेष की नाभि से निकलनेवाला एक सुगंधित द्रव्य। उ.—उज्ज्वल पान कपूर कस्तूरी। श्रारोगत मुख की छिब रूरी—३६६।

कस्थप—संज्ञा पुं. [सं. कश्यम] एक प्रजापित जो सुरों स्रोर स्रसुरों के पिता थे।

कस्यों—िकि. स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण, हिं. कसना] जकड़कर बाँधा। उ.—(क) सुचि करि सकल बान सुधे करि, कटि-तट वस्यो निषंग—६-१५८। (ख) सूर प्रभु देखि नृप क्रोध पुरी धरी कस्यो कटि पीतपट देव राजै—२६१२।

यह द्वितीया और चतुर्थी का चिन्ह है)।

कि. वि. [हिं. कहाँ] कहाँ, किस जगह। यों.—कहँ लगि—कहाँ तक। उ.—रसना एक, श्रनेक स्याम-गुन कहँ लगि करों बखानी-१-११।

कहंत—िक. स. [सं. कथन, प्रा. कहना] कहता है, बोलता है। उ.—ि जिय ग्रिति डरचौ, मोहि मिति सापै व्याकुल बचन वहंत। मोहिं बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत—१-८३।

कह—वि.—[सं. कः] क्या। उ.—जाँचक पें जाँचक कह जाँचै, जो जाँचै तो रसनाहारी—१-३४।

कहत-कि. स. [सं, कथन, प्रा. कहन, हिं. कहना] (१) कहने में, वर्णन करने में। उ.—श्रविगत गति कछु

कहत न त्रावै । ज्यों गूं गे मीठे फल को रस त्रांतर-गत हीं भावै—१-२। (२) कहता है, वर्णन करता है उ.—जग जानत जदुनाथ जिते जन निज भुज स्नम सुख पायो। ऐसो को ज न सरन गहे तें कहत सूर-उतरायो—१-१५।

कहित — कि. स. [हिं, कहना] वर्णन करती है। उ—बकी जुगई घोष में छल करि, जसुदा की गित कीनी। श्रीर कहित स्नुति वृषभ व्याध की जैसी गित तुम कीनी—१-१२२।

कहती—िक स स्त्री. [हिं. कहना] वर्णन करती, शब्दों में अभित्राय बताती । उ.—जो मेरी ऋ वियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री—१०-१३६।

कहन — कि. स. [हिं कहना] कहने या बताने के लिए।

उ.-बिहवल मित कहन गए, जोरे सब हाथा—६-६६।

मुहा — कहन सुनन को — केवल कहने भर को,

नाम मात्र को। उ. — सतजुग लाख बरस की श्राइ।

त्रेता दस सहस्र किं गाइ। द्वापर सहस एक की भई।

किलाजुग सत संबत रह गयी। सोऊ कहन सुनन कों

रही। किला मरजाद जाइ निहं कही—१-२३०।

कहना—िक. स. [सं. कथन, प्रा. कहन] (१) बोलना, ग्राभिप्राय प्रकट करना। (२) प्रकट करना, रहस्य खोलना। (३) सूचनाया खबर देना। (४) प्रकारना, नःम रखना। (४) सममाना-बुमाना। (६) बनावटी बातें करके भुलावे में डालना। (७) भला-बुरा कहना। (८) कविता रचना।

संज्ञा पुं. - कथन, बात, अनुरोध।

कहिन—संज्ञा स्त्री. [सं. कथन, हिं. कहन] (१) वचन, बात, कथन। (२) करनी, करत्ता। उ.—तृन की आग बरत ही बुक्ति गई हँसि हँसि कहत गोपाल। सुनहु सूर वह करिन, कहिन यह, ऐसे प्रभु के ख्याल —५६८।

कहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कथनी, प्रा. कहनी] (१) कथा, कहानी। (२) बात, कथन।

कहनाउत, कहनावत, कहनावति—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना + त्रावत (प्रत्य.)] (१) बात, कथन। उ.—सुनहु सखी राधा कहनावति। हम देखे सोई इन देखे ऐसे हि ताते किह मन भावति—१६२६। (२) चर्चा, प्रसंग।

उ.—कहाँ स्याम मिलि बैठी कबहूँ कहनावति ब्रज
ऐसी। लूटिहं यह उपहास हमारो यह तो बात अनैसी
—ए. ३२४।

कर्नृत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना + उत (प्रत्य)] कहावत, कहनावत।

कहर—संज्ञा पुं. [ग्र.] विपत्ति, संकट।

वि.—[ग्र. कह्हार] (१) घोर, भयकर। (२) ग्रापार, ग्राथाह।

कहरति — िक. त्र. [हिं. कहरना] पीड़ित है, कराहती है। उ.—मोह विपिन में पड़ी कराहित हों नेह जीव नहिं जात। स्रस्याम गुन सुमिरि सुमिरि वै श्रंतरगित पछितात—ए. ३२६।

कहरना—िक. स्र. [हिं. कराहना] पीड़ा से 'स्राह' करना, कराहना।

वहरी-वि. [हिं. कहर] विपत्ति लानेवाला।

वहत्त— संज्ञा पुं. [देश.] (१) हवा के बंद हो जाने पर बढ़नेवाली गर्मी, उमस। (२) कष्ट।

कहलना—कि. अ. [हिं. कहल] अकुलाना, ज्याकुल होना।

कहलवाना, कहलाना— क्रि. स. [हिं. 'कहना' का प्रे.] (१) कहने की किया दूसरे से कराना। (२) संदेश भेजना।

कहविन—िक. स. [हिं. कहना] कहना है। उ.— श्रव मोकों उनसों कहविन है कल्लु में गई बुलावन। श्रापुहिं काल्हि कृपा यह कीन्ही श्रजिर गये करि पावन—२१६४।

कहवाँ—िक. वि. [हिं. कहाँ] कहाँ।

कहवाए—िक. स. [हिं. कहवाना] कहलाये, प्रसिद्ध हुए। उ.—(क) सूरजबंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए—६-२। (ख) राजा उग्रसेन कहवाए —२६४३।

कहवाना — क्रि. स. [हिं. 'कहना' का प्रे.] (१) कहलाना। (२) संदेश भेजना।

कहवायौ—कि. स. [हिं. कहलाना] कहा जाता है, समका जाता है, माना जाता है। उ.—बीरा लै श्रायो सन्मुख तें, श्रादर करि नृप कंस पठायो। जारि करों परलय छिन भीतर, त्रज वपुरो केतिक कहवायो — ५६१।

कहवावत—िक. स. [हिं. कहवाना] कहलाते हैं। उ.—(क) सुंदर कमलन की सोभा चरन कमल कहवावत—१९७५। (ख) ऐसेहि जगतिपता कहवावत ऐसे घात करें सो दाता—१४२७। (ग) मधुकर अब भयो नेह बिरानी। बाहर हेत हतो कहवावत भीतर काज सयानी—३३७५।

कहवावे—कि. स. [हिं. कहना] कहलाता है। उ.— (क) सिव सनकादि स्रांत नहिं पावें, भक्त-बछल कहवावे—४८२। (ख) वे हैं बड़े महर की बेटी तौ ऐसी कहवावे—१५६६।

कहवैयौ – क्रि. स. [हिं. कहना] कहलाना, प्रसिद्ध कराना। उ.—राधा-कान्ह कथा ब्रज घर घर ऐसे जिन कहवैयौ—१४६८।

कहाँ—कि. वि. [सं. कुहः] किस जगह, किस स्थान पर।

संज्ञा पुं. [श्रनु.] पैदा होने वाले बच्चे का शब्द।

कहा—संशा पुं. [सं. कथन, प्रा. कहन, हिं कहना] कथन, बात, आज्ञा, उपदेश, कहना।

कि. वि. [सं. कथम्] कैसे, किस प्रकार के। उ.—रूप देखि तुम कहा भुलाने मीत भए वन-याते—२५२८।

सर्व. [सं. कः] क्या (ब्रज)। उ.—कलानिधान सकल गुन सागर, गुरु धौं कहा पढ़ाये (हो)—१-७। मुहा.—कहा हो—क्या है, तुलना में कुछ नहीं है, तुच्छ है। उ.—तुम जो प्यारी मोही लागत चंद्र

चकोर कहा री हो। सूरदास स्वामी इन बातन नागरि रिभई भारी हो—१५६६।

वि.-क्या।

कहाइ—िक. स. [हिं. कहाना] कहाकर, कहलाकर, प्रसिद्ध होकर। उ.—(क) बेज धरि-धरि हरयौ पर-धन साधु-साधु कहाइ—१-४५। (ख) हों कहाइ तेरी, अब कौन को कहाऊँ—१-१६५।

कहाउति—संज्ञा स्त्री [हिं. कहावत] कहावत । कहाउँ — किं. स. [हिं. कहाना] कहलाऊँ । उ.—(क) हों कहाइ तेरो, श्रव कोन को कहाऊँ — १-१६६ । (व) जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ गंगासुत न कहाऊँ — सारा. ७८०।

कहाउँगो—िक. स. [हं. कहाना] कहलाउँगा।
कहाए—िक. स. [हं. कहना] कहलाये, प्रसिद्ध हुए।
उ.— तुम मोसे अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए
(हो)। स्रदास-प्रभु भक्त-बछल तुम, पावन-नाम
कहाए (हो)—१-७।

कहाकही—संज्ञा स्त्री [हिं. कहना] वादिववाद।
कहानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] (१) कथा, श्राख्यािष्यका। (२) सूठी या गढ़ी बात, श्रद्भुत बात।
उ.—(क)—कुटिल कुचाल जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि
घर श्रानो। श्रव वह नवन बधू है बैठी ब्रज की
कहत कहानी— ३०८६। (ख)— सिंह रहै जंबुक
सरनागित देखी सुनी न श्रकथ कहानी—ए.
३४३ (२०)।

कहार—संशा पुं. [सं. कं.=जल + हार ऋथवा सं. स्कंध-भार] एक श्रूद्र जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का काम करती है।

कहाल-संज्ञा पुं. [देश.] एक बाजा।

कहावत — िक. स. [हिं. कहाना] कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं।
उ०—(क) कहावत ऐसे त्यागी दानि। चारि पदारथ दिए सुदामिंह अरु गुरु के सुत आनि — १-१३५।
(ल) इन्द्री जित हों कहावत हुतो, आपकों समुिक मन
माहिं ह्व रह्यों खीनो — द-१०। (ग) रूप-रितिक
लालची कहावत सो करनी कछु वैन मई — २५३७।
संशा स्त्री. [हिं. कहना] (१) अनुभव की बात जो
सुंदर ढंग से कही जाने के कारण प्रसिद्ध हो जाय।
(२) कही हुई बात, उक्ति। (३) मृत्यु का संदेश या
सूचना।

कहावे—िक. स. [हिं. कहाना] कहलाता है, प्रसिद्ध है। उ०—(क) साँचौ सो लिखहार कहावे। काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावे—१-१४२। (ख) कामिनी धीरज धरै को सो कहावे री—६२६। कहाहि—िक. स. [हिं. कहाना] कहलाते हैं। उ०—(क)

ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं। माता, तिनसौं साधुं कहाहिं—३-१३। (ख) स्याम हलधर सुत तुम्हारे श्रीर कौन कहाहिं—२६२८।

कहि—िक. स. [हिं. कहना] कहना, कहने में समर्थ होना।

मुहा०-कि परित-कह सकना, वर्णन कर सकना।

उ०—काहू के कुल तन न विचारत। श्रविगत की
गित कि न परित है, ब्याध श्रजामिल तारत—
१-१२। कि श्रायो — कह सका, मुँह से निकल
गया। उ०—करत विवस्त्र द्रुपद-तनया कों, सरन
सब्द कि श्रायो । पूजि श्रनंत कोटि वसनिन हरि
श्रिर कों गर्व गँवायों—१-१६०। कि न जाइ-कहा
नहीं जा सकता, वर्णन नहीं किया जा सकता। उ—
हरष श्रक र हदय न भाइ। नेम भूल्यो ध्यान स्याम
बलराम को हृदय श्रानन्द मुख कि न जाय-२५५६।

किह अहु — िक. स. [हिं. कहना] कहना जाकर बताना, कह देना। उ.—िवजै ग्रधोमुख लेन सूर प्रभु किह श्रह विपति हमारी—सा. उ. ३५।

कहिए, कहिए—कि. स. [हिं. कहना] वर्णन कीजिए, बताइए। उ.—सखा भीर ले पैठत घर में श्रापु खाइ तौ सहिए। मैं जब चली सामुहें पकरन, तब के गुन कहा कहिए—१०-३२२।

कहिबे — संशा स्त्री. [हिं. कहना] कथन, वचन । उ.— धिक तुम धिक या कहिबे ऊपर—१-२८४।

मुहा० — कहिबे के अनुमानें — केवल कहने के लिए। लिए, कहकर अपना मन बहला लेने के लिए। उ. — कहिये जो कुछ होइ सखीरी, कहिबे के अनुमानें। सुंदर स्थाम निकाई की सुख, नैना ही पे जाने — ७३०।

कि. स. – कहना, समाचार देना, बताना। उ. — ऊधी श्रीर कछू कहिबे की। मनमाने सोऊ कहि डारी पालागें हम सुनि सहिबे की —३००४।

कहिबो—कि. स. [हिं. कहना] कहना, बताना, वर्णन करना। उ.—(क) तुम सौं प्रेम कथा की कहिबो मनहु काटिबो घास—३३३६। (ख) हम पर हेतु किये रहिबो। या ब्रज को ज्यवहार सखा तुम हिर सौं सब कहिबो—३४१४। कहियत — कि. स. [हैं। कहना] (१) कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं। उ.—(क) वै रघुनाथ चतुर कहियत हैं, स्रांतरजामी सोइ। या भयभीत देखि लंका में, सीय जरी मित होइ—६-६६। (ख) स्रदास गोपिन हित-कारन कहियत माखन-चोर—४७७। (२) कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ—राम-कृष्ण अवतार मनोहर भक्तन के हित काज। सोई सार जगत में कहियत सुनो देव द्विजराज—सारा० ११३।

कहियाँ— कि. स. [हिं. कहना] कहते हैं, बताते हैं।

कि. वि. [हिं. कहँ] को, के लिए। उ.—रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महिमाँ। श्राए
श्रोप देन रघुकुल कों, श्रानंदनिधि सब कहियाँ—
६-१६।

फहिया—कि. वि. [सं. कुह] कब, किस दिन।
फहिये—कि. स. [हिं. कहना] बोलिए, वर्णन कीजिए।
उ.—मोसों वात सकुच तिज कहिये—१-१३५।
फहियो—कि. स. [हिं. कहना] कहना, बोलना,
बताना। उ—कह्यो मयत्रेय सो समुक्ताइ। यह दुम बिदुरहिं कहियो जाइ—३-४।

मुहा०--तब कहियो नाम (बलराम)—जो कुछ में कह रहा हूँ वह पूरा न हो तो मेरा नाम नहीं। ज.--मोहिं दुहाई नंद की, श्रवहों श्रावत स्याम। नाग नाथि ले श्राइहें, तव कहियो बलराम—५८६। कि. स. [हिं. कहना] कहेंगे, बतायेंगे। उ.— ऊधव कहा, हिर कहा जो ज्ञान। कहिहें तुम्हें मयत्रेय श्रान--३-४।

किहिने - कि. स. [हिं कहना] (१) कहूँगा, स्त्वना दूँगा। (२) शिकायत करूँगा। उ. --रोवत चले श्रीदामा घर कों, जसुमित श्रागे कहिहों जाइ --५३६।

कहीं—िक. वि. [हिं. कहाँ] (६) किसी ऐसी जगह जिसका पता न हो। (२) नहीं, कभी नहीं। (३) श्रगर, यदि, कदाचित। (४) बहुत बढ़कर।

कही--कि. स. स्त्री. [हि. वहना] वर्णन की, बतायी। उ.--में तो ऋपनी कही वड़ाई--१-२०७। संज्ञा स्त्री. -- कही हुई बात, उत्ति, कथन। उ--यह सुनि ग्वाल गये तहँ धाई। नंद महर की कही सुनायी-- १००४।

कहीन्यो—िक. स. [हिं. कहना] कहा है, वर्णन किया है। उ.—जो जस करें सो पावे तैसी, बेद-पुरान कहीन्यों —८-१५।

कहुँ — क्रि. वि. [हिं. कहूँ] कहीं, किसी स्थान पर। उ. — ग्रव तुम मोशैं करी ग्रजाचीं, जी वहुँ कर न पसारौं — १०-३७।

कहु—िक. वि. [हिं. कहो] कहो। उ — वग-बगुली श्रह गीध-गीधनी, त्राइ जनम लियो तैसो। उनहूँ कैँ गृह, सुत, दारा हैं उन्हें भेद कहु कैसो—२-१४।

कहूँ—िक. वि. [सं. कुह, हिं कहीं] कहीं, किसी स्थान पर। उ.—(क) हरि चरनारविंद तिज लागत अनत कहूँ तिनकी मित काँची—१-१८। (ख) मेरे लाड़िले हो तुम जाउन कहूँ—१०-२६५।

मुहा०—कहूँ की कहूँ—कहीं की कहीं, एक सीधे प्रसंग से हटाकर किसी अन्य दूर के संबंध में जोड़ लेना, दूर का अर्थ निकालना। उ.—कहा करों तुम बात कहूँ की कहूँ लगावित। तरुनिन इहें सोहात मोहिं यह कैसे भावित—१०७१।

कहे—संज्ञा पुं. [हिं. कहना] कहना, कथन। उ.—मेरे कहे में कोऊ नाहीं—११९५।

कि. स.—बोले, वर्णित किये। उ.—नव स्कंध नृप सौं कहे श्रीसुकदेव सुजान - १०-१।

कहैं—संज्ञा पुं. [हि. कहना] कहने से, बात मानकर।
उ.—कहैं तात के पंचवटी बन छाँड़ि चले रजधानी
—१०-१६६।

कि स — कहते हैं, बताते हैं। उ. — (क) चलत पंथ कोउ थाक्यों होइ। कहें दूरि, डिर मिरिहें सोइ — ३--१३। (ख) तनक सी बात कहें तनक तनिक रहे—१०--१५०। (ग) जिनकों मुख देखत दुख उपजत, तिनको राजा-राय कहै—१-५३।

कहेंगे—िक. स. [हिं. कहना] कहेंगे, बतायँगे। उ.— नंद सुनि मोहिं कहा कहैंगे देखि तरु दोउ त्राइ —३८७। कहैगी—कि. स. [हिं. कहना] कहेगा, बोलेगा, ग्रिम-प्राय प्रकट करेगा। उ.—कब हॅसि बात कहैगी मोसी जा छिब तें दुख दूरि हरें — १०-७६।

कहैहैं—कि स. [हिं. कहाना] कहलायँगे, प्रसिद्ध होंगे।

उ.—नंदहु तें ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रजनगरी

—१०-३१६।

कहेहों—कि. स. [हिं. कहाना] कहलाऊगा। उ.—(क) हृदय कठोर कुलिस तें मेरी, श्रव नहिं दीनदयाल कहेहों—७-५। (ख) काटि दसी सिर वीस भुजा तब दसरथ-सुत जु कहेहों—६-११३।

कहों — िक. स. [हिं कहना] कहूँ, वर्णन करूँ। उ.— कहा कहों हरि केतिक तारे पावन-पद परतंगी। सूर-दास, यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी —१-२१।

कहोंगो — कि. स. [हिं. कहना] कहूँगा, बताऊँगा। उ.—जब मोहि स्रंगद कुसल पूछिहै, कहा कहोंगो वाहि— ६-७५।

कही — कि. स. [हि. कहना] कहो, बतास्रो, समभास्रो। उ — सूर ऋधम की कही कौन गति, उदर भरे, परि सोए—१-५२।

कहींगे — कि. स. [हिं. कहना] बहकाश्रोगे, बातों में भुलाश्रोगे, बनावटी बातें करोगे। उ. — लिरकिन को तुम सब दिन भुठवत, मोसों कहा कहोंगे। मैया में माटी नहिं खाई, मुख देखें निबहौंगे — १०-२५३।

कहाउ — कि. स. [हिं. कहना] कहा। उ. — नृपति कहाउ मेरे गृह चिलिये करो कृतारथ मोय — सारा. ८००।

कहाँ — कि. स. [हं. वहना] 'कहना' किया के भूत-कालिक रूप 'कहा' का अजभाषा का रूप, कहा, कहे। उ.—(क) का न कियो जन-हित जदुराई। प्रथम कहाँ। जो बचन द्यारत तिहिं बस गोकुल गाय चराई—१-६। (ख) हरि कहाँ।—जज्ञ करत तहँ बाम्हन— ८००। (ग) सूरदास प्रभु अतुलित महिमा जो कछु कहाँ। सो थोड़ा—१० उ.-५१। संज्ञा पुं. — कहा, कथन, बात। उ.—(क) अजहूँ चेति, कहाँ। करि मेरों, कहत पसारे बाहीं—१-२६६। (ख) बरिज रहे सब, कह्यों न मानत, करि-करि जतन उड़ात—२—२४। (ग) तिन तो कह्यों न कीन्हों कानी। तब तिज चली बिरह अञ्चलानी —८००।

कॉइयाँ—वि. [श्रनु० काँव-काँव] जो बहुत चालाकी दिखाये, धूर्त ।

काँई — ग्रन्य [सं किम्] क्यों। सर्व [हिं. काहि] किसे, किसको।

काँकर — संज्ञा पुं. [सं. कर्कर] कंकड़। काँकरी — संज्ञा स्त्री. [हिं. काँकर] कंकड़ी।

काँ काँ—संज्ञा. पुं. [अनु.] कौए की बोली। उ.— घरी इक सजन-कुरुँव मिलि बैठैं, रुदन बिलाप कराहीं। जैसें काग काग के मूऐं काँ काँ कि उद्गि जाहीं—१-३१६।

कांचा — संज्ञा. स्त्री. [सं.] इच्छा, चाह। काँची — वि. [सं. कांचिन] इच्छा या चाहरखनेवाला, श्रमिलाषी।

काँख—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष] बगता। काँखना—क्रि. श्र. [श्रनु.] कराहना। काँखासोती—संज्ञा स्त्री. [हि. काँख+सं. श्रेन, प्रा.. सोत] जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का दंग।

काँखी — संज्ञा पुं. [सं. कांदी] चाहनेवाला, इच्छा रखनेवाला। उ. — सुक भागवत प्रगट करि गांधी कल्लू न दु।वेधा राखी। स्रदास ब्रजनारि संग हरि मुँगी करिं नहीं कोऊ काँखी — १८५६।

काँगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कँगनी] छोटा कंकण। काँगहो—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंघी] कंघी, छोटा कंघा। काँगुरा—संज्ञा पुं. [हिं. कँगूरा] (१) शिखर, चोटी। (२) बुर्ज।

काँच—सज्ञा पुं. (सं. काँच) एक प्रकार का शीशा, पारदर्शक शीशा। उ. — (क) कंचन-मिन खोलि डारि, काँन गर बँधाऊँ — १-१६६। (ख) स्रदास कंचन श्रक काँचिह एक हिंधगा पिरोयो — १-४३।

संज्ञा स्त्री. [सं. कन] धोती का पीछे खोंसा जानेवाला भाग।

काँचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना । (२) चंपा । (३) धत्रा ।

काँचरी, काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं. कंचुलिका] (१) साँप की केंचुली। (२) चोली, कंचुकी।

काँचा - वि. [हिं. कच्चा] (१) जो पका न हो, कचा। (२) दुर्बल, ग्रस्थिर।

काँची—वि. स्त्री. [हैं. पुं. कचा] कची, त्रपवन। उ.— मृदु पद धरत धरिन ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै ले भिर भिरे। पुलिकत सुमुखी भई स्थाम-रस ज्यों जल मैं काँची गागरि गरि —१०-१२०।

मुहा० — कॉंची मित — खोटी समस, कची बुद्धि। उ. — हरिचरनारविंद तिज लागत श्रनत कहूँ तिनकी मित कॉंची — १-१८।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करधनी। (२) गुंजा, घुँघची। काँचुरी, काँचुली—संज्ञा. स्त्री. [सं. वंचुलिका, हिं. काँचली] साँप की केंचुल (केंचुली)। उ.—को है सुनत कहत कासों हो क.न कथा अनुसारी। सूर स्याम सँग जात भयो मन अहि काँचुली उतारी—३२६१।

काँचे—वि. [हिं. कचा] कचा, दुर्बल, जो किसी विषय

में दढ़ न हो, ग्रस्थर। उ.—ऊधौ स्याम सखा तुम
साँचे। फिर करि लियो स्वाँग वीच हिं ते वैसे हि लागत
काँचे।

मुहा.—काँचे मन—मन में दृढ़ता न होना। संज्ञा पुं. [सं. कांच] काँच, शीशा। उ.— प्रम-योग रस कथा कहो कंचन की काँचे—३४४३।

काँचे — संज्ञा पुं. [सं. काँच] काँच, शीशा। उ. — यह ब्रत घरे लोक में बिचरे, सम करि गने महामिन काँचे — २-११।

काँची—वि. [हिं. कचा, काँचा] (१) कचा, अपक्व। (२) श्रद्ध, दुर्बल, अस्थिर। उ.—प्रमु तेरी वचन भरोसी साँची। पोषन भरन विसंभर साहब, जो कलपे सो काँची—१-३२। (३) जो मजबूत या पका न हो। उ.—जब तें आँगन खेलत देख्यो में जम्रदा की पूत री। तब तें गृह सों नानी टूट्यो जैसे काँची सूत री—१०-१३६। (४) जो औटाया या पकाया न गया हो, ताजा दुहा हुआ। उ.—काँची दूध पियावति पचि पचि देत न माखन रोटी—१०-१७५।

काँछना—कि. स. [हिं. काछना] सँवारना, पहनना। काँछा—संज्ञा स्त्री. [सं. कांचा] इच्छा, चाह। काँजी — संज्ञा स्त्री. [सं. कांजिक] (१) पानी में पिसी राई का घोल जो दो तीन दिन रखने से खट्टा हो गया हो। (२) मट्टा, छाँछ।

काँट-संज्ञा पुं. [हिं. काँटा] काँटा।

वि. स्त्री.—कटीली, प्रभावित करनेवाली, मुग्ध करनेवाली। उ.—भौहें काँट वटीलियाँ सखि वस कीन्ही बिन मोल—१४६३।

काँटा—संज्ञा पुं. [सं. कंटक] (१) पेड़-पौधों के नुकीले ग्रंकुर, कंटक। (२) नुकीली वस्तु। (३) तराजू की सुई। (४) नाक में पहनने की कील, लौंग। (४) खटकनेवाली बात।

काँटी—संज्ञा स्त्री, [हिं. काँटा का ग्राल्प.] (१) कटिया, कील। (२) छोटी तराज्। (३) फुकी हुई कील, ग्रॅंकुड़ी।

काँठा—संज्ञा पुं. [सं. कंठ] (१) गला। (२) तोते के गले की गोल रेखा। (३) किनारा, तट। (४) बगल।

कांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँस, ईख म्रादि का पोर।
(२) वृत्त का तना। (३) शाखा, डंठल। (४)
गुच्छा। (४) धनुष के बीच का मोटा भाग। (६)
कार्य का भाग। (७) प्रंथ का वह भाग जिसमें एक
विषय पूरा हो। (६) समूह। (१) मूठी प्रशंसा।
(१०) निर्जन स्थान। (११) घटना।

वि.— बुरा।

काँड़ना—िक स. [सं. कंडन (किडि=भूसी श्रलग करना] (१) रोंदना, कुचलना। (२) कूट कर चावल की भूसी श्रलग करना। (३) मारना पीटना।

काँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड] (१) धान कूटने का गड्ढा। (२) छड़, लट्टा, डंठल।

कांत - संज्ञा पुं० [सं०] (१) पति। (२) श्री कृष्ण का एक नाम। (३) चंद्रमा। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) वसंत ऋतु।

कांतलौह-संज्ञा पुं० [सं०] चुंबक।

कांत।—संशा पुं० [सं०] (१) सुन्दर स्त्री। (२. विवाहित स्त्री, पत्नी।

कांतार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भयानक स्थान। (२) गहन वन। (३) खेद। (४) दरार। (४) बाँस।

काँति, कांति—संज्ञा स्त्री०[सं०] (१) प्रकाश, त्रामा, तेज। उ०—वदन काँति विलोकि सोमा सकै सूर न बरिन —३५१। (२) शोभा, छवि। उ०—गोरे माल विंदु बंदन मनु इन्दु प्रात-रिव कांति ७०४।

कांतिमान्—वि० [सं० कांतिमत्] (१) क'ति या चमक वाला। (२) सुन्दर।

कांतिसार—संज्ञा पुं० [सं० कांत] एक प्रकार का बढ़िया लोहा।

काँती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती, हिं. काती] (१) बिच्छू का डंक। (२) कैंची, कतरनी। (३) छोटी तलवार। (४) छुरी। उ०—कोउ ब्रज बाँचत नाहिन पाती। कत लिखि लिखि पठवत नेंदनंदन कठिन बिरह की काँती—२६८०।

काँथरि— संज्ञा स्त्री । [सं ० कंथा] गुदड़ी, कथरी । काँदना—कि ०स० [सं ० कंदन=चिल्लाना] रोना, चिल्लाना। काँदन, काँदो — संज्ञा पुं० [सं ० कदेम, पा० कहम] कीच, कीचड़।

काँध — संज्ञा पुं. [हिं. कंधा] कंधा। उ.-(क) काँध कमरिया हाथ लकुटिया, विहरत बछरिन साथ — ४८७। (ख) — वहत न बनै काँध कामरि छिब बन गैयन को घरन — ३२७७। (ग) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजे—७४१ सारा.।

व धिना-कि. स. [हि. काँघ] (१) उठाना, सम्हालना। (२) ठानना, मचना। (३) सहन करना (४) स्वीकार करना।

काँधर—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. व गह] कृष्ण। कोधा—कि. स. [हिं. काँधना] (१) उठाया, सम्हाला। (२) स्वीकार किया।

संज्ञा पुं. [हिं. कंघा] कंघा।

काँधियतु—िक. स. [हिं. काँधना] (युद्ध) ठानते या मचाते हैं।

काँधी—कि. स. [हिं. काँधन] मानी, स्वीकार की।
उ.—जाकी बात कही तुम हम सों सोधों कहों को
काँधी। तेरो कहो सो पवन भूस भयो बहो जात ज्यों
श्राँधी—३०२१।

काँधे, काँधें - संज्ञा पुं. [सं. स्वध, प्रा. खंभ] कंधा, कंधे पर। उ.—(क) तिहिं सौं भरत कल्लू निहं कहा।

सुख-ग्रासन काँचे पर गह्यौ—५-३। (ख) ग्वाल के काँचे चढ़े तब लिए छींके उतारि –१०-२=६। (ग) ग्रोर बहुत काँचरि दिध-माखन ग्रहिरिन काँचे जोरि—५८३। (घ) ग्वाल-रूप इक खेलत हो सँग लै गयौ काँचे डारि—६०४।

कि. स. [हिं. काँधना] (१) उठाये, सम्हाले। (२) स्वीकार करे।

काँधो—क्रि. स. [हिं. काँधना] (१) (युद्ध) ठानना, संग्राम करना। (२) स्वीकार करना, ग्रंगीकार करना।

कॉन – संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, हिं. कान्ह] कृष्ण।
कॉप – संज्ञा पुं. [सं. कंपा] (१) बॉस की लचीली
तीली। (२) कान में पहनने का एक गहना,
करनफूल।

काँपत—िक. स. [हिं. काँपना] डर से काँपते हैं, थरीते हैं। उ.—(क) उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ श्रकुलाइ। सेष सहसकन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ—१०-६४। (ख) मंदर डरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जिन मथन करै—१०-१४३।

काँपि - कि. स. [हिं. कॉपना] थरथरा कर, काँपकर। उ. - पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि देखि सब साँपि अवसान भूले - ५५२।

काँपन— कि. स. [हि. काँपना] हिलने या थरथराने (लगी)। उ.-काँपन लागी घरा पाप तें ताड़ित लिख जदुराई। श्रापुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकें पाई-१८-२०७।

काँपना—कि. सं. [सं. कंपन] (१) हिलना, थरथराना। (२) डर से थरीना।(३) डरना।

काँपा—कि. स. [हिं. काँपना] हिला हुला, थरथराया। काँपी—कि. स. स्त्री. [हिं. काँपना] (१) हिल ने हुल ने लगी। (२) थर्राने लगी, डर से काँपने लगी। उ.—काँपी भूमि कहा स्त्रब हुँ है, सुमिरत नाम मुरारि — ६-१५८।

काँपें— कि. स. [हि. काँपना] (१) हिलता-इलता है, थर्राता है। उ.—(क) चितवनि ललित लकुटलासा लट काँपे अलक तरंग—ए. ३२५। (ख) खालनि देखिमनहिं रिस काँपें—५८५। काँपों — कि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] डर से काँपता था, थर्शता था। उ.—हों डरपों, काँपों ग्रह रावों, कोउ नहिं धीर धराऊ। थरिस गयो नहिं भागि सकों, वे भागे जात श्रगाऊ—४८१।

काँप्यो—कि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] (१) काँपा, डरा, भयभीत हुआ, थरीया । उ.—(क) काल बली तें सब जग काँप्यो, ब्रह्मादित हूँ रोए—१-५२। (ख) उर काँप्यो तन पुलिक पसीज्यों विसरि गये मुख-बैन—७४६।

काँय काँय, काँव काँव—संज्ञा. पुं. [श्रानु.] कौए का शब्द।

काँवर—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँध + स्त्राव (प्रत्य.)] बहँगी जिसके दोनों सिरों पर लंबे छींके होते हैं। उ.—धेनु चरावन चत्ते स्थामधन ग्वाल मंडली जोर। हलधर संग छाक भिर काँवर करत कुलाहल सोर —४७१ सारा.।

काँवरा—िव. [पं. कमला = पागल] घवराया हुन्ना, हका-बक्का।

काँविर—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँवर] बहुँगी, जिनके सिरे पर सामान ले जाने के लिए लंबे छींके होते हैं। उ.— (क) सहस सकट भिर कमल चलाये। ...। श्रीर बहुत काँविर दिध माखन, श्रहिरिन काँधे जोरि। नृप के हाथ पत्र यह दीजी चिनतो कीजी मोरि ५८३। (ख) श्रोदन भोजन दे दिध काँविर भूव लगे तें खेहों-४१२।

काँवरिया—संज्ञा पुं. [हिं. काँवरि] बहँगी ले जानेवाला। काँवाँरथी—संज्ञा पुं. [सं. वामार्थां] किसी कामना से तीर्थ-यात्रा करनेवाला।

काँस—संज्ञा [सं. काश] एक प्रकार की घास । उ.-(क) लटिक जात जिर-जिर द्रम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस ताल-५९४। (ख) डासन काँस कामरी स्रोढ़न बैठन गोप सभा ही—२२७५।

काँसा, काँस्य — हंशा पुं. [सं. कांस्य] ताँबे और जस्ते के मिश्रण से बनी एक धातु।

का-प्रत्य. [सं. प्रत्य. क] संबंध या षष्टी का चिन्ह या विभक्ति।

सर्व. [सं. कः] (१) क्या, कैसा। उ.—(क) का न कियो जन-हित जदुराई—१-६। (ख) देखों धों का रस चरनिन में मुख मेलत करि श्रारित —१०-६४। (२) व्रजभाषा में 'किस' या 'कौन' का निभक्ति लगने से पूर्व रूप। जैसे काको, कासों। काइफल—संज्ञा पुं. [सं. कटफल, हिं. कायफल] एक वृत्त जिसकी छाल दवा के काम श्राती है। उ.— कूट काइफल सोंठ चिरता कटजीरा कहुँ देखत—११०८। काई—संज्ञा स्त्री. [सं. कावार](१) जल पर जमनेवाली एक प्रकार की महीन घास जो हलके हरे रंग की होती है। (२) मैला।

काऊ — कि. वि. [सं. कदा] कभी।

सर्व [सं. कः] (१) कोई। (२) कुछ।
काक—संज्ञा पुं. [स.] (१) कोआ। (२) लँगड़ा।
काकगोलक—संज्ञा पुं. [स.] कोए की आँख की
पुतली जो केवल एक होती है और दोनों आँखों में
आती-जाती रहती है।

काकतालीय — वि. [सं] संयोगवश घटित होनेवाला। काकदंत—संज्ञा पुं. [सं.] कौए के दाँत की तरह अविश्वसनीय बात।

काकपत्त, काकपच्छ—संज्ञा पुं. [सं. काकपत्त] बालों के पट्टे जो दोनों ग्रोर कानों ग्रोर कनपटियों के उपर रहते हैं, जुरुफ, कुन्ना। उ. — (क) किट तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस—६—२०। (ख) कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, ग्रांग-ग्रांग दोउ बीर—६—२६।

काकपद, काकपाद - संज्ञापुं. [सं.] एक चिन्ह जो छूटे हुए अंश का स्थान बताने के जिए जगाया जाता है।

काकपाली संज्ञा स्त्री. [सं.] कोयल। काकबंध्या— संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्त्री जो वे वल एक संतान उत्पन्न करे।

काक्भुशुं डि— सज्ञा पुं, [सं.] राम का भक्त एक ब्राह्मण जो लोमश ऋषि के शाप से कौन्ना हो गया था।

काकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कटी] कंकड़ी। ह काकली—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) कोमल या मधुर ध्वनि। (२) गुंजा। काका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घुँघची, (२) मकोय। संज्ञा पुं. [फ़ा,काका=बड़ा भाई] बाप का भाई, चाचा।

काकिगा, काकिनी—संशा स्शी. [सं.](१) गुंजा, घुँ बची।(२) कौड़ी।

काकी—सर्व. स्त्री. [हिं. का + की (प्रत्य.)] किसकी।
(क) काकी ध्वजा देठि किप किलिकिहि, किहिं
भय दुरजन डिर्हे —१-२६। उ.—(ख) तिन
पूछ्यों तू काकी धी है—४-१२ (ग) बूभत स्याम
कीन तू गोरी। कहाँ रहत काकी है बेटी देखी
नहीं वहूँ ब्रज खोरी—६७३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. काका] चाचा की पत्नी, चाची ।

काकु—सज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यंग्य, ताना, चुटीली बात। (२) एक ग्रलंकार जिसमें शब्दों की ध्वनि से ही ग्रथं समका जाय।

काकुल – संज्ञा पुं. [फा.] कनपटी पर खटकते हुए लंबे बाल, जुरुफें।

काके — सर्व. [हि. का + के (प्रत्य॰)] किसके। उ.— काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं ? — १-२९।

काकें—सर्व. [सं. कः, हि. का (कौन)+कें (विभक्ति)] किसके, किसके यहाँ। उ.—काकें सत्रु जन्म लीन्यो है, बूकी मती बुलाई — १८-४।

काकोद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौए का पेट।

काको सर्व. [हिं. का न को (प्रत्य.)] किसका, किसको । उ. काको बदन निहारि द्रौपदी दीन दुवी संभरिहै — १-२६।

काख—संज्ञा स्त्री. [सं. कत्त, हि. काँख] काँख, बगल। उ.— त्र्यातम ब्रह्म लखावत डोलत घर घर ब्यापक जोई। चापे काँख फिरत निर्मुन गुन इहाँ गाहक नहिं कोई—३०२२।

काखी—संशा पुं. [सं. काँची, हिं. काँखी] चाहनेवाला, इच्छुक। उ.—सुक भागवत प्रगट करि गायो कछू न दुविधा राखी। स्रदास ब्रजनारि संग हरि बाकी रहो न कोऊ काखी –१८५६।

काख्यी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांचा] इच्छा, चाह । उ.— फागु रंग करि हरि रस राख्यो। रह्यो न मन जुवतिन के काख्यो— २४५६।

काग - संज्ञा पुं. [सं. काक] कौन्रा, वायस।
कागज - संज्ञा पुं. [म्र. कागज़] (१)सन, रुई म्रादि सं बना
हुम्रा लिखने का पत्र । उ.—तनु जोवन ऐसे चिल
जैहे जनु फागुन की होरी। भीजि विनिध जाई छन
भीतर ज्यों कागज की चोली री — २०४०। (२)
समाचार पत्र । (३) लेख। (४) प्रमाणपत्र ।

कागद — संज्ञा पुं. [हिं. कागज] कागज। — उ. — (क) चित्रगुप्त जमद्वार लिखत हैं, मेरे पातक भारि। तिनहुँ चाहि करी सुनि ऋौगुन, कागद दीन्हें डारि — १-१६७। (ख) विचारत ही लागे दिन जान। सजत देह, कागद तैं कोमल, किहिं बिधि राखें प्रान — १-३०४।

कागभुसुंड, कागभुसुंडी—संशा पुं. [सं. काकभुशुंडि] एक ब्राह्मण जो शाप से कौस्रा हो गया था।

कागर—संज्ञा पुं० श्रि० कागज़] (१) कागज । उ.— (क) तुम्हरे देस कागर-मित खूटी । प्यास अरु नींद गई सब हरि के बिना बिरह तन टूटी । (ख) रित के समाचार तिखिपठए सुभग कलेवर कागर—२८२८।

मुहा.—चढ़ावै कागर—कागज पर लिख ले, टाँक लें । उ.—श्रव तुम नाम गहौ मन नागर । जातें काल श्रिगिनि तें बाँचौ, सदा रहौ सुब-सागर । मारि न सकै, विघन नहिं श्रासे, जम न चढ़ावें कागर—१-६१ । नाव कागर की—शीघ दूब जाने या नष्ट हो जानेवाली चीज, श्रिधक समय तक न टिकनेवाली चीज । उ.—जेइ निर्णुन गुनहीन गनेगौ सुनि सुंदरि श्रलसात । दीरघु नदी नाउ कागर की को देखों चढ़ि जात—३२८२ ।

(२) पिचयों के पर, पंख। (३) प्रमाणपत्र।
(४)दस्तावेज, बहीखाता। उ.—ब्याध, गीध, गनिका
जिहिं कागर, हो तिहिं चिठिन चढायो — १-१६३।
कागरी — वि० [हिं० कागर = कागज] तुच्छ, हीन।
कागा— संज्ञा पुं० [हिं० काग] कोत्रा।
कागरबासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागा + वाही] सबेरे के समय छानी जानेवाली भाँग।

कागा-रोल—संज्ञा पुं० [हिं० काग = कौ ग्रा + रौल = रोर = शोर] कौ ग्रों की काँव-काँव की तरह होने वाला शोर।

कागासुर—संज्ञा पुं० [सं.काक + श्रस्र] कंस के एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ० — तृनावर्त-से दूत पठाये। ता पाछे कागासुर धाये—५२१।

कागौर—संज्ञा पुं० [सं० काकविता] श्राद्ध में भोजन का वह भाग जो कौए के लिए निकाला जाता है।

काच—संज्ञा पुं० [हिं० काँच] शीशा। उ० —काच पोत गिरि जाइ नंदघर गथौ न पूजै —११२७। वि० [हिं० व चा] (१) जो पका न हो, कचा।

(२) जिसका मन पक्का न हो, कायर।

काचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचा, कचरी] (१) कचे फल। पिसे हुए चावल या साबूदाने के सुखाये हुए दुकड़े जो घी में तलकर खाये जाते हैं। उ०—पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी िठौरी—३६६। संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुिलका, हिं० काँचली] साँप की केंचुल। उ०—उयौं भुवंग काचरी विसरात फिरिनहिं ताहि निहारत। तैसेहिं जाइ मिने इकटक है डरत लाज निरवारत—पृ० ३२१।

काचा — वि० [हिं० कचा] (१) कचा। (२) ग्रस्थिर, चंचल। (३) जो सूठा हो, जो नष्ट हो जाय, मिथ्या, ग्रनित्य।

वाची—वि० स्त्रें। [हिं० पुं० कचा] (१) कची, जो पकी नहो। (२ जिसका व्रत या निश्चय दृढ़ नहों, भिक्त या प्रीति में जो कची हो। उ०—(क) दीन वानी स्रवन सुनि सुनि द्रष्ट परम कुपाल। सूर एक हु अंग न काँची धन्य धनि अजवाल— पृ० ३४२-१०। (स) सूर एक हु अंग न काँची में देखी टकटोरी—३४६८। (३) सूठी, बनावटी, टालमटोल को, हँसने योग्य। उ०—कहे बनै छाँड़ी चतुराई वात नहीं यह काची। सूरदास राधिका स्यानी रूपरासि-रसलानी—१४३८।

काचे—वि० [हिं०कचा] (१) कचे, श्रकुशल, नौसिखिया, श्रद्ध । उ.—भले ही जु जाने लाल श्ररगजे भीने माल केसरि तिलक भाल मैंन मंत्र काचे—२००३ । (२) कच्चे, शीघ्र टूट जानेवाले । उ०— प्रेम न

रुक्त हमारे बूते। किहि गयंद बाँध्यो सुन मधुकर पद्यनाल के काचे सूते—३३०५।

काछ — संशा पु० [सं० कच्च, प्रा० कच्छ] (१) धोती का भाग जो पेडू से जाँघ के कुछ नीचे तक रहता है। उ०—(क) सोई हिर काँधे कामिर, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करें—४५३। (ख) किट तट काछ विराजई पीताबंर छिब देत—२३५०। (२) पेड़ से जाँघ के कुछ नीचे तक का भाग।

काछत—कि० स० [हिं० काछना] स्वाँग बनाते हैं, वेष धरते हैं, रूप धरते हैं, चाल चलते हैं। उ०—स्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मानत तोऊ हैं। सूर स्याम जितने रंग काछत जुनती-जन-मन के गोऊ हैं—११५६।

काछना—कि॰ स॰ [कचा, प्रा॰ कच्छ] (१) धोती, काँछनी त्रादि पहनना। (२) बनाना, सँवारना। (३) वेश धरना, स्वाँग बनाना।

काञ्जनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] (१) जँची कसी धोती, कछनी। उ० — काछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड—१-३०७। (२) मूर्तियों का चुन्नटदार पहनावा जो प्रायः जाँ विए के ऊपर पहना जाता है।

काछा—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] धोती जो कसकर पहनी जाय ग्रौर जिसकी दोनों लाँगों को ऊपर खोंसा जाय, कछनी।

काछि—कि॰ स॰ [सं॰ कत्ता, प्रा॰ कच्छ, हि॰ कच्छ] बन-ठनकर, साज-सँवार कर। उ०— क) माया को किट फेटाँ बाँध्यो, लोम-तिलक दियो माल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल-सुधि नहिं काल—१-१४२। (ख) कीन्हें स्वाँग जिते जाने में, एक लो न बच्यो। सोधि सकल गुन काछि दिखायो, अंतर हो जो सच्यो —१-१७४।

काछो—संशा पुं० [सं० कच्छ = जलप्राय भूमि] तरकारी बोने-बेचने वाली एक जाति।

काछू—संज्ञा पुं० [हिं० कछुग्रा] कछुग्रा। काछ्रे—िकि० स० [सं० कचा, पा० कच्छ, हिं० काछना] बनाये हुये, सँवारे हुए, पहने हुये। उ०—तीन्यो पन में श्रोर निवाहे इहै स्वाँग कों काछे। सूरदास कीं यहै बड़ो दुख, परति सबनि के पाछे — १-१३६।

कि० वि० सिं० कत्त, पा० कच्छ] पास, निकर, समीप। उ०—ताह कहाँ सुख दे चिता हरि कौ मैं त्रावित हों पाछे। वैसिहं फिरी सूर के प्रभु पे जहाँ कुंज गृह काछे।

काछ्यों — कि. स. [हिं. काछना] (रूप) धारण किया, बनाया। उ.—तन केसी है बर बपु काछ्यो ले गयो पीठि चढ़ाइ। उतिर परे हिर ता ऊपर तें कीन्हों युद्ध श्रघाइ—२३७७।

काज—संज्ञा. पुं. [सं. कार्य, प्रा. कज्ज]। (१) कार्य, काम, कृत्य, सेवाकार्य। उ.—पाइँ घो मंदिर पग धारे काज देव के कीन्हे—१०-२६०।

मुहा०—काज विगारत — काम बिगड़ता है, नष्ट करता है। उ.—हानी लोभ करत नहिं कबहूँ, लोभ विगारत काज। काज विगारयो — काम या मामला बिगाड़ दिया; सब चौपट कर दिया। उ.—रसना हूँ को कार ज सारयो। में यों अपनों काम गिगारयो — ४-१२। काज सँत्रारे — काम बना दिया। उ.— क) कहा गुन बरनो स्याम तिहारे। कुविजा, विदुर, दीन दिज, गिन का सब के काज सँवारे —१-२६। (ख) जो पर-पदुम रमत पांडव-दल दूत भये सब काज सँवारे—१-६४।

(२) व्यवसाय, घंघा। (३) अर्थ, उद्देश्य, प्रयो-जन। उ.—(क) नृप कह्यौ सुरिन कें हेतु मैं जग्य कियौ इंद्र मम अर्थ किहिं काज लीन्हौ—४-११। (ख) गोगात्तिं राखौ मधुगन जात। लाज गये कछु काज न सिरहै विकुरत नंद के तात—२५३१।

मुहा०—काज सरत—उद्देश्य पूरा हो, अर्थ सिद्ध हो। उ.—अविहित बाद-विवाद सकल मत इन लगि भेत्र घरत। इहिं बिधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कळू न काज सरत—१-५५। (इनहीं, तुमहीं) काज— (इनके, तुम्हारे) लिए, हेतु, निमित्त। उ.—(क) गाउँ तजों कहुँ जाउँ निक्ति ले, इनहीं काज पराउँ —५२८। (ख) पूछो जाइ तात सों बात। में बित जाउँ मुखारविंद की, तुमहीं काज कंस अनुतात— ५३०। काज परचौ—काम पड़ा, मतलब अटका, प्रयोजन पड़ा, श्रावश्यकता हुई। उ.—बोति-बोति सुत-स्वजन-भित्रजन, लीन्हो सुजस सुहायो। पर्यो जु काज श्रंत की बिरियाँ तिनहु न श्रानि छुड़ायो —२.३०।

काजर—संज्ञा. पुं. [सं. कज्जल हिं. काजल] काजल जो स्रांख में लग या जाता है, कालोंद्र। उ.—कुमकुम को लेप मेटि, काजर मुख ल्या कॅ — १-१६६।

वि.—क.ला । उ.—ग्रघासुर मुख पैठ निकसे बाल-बच्छ छुइ।ई। लिख्यो काजर नाग द्वारें स्याम देखि डराई—४६८।

काजरी — संज्ञा स्त्री. [सं. व.जजली] वह गाय जिसकी स्रांखों पर काले रंग का घेरा हो।

काजन — संज्ञा पुं. [सं. वजनत] दीपक के धुएँ की कालिख। उ.—वह मथुरा काजत की कोठरि जे स्त्रावहिं ते कारे।

काजा - संशा पुं. [हिं. काज] काम, कृत्य।

मुहा.—(उन) काजा—(उनके) लिए (उनके) हेतु या निमित्त। उ.—तातें सकुनत हों उन काजा। बालक सुनत होति जिय लाजा—२४५९।

काजो—संज्ञा पुं. [ग्र. क ज़] मुसलमानी न्याय धीश। उ.—सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं ताको कहा करै काजो—२६७८।

का जू भो जू — वि. [हिं काज + भाग] जो श्रधिक समय तक काम न श्रा सके।

काजे—संज्ञा पुं. सिव [हिं. काज] (काम) के लिए, (काम) के हेतु या निमित्त । 3 — इन लोभी नैनन के काजे परवस भई जो रहीं — २७७४।

काज — संशा पुं. सिन. [हिं. काज] (काज) के लिए, (काम) के हेता। उ. — (क) ऐनो को करी ग्रह भनत काजें। जैनो जगदीस जिय घरी लाजें — १-५। (ख) नानत त्रेतोकनाथ मालन के क जै — १० १४६। (ग) तेरे ही काजें गोपाल, सुनहु ल डिले लाज, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ — १०-२६५।

काट—िक. स. [सं. कर्तन, पा. कटन, हिं. काटना] काटना। उ.—हाथ-पाई बहुतिन के काट। स्राइ नवायी सिवहिं लत्ताट—४-५।

संज्ञा स्त्री. [हिं, काटना] (१) काटने की किया। (२) काटने का ढंग, तराश। (२) घाव। (४) छल-कपट, चालवाजी।

वि.—[हिं. काटा] तिरछी, टेढ़ी, कटीली, तेज, काट करनेवाली। उ.—भौहें काट कटीलियाँ मोहिं मोल लई विन मोल— ८६३।

काट-कपट — संशास्त्री. [हिं काटना + कपटना] छल-

काटत—िक. स. [हिं. वाटना] दूर करते (हो), नष्ट करते (हो), मिटाते (हो)। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत—१-१०७।

काटन—िक. स. [सं. कत्तंन, प्रा. कट्टन, हिं. काटना]
(१) काटने के लिए टुकड़े करना। उ.—काटन दें
दस सीस बीस भुज अपनी कृत येऊ जो जानहि—
६-६१।(२) दूर करने या मिटाने के लिए। उ.—
जिहिं जिहिं जोनि जन्म धारयी, बहु जोरयी अघ की भार। तिहिं काटन की समस्य हर की तीछन नाम कुठार—६८।

संज्ञा पुं. - कतरन।

काटना—िक. स. [सं. कत्तीन, प्रा. वष्टन] (१) टुकड़े करना, श्रलग करना। (२) चूरा करना। (३) घाव करना। (४) भाग निकालना। (४) मार डालना। (६) कतरना। (७) नण्ट करना, दूर करना, मिटाना। (८) समय बिताना। (१) रास्ता तय करना। (१०) श्रनुचित या श्रमत्य ढंग से ले लेना। (११) मिटाना। (१२) डसना। (१३) किसी जीव का सामने से निकल जाना। (१४) (किसी की बात या राय का) खंडन करना। (१४) हुरा लगना, कष्ट पहुँचाना।

काटर—िव. [सं. कठोर] (१) कड़ा, कठिन। (२) कट्टर। (३) काटनेवाला।

काटि—िक. स. [हिं. काटना] (१) काट कर, खंड करके। उ.—ग्रानँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी—१-३६। (२) किसी जीव का सामने से निकल जाना। उ.—मंजारी गई काटि बाट, निकसत तब बाइन—५८६।

काटिबो-कि. स. [हिं. कादना] काटना, छीलना।

उ.—तुमसौं प्रोम-कथा को कहिबो मनहु काटिबो घास —३३३६।

काटो — कि. स. भूत. [हिं. काटना] (१) काट ली।

उ.—स्रदास-प्रभु इक पितनी ब्रत, काटी नाक गई
लिसियाई— ६-५६ । (२) दुकड़े-दुकड़े कर दिया,
चूर-चूर कर दिया। उ.— जोजन-विस्तार पिला पवनसुत उपाटी। किंकर किर बान लच्छ श्रंतिरच्छ काटी
— ६-६६।

काटू—वि. [हिं. काटना] (१) काटनेवाला। (२) डरावना, भयानक।

काटे — कि॰ स॰ [हिं. काटना] धड़ से श्रवाग कर दिये, दुकड़े किये। उ० — जिहिं बल रावन के सिर काटे कियो विभीषन नृपति निदान —१०-१२७।

काटे—कि॰ स॰ [हिं॰ काटना] (१) काटता है। उ०-जद्यपि मलय वृद्ध जड़ काटे, कर कुठार पकरे। तऊ सुभाव न सीतल छाँड़े, रिपु-तन-ताप हरे—१-११७। (२) नण्ट करता है, मिटाता है। उ०—जाको नाम लेत भ्रम छूटे, कर्म-पंद सब काटे—३४६।

काटो — कि॰ स॰ [हिं॰ काटना] मुक्त करो, छुड़ाओ, छुँटो। उ॰ — कर जोरि सूर विनती करे, सुनहुन हो रकुमिनि-रवन। काटो न पंद मो ग्रंध के, ग्रव विलंब कारन कवन — १-१८०।

काट्यों—कि० स० भूत० [हिं० काटना] (१) काटा, मुक्ति दी, (बंधन से) छुड़ाया। उ०—हा करनामय कुंजर टेरचों, रह्यों नहीं बल थाकों। लागि पुकार तुरत छुटकायों, काट्यों बंधन ताकों—१-११३। (२) दूर किया, नष्ट किया। उ०—विछुरन को संताप हमारों, तुम दरसन दें काट्यों—६-८७।

काठ—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० काछ] (१) लकड़ी।
(२) लकड़ी की बेड़ी । उ०—मांडव ऋषि जब
स्ती दयौ। तब सो काठ हरौ ह्व गयौ — ३-५।
(३) जलाने की लकड़ी, ईंधन। उ०—ताको जननी
की गति दीन्हीं परम कृपालु गुपाल। दीन्हों फूँक
काठ तन वाको मिलिके सकल गुवाल—४१८ सारा.।

(४) काठ की पुतली। काठिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ापन। काठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ] (१) घोड़ा, ऊँट ग्रादि की पीठ पर कसी जानेवाली जीन या गद्दी जिसमें काठ लगा रहता है। (२) शरीर की गठन।

काढ़त — कि. स. [हिं. काढ़ना] (१) खींचा जाता (है), खोला जाता (है), आवरण रहित किया जाता (है), निकालता है। उ.— (क) भीषम, द्रोन, करन दुरजोधन, बैठे समा-विराज। तिन देखत मेरी पट काढ़त, लीक लगे तुम लाज—१-२५५। (ख) फाटे बसन सकुच अति लागत काढ़त नाहिंन हाथ — दिस्स सारा.। (२७) बाल बनाता है, कंघे से बाल सबाँरता है। उ.— तू जो कहित बल की बेनी ज्यों हु है लाँबी मोटो। काढ़त-गुहत नहवाहत जैहें नागिन सी भुईं लोटी—१०-१७५। (३) किसी पदार्थ में पड़े हुए कीड़े-पतंगे निकालता है। उ.— मैं अपने मंदिर के कोने राख्यों माखन छानि।। सूर स्याम यह उत्तर बनायों चोटी काढ़त पानि—१०-२८०।

काढ़ित —िकि. स. [हिं. काढ़ना] (रेख आदि) खीचती है, चित्रित करती है। उ.—अपनी अपनी ठकुराइनि की काढ़ित है भुत्र रेख—ए. ३४७ (५६)।

काढ़न— कि. स. [हिं. काढ़ना] निकालने के लिए, (भीतर की चीज को) बाहर करने के लिए। उ. —देखत हों गोरस में चींटी, काढ़न कों कर नायौ—१०-२७९।

काढ़ना— कि० स० [स० कर्षण, प्रा० कड्ढण] (१) किसी वस्तु को भीतर से बाहर निकालना। (२) खोलना या आवरण हटाना। (३) अलग करना। (४) बेल-बूटे बनाना। (४) उधार लेना। (६) पकाना।

काढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काढ़ना] पानी में उबाल कर निकाला हुआ श्रोषधियों का रस।

काढ़ि—कि० स० [हि० काढ़ना] (१) किसी वस्तु के भीतर से बाहर करना, निकालना। उ०—(क) परचौ भव - जलिंघ में हाथ धारि काढ़ि, मम दोप जिन धारि चित काम—१-२१४। (ख) स्थाम, भुज गहि काढ़ि लीजे, सर बज के कृल —१-६६। (२) निकाल देना, आश्रय न देना, शरण में न लेना, दुकरा देना। उ०—वड़ी है राम-

नाम की श्रोट । सरन गएं प्रभु का दि देत हैं, करत। कृपा कें को हा।

काढ़ी—िकि० स० [हिं० काढ़ना] (१) तैयार की है, प्रस्तुत की है, बनायी है। उ० — (क) चिकत भई देखें ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरें लिखि लिखि काढ़ी—३६१। (ख) रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी। हरिके चलत देखियत ऐसी मनहुँ चित्रि लिखि काढ़ी—२५३५। (२) कोई चस्तु दूसरी से अलग की। उ० — सब हेरि घरी है साढ़ी। लई ऊपर ऊपर काढ़ी—१०-१८३। काढ़ो—कि० स० [हिं० काढ़ना] निकालो, (भाव या विचार) दूर करो। उ० — यह नछत्र अरु वेद अरुध करि खात हरप मन बाढ़ो। तातें चहत अमरपन तन को समुफ समुफ चित काढ़ो—सा० ६५।

काढ़ों — कि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण, हिं० काढ़ना]
(१) किसी वस्तु को बाहर करो, निकालो । उ०—
जिन लोगिन सों नेह करत है, तेई देखि विनेहें । वर
के कहत सबारे काढ़ों, भूत होइ घरि खैहें — १-८६ ।
(२) तान जिये, खड़े किये, निकाल कर ताने । उ.—
विषधर भटकीं पूछ फटिक सहसों फन काढ़ों ।
देख्यों नेन उघारि, तहाँ बालक इक ठाढ़ों—५८९ ।
काढ्यों — कि० स० [हिं० काढ़ना] (१) निकाल दिया,
बाहर किया । उ०—(क) अंचन कलस विचित्र
चित्र करि, रचि पचि भवन बनायों । तामें तैं ततछन
ही काढ़यों, पल भर रहन न पायों—१-३०। (व)
ग्रघ वक बच्छ ग्रारिष्ट केसी मिथ जल तें काढ़यों
काली—२५६७। (२) खीचा, निकाला, प्राप्त किया।
उ०—यह भुतमंडल को रस काढ़यों भाँति भाँति निज
हाथ—४ सारा०।

कातना — कि॰ स॰ [सं॰ कर्त्तन, प्रा॰ कत्तन] रूई से सूत कातना।

कातर—वि० [सं०] (१) अधीर, व्याकुल । उ०—मक्त-विरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे । सरदास ऐसे स्वामी कों देहिं पीठि सो अभागे—१-८। (२) डरा हुआ, भयभीत । (३) कायर । (४) आर्त, दुक्तित ।

कातरता—संज्ञा०स्त्री० [सं०] (१) अधीरता। (२) दुख। (३) कायरता।

काता—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] स्त, तागा। संज्ञा पुं० [सं० वर्त्तु, वर्त्ता; पा० कत्ता] बांस काटने की छुरी, छुरी।

कातिक-सज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] ववार के बाद का महीना। कातिब-संज्ञा पुं० [ग्र० क्रातिब] लिखनेवाला।

कातिल-वि० [ग्र० कातिल] (१) प्राण हरनेवाला।

काती—संशा स्त्री० [सं० वर्जी, प्रा॰ कत्ती] (१) कैंची, कतरनी। (२) छुरी, छोटी तलवार। उ— ऊघी कुलिस भई यह छाती। मेरे मनरसिक नंदलालिहें भपत रहत दिन राती। तिज वज लोग पिता अक जननी वंठ लाइ गए काती—३११६।

कातें—सर्वः सिवः [सं. कः= हिं. का+तें (प्रत्य०)]
किमसे । उ.—(क) जुग जुग जिरद यहै चिति
ग्रायो टेरि कहत हों यातें । मियत लाज पाँच पतितिन में, हों ग्रब वही घटि कातें -१-१३७। (ख)
हम तुम सब बैस एक कातें को ग्रगरों—१०-३३६।
कात्यायनी—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) दुर्गा देवी।
(२) भगवा वस्त्र पहननेवाली विधवा।

काथ— रंशा पुं. [हिं. कत्था] कत्था। संशास्त्री [हिं. कंथा] गुदड़ी। काथरो—संशास्त्री. [हिं. कथरी] गुदड़ी। कादं न— वि. [सं.] ससूह-संबंधी।

संज्ञा पुं.-(१) कदंब का पेड़ या फूल। (२) कलहंस। (३) कदंब की शराब।

कादं बरी - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कोयला। (२) सरस्वती देवी। (३) शरःब

कादं बिनी--संशा स्त्री, [सं,] (१) मेघ, घटा। (२) एक रागिनी।

कादर—िव. [सं. कातर, हिं. कायर (१) डरपोक, भीरु, कायर। (२) व्याकुल, श्रधीर। उ.—(क) भगत बिरह को श्रिति हीं कादर, श्रिसुर-गर्ब-बल नासत —१-३१, (ख) देखि देखि डरपत ब्रजवासी श्रतिहिं भये मन कादर—१४६।

कादिरी—संज्ञा स्त्री [श्र.] एक तरह की चोली। कान—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कर्णण] श्रवणेंद्रिय, श्रदण, श्रुति।

मुहा०-कान कटाई-जगहँसाई होना, अपमान होना, उ.—(क) कीज कुष्ण दृष्टि की बरपा, जन की जाति लुनाई। सूरदास के प्रभु सो करिय, होइ न कान कटाई-१-१८५ (ख) सूर स्याम अपने या ब्रन की इहिं विधि कान कटाई — ३०७७। करी न कान-ध्यान नहीं दिया। उ.—जब तोशों समुफाइ कही नृग तब तैं करी न कान - १-२६६। कान दे-ध्यान देकर, एकाग्र वित्त होकर, एक ही स्रोर ध्यान लगाकर। उ.— (क) तू जानति हरि व छू न जानत, सुनत मनोहर कान दै। सूर स्थाम ग्वालिनि बस कीन्हों, राखित तन-मन-प्रान दे-१०-२७४। (ख) तब गदगद बानी प्रभु प्रगटी सुन सजनी दै कान-१६८४। (ग) सुनौ धौं दें कान श्रपनी हो क लोकान कांत—३४७६ । कान लिंग कहाौ-चुपके से कहना, धीरे से सलाह देना। उ.— कान लगि वह्यो जननि जसोदा वा घर में बलराम। बलदाक भौं आवन देहीं श्रीदामा भौं काम-१०-२४०।

(२) सुनने की शक्ति। (३) कान में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. वानि] (१) मयोदा, लोकलाज। उ.-(१) तोहि ऋपने। लाज प्यारो हमें कुल की कान—सा. ११४। (ख) मोरि प्रतिज्ञा तुम राष्ट्री है में ट वेद की कान—७८५ सारा.। (२) लिहाज, संकोच।

सज्ञा पुं. [सं कृष्ण, हिं. वान्ह] कृष्ण। उ.(क) हों चाहे तासों सब सीखब रसबस रिभाबो वान
-सा. ६८। (ख) कूदो कालीदह में कान-सा. ७३।
(ग) रथ को देखि बहुत भ्रम कीन्हों धों श्राये फिर
कान-५६१ सारा.।

वानन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल, वन। (२) घर। काना—वि. [सं. काण] जिसके एक ही आँख हो।

वि. [सं. कर्ण] कोनेदार, तिरछा, टेड़ा ।

वि. [सं. वर्णक] जिस फल में की हे हों।
कान - संज्ञा स्त्री. [?] (१) लाक-लाज, मर्यादा,
मर्यादा का ध्यान। उ.— जिन गोगल मेरी प्रन
राख्यो, मेटि बेद की कानि—१-२७९। (२)
लिहाज, दबाब, संकोच, संबंध का विचार। उ.—

(क) ब्रह्मबान कानि करी बल करि नहिं बाँध्यौ— ६-९७। (ख) जसुदा कहँ लों कीजे कानि। दिन प्रति कैसें सही परति है, दूध-दही की हानि—१०० २८०। (ग) लागे लैन नै। जल भरि भरि, तब मैं कानि न तोरी—१०-२८६। (घ) तखा परस्पर मारि करें, को उकानि न माने—५८६।

का ध्यान। उ.—(क) कान्हिं वरजित किन नेंदगनी। एक गाउँ कें बसत कहाँ लों, करें नंद की वानी—१०-३११। (ख) लोव-बेद कुल-धर्म केतकी नेक न मानत वानी हो—२४००। (२) दबाव, संकोच, लिहाज। उ.—कंस वरत तुम्हरी ऋति कानी—१००३।

वि. स्त्री. [हिं, काना] जिसकी एक श्रांख फूटी हो, एक श्रांखवाली । उ.—बकुची खुमी श्रांधरि काजर कानी नवटी पहिरे बेसरि। मुँडली पटिया पारि सँवारे कोढ़ी लावें केसरि— ३०२६।

संज्ञा पुं. [हिं. कान] कान।

मुहा० — न वीन्हीं कानी — कान न किया, सुना नहीं, सुनकर ध्यान नहीं दिया। उ. — तिन ती वहाँ न कान्हीं कानी। तन तिज चली बिरह शकुलानी — ८००।

ति. स्त्री-[सं. कनीनी] सबसे छोटी (उँगली)। कानीन-वि. [सं.] कारी कन्या से उत्पन्न।

संज्ञा पुं. — वह पुत्र जो क्रारी कन्या से उत्पन्न हुन्ना हो।

कानून—संज्ञा [यू० केनान] (१) राजनियम, बिधि। (२) नियम संग्रह, विधान।

काने-संज्ञा पुं० [हिं० कान] कान।

मुहा०—न कीन्हों काने—कान नहीं किया, नहीं सुना, सुनकर ध्यान नहीं दिया। उ०—तिन तो कही न कोन्हों काने—८६६

काने—संज्ञा पुं० [हिं० कान] कान। उ० —िन प्रिन बचन वहहु जिन हमसौं ऐसी करहिं न काने — ३३६६।

कानी—वि० [सं० वाना] (१) एक ग्राँख का, काना। उ०
—स्वान कुञ्ज, कुपंगु, कानी, स्रवन-पुच्छ-विहीन।

भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी श्राधीन— १-३२१। (२) कमी, दोष। उ० — श्रपनें ही ग्रज्ञान — तिमिर में विसरघी परम ठिकानों। सूरदास की एक श्रांखि है, ताहू में विद्यु कानी—१-४७।

कान्यकुडज — संज्ञा पुं० [मं०] ्१) एक प्राचीन प्रांत जो वर्तमान कन्नौज के ग्रासपास था। २) इस देश का निवासी।

कान्ह, कान्हर—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० वरह] श्री कृष्ण। उ०—मो देखत कान्हर इहि आँगन पग है धरनि धराहिं —१०७५।

कान्हरी—संज्ञा पुं० [सं० कर्णाट, हिं० कान्हड़ा] एक राग जो रात को गाया जाता है। उ०-सुर स्वत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान — १०१३ सारा.।

कान्हा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० वर्गः] श्रीकृष्ण। उ०—ऐसी रिस करौ न वान्हा। श्रव खाहु कुँवर कञ्ज नान्हा - १०-१८३।

कान्हें—संज्ञा पुं० सवि० [सं० कृष्ण, धा० व ग्रह, हि० कान्ह] श्रीकृष्ण को । उ०—कान्हें ले असुम त कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाए—१०-५३।

कान्हे—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० करह] श्रीकृष्ण। उ०—सुनु री सखी वहित डोलित है या वन्या सौं कान्हे—१०-३१५।

कापर, कापरा—सज्ञा पुं० [सं० कपट=क्स प्रा० वपड़] कपड़ा, वस्त्र। उ० — काहौ कोरे वापरा (ग्रह) काहौ घी क भौन। जाति पाँति पहिराह के (सब) समदि छत को पौन—१०-४०।

कपाल — सज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन संधि।

कापालिक—संज्ञा पुं० [सं०] शैव मत के साधु जो कपाल या खोपड़ी में मांसादि खाते हैं।

कापालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पाजा जो मुँह से बजता था।

कापा—संज्ञा पुं० [हिं० कंपा] बाँस की पतली तीलियाँ जिसमें लासा लगाकर विडियाँ फँसायी या पकड़ी जाती हैं। उ० — मुरली अधर चंप कर कापा मोर मुकुट लट वारि—२७१७।

कापाली—संज्ञा पुं० [स० कागालिन्] शिव।

कापुरुष—संज्ञा पुं ० [सं ०] कायर।
कापे — सर्व ० सिं ० कः = का, केन] किससे,
किसके द्वारा। उ० — बृन्दाबन ब्रज की महत कापे
बरन्यों जाइ – ४६२।

काफिया—संज्ञा पुं० [ग्र०] ग्रंत्यानुप्रस्म, तुक । काफिर—नि० [ग्र०] (१) जो इस्लाम धर्म न माने ।

(२) जो ईश्वर को न माने। (३) निर्दयी। काफिला—संज्ञा पुं० [ग्र०] यात्रियों का दख। काफी—वि० [ग्र०] जितना चाहिए हो उतना; पर्याप्त।

कावर — वि. [सं. कर्बुर, प्रा. कब्बुर] चितकवरा। संज्ञा पु. रेत मिली सूमि, दोमट, खाभर।

काबा - संज्ञा पुं. [ग्र.] ग्राब में मक्के का वह स्थान जहाँ मुहम्मद साहब रहते थे। यह मुसलमानों का तीर्थ है।

काबिल—वि. [ग्र.] (१) योग्य। (२) विद्वान। काबिस—संज्ञा पुं. [सं. किपश] एक रंग जिससे मिट्टी के कच्चे बर्तन रँगे जाते हैं।

कावू - संज्ञा पुं. [तु.] वश, अधिकार। काम-संज्ञा पुं. [सं.] (१) इच्छा, मनोरथ। उ.-(क) सूदास प्रभु अंतरजामो कीन्ही पूरन काम -६७६। (ख) चिरजीवौ जसुदानन्द पूरन काम करी—१-२४। (ग) किये सनाथ बहुत मुनि कुत्त को बहु विधि पूरे काम---२४७ सारा. (२) महादेव। (३) कामदेव। ड -- (क) स्रदास प्रभु छंग-स्रंग नागरि मनो वाम कियों रूप वियो री—सा. उ. १८। (ख) सूर हरि की निरिख सोभा कोटि काम लजाइ - ३५२ । (४) इंद्रियों की विलास की प्रवृत्ति। (४) भोग विलास की इच्छा। उ.—(क) मुख देखत हरि की चिकत भई तन की सुधि विसराई। स्रदास प्रभु के रसबस भई काम करी कठिनाई—७२६। (ख) भ्रम-मद-मत्त काम-तृष्ना-रस- वेग न क्रमें गह्यौ - १-४६ । चार पदार्थों में एक। उ.—श्रर्थ धर्म श्ररु काम मोद्य फल चारि पदारथ देइ गनी-१.३६।

संज्ञा पुं. [सं. कर्म, प्रा. कम्म] (१) क्रिया, व्यापार, कार्य। (२) कठिन कार्य, कौशलयुक्त क्रिया। (३) प्रयोजन, प्रर्थ, मतलब। उ.—(क) श्रन्त के दिन कौं हैं घनस्याम। माता पिता बन्धु सुत तौ लगि जौ

लगि जिहिं कों काम—१-७६। (ख) कान लागि वहाँ। जननि जसोदा वा घर में वलराम । बलदाऊ कों श्रावन देहीं श्रीदामा सौं काम—१०-२४०।

मुहा.—काम परयौ—ग्रावश्यकता हुई, प्रयोजन हुग्रा, दरकार हुई। काम बनावै-मत तब निकालता है, स्वार्थ पूरा करता है। उ.— मूक, निंद, निगोड़ा, भोड़ा कायर काम बनावै—१-१८६। काम सरै—काम बनता है, उद्देश्य की सिद्धि होती है, मतलब निक-लता है। उ.—सब तिज भिजए नंदकुमार। श्रीर भने तैं काम सरै निहं, मिटे न भव जंजार—१-६८।

(४) वास्ता, सरोकार, सम्बन्ध।

मुहा.—काम परयौ-पाला पड़ना, वास्ता होना, व्यवहार या सम्बन्ध होना। उ.—परयौ काम सारँग वासी सौं राखि लियौ वलकीर—१-३३। (ख) नर हिर हैं हिरनाकुस मारयौ काम परयौ हो वाँकौ। गोपीनाथ सूर के प्रभु कें विरद न लाग्यौ टाँकौ—१-१२३। (ग) अब तौ आनि परयौ है गाढ़ौ सूर पतित सौं काम—१-१७६।

(४) उपयोग, व्यवहार।

महा.—काम श्रावें—(१) साथ दें, सहारा दें, सहायक हों, श्राड़े श्रावें। उ.—(क) धन-मुत-दारा काम न श्रावें, जिनहिं लागि श्रपुनमें हारी—१-८०। (ख) श्रावत गाढ़े काम हरि, देख्यो स्र विचारि—२-२०। (रा) हरि बिन कोऊ काम न श्रायो—२-३०। (२) उपयोगी हुई, व्यवहार में श्रायो। उ.—काया हरि कें काम न श्राई। मावमित जह हरि-जस मुनि-यत, तहाँ जात श्रलसाई—१-२६५।

(६) कारबार,रोजगार। (७) कारीगरी, दस्तकारी। (८) बेल बूटे।

कामकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कामदेव की स्त्री, रित । (२) मैथुन।

कामकाज—संज्ञा पुं. [हिं. काम] कारबार। कामकेलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] काम-क्रीडा, रति। कामग—वि. [सं.] (१) मनमानी करनेवाला। (२) काम से।

काम-शंथ-श्रार-गुन-रिपु-सुत—संज्ञा पुं. [सं. कामग्रंथ (कोक=चक्रवाक) + श्रार (चक्रवाक का शत्रु=रात;

क्यों कि रात की चकवा-चक्रवी को श्रलग होने से दुख मिलता है) + गुन (रात का गुण = श्रन्धकार) + रिपु (श्रंधकार का रात्र = दीपक) + सुत (दीपक का सुत = श्रंजन = दिगाज = गज=हाथी)] हाथी। उ.—काम-श्रन्थ-श्ररि-गुन-रिपु-सुत-सम गति श्रित नीक विचारी—सा. १०३।

कामजित्—वि. [सं.] काम या वासना को जीतनेवाला। संज्ञा पुं.—(१) महादेव। (२) कार्तिकेय।

कामतरु—संज्ञा पुं० [सं०] कत्पवृत्त ।

कामद्—वि० [सं० (द = देनेवाला)] इच्छा पूरी करने वाला।

कामद्गिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकृट का एक पर्वत जहाँ श्रीराम ने वास किया था।

कामदहन—संशा पुं० [सं०] कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी।

कामदा—स्त्री० [सं० कामद] (१) कामधेनु। (२) एक देवी।

कामदुधा—संशा स्त्री० [सं०] काम वेनु ।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-पुरुष-संयोग का प्रेरक एक देवता जो बहुत सुन्दर माना गया है। रित इसकी रत्री, सखा वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूकों का धनुष-वाण है।

कामधाम—संज्ञा पुं ० [हिं० काम + धाम (त्रानु०)] काम-धंधा। उ०—ब्रजधर गयीं गोप कुमारि। नेकहूँ कहुँ मन न लागत काम धाम विसारि।

कामध्यक—संजा स्त्री० [सं०] काम वेनु।

कामधुज—संज्ञा स्त्री० [सं० कामध्वज] मछली जों कामदेव की ध्वजा पर श्लंकित है। उ० — लाभ थान पंचमी कामधुज गृहनिध गृह में त्राई। मान लेहु मन श्रपने भू सब हरो भार इन भाई-सा० ८१।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र से निकली गाय जो चौदह रत्नों में एक है और जो सभी अभिलाषाएँ पूरी करती है।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कामदेव की ध्वजा पर श्रंकित है, मछली।

कामना - संज्ञा स्त्री० [सं.] इच्छा, श्रभिलाषा। कामनाधेनु - संसा स्त्री. [सं.] कामधेनु जो समुद्र के रत्नों

के साथ निकली थी। उ.—कामनाधेन पुनि सप्तरिषि कों दई, लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे— ८-८। कामबन— संज्ञा पुं. [स. काम + वन] व्रजमंडल के ग्रंतर्गत एक वन।

कामबाण—संज्ञा पु. [सं.] कामदेव के पाँच वाण— मोहन, उन्मादन, संतपन, शोषण और निश्चेष्ट-करण। कामदेव के वाण फूलों के भी कहे जाते हैं, वे फूल ये हैं—लाल कमल, ग्रशोक, ग्राम, चमेली ग्रीर नील कमल।

कामभूरह—संज्ञा. पुं. [सं. (भूष्ट= वृक्त)] कल्पवृक्त । कामिरि— संज्ञा स्त्र. [सं. वंबल] कमली, कंबल । उ. — (क) सूरदास कारी वामिरि पै, चहत न दूजी रंग—१-३३२। (ख) सोई हरि कांघे कामिरि, काछ किए, नांगे पाइनि, गाइनि टहल करें—४५३। कामिरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल, हिं. कमली] कमली, कंबल । उ.—कान्ह कांघे कामिरिया वारी, लकुट लिए कर धरै हो—४५२।

कामरी—संज्ञा स्त्री. [स. कंबल] कमली, कंबल । उ. – एक दूध, फल, एक भगरि चबेना लेत निज निज कामरा के त्रासननि कीने—४६७।

कामली—संज्ञा स्त्री० [सं० कंवल] कमली, कंवल । कामशास्त्र—संज्ञा ुं० [सं०] वह विद्या जिसमें स्त्री-पुरुष-प्रसंग का सविस्तार वर्णन हो ।

कामसखा—संज्ञा पुं० [सं०] वसत ।

कामांध — वि० [सं०] जो कामवासना की प्रवलता के करण उचित-अनुचित का ज्ञान न रख सके।

कामा — कि० वि० [हिं० काम] हेत्त, लिए। उ० — फेंट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा। काहे को तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कें कामा — ५३६।

संज्ञा स्त्री-कामवती स्त्री।

संज्ञा पुं०—इच्छा, श्रिभलाषा । उ०—तबहिं श्रमीस दई परसन हैं सफल होहु तुम कामा— १०उ०-६६।

संज्ञा स्त्री०—राधा की एक सखी का नाम।
उ०—(क) इंदा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि—
११०१। (ख) स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा
सुमदा नारि—१५८०। (ग) स्याम गये उठि भोर

हीं बृन्दा के धाम। कामा के गृह निसि बसे पुरयौ मन काम-- २१२६।

कामातुर - वि॰ [सं॰ काम + श्राहर] काम या संभोग की इच्छा से व्याकुल । उ० - मज्यौ मोहिं काम'तुरनार'-७६६।

वामानुज - संश पुं० [स० काम + अनुज] क्रोध गुस्सा। कामायनी— संज्ञा स्त्री० [सं०] वैवस्त मनु की पत्नी श्रद्धा का एक नाम।

कामारि—संज्ञा पुं. [सं. काम + श्ररि] कामदेव के शत्रु, शिव।

कामि - वि. [सं. कािन्, हिं. कामी] भोग-विलास में लिप्त रहनेवाला, कासुक। उ.—पुहुन पराग परस मधुकरगन मत्त करत 'गुंजार । मानो कामि जन देख जुत्रति जन विषयासिक श्रपार-१०४४ सार.।

कामिनी, कामिनी—संशा स्त्री० [सं० कान्नि] (१) कामवती स्त्री। (२) सुन्दर नारी। उ० — श्रंतर गहत कन क का भिनि कौं, हाथ रहेगौ पचिबौ-१-५६। (३) मदिरा। (४) एक पुष्प।

कामी - वि. [सं. कामिन्] (१) कामना रखनेवाला, इच्छुक।(२) विषयी, कामुक। उ० यहै जिय जानि कें श्रंध भव त्रास तें, सूर कामी कुटिल सरन श्रायी कायिक वि. [सं०] (१) शरीर संबंबी। (२) -१-५। (३) मतलबी, स्वार्थी । उ. -कीन्हीं धीत पहुँप शुंडा की अपने काज के कामी— कारंड, कारंडव—संज्ञा पुं, [सं.] हंस की जाति का 3050 |

कामु ह— वि. [नं.] (१) इच्छा रखनेवाला। (२) कामी, विलासी।

कामोह पन—संज्ञा पुं. [सं. काम + उद्दीपन] काम की इच्छा या उत्ते जन।

काम्य — वि. [सं.] (१) जिसकी इच्छा हो। (२) जिससे इच्छा पूरी हो। (३) चाहने योग्य। (४) वासना-संबंधी।

काय, कायक-संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) काया, शरीर । उ.-बंदन दासपनौ सो करै। भक्ति सख्य-भाव ऋनुसरै। वाय निवेदन सदा विचारै। प्रेम-सहित नवधा विस्तारै—५८६-५। (२) मूल धन (३) स्वभाष, लच्या।

कायफर, कायफल—सज्ञा पुं. [सं. कटफल] वृत्त जिसकी छाल दवा के काम आती है।

कायर—वि. [सं. कातर] भीरु, श्रसाहसी, डरपोक। उ.-मूकु, निंद, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, काम बनावे - १-१८६।

कायरता—संज्ञा स्त्री. [सं० क तरता] डरपोकपन। कायज्ञ—वि. श्रि] जिसने दूसरे का तर्क स्वीकार कर लिया हो।

कायली--संज्ञा स्त्री. [तं. द्वेलिका] मथानी। संज्ञा स्त्री. [हिं. कायर] खानि लज्जा। संज्ञा स्त्री, [हिं. कायत] कायल होने की भावना। काया—संज्ञा स्त्री. [सं. काय] शरीर, तन, देह। उ.— जनम साहिची करत गयौ। कादा नगर बड़ो गुंजा-इस, नाहिंन क्छ बढ्यौ - १-६४।

काणकल्प—संज्ञा पुं. [सं.] श्रोषधों के प्रयोग श्रीर नियम-संयम से बृद्ध और रोगी शरीर सशक्त और स्वस्थ करने की किया।

कायापलट—संज्ञा पुं. [हिं. काया + पत्तरना] (१) शरीर या रूप बदल डालने की किया। (२) महान परिवर्तन ।

शरीर से उत्पन्न ।

एक पची।

कारवनी—संज्ञा पुं. [सं.] लोहे जैसी धातुत्रों से सोना बनानेव ला, कीमियागर।

कार — संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्य, क्रिया। (२) करने या बनानेव ला। (३) पूजा की बलि। (४) पति। कारक-वि० सिं०] करनेवाला।

संज्ञा पुं ० [सं०] वाक्य में संज्ञा सर्वनाम की श्रवस्था जो किया के साथ संबंध प्रकट करती है। कारकदीपक-संज्ञा पुं० [स०] एक काव्यालकार।

कारकुन-संज्ञा पुं० [फा०] प्रबंबक।

कारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] व्यापारिक वस्तु-निर्माण का स्थान।

कारगर-वि० [फा०] लाभदायक, प्रभावकारी।

कारगुजार — वि० [फा०] अच्छी तरह काम करनेवाला, भुस्तेद।

कारगुजारी—संज्ञा हत्री [फा०] कार्य कुशलता, मुस्तेदी। कारज—संज्ञा पुंट [सं० कार्य] काम, उद्देश्य, मतलब। उ०—मम श्रायसु तुम माथें धरो। छल-बल करि मम कारज करी—१०-५८।

मुहा०— कारज सरी—काम बन जायगा, उद्देश्य की सिद्धि होगी, इच्छा पूरी होगी। उ०— सूर प्रभु के संत बिलसत सकल कारज सरी—१० ३०२। कारज सरे—उद्देश्य सिद्ध हो, मतलब निक्रले, काम बने। उ०— किए नर की स्तुती कौन कारज सरे, करें सो श्रापनों जन्म हारे—४-११। कारज सारयों-काम बनाया, इच्छा पूरी की। उ०— रसना हूँ वो कारज सारयों, में यों श्रपनों काज विगारयों—४-१२।

कारजी—वि० [हिं० कारज] कःम करनेवाला, सेवक। उ०—ऐमे हैं ये स्वामि-कारजी तिनकी मानत स्याम —ए० ३२०।

कारटा—संज्ञा पुं० [सं० करट] कौत्रा, काग।

कारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सबब, हेतु। (२) हेतु, निमित्त। (३) आदि, मूल। (४) साधन। (४) कर्म। (६) प्रमाण।

कारणमाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कारणों की श्रेणी, श्रेनेक संगंबित कारण। (२) एक अर्थालं कार जिसमें किसी कारण के फलस्वरूप कार्य से संबंधित पुनः किसी कार्य के होने का वर्णन हो।

कारिशक — त्रि॰ [सं॰] कर्मवारी से संबंध रखने वाला।

कारन — संज्ञा पुं० [सं० कारण] (१) हेतु,सबब। उ०—
सूरदास सारँग किहि कारन सारँगकुत्तिहं लजावत—
सा० उ० ३६। (२) निमित्त। उ०—(क) बिल बल देखि, श्रादिति सुत-कारन त्रिपद-ब्याज तिहुँ पुर
िकिर श्राई—१-६। (व) श्रधर श्रक्न, श्रन्थ नासा
निरित्र जन-सुलदाइ। मनौ सुक फल िंब कारन
लेन बैठ्यो श्राइ—१०-२३४। (ग) मो कारन कछु
श्रान्यो है बिल, बन-फल तोरि कन्हैया—४१८।

वि०-करनेवाले। उ०-सब हित कारन देव,

श्रमयपद नाम प्रताप बढ़ायौ—१-१८८। संज्ञा स्त्री० [सं० कारण्य] रोने की करुण घ्वनि। कारन-श्रंत—संज्ञा पुं० [सं० कारण्—श्रंत] कारण् का श्रंत, काज, कार्य। उ०—कारन श्रंत-श्रंत ते घटकर श्रादि घटत पै जोई। मद्ध घटे पर नास किथौ है नीतन में मन भोई—सा० ५।

कारनकरन—संज्ञा पुं. [सं. करण-कारण] उपादान कारण श्रीर सृष्टि का करनेवाला निमित्त कारण, सृष्टि का मूल तत्व, ईश्वर । उ.—(क) कारन-करन, दयालु दयानिधि, निज भय दीन डरें । इहिं कि जिकाल-ब्याल मुख-श्रासित सूर सरन उबरें—१११७। (ख) माया प्रगति सकल जग मोहै। कारन करन करें सो धोहै—१०३। संज्ञा स्त्री. [सं. करणा] रोने की करण ध्वनि।

कारनमाजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कारणमाला] एक अर्थालंकार जिसमें किसी कारण से होनेवाले कार्य से फिर किसी कार्य के होने का वर्णन हो। उ.—सोतन हान होन चाहत है बिना प्रानपित पाये। कर संका कारन की माला तेहि पहिराउ सुमाये — सा. ४८।

कारनी—संज्ञा पुं. [सं. कारण] प्रेरणा करनेवाला, प्रेरक। संज्ञा पुं.[सं. कारीनि] (१) परस्पर भेद करनेवाला। (२) बुद्धि या विचार पलटनेवाला।

कारने—संज्ञा पुं. सिंव. [सं. कारण] के लिए, हेतु। उ.— (क) सिंवियन सुख देखन कारने रंग हो हो हो।— १४१०। (व) दह्यों बह्यों के कारने कहि बढ़ावित रारि-११०८। (ग) तुम सौं स्रब दिध कारने कीन बढ़ावे रारि—११२३।

कारबार—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कामकाज। (२) पेशा। कारबारी —वि. [हिं. कारबार] कामकःजी।

कारा — संज्ञा स्त्री. [सं.] () बन्धन, कैर । (२) कारा-गृह, बन्दे गृह। (३) पीड़ा, दुख।

वि. [हिं. काला] काले रंग का, काला। कारागार, कारागृह-संज्ञा पुं. [सं.] बन्दीगृह, जेल। कारावास—संज्ञा पुं. [सं.] जेल में रहना, केंद्र। कारिंदा—संज्ञा पुं. [फा.] जो दूसरे की स्रोर से काम करे,

गुमाश्ता ।

का (का-संज्ञा स्त्री. [सं.] श्लोक-रूप में की गयी किसी सूत्र की व्याख्या।

कारिख-संज्ञा स्त्री. [सं. कलुष] (१) स्याही, कालिमा।

(२) काजल । (३) कलंक, दोष । उ.—जे कारिख तन मेटो चाहत तौ कमल बदन तनु चाहि—३३६०। कारिगी—बि. स्त्री. [सं.] करनेवाली ।

कारित—िव. [सं.] कराया हुआ।

कारी—वि० स्त्री० [हि० पं० काला] १) काले रंग की।
उ०—(क) अनत मुत गोरस कों कह जात। घर
मुरभी कारी घौरी को मालन माँगि न खात-१०-३२६।
(ख) गगने घहराइ जुरी घटा कारी—६८४।
(ग) स्याम मुखरासि रसरासि भारी। । सील की रासि जस रासि आनंदरामि, नव जलद छित्र बरन कारी—१३४०।

महा—होतपीरी काली-काली-पीली होना, गुस्सा दिखाना, कुँ मलाना। उ०—ज्यों ज्यों में निहोरे करौं त्यों त्यों यों बोलत है री अनोखी रूसनहारी। बहियाँ गहत कौन पर मगधरी उँगरी कौन पै होत पीरी कारी—२०४७।

वि० [सं० कारिन] करनेवाला (प्रत्य० रूप में)। वि० [फा०] मर्भोदी।

संज्ञा स्त्री० [सं० कारिता] करने का काम।

कारीगर—संज्ञा पुं० [फा०] शिल्पकार।

वि०—हाथ के काम में चतुर।
क।रू—संज्ञा पुं० [सं०] कारीगर, शिल्पी।
कारुगिक—वि० [सं०] दयालु, कृपालु।

कार्ग्य – संज्ञा पुं० [सं०] दया, कृपा।
कारे—वि० [सं० काल, हिं० काला] काला, श्याम।
उ० – (क) गरजत कारे भारे ज्य जलधर के—
१०-३४। (ख) डसी स्याम भुत्रंगम कारे—७४०।
(२) बड़ा, भारी।

मुहा० — कारे कोसिन — बहुत दूर । उ० — तातें अब मिरयत अपसोसिन । मथुरा हू ते गये सखी री अब हिर कारे कोसिन — १० उ०-८ ।

संज्ञा पुं० [कारिन, कारी] करनेवाला (प्रत्य० रूप)। उ०—मोरन के सुर सरस सम्हारत पय सुरतिया बीच रुचकारे—सं० ६१।

कार—संज्ञा पुं० सिव० [सं० काल, हिं० काला] काले साँप । उ०—(क) ताकी माता खाई कारें। सो मिर गयी साँप के मारे—७-८। (ल) एक बिटि-नियाँ सँग मेरे ही, कारें खाई ताहि तहाँ री—६६-७। (ग) क्योंरी कुँ विर गिरी मुरक्ताई ? यह बानी कही सिलयन आगों, मोकों कारें खाई—७४१।

कारो—वि० [हिं० काला |]काला | उ० सूरस्याम सुजान पाइन परो कारो काम—सा० २१ |

कारी—वि० [सं० काल, हिं० काला] (१) काला, कृष्ण, श्याम । उ० — कारी श्रपनी रंग न छाँड़े, श्रनरँग कबहुँ न होई—१-६३। (२) खरा, कलुषित । उ० — तीनों पन में भिक्त न कीन्हीं, काजर हूँ तें कारो — १--१७८।

कात्तवीय—संज्ञा पुं. [सं.] सहस्राजु न जिसके हजार हाथ थे। यह कृतवीर्य का पुत्र था। इसे परशुराम ने मारा था।

कार्त्तिक – संज्ञा पुं. [सं.] कार के बाद का महीना। कार्त्तिकेय — संज्ञा पुं. [सं.] कृतिका नज्ञत्र में जन्में स्कंद जी जिनके ६ मुख माने जाते हैं।

कार्दम-त्रि. [सं.] (१) कीचड़ से भरा हुआ। (२) कर्दम से संबंधित।

कार्पण्य—संज्ञा. पुं. [सं.] कंज्सी, कृपणता। कार्मण, कार्मना—संज्ञा. पुं. [सं.] तंत्र-मंत्र का प्रयोग। कार्मक— संज्ञा पुं [सं.] (१) धनुष। (२) इंद्रधनुष। कार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम-धंधा। (२)

कारण का फल। (३) परिणाम, फल।
कार्यकर्ता — संज्ञा पुं. [सं.] काम करनेवाला, कर्मचारी।
कार्यक्रम — संज्ञा पुं. [सं.] काम की व्यवस्था या प्रबंध।
काल - संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय, श्रवसर। उ०—
हिर सौं मीत न देख्यों कोई। विपति-काल सुमिरत,
तिहिं श्रौसर श्रानि तिरीछौ होई—१-१०। (२)
मृत्यु। उ०—काल श्रवधि जव पहुँची श्राइ। तव
जम दीन्हें दूत पठाइ-६-४। (३) यमराज,
यमदूत। उ०—(क) ग्रस्यो गज ग्राह लें चल्यौ
पाताज कौं, काल कै त्रास मुख नाम श्रायौ। छाँडि
सुवधाम श्रह गरुड तिज साँवरौ पवन के गवन तैं
श्रिधक धायौ—१-५। (ख) कहत हे, श्रागैं जिपहें

राम। बीचिहं भई श्रीर की श्रीरे परयों काल सीं काम—१-५७। (४) नियत समय या ऋतु। (४) श्रमाल, महँगी। (६) काला साँप। (७) शनि। (८) शिव का एक नाम।

वि०—काले रंग का, काला। कि० वि० [हिं. काल] बीता हुआ दिन, आनेवाला दिन।

कालश्रगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० काल + ग्रग्नि] प्रजय काल की ग्राग।

कालकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) मोर। (३) नीलकंठ पची।

कालकूट - संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर विष।

कालकेतु—संज्ञा पुं० [सं.] एक राज्ञस का नाम।

कालच्चेप-संज्ञा पुं० सिं० समय बिताना।

कालचक्र — संज्ञा पुं० [सं०] समय का हेर-फेर . या परिवर्तन।

कालधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु, नाश।

कालनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) काल-

कालिनशा— संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिवाली की रात। (२) भयंकर काली रात।

कालबूत — संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] कचा भराव जो मेह-राब बनाने के लिए किया जाता है, छैना।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव जो देवतास्रों को पराजित करके स्वर्ग का अधिकारी बन बैठा
था। अपने शरीर को चार भागों में बाँट कर
यह सारा शासन-कार्य करता था। अंत में विष्णु
द्वारा यह मारा गया और यही दूसरे जन्म में कंस
हुआ। उ०—कालिंदी के कृल वसत इक मधुपुरी
नगर रसाला। कालनेमि अह उप्रसेन कुल उपज्यो
कंस भुआला—१०-४। (२) एक राचस जो रावण
का मामा था।

कालयवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक यवन राजा जो जरा-संघ के साथ मधुरा पर चढ़ाई करने गया था। श्रीकृष्ण ने चालाकी से मुचकंद की कोपदृष्टि से इसे भस्म करा दिया था। उ०—तव खिसियाइ के (जरासंघ) कालयवन अपने सँग ल्यायो—१० उ०-३। कालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर का विराट रूप। (२) काल।

कालयापन—संज्ञा पुं० [सं०] दिन बिताना। कालराति, कालरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भयानक श्रंधेरी रात। (२) प्रलय की रात। (३) मृत्यु की राति। (४) दिवाली की रात।

कालवाचक, कालवाची—वि० [सं०] समय बतानेवाला। कालिवपाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय की समाप्ति।

(२) काम पूरा होने की अवधि।

काल-सर्प—संज्ञा पुं. [सं.] वह साँप जिसका डसा हुआ बचता नहीं।

काला — वि. [सं. काल] (१) कोयले के रंग का। (२) बुरा, कलुषित, कलंकित। (३) भारी, बड़ा।

संज्ञा पुं. —काला साँप।
संज्ञा पुं. —समय, अवसर। उ. —धन तन स्याम
सुरेस पीत पट सीस मुकुट उर माला। जनु दामिनि धन
रिव तारागन प्रगट एक ही काला — २५६६ अरैर

१० उ.-४। कालाकल्टा—[हिं. काला + वल्टा] बहुत काला,

गहरा काला ।
कालाचरी—वि. [सं.] भारी विद्वान ।
कालाग्नि—संज्ञा पुं [सं.] प्रलय काल की आग ।
काला भुजंग—वि. [हिं. काला + भुजंग] बहुत काला ।
कालानल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रलयकाल की आग ।
काला नाग—संज्ञा पुं. [हिं. काला + नाग] (१) काला
साँप जो बड़ा विषेला होता है। (२) बहुत हुरा

कालिंदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कलिंद पर्वंत से निकली हुई नदी यमुना। (२) श्रीकृष्ण की एक स्त्री। उ.— (क) हिर सुमिरन कालिंदी कीन्हों। हिर तब जाइ दरस तेहि दीन्हों। पानिग्रहन पुनि ताकों कीन्हों— १० उ.-२८। (ख) तह कालिंदी बन में व्याही श्रित सुन्दर सुकुमार—६५४ सारा.।

श्रादमी।

कार्लिदीभेदन—संज्ञा पुं. [सं.] बलराम जो हल से यमुना नदी को वृंदावन खींच लाये थे।

कालि—िक. वि. [सं. कल्य] (१) आगामी दिवस, आने वाला दिन। उ.—बल मोहन तेरे दुहुँनि कौं, पकरि

मँगाऊ कालि। पृहुप बेगि पठएं बने, जो रे बसी

त्रजगालि-५८६। (२) बीता दिन। (३) शीघ ही।

कालिक —िव. [सं.] (१) समय सम्बन्धी। (२) समय

के अनुसार। (३) जिसका समय निश्चित हो।

कालिका—संज्ञा स्त्री. [सं] कालापन, कलींछ, कालिख।

उ.—ग्राजु दोपति दिन्य दोपमालिका। मनहु कोटि

रवि-चंद्र कोटि छिनि, मिटि जु गई निसि कालिका—

८०६। (२) चंडिका देवी, काली। (३) स्याही।

(४) ग्राँखकी काली पुतली। (४) रणचंडी।

कालिख—संज्ञा स्त्री. [सं. कालिका] कलोंछ, स्याही। कालिनाग—संज्ञा पुं. [सं. कालिय + नाग] काली नाम का सप जो यमुना में वज के समीप रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने वश में किया था।

का तिमा— संज्ञा स्त्री. [सं. का लिमन] (१) कलं क, दोष, पाप, लांछन। उ. —कि लिमल-हरन, का लिमा टारन, रसना स्याम न गायौ -१-५८। (२) का लापन, कलं क। उ. —िवधु वैरी सिर पर वसे निसि नींद न परई'''। घटै बढ़ें यहि पाप ते वा तिमा न टरई — २८६१। (३) का लिख। (४) अवेरा।

कालिय-सज्ञापुं, [सं.] एक सर्प जिसे श्री कृष्ण ने नाथा था।

कालियादह — संज्ञा पुं. [सं. कालिय + दह=कुंड] एक कुंड जो बृन्दावन में जमुना में था और जहाँ काली नामक नाग रहता था। उ.—ग्वाल-सँग मिलि गेंद खेलत आयो जमुना तीर। काहु ले मोहिं डारि दीन्ही, कालियादह-नीर—५८०।

काली —संज्ञा पुं. [सं. कालिय] एक नाग का नाम जो वृंन्दावन में जमुना के एक कुंड या दह में रहताथा श्रीर जिसे श्रीकृष्ण ने नाथा था। उ-(क) श्रघ श्रिरिट, केसी, काली मिथ दावानलिहं पियौ-१-१२१। (ख) श्रघ वक बच्छ श्रिरिट केसी मिथ जल तैं काढ़यी काली—र५६७।

संज्ञा. स्त्रो. [सं.] (१) चंडो, देवी, दुर्गा। उ.—जब राजा तिहिं मारन लग्यो। दंवी काली मन-डगमग्यो—५-३। (२) पार्वती। (३) एक नदी। (४) उक्र महाविद्या। (४) ग्राग्नि की सात जिह्ना मं पहली।

कालीदह—संज्ञा. पुं. [सं. कालीय + हिं. दह=कुंड]
बृंदावन में जमुना का एक कुंड जिसमें काली नामक
नाग रहा करता था। उ.— तृपावंत सुरभी वालक गन,
कालीदह, श्रांचयी जल जाइ। निकसि श्राइ सब तट
ठाढ़े भए, बैठि गए जहें तह श्रक्त इन ५ १।

कालों अ, कालों छ — सज्ञा स्त्री. [हि. काला + त्रों छ (प्रत्य.)] (१) कालापन, स्याही। (२) कालिख, काजल।

काल्पनिक—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पना करनेवाला। वि.—कल्पना किया हुआ, कल्पित।

काल्ह, काल्हि—कि. वि. [सं. कल्य= त्यूप, प्रभात; हिं. कल] कल, दूसरे दिन। उ.—काल्ह जाइ अस उद्यम करों। तेरे सब भंडारिन भरों—४-१२। काञ्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरस, सुरुचिप्ण और आतंददायक वाक्य-रचना, कविता। (२) कविता का ग्रंथ।

काव्यक्तिंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालंकार। काव्याथेपति—सज्ञा पुं. [स.] एक अर्थालंकार। काशिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी पुरी। काशी—रंज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तरप्रदेश का एक प्रसिद्ध तीथ, बनारस, वाराणसी।

काशी करवट—संज्ञा पुं. [सं. काशी + वरपत्र, प्रा. कर-वत] काशी के अंतर्गत एक स्थान जहाँ पूर्व समय में आरे से कटकर माना या प्राण त्याग करना बड़े पुर्य का कार्य समका जाता था।

काश्त—संज्ञा स्त्री. [फा.](१) खेती, कृषि। (२) खेती करने का अधिकार।

काश्तकार - संशा पुं. [फा.] खेतिहर, किसान।

काश्तकारी — संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) खेती, कृषि । (२) खेती करने का श्रिष्ट कार। (३)वह भूमि जिस पर खेती करने का श्रिष्टकार हो।

काषाय — वि० [सं०] (१)कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ। (२) गेरुआ।

संज्ञा पु० - (१) कसेली वस्तुत्रों में रँगा हुत्रा वस्र। (२) गेरुत्रा वस्र।

काष्ठ—संज्ञा पुं ० [सं०] (१) काठ । (२) ईंधन। काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रविध, सीमा।

- (२) श्रधिक से श्रधिक ऊँचाई या उन्नति।(३) श्रोर, तरफ। (४) स्थिति।
- कास संज्ञा पुं० [स० काश] एक प्रकार की घास, काँस। उ०—(क) दिसिग्रति क लिंदी ग्रांति कारी।

 '''। विगलित कच कुच कास कुलेन पर पंक जु वाजल सारी— २७२८। (व) ग्रमल ग्रकास काम कुसुमिन छिति लच्छन स्वाति जनाए— २८५४।
- कासनी—हंशा स्त्री० [फा०] (१) एक पौधा जिसमें नीले रंग के फूल हते हैं। (२) एक प्रकार का नीला रंग।
- कःसा—संग्रा पुं० [फा०] (१) प्याला, कटोरा। (२) भोजन।
- कासार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब, पोखर। (२) एक तरह का छंद। (३) एक पकवान जा प्रायः कथा के श्रासर पर बाटा जाता है।
- कासी संज्ञा स्त्रे॰ [सं॰ काशो] काशी नामक प्रसिद्ध नगर जिसकी गणना श्रेष्ठ तीर्थ स्थानों में है। उ० — ऊधी यह राधा भीं कहियो। ******। मोपर रिस पावत वेकारन में हों तुम्हरी दासी। तुमहीं मन मैं गुनि धों देखी बिन तप पायी कासी — २६३७।
- कासी करवत संज्ञा पुं० [सं० काशी करवट] काशी के अंतर्गत काशी-करवट नामक तीर्थस्थान में जाकर आरे से गला कटाना या अन्य किसी तरह से प्राण देना बड़ा पुण्य समभा जाता था। उ० स्रदास प्रभु जौ न मिलेंगे लेहीं करवत कासी—रू४३।
- कासे—सर्व० [हिं० का + से (प्रत्य०)] किनसे । उ०—(क) कासे कही समूचे भूषन सुमिरन करत बखानी—सा० ५४। (ख) सूरदास पुकार कासे करें बिन घन मोर—सा० ११०।
- कासो, कासों—सर्व० [हिं० का + भों (प्रत्य०)] किससे। उ०—तेरो कासों की जै ब्याह ? तिन व ह्यौ मेरो पति सि । अह ५--७।
- काह—कि० वि० [सं० कः, को] क्या, कौन बात या वस्तु । उ०—कहो प्रिया अब कीजे सोइ १ देखों नुपति, काह धों होइ—४-२२।

काहल—संशा पुं० [सं०] (१) ढोल। (२) मुगी। (३) श्रव्यक्त शब्द।

वि॰ [ग्र॰ काहिल] गंदा, मैला। काहली—वि॰ [ग्र॰ काहिल] ग्रःलसी, सुस्त। संज्ञा स्त्री.— ग्रालस्य।

काहिं—मर्व० सिं० कः, हिं० का + हिं (प्रत्य०] (१) किसे, किसके। उ०—यह विपदा कव मेटहिं श्री पति श्रुष्ठ हों वाहिं पुकारों—१०-४। (२) किससे। काहि—सर्व सिं० वः, हि० वा + हिं० (प्रत्य.] क्सिको,

काहि—सर्व [स० व:, 'ह० वा + हि० (प्रत्य.] िस्सको, किसे। उ०—तुमहिं समान ऋौर नहिं दूजौ वाहि भजौं हों दीन—१-१११।

काहिल-वि० [ग्र०] ग्रालभी, सुस्त।

काहिली—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] ग्रालस्य।

काहीं - ग्रव्य० [हिं० को, कहें] को, पास. द्वारा।

काहु—सर्वे [सं. कः, हिं का+हू (प्रत्य) = काहू] किसी, किसी ने। उ० कहा तुम एक पुष्ठष जो ध्यायो। ताको दरसन काहुन पायो—४-३।

- काहूँ, काहू—सर्व० [सं० कः, हिं० का + हूँ (प्रत्य०)] किसी, कीसी को, किसी के। उ०—(क) माधौ, ने कृ हटको गाइ।....। दिठ, निटुर, न हरति काहूँ, त्रिगुन हुँ समुहाइ—१-५६। (व) वा घट मैं काहूँ कें लारका मेरो माखन खायौ—१०-१५६।
- काहे—कि० वि० [सं० वथं, प्रा० वहाँ] कों, किसलिए उ०—तुम कब मोसों पतित उधारघो। काहे कों हरि बिरद बुलावल, बिन मसकत को तारघो—१-१३२।
- काहें—कि० वि० [सं० वथं, प्रा० वहं, हिं० काहे] किससे, किस साधन से, क्यों। उ० हों कुरुंब काहे प्रतिपारों, वैसी मित हो जाई—६-४०।

किं-ि कि. वि. [सं. किम्] केंसे ?

- किंकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दास, सेवक,पि चारक। (२) एक जाति के राचस जो हनुमान जी द्वारा मारे गयेथे।
- किंकतंत्र्यावमूढ्—वि. [सं.] जिसे कर्तव्य न सूम पड़े, भौचका।
- किंकिणि, किंकिणी—संज्ञास्त्री. [सं.] करधनी, चुद्रघंटिका।

उ.—किंकिशि सब्द चलत ध्वनि रनभुन दुमक-दुमक गृह त्रावै—२५४६।

किंकिन, किंकिनी—संश स्त्रो. [सं. किंकिशी] चुद घंटिका, करधनी। उ.—मनौ मधुर मराल-छौना किंकिनी-कल-राव—१०-३०७।

[कंकिशिन-संज्ञा स्त्री. सिव. [सं. किंकरी] दासियों की, सेविकाओं की। उ.—िकंकिशिन की लाज धरि ब्रज सुवस करहु निटोल—३४७५।

किंगरी, किंगिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरी] छोटी सारंगी। किंचन—संज्ञा पुं. [सं.] थोड़ी वस्तु। किंचित—वि. [सं.] कुछ, थोड़ा।

कि. वि. — कुछ।

किंजल्क—संज्ञा पुं. [स.] (१) कमल के फूल का पराग।

उ.—भृंगी री, भिंज स्थाम—कमल—पद, जहाँ न निसि
की त्रास। । जहाँ किंजल्क भिंकत नव-लच्छन, कामज्ञान-रस एक— १-३३६। (२) कमल। (३)
नागकेसर।

वि.—केसर के रङ्ग का, पीला।
किंतु—ग्रव्य. [सं.[पर, परंतु, लेकिन।
किंपुरुख, किंपुरुष—सज्ञा पुं. [सं.] किन्नर।
किंभूत—वि. [सं.] (१) केसा, किस प्रकार का। (२)
ग्रद्भुत। (३) भहा, कुरूप।

किंबदंति, किंबदंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] उड़ती खबर, जन-रव।

किंवा — श्रव्य. [सं.] या, श्रथवा, या तो। किंशुक — संज्ञा पुं. [सं.] पलाश, टेसू। कि—प्रत्य. [हिं. क!.] हिं 'विभक्ति 'का' का स्त्री॰ 'की'। उ.—सूर पतित, तुम पतित उधारन, बिरद कि लाज धरे—१ १६८।

> क्रि. वि. [सं. किम्] कैसे, किस प्रकार। श्रव्य. — एक संयोजक श्रव्यय।

किए—िक. स. [सं. करण, हिं. करना] 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किये या किया' का बहुवचन, बनाये, लगाये। उ.—चंदन की खौरि किए नटवर किछ काछनी बनाइ री—⊏⊏२।

किकियाना—िक. ग्र. [हिं. कीकना,] रोना, विल्लाना। किचकिच—संज्ञा स्त्री. [श्रनु.] (१) व्यर्थ की बकवाद। (१) भगड़ा।

किचिकिचाना—िक. श्र. [श्रन.] (१) पूरा जोर लगाने के लिए दाँत पर दाँत जमाना। (२) क्रोध से दाँत पीसना।

किचड़ाना – कि. ग्रा. [हिं. कीचड़ + ग्राना] ग्राँख में कीचड़ भर ग्राना।

किचिपच, किचर पिचर —िव. [अनु.] (१) ऋमरहित, अस्पष्ट। (२) छोटी छोटी बहुत सी संतान।

किछु-- वि. [हिं. कुछ] कुछ।

किटिकिट—संज्ञा स्त्री. [ग्रानु.] (१) व्यर्थ की वकवाद। (२) भगड़ा।

किटिकटाना—िक. श्र. [श्रनु.] कोध से दाँत पीसना। किट्ट — संज्ञा पुं. [हिं. कीट] धातु पर जमा हुश्रा मेला। कित—िक. वि. [सं कुत्र] कहाँ, किस श्रोर, किधर। उ. —रूप-रेख-गुन-जाति-जुगित-िबनु निरालंब कित धावै

—रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-विनु निरालंब कित धार्व —१-२।

कितक—िव. [सं. कियदेक, हिं. कितेक] (१) कितने, बहुत, अधिक। उ.—(क) ऐसी नीप-बृच्छ विस्तारा। चीर हार धौं कितक हजारा—७६६। (ख) हरि मुख विधु मेरी श्रॅं खियाँ चकोरी। राखे रहित श्रोट पट जतनि तऊ न मानत कितक निहोरी—ए. ३२८। (२) कितना, बहुत थोड़ा, बिलकुल साधारण। उ.—(क) कितक बात यह धनुष रुद्र वी सकल वश्च कर लैहों। श्राज्ञा पाय देव रघुपित की छिनक माँभ हठ जहीं २२४ सारा.। (ख) श्रमित एक उपमा श्रवलोकत जिय में परत विचार। निहं प्रवेस श्रज सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार—६६६ सारा.।

कितना—वि. [सं. कियत्] किस परिमाण, मात्रा या संख्या का; बहुत अधिक।

कि. वि.—(१) किस मात्रा या परिमाण में ? कहाँ तक।

कितनौ—कि. वि. [हिं. कितना] कितना, कहाँ तक। उ.—नेंकु नहिं घर रहति, तोहिं कितनौ कहित, रिसन मोहिं दहति, वन भई हरनी—६६ ⊏।

कितव—सज्ञा पुं. [सं.] (१) जुन्नारी । (२) छली-कपटी । उ.—रे रे मधुप कितव के बंधू चरन परस जिन करिहों। प्रिया श्लंक कुंकुम कर राते ताही को त्रमुसरिहों — ५६६ सारा.। (३) पागल। (४) दुष्ट। (४) धत्रा।

किता—संज्ञा पुं. [म्र. कितऽ] (१) कपड़े की काट-छाँट या कतर-ब्योंत। (२) चाल-ढाल। (३) संख्या।

किताब— संज्ञा स्त्री. [ग्र.] (१) पुस्तक, ग्रंथ। (२) बही। किताबी—वि. [ग्र. किताब] (१) किताब का। (२) किताब के ग्राकार का। (३) लंबोतरा।

कितिक—िव. [हिं. कितना] (१) कितनी, बहुत साधा-रण। उ.—(क) राघो जू, कितिक बात, तिज चित। —६-१०७। (ख) कर गिह धनुष जगत कों जीतें, कितिक निसाचर जूथ—६-१४७। (ग) सतमामा सों इती बात जबतें न कही री। कितिक कठिन सुरतरु प्रस्न की या कारन तू रूठि रही री—१० उ.-२८। (२) अधिक, बहुत ज्यादा। उ.—काल बितीत कितिक जब भयो। गाइ चरावन कों सो गयो—६-१७३।

किती—िव. [सं. कियत] (१) कितनी, बहुत।। उ.— मन, तोसों किती कही समुभाइ—१-३१७। (२) कितनी (संख्यावाचक)। उ.—मैया कबिं बढ़ेगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियति मई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७४।

किते—वि. [सं. वियत्, हिं. कित्ता या कित्ते] कितने। (संख्यावाचक)। उ.— किते दिन हरि-सुमिरन विनु खोए—१-५२।

कितेक—वि. [सं. कियदेक] (१) कितना। (२) बहुत, असंख्य।

वितेब — संज्ञा स्त्री. [हिं. विताब] (१) अन्थ, पुस्तक। (२) धर्मअन्थ। (३) कुरान।

किते—िक. वि. [सं. कुत्र, हिं. कित] किस श्रोर, कहाँ, किधर। उ.—पावँ श्रवार सुधारि रमापति, श्रजस करत जस पायौ। सूर कूर कहै मेरी विरियाँ विरद किते विसरायौ—१-१८८।

कितो—वि. [सं. वियत, हिं कितो] कितना, बहुत। उ.—(क) सर वितौ सुख पावत लोचन, निरखत युद्धक्ति चाल—१०-१४८। (ख) मानै नहीं कितौ समुक्ताई—३६१।

कितोक—वि. [हिं. कितना, कितो] कितना, कितना अधिक। उ.—कितोक बोच बिरह परमारथ जानत हो किथो नहीं - ३०७४।

कित्त—संज्ञा स्त्री, [सं. कीर्ति, प्रा. कित्ति] कीर्ति, यश। कित्तो, कित्तौ—वि. [हिं. कितना] कितना, कितना अधिक। किधर—कि. वि. [सं. कुत्र] किस और।

किथों, किथों — श्रव्य. [सं. किम्] ग्रथवा,या तो, न जाने। उ.—(क) ह्र श्रंतरधान हरि, मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हे दिखाई। सूर-ससि किथों चपला परम सुन्दरी, श्रंग भूषनि छिब कहि न जाई — ८-१०। (ख) किथों यह प्रतिबिंब जल में देखत किथों निज रूप दोऊ है सुहाए— २५७०।

किन — कि. वि. [सं. किम्+न] किसने, क्यों न। उ.—
(क) पुनि पाछुँ अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन
पाटत—१.१०७। (क) बिनु हरि भिक्त मु'क्त नहिं
होई। कोटि उपाय करो किन कोई। (ख) तो लगि
बेगि हरी किन पीर। जो लगि आन न आनि पहूँचै,
फेरि परेगी भीर—१-१६१।

सर्व०—किस का बहुवचन। संज्ञा पुं. [सं. किएा] चिह्न, दाग, निशान।

किनका—संज्ञा पुं. [सं. किएक] (१) छोटा दाना, कण। (२) छोटी बूँद।

किनारा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) किसी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई का सिरा।(२) जलाशय या नदी का तट, तीर।(३) हाशिया, बार्डर। (४) बगल, पाश्व।

किनि सर्व. [हिं. 'किस'] किसने, किनने। उ. किनि बहकाइ दई है तुमनों, ताहि पकरि लें जॉहि - ७५३।

किनिका, किनुका—संज्ञा पुं. [हिं. किनका] छोटा दाना, क्या।

किन्नर—संज्ञा पुं. [तं.] देवतात्रों का एक वर्ग जो पुल-स्त्य ऋषि का वंशज माना जाता है। किन्नरों का मुख घोड़े के समान होता है और ये संगीत में निपुण होते हैं।

संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरीवीणा] तंब्रा या सारंगी। उ.—एक बीना, एक किन्नर, एक मुरली, एक उपंग एक तुं मर एक रवाब भाँति सौ दुरावे—५२४२।
किन्नरो—संज्ञा हते. [सं.] किन्नर जाति की स्त्रियाँ
संज्ञ हती. [मं. किन्नरी वीणा] तेंन्न्रा या सारंगी।
3.—(क) भाँभा भालरी किन्नरी रँग भीजी ग्वालिनि—२४०५। (ख) ताल मुरज रवाब बीना
किन्नरी रस सार—ए. ३४६ (४५)। (ग) वाजत
वीन रवाब किन्नरी श्रमृत कुंडली यंत्र—१०७३
सारा.।

किफायती—संज्ञा स्त्री. [म्र.] कमखर्ची मितव्यय। किफा तो — वि. [म्र. किफायत] (१) कम खर्च करनेवाला, मितव्ययी। (२) कम दाम का।

किमपि — सर्वे. सि. [सं. किम्] कोई भी, कुछ भी।

3.—को ह कोटि करम सरिस कहरि सूरज विविध
कल माधुरी किमपि नाहिन बची—२२६८।

किमि—कि. १व. [सं. किम्] कैसे, किस प्रकार, किस तरह। उ.— दिदु ख सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ — १०-१४३।

किम्—वि., सर्व. [सं.] (५) क्या, (२) कौन सा। किय— कि. स. [हिं. करना, किया] किया। उ.—निर्भय किय लंकेस विभीषन राम लखन नृप दोय—२६५ सारा.

कियत्—वि. [सं.] कितना।

कियारी संज्ञा स्ती. [हिं. क्यारी] (१) सिंचाई के लिए बनाये गये खेतों के छोटे छोटे भाग। (२) बाग-बगीचों की नाली की तरह या गोल-तिकोनी खुदी एंक्तियाँ जिन में अलग अलग पेड़ लगाये जाते हैं, क्यारी।

कियो कियो — कि. स. [सं. करण, हिं करना] 'करना' किया के भूतकालिक रूप 'किया' का ब्रजनाषा रूप, किया। उ.— (क) रोर के जोर तें सोर घरनी कियो, चल्यो द्विज द्वारिका-द्वार ठ हो — १-५। (ख) का न कियो जन-हित जदुराई — १-६। (ग) चरित अने किये रघुनायक अवधपुरी सुल दोन्हो— ३०८ सारा,।

किरका, किरको – संशा पु. [सं. कर्कट = कंकड़ी] कंकड़, किरकिरी। उ,-गर्व करत गोबद्ध न गिरि कौ। पर्वत माँह श्राह वह किरका—१०४३।

किरिकटी — संज्ञा स्त्री. [सं. ककट] कण या धूल जो-श्रांखों में पड़ कर दुख देती है।

किरिश्चा—िव. [सं. कर्कट] जिसमें महीन गर्द मिली हो। किरिश्चा—िकि. ग्र. [हिं. किरिक्ष] हलकी हलकी पीड़ा होना।

किरिकरी—सज्ञा स्त्री. [सं. कर्नेट] (१) धूल या तिनके का कण, किनका। (२) शान में बट्टा लगाना, अप्रतिष्टा।

किरिकल – संज्ञा स्त्री. [मं. कृकर या कृकल] शरीर की वह वायु जिससे भींक ग्राती है।

किरिकता—संज्ञा स्त्री. [हिं, किलिकता] मछली खानेवाल। एक पत्ती।

संशा पुं.-एक समुद्र।

किरकी—संशा स्त्री [सं. किंकिणी] एक गहना। किरच, किरचक—संशा स्त्री. [सं. कृति केंचो (ग्रस्त्र)] (काँच ग्रादि का छोटा नुकीला दुकड़ा। उ.—छाँड़ि कनक मनि रतन ग्रमोलक, काँच की किरच गही— १-३२४।

किरण—संशा पुं. [सं.] प्रकाश या ज्योति की रेखाएँ, रश्मि, मयूख।

किरणमात्ती—संशा पुं. [सं.] सूं। किरनम— संशा पुं. [सं. कृत्रिम] माया, प्रधंच। किरन— संशा पुं. [सं. किरण] ज्योति या प्रकःश की रेखाएँ किरण।

किरनि—संज्ञा पुं. [सं. किरण] ज्योति-रेखाएँ, मयूख, रिश्म,मरीचि। उ.—तरनि किरन महलनि पर भाँई इहै मधुपुरी नाम—२१५६।

किरपा—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपा] दया, कृपा, अनुग्रह। उ.....। कर जोरे बिनती करी दुरबन-सुवदाई। पाँच गाउँ पाँची जननि किरपा करि दीजै। ये तुमरे कुल वंस हैं, हमरी सुनि लीजै — १-२३८।

किरपान—संज्ञा पुं. [सं. कृपाण] तलवार। किरम—संज्ञा पुं. [सं. कृमि] कीड़ा।

किरमाल—संज्ञा पुं. [सं. करवाल] तलवर, खड्ग। किरराना—कि. अ. [अनु०] (१) कोध से दाँत पीसना।

(२) किर किर शब्द करना।

किरवान, किरवार—संशा पुं. [हिं. करवाल] तलवार, खड्ग।

किरवारा—संज्ञा पुं. [सं. कृतमाल] श्रमलतास का पेड़ । किरिय — संज्ञा स्त्रो. [सं. कृषि] खेती, किसानी । उ.— धर विधित नर करत किरिष हल,बारि, बीज बिथरे। सिंह सन्मुख तउ सीत-उष्न कों, सोई सुफल करे— १-११७।

किराँची, किराचिन—संज्ञा स्त्री. [श्रॅं. केरोच] (१) माल ढोने की गाड़ी। (२) बैलगाड़ी।

किरात-संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली जाति। किरान-क्रि. वि. [ग्र. किरान] पास, निकट।

किराना - संज्ञा पुं. [सं. क्रव्ण] मनाते और सूवा मेवा।

किराया-संशा पुं. श्रि.] भाड़ा।

किरार -संज्ञा पुं. [देश.] एक नीच जाति।

किरावत — संज्ञा पुं. [तु. करावल] लड़ाई का मैदान ठीक करनेवाली सेना जो सब से आगे जाती है।

किरिच, किरिचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. किरच] काँच त्रादि का नुकीला दुकड़ा। उ.—लोक लज्जा काँच किरि-चक स्याम कंचन खानि।

किरिन—संज्ञा पुं. [सं. किरण] किरणें। उ.—(क) सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात— ६-४३। (ख) अनतिह बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास-—२०१८।

किरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रिया] (१) सौगंध, कसम। (२) क्रिया-कर्म।

किरीट—संज्ञा पुं. [सं.] माथे पर बाँधने का एक सूषण जिसके ऊपर कभी कभी मुक्ट भी पहना जाता था। किरीटी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) अर्जुन। (३) राजा।

किरीरा—संज्ञा. स्त्री. [हिं. क्रीड़ा] खेल, क्रीड़ा। किरोध—संज्ञा. पुं. [सं. क्रीध] गुस्सा, क्रोध। किर्च —संज्ञा स्त्री. [हिं. किरच] एक तरह की तलवार। किर्तिनया— संज्ञा पुं. [सं. कीत्तन] कीर्त्तन करनेवाला। किर्ता—ग्रव्य. [सं.] (१) ग्रवश्य, निरचय ही। (२) सचमुच।

किलक-संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना]। किलकने या हर्ष ध्वनि

करने की किया। उ.—गरज किलक श्राघात उठते, मनु दामिनि पावक भार—६-१२४।

कित्तकत—िक. त्रा. [हिं. किलकना] हँसते हैं, हर्षध्विन करते हैं, किलकारी मारते हैं। उ.—(क) निरिष्टि जननी बदन किलकत त्रिदसपित दें तारि—१०-७१। (ख) हरि किलकत जसुदा की किनयाँ—१०-८१। किलकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना] किलकने की किया, किलक।

किलकना — कि. ग्र. [सं. किलकिला] किलकारी मारना, हर्षध्वनि करना।

किलकिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना] किलकारी, हर्ष-ध्वनि। उ.—पुन्य फल श्रनुभवति सुतिहं विलोकि के नँद-घरनि। सूर प्रभु की उर विशे किलकेनि लिलत लरखरनि—१०-२०६।

किलकात—िक. श्र. [हिं. किलकारना] किलकते हैं, हर्ष-ध्विन करते हैं। उ.—िबहरत बिबिध बालक सँग। । । चलत मग, पग बजति पैजिन, परस्पर किलकात। मनौ मधुर मराल छोना बोलि बैन सिहात-१०-१८४। किलकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलक] हर्षध्विन, किलकार कारी। उ.—चिकत सकल परस्पर बानर बीच परी किलकार। तहँ इक श्रद्भुत देखि निसिचरी सुरसा-मुख-बिस्तार—१-७४।

कि. ग्रा.—किलकते हैं, ध्वनि करते हैं। उ.— गर्जत गगन गयंद गुंजरत ग्रम्स दादुर किलकार —रूद्रिं।

किलकारत—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकारना] किलकारी भरते हैं, हर्षध्विन करते हैं। उ.—गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखत नंदरानी। श्रिति पुलकिति गदगद मुख बानी, मन-मन महिर सिहानी—१०-२५३। किलकारना—कि. श्र. [सं. किलकना] उत्साह दिखाना, हर्षध्विन करना।

किलकारि, किलकारी—संशा स्त्री. [हिं. किलकना] हर्ष-ध्वनि, किलकार। उ.—(व) द्रुम गहि उपाटि लिए, दै दै किलकारी। दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—६६६। (ख) रीझ लंगूर किलकारि लागे करन, त्रान रघुनाथ की जाइ फेरी—६ १३८। किलिंकिचत—संज्ञा पुं. [सं.] संयोग श्रंगार का एक हाव जिसमें एक साथ कई भाव नाथिका प्रकट करती है। किलिंकि—कि. ग्र. [हिं. किलकना] किलकारी मारकर, हर्षध्विन करके, ग्रानंद प्रकट करके। उ.—(क) ग्रापु गयौ तहाँ जहँ प्रभु परे पालनें, कर गहे चरन श्रॅगुठा चचोरें। किलिंक किलकत हँसत, बाल सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु ग्रायों भोरें—१०-६२। (ख) हँसे तात मुख हेरिकें, करि पग-चतुराई। किलिंक भटिक उत्तटे परे, देवन-मुनि राई—१०-६६।

किलिकिल—संज्ञा स्त्री, [ग्रनु,] लड़ाई-भगड़ा।
किलिकिला—संज्ञा स्त्री, [सं. क्कल] मछली-खानेवाली
एक छोटी चिड़िया जो पानी से ग्राठ दस हाथ ऊपर
उड़ती हुई बड़ी सतर्कता से मछली को देखती है।
उ.—जैसें मीन किलकला दरस्त, ऐसें रही प्रभु
डाटत—१-१०७।
संज्ञा स्त्री. [सं.] हर्षध्विन।

किलकिलात—िक. हा. [हिं. किलकिलाना] चिल्लाता हुन्ना, भयंकर शब्द करता हुन्ना। उ.— रावन, उठि निरित्त देखि, ह्याजु लंक घेरी। । । गहगरात किलकिलात श्रंधकार ह्यायो। रिव को रथ स्मत नहिं, धरिन गगन छायो— ६.१३६।

किलिकलाना—िक. त्र. [हि. किलिकला] (१) हर्षध्विन करना। (२) चिल्लाना। (३) भगड़ा करना।

किलिकिहि—िक. श्र. [हिं. किलकना] किलकारी मारेगा, हर्षध्विन करेगा । उ.—काकी ध्वजा वैठि कपि किलिकिहि, किहिं भय दुरजन डिरहैं — १-२६।

किलकी—कि. श्र. [हिं. किलकना] किलकारी भरी, हर्षध्विन की। उ.—सुपने हरि श्राये हों किलकी—२७८६।

किलके—िक. श्र. [हिं. किलकना] किलकता है, किल-कारी भरता है, हर्ष ध्विन करता है। उ.—श्राँनंद प्रेम उमंगि जसोदा खरी गोपाल खिलावै। कबहुँक हिलके-िकलके जननी-मन-सुख-सिंधु बढ़ावै--१०-१३०। किलकेया—संज्ञा पुं. [हिं. किलकना] किलकारी भरनेवाला। किलना—कि. ग्र. [हिं. कील] (१) मंत्रों से कीला जाना। (२) वश में किया जाना। (२) गति का रोका जाना।

किलनी—संज्ञा स्त्री, [सं. कीट, हिं. कीड़ा] एक छोटा कीड़ा, किल्ली।

किलबिलाना — कि. य. [हिं. कुलबुलाना] बहुत से की ड़ों या छोटे छोटे जंतुओं का थोड़ी जगह में हिलना डोलना, चंचल होना।

किलवांक—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का घोड़ा। किलवाना—कि. स. [हिं. कीलन] (१) कील जड़ाना। [२] टोना-हुटका कराना। (३) तंत्र-मंत्र सं भूत प्रेत की बाधा रकाना।

किलिबिय-संज्ञा पुं. [सं. किलिबिय] (१) पाप। (२) दोष। (३) रोग।

किला—संज्ञा पुं. [म्र. किला] गड़, दुर्ग। किलोल—संज्ञा पुं. [सं. कल्लोल, हिं. कलोल] कीड़ा, किल्लत—संज्ञा स्त्री. [ग्र.] (१) कमी, तंगी। (१) कठिनता।

किल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कीला] (१) खूँटी, मेख। (२) सिटिकिनी। (३) कल चलाने की मुठिया। किलिवण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप। (२) दोष। रोग।

किवाड़, किवार—संज्ञा पुं. [हि. निवाड़] पट, कपाट, किवाड़।

मुहा०--दीन्हे रहत किवार—द्वार बंद रखता है। उ.—गढ़वे भयी नरकर्पात मोसो, दीन्हे रहत किवार। सेना साथ भाँति भाँतिन की, कीन्हें पाप ग्रपार— १-१४१। लाइ किवार—किवाड़ लगाकर, द्वार बंद करके। उ.—सर पाप को गढ़ दृढ़ कीन्हों, मुहकम लाई किवार—१-१४४।

किवारा—संशा पुं. [हिं. किवार, किवाइ] पट, कपाट, किवाइ । उ.—लंक गढ़ माहिं ग्रावास मारग गयो, चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा—६-७६।

किशिमश—संज्ञा पुं. [फा] सुखायी हुई छोटी दाख। किशिमशी—वि.—किशिमश के रंग का। किशिलय—संज्ञा पुं. [सं.] नया पत्ता, कल्ला।

किशोर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ११ से १४ वर्ष की अवस्था का बालक। (२) पुत्र।

किशोरक—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा बालक।

कि दिन्ध- तंज्ञा पुं. [सं.] सैसूर प्रदेश का प्राचीन नाम।

किंदिमधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] किंदिकध देश की एक पर्वत श्रेणी।

किस—सर्व. [सं. कस्य] 'कौन' का विभक्तिरहित रूप। किसनई—संज्ञा स्त्री. [हिं. किसान] किसानी।

क्सिच—संज्ञा पुं. [य्र. कसवी] कारीगरी, व्यवसाय। किसमिस—संज्ञा पुं. [फा. किशमिश] सुखाया हुत्रा छे।टा यंगूर, किशमिश।

किसमी—संज्ञा पुं. [ग्र. कतवी] मजदूर, श्रमजीवी।

किसलय-संज्ञा पुं. सं. किशलय कोमल पत्ता, कल्ला।

किसान - संज्ञा पुं. [सं. कृपक] खेती करनेवाला।

किसानी - संज्ञा स्त्री. [हिं. किसान] खेती बारी।

किसी—सर्व., वि.'[हिं. किस+ही] (कोई) का वह रूप जो विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है।

किस् — सर्व. [हिं. किसी किसी।

किसोर—वि. [सं. किशोर] ११ वर्ष से १४ वर्ष तक की अवस्था का।

संज्ञा पुं. (१) ११ वर्ष से ६४ वर्ष तक की अवस्था का बालक। (२) पुत्र, वेटा।

किसोरी — संज्ञा पुं. [सं. किशोरी] (१) पुत्री, बेटी। (२) छोटी अवस्था की लड़की। इ. — नयी नेह, नयी गेह, नयी रस, नवल कुँवरि वृपमानु किसोरी — ६८४।

किस्म—संज्ञा पुं. [थ्र.] सेद, प्रकार, जाति, चाल।

किस्सा—संज्ञा पुं. [ग्र.] (१) कहानी, गल्प। (२) बात, हाल, समाचार। (३) भगड़ा-बखेड़ा।

किहिं — सर्व. [हिं. केहि] किस, किसके । उ. - किहिं भय दुरजन डिरहै — १-२९ ।

किहि—सर्व [हिं. केहि] किस। उ.—महा मधुर प्रिय बानी वोलत, साखामृग, तुम किहि के तात— ६-६ ६।

की—प्रत्य. [हिं. की] हिं. विभक्ति 'का' का स्त्री. | उ.— वासुदेव की वड़ी वड़ाई | जगतिपता जगदीस जगतगुर, निज भक्तनि की सहत हिठाई—१-३ |

कि. स. [सं. इत, प्रा. कि] हिं, 'कश्ना' के भूत कालिक रूप 'किया' का स्त्री.। उ,—श्रव भ्रम-भँवर ग्रव्य. ['कि' का विकृत रूप] (१) क्या ? (२) यातो।

की क — संज्ञा पुं. [ग्रनु.] चीख, चिल्लाहट, चीःकार। कीकट — संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगध-प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) घोड़ा।

कीकना—िक. ग्रा. [ग्रनु.] हष -भय में 'की की' शब्द करना।

कीका-संज्ञा पुं. [सं. कीकट] घोड़ा।

की के—संज्ञा पुं. [ग्रनु. हिं. की क] कुक, की क, चिल्ला हट, चीत्कार। उ.—सूरदास प्रभु भलें परे फँद. देउँ न जान भावते जी कें। भरि गंडू क, छिरक दै नैन नि, गिरिधर भाजि चले दे की के —१०-२८७।

कीच—संज्ञा पुं [सं. कच्छ] कीचड, पंक, कर्दम। उ.—
(क) सुनि सुनि साधु-वचन ऐसी सठ, हिठ श्रीगुनिन
हिरानी। धोयी चाहत कीच भरी पट, जल सों हिच
नहिं मानी—१-१६४। (स) भाजन फोरि दही सव
डारची माखन कीच मचायी—१०-३४२। (ग) कुमकुम कज्जल कीच वहै जनु कुच जुग पारि परी—
२८१४।

कीचक—संज्ञा पुं. [सं.] राजा विराट का साला जो उसका सेनापित भी था। पांडवों के अज्ञातवास काल में इसने द्रोपदी पर कुद्दिट डाली थी। इसलिए भीम ने इसे मार डाला था।

कीचड़, कीचर-संज्ञा पुं. [हिं. कीच + इ (प्रत्यः)] (१) गंदी गीली मिटी, पंक। (२) ग्राँख का मैल।

कीजत—िक. स. [हिं. करना] करते हैं, (कार्य) संपादन करते हैं। उ.—(क) जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत ग्रित श्रकुलाए—११६३। (ख) मोहन तेरे श्राधीन भये री। इति रिस कबते कीजत री गुनश्रागरी नागरी—२२५०।

की जिए — कि. स. [हिं. करना] किसी काम के संपादन के लिए निवेदन करना, करिए। उ. — अब मोहिं कृपा की जिए सोइ। फिर ऐसी दुरबुद्धि न होइ — ४-५।

कं जि कि. त्र. [हिं. करना] की जिए, करिए। उ.— (क) मैं-मेरी कबहूँ नहिं की जै, की जै पंच-सहायी—

१-३०२। (ख) दीन-बचन संतिन-सँग दरस-परस कीजै—१-७२। (ग) हिर को दोष कहा करि दीजें जो कीजें सो इनको थोर—ए. ३३५।

कीजेगी—कि. स. [हिं. करना] करेगी, किया जायगा।

उ.—ग्रवसर गएँ बहुरि सुनि सूरज कह कीजेगी देह।

बिछुरत हंस बिरह के सूत्रनि, भूठे सबै सनेह—८०१।

कीजे कि स हिं करना। उ —नप के हाथ

कीजो — कि. स. [हिं. करना] करना। उ.—नृप कें हाथ पत्र यह दीजो, बिनती कीजो मोरि—५८३।

कीट—संज्ञा पुं. [सं.] कीडा मकोड़ा। संज्ञा पुं. [सं. किट्ट] सैल।

कीड़ा— संज्ञा पुं. [सं. कीट, प्रा. कीड़] (१) उड़ने या रेंगनेवाले छोटे-छोटे जंतु। (२) थोड़े दिन का बचा। कीड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कीड़ा] (१) छोटा कीड़ा। (२) चीटी।

मुहा० — कीड़ी तनु ज्यों पाँख उपाई — चिउँटी के पंख निकलना। इस तरह इतराना, क्रोध या गर्व करना कि अंत में मरना ही पड़े। उ. — गिरिवर सहित ब्रजें बहाई। सूरदास सुरपित रिस पाई। कीड़ी तनु ज्यों पाँख उपाई — १०४१।

कीदहु—ग्रव्य. [हिं. किथौं] (१) या, ग्रथवा। (२) या तो, न जाने।

कीधों — क्रि. वि. [सं. किम्, हिं. किधों] ग्रथवा, किधों, केंधों, या, या तो। उ.— (क) निसि के उनीं हे नैन, तैसे रहे दिर दिर। कीधों वहूँ प्यारी की लागी टटकी नजरि—७६२। (ख) हँ स्त कहत कीधों सत-भाव—१२४०। (ग) कीधों कौन कार्य को ग्राये सो पूँ छत हों तो हिं — ८१३ सारा.।

कान—िक. स. [हिं. करना] (१) किया, संपादित किया।

उ.—(क) दुष्टिन दुख, सुख संतिन दीन्हों, नृप-व्रत
पूरन कीन—१-२६। (ख) सुकुट कुंडल किरिन रिव
छिब परम बिगसित कीन—२३५८। (ग) सूरदास
प्रभु बिन गोपालिहें कत विधन एई कीन—२७६८।
(२) रची, लिखी, बनायो, संपादित की। उ.—
नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन—सा. १०६।
कीनना—िक. स. [सं. क्रीणन] खरीदना, मोल लेना।
कीना—संज्ञा पुं. [का.] द्वेष, वैर।

कीनी — कि. अ. [हिं. वरना] (१) की, किया। उ.—
(क) वरज्यो त्रावत तुम्हें त्रसुर-बुद्ध इन यह कीनी —
३-११। (ख) एक मीन ने भन्न कियो तब हरि रखवारी कीनी — ६६३ सारा.। (२) पत्नी बन या।
उ.—बाम बाम जिन सजनी कीनो। तिनकी ऊधी
कहाँ बात बढ़ हम हित जोग जुगुत चित चीनी — सा.
५६। (३) कर दं, नाप ली। उ.—ग्रहुँठ पैग
कसुधा सब कीनी — १०-१२५।

कीने — कि. स. [हिं. करना] किये, कर दिया, किये है। उ.—थित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह ग्राचेत —१-२६।

कीनौ—कि. स. [हिं. दरना] भूत. 'किया' का वज. प्रयोग, किया, संपादित किया। उ.—नर तें जनम पाइ कह कीनौ—१-६५।

संज्ञा पुं, — करनी का फल । उ. -- जो मेरें लाल खिभावें। सो अपनो कीनो पावें — १०-१८३।

कीन्यौ—िक. स. भूत. [हिं. करना] किया। उ.—वाँधन गए, बँधाए श्रापुन, कौन सयानप कीन्यौ—८-१५।

कीन्ही — कि. स. [हिं. करना] 'करना' किया के भूत-कालिक रूप 'किया' का बजमाधिक स्त्री जिंग, की। उ.— मक्ति हित तुम कहा न कियो ? गर्भ परिच्छित इच्छा कीन्ही ग्रम्बरीय-व्रत राखि लियो — १-२६।

कीन्हें—िकि. स. [हिं. करना] (१) 'करना' किया के भूतकालिक रूप 'किये' का व्रजभाषा बहुवचन श्रथवा श्रादर-स्चक रूप, कार्य संपादित किये। उ.—(क) मागध हत्यों, मुक्त नृप कीन्हें, मृतक विश्व सोपिन सो स्विहन को सुख दीन्हें केलि विश्व सोपिन सो सबिहन को सुख दीन्हें—द्र ७ सारा.। (२) बनाये, स्वीकार किये। उ.—कीन्र गुरु चौबीस सीख लै

जबु को दीन्हो ज्ञान—६२ सारा.।
कीन्हों—िक. स. [हिं. करना] 'करना' किया के सूतका-लिक रूप 'किया' का बजभाषा रूप, किया। उ. —(क) रचुकुल रावव कुष्न सदा ही गोकुल कीन्हों थानौ—१-११। (ख) कौरौ-दल नासि नासि कीन्हों जन-भायौ—१-२३। कीन्ह्यौ-कि. स. भूत. [हिं. करना] किया। उ.-बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ-४ ११।

कीमत—संज्ञा पुं. [ग्र. क़ीमत] सूल्य, दाम।

कीमती - वि. [ग्र.] अधिक मूल्य का।

की मिया—संज्ञा स्त्री. [फा.] रसायन, रासायनिक किया। की ये — कि. स. [हिं. करना] (१) किये। (२) बनाये, चुने, स्थापित या नियुक्त किये। उ.—ग्राठा लोक-

पाल तब कीये अपन अपन अधिकार २० सारा.।

कीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोता। (२) बहेलिया। संज्ञा पुं. [सं. कीट] कीडा।

कीरत, कीरति—संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्ति] (१) पुराय। (२) ख्याति, बढ़ाई। उ.—नंदनद्रन भी भीरत सूरज संभावन गावै—सा. ६३। (३) राधा की माता कीर्ति।

कीरतन—एशा पुं० [सं० कीर्तन] (१) कथन, यश-गुण-वर्णन। उ०—जाके गृह में हरि-जन जाइ। नाम-कीरतन करें सो गाइ—६-४। (२) राम कृष्ण-लीला संबंधी भजन या गीत।

कीरति-सुता— संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति + सुता = पुत्री] कीर्ति की पुत्री, राधा।

कीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट] (१) चीटी, कीड़ा। (२) बहुत छोटे छोटे कीड़े।

वीगा—वि० [स.] (१) विखरा या फैला हुआ। (२) छात्रा हुआ, दका हुआ।

कीर्तन — संज्ञा पुं० [सं०] (१) यश - गुण-वर्णन । (२) राम-कृष्ण लीला के भजन, गीत या कथा। (३) भक्ति का एक ग्रंग। उ० – स्रवन, कीर्तन, स्मरनपाद, रत ग्रस्न बंदन दाह-११६ सारा०।

कीर्त्तनिया—संज्ञा पुं० [सं० कीर्त्तन + इया (प्रत्य०)] राम-कृष्ण की जीला का गानेवाला, कीर्त्तन करनेवाला।

की ति. की ति— संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रण्य। (२)
यश, बड़ाई। उ०—तेरो तनु धनरूप महागुन सुन्दर
स्थाम सुनी यह की ति—२२२३। (३) सीता की
एक सखी। (४) राधा की माता का नाम।
की तिमान—वि० [सं०] यशस्वी।

कीर्तिस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी की किर्त्ति की स्मृति-रक्ता में निर्मित स्तंभ। (०) वह कार्य या वस्तु जिससे किसी की कीर्त्ति की स्मृति-रक्ता की जाय। कील—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेख, काँटा, खूँटी। (२) नाक में पहनने का एक छोटा आमूषण, लोंग।

कीलन संशा पुं [सं०] (१) रोक, स्कावट। (२) मंत्र कीलने की किया।

कीलना—कि॰ स॰ [सं॰ कीलन] (१) कील लगाना।
(२) मंत्र का प्रभाव नष्ट करना। (३) वश में करना।
कीलित—वि॰ [हिं० कलना] (१) जिड़त। (२)
निश्चेष्ट।

कीली—संज्ञा स्त्री० [सं० कील] (१) चक के बीच की कील या धुरी जिस पर यह वूमता है। (२) धुरी या कील।

कीश, कीस—संज्ञा पुं० [सं० कीश] (१) बंदर, बानर, खंगूर। उ०—रीछ कीस बस्य करों, रामहिं गहि ल्या के— ६-११८। (२) सूर्य।

कीसा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) थेली (२) जेब। कुँअर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, हिं. कुँवर] (१) लड़का। (२) राजकुमार। (३) धनी का पुत्र।

कुँ अरविरास—संज्ञा पुं [हिं. कुँ अर + विनास] एक तरह का चावल।

कुँ अरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँ अर + एटा (पत्य.)] लड़का, बालक।

कुँ अरि — संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. कुमार]। (१) पुत्री, बालिका। (२) राजपुत्री, राजकुमारी। (३) प्रतिष्ठित पदाधिकारी या धनी की पुत्री। उ.—ठाढ़ी कुँ अरि राधिका लोचन मोचत तह हिर आए ६७५।

कुँ आँ—संज्ञा पुं. [हिं. कूँ आ क्रा, कूँ आ।
कँ आरा—िव. [सं. कुमार] जिसका ब्याह न हुआ हो।
कुँई —संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी, प्रा. कुउई] कुमुदिनी।
कुंकुम —संज्ञा पुं. [सं.] (१) केसर। (२) रोली। (३)
वाख का पोला गोला, कुंकुमा।
कुंकुमा—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] लाख का पोला गोला
जिसमें गुलाल मर कर मारते हैं।

कुंचन संज्ञा पुं. [सं.] सिक्डने या सिमटने की किया। कुंचिका संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धुँघची, गुंजा। (२) ताली, कुंजी।

कुंचित—वि. [सं.] (१) वूँ घरवाले, छल्लेदार। उ.— कुंचित श्रलक, तिलक, गोरोचन, सिस पर हरि के ऐन—१०-१०३। (२) टेढ़ा, बूमा हुआ।

कुँचो, कुंचो—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंचिका] ताली, कुंजी, चाभी। उ.—धर्मवीर कुलकानि कुंची कर तेहि तारी दे दूरि धरघौ री—१४४८।

कुंज — संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जो लतादि से मंडप की तरह हका हो। उ. — जहँ वृन्दावन ग्रादि ग्रजिर जहँ कुंजलता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भूंग गुंजार।

यौ.—कुंजकी खोरी—कुंजगली, पतली गली। उ.—स्रदास प्रमुसकुचि निरिख मुख भजे कुंज की खोरी—१०-२६७।

कुंजक—संज्ञा पुं । [सं.] अन्तः पुर में आने जाने का अधि-कारी द्वारपाल या चोबदार, कंचुकी।

कुंजकुटीर—संशा स्त्री. [सं.] लताओं से विरा हुआ घर। कुंजगली—संशा स्त्री. [हिं.] (१) लताओं बेलों से छायी हुई पगडंडी। (२) गली।

कुंजिबिहारी—संज्ञा पुं. [सं. कुंजिविहारी] (१) कुंजों में विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण। उ.— (क) ग्राम ग्राम्य, लीलाधारी। सो राधा-बस कुंजिबहारी—१०-३। (ख) जबते बिछुरे कुंजिबहारी। नींद न परे घट निह रजनी ब्यथा बिरह ज्वर भारी—२०८२।

कुँ ज़ड़ा—संज्ञा, पुं. [सं. कुंज+ड़ा (प्रत्य.)] तर्कारी बोने-बेचनेत्राली एक जाति।

कंजिबिलासी—संज्ञा पुं० [सं.] कुंजों में विलास करने वाले। (२) श्रीकृष्ण। उ.—इहि घट प्रान रहत क्यों ऊधौ विछुरे कुंजिविलासी—३३०५।

कुँजर—संशा पुं. [सं.] (१) हाथी। (२) बाल। वि०—उत्तम, श्रेष्ट।

कुंजरारि—संज्ञा. पुं. [सं. कुंजर+ग्रिर] हाथी का शत्र, सिंह।

कुंजल—संशा पुं. [सं.] हाथी, गज । उ. - ज्यों सिवछ्वित

दरसन रिव पायो जेहि गरिन गरयो। सूरदास प्रभु रूप थक्यो मन कुंजल पंक परयो—१४८९।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुंज में विहार करने वाला पुरुष। (२) श्रीकृष्ण।

कुंजित - वि. [सं.] कुंजों से युक्त।

कुं जी — संज्ञा स्त्री. [सं. कु जिका] (१) चाभी, ताली। (२) (ग्रंथ की) टीका।

कुंट—[सं.] (१) जो तेज न हो, गुठला, कुंद। (२) जिसकी बुद्धि तेज न हो, मूर्ख।

कुंठन— संज्ञा स्त्री. [सं.] हिचक, कुंठित होने की किया। कुंठित—वि. [सं.] (१) जिसकी धार तेज न हो। (२) मन्द, निकस्मा।

कुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिन होत्र आदि करने का गढ़ा अथवा मिट्टी या घानु का पात्र जिसमें आग जलायी जाती है। उ.—(क) जज पुरुप प्रसन्न सब भए। निकसि कुंड तें दग्सन दए—४-५। (ख) आहुति जज्ञ कुंड में डारि। कह्यों पुरुष उपजें बल भारि। (२) चोड़े सुँह का बरतन। (३) छोटा तालांब। (४) पूला, गट्ठा। (४) लोहे का टोप (६) हाथी का होदा।

कुँड्रा—संज्ञा. पुं. [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा। (२) लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा, इंड्रवा, गेंड्रिं। कुँड्रा—संज्ञा. पुं. [सं. कुंड] कुंडा, मटका।

कुँडरी—संज्ञा. स्त्री. [सं.] (१) जन्म के अहां की स्थिति बतानेवाला चका (२) खँकरी, डफली। उ.—एक पटह एक गोमुख एक आवंक एक कालरी एक ग्रमृत एक कुंडरी एक एक डफ कर धारे—२४२४।

कुंडल—संज्ञा पुं. [सं०] (१) कानों में पहनने का सोने-चाँदी का एक श्राभूषण। उ.-परम रुचिर मनि-कंठ किरनिगन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी—१-६६। (२) गोरखनाथ के अनुयायियों का कान में पहनने का गोल श्राभूषण। (३) वह मंडल जो बदली में चंडमा या सूर्य के किनारे दिखायी देता है। (४) (साँप की) गोल फेरों में सिमटकर बैठने की स्थिति। कंडलिनी—संज्ञा स्त्री [सं] श्रारीय का एक किनार

कुंडिलिनी—संशा स्त्री. [सं.] शरीर का एक कित्पत श्रंग जो मूलाधार में सुपुम्ना नाड़ी के नीचे साहे तीन कुंडिली में घूमा माना गया है। कुंडिलिया—संशास्त्री० [सं० कुंडिलिका] दोहे और रोला के योग से बनानेवाला एक छंद।

कुंडली—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कुंडलिनी। (२) ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जो जन्मकाल में प्रहों की स्थिति स्वित करने के लिए बनाया जाता है। (३) गेंड्री। (४) साँप के गोलाकार बैठने का ढंग।

कुंडा—संज्ञा पुं० [सं. कुंड] बड़ा मटका। संज्ञा पुं० [सं. कुंडल] दरवाजे की बड़ी कुंडी, साँकल।

कुंडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमंडल । (२) पथरी, कुंडी, प्याली । (३) ताँचे का हवन-कुंड।

कुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं. कुंड] तसले या कंडलदार थाली की तरह का बड़ा गहरा बर्तन। उ.—पूँगी फल-जुत जल निरमल धरि, ग्रानी भरि कुंडी जो कनक की। खेलत जूप सकल जुवतिनि में, हारे रघुपति, जिती जनक की— ६-२५।

संज्ञास्त्री [हिं. कुंडा (१) जंजीर की कड़ी।

कुंडोद्र—संज्ञा पुं० [सं. कुंड+उदर] शिव जी का एक गर्या।

कु त—संज्ञा पुं० [सं.] (१) भाला, बरछी। उ.—ठौर-ठौर श्रभ्यास महावल करत कुंत-ग्रसि-बान--१-७५। (२) क्रर भाव, श्रनख।

कुंतल — संज्ञा पुं. [सं.] (३) सिर के बाल, केश। उ.—
(क) कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भूव नैन विलोकनि
बंक-१० १५४। (ख) स्रवन मनि ताटंक मंजुल कुटिल
कुंतल छोर। (२) प्याला। (३) स्त्रधारा।
(४) वेश बदलनेवाला पुरुष, बहुरूपिया। (४) जो।
(६) घास।

कुंता, कुंति, कुंती—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंती] राजा पांडु की स्त्री। यह शूरसेन यादव की कन्या श्रीर वसुदेव की बहन थी। इस नाते श्रीकृष्ण की यह बुश्रा थी। भोज देश के राजा कुंतिभोज इसके चाचा थे श्रीर उन्होंने इसे गोद लिया था। दुर्वासा ऋषि की सेवा करके इसने पाँच मंत्र प्राप्त किये थे जिनके द्वारा यह देवताश्रों का श्राह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी। मंत्रों की सत्यता जाँचने के लिए इसने कुमारी ग्रवस्था में ही सूर्य से 'कर्ण' को उत्पन्न किया था। विवाह के बाद धर्म, पवन ग्रीर इंद्र द्वारा कमशः युधिष्टिर, भीम ग्रीर ग्रजुंन इसके जत्यन्न हुए थे। संज्ञा स्त्री. [सं० कुंत] बरझी, भाला।

कुंद-संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पौधा जिसमें मीठी सुगंध वाले सफेद फूल लगते हैं। इसकी किलयों से दाँतों की उपमादी जाती है। उ.-(क) छित ब्याकुल भई' गोपिका हुँ दिति गिरिधारी। बूफिति हैं बन वेलि सौं देखे बनवारी '''। खूफा महवा कंद सों कहें गोद पसारी। बकुल बहुलि बट कदम पे ठाही ब्रजनारी—१८२२। (ख) चित्रुक मध्य मेचक रुचि उपजत राजित बिंद बुंद रदनी—ए० ३१६। (२) कतेर का पेड़। (३) कमल। (४) विष्णु। (४) खराद।

कुंदन—संज्ञा पुं. [सं. कुंद = श्वेत पुष्प] स्वच्छ स्वर्ण, बिद्धा सोना। उ — ग्रासन एक हुतासन वैठी, ज्यों कुंदन-ग्रहनाई। जैसें रिव इक पता घन भीतर बिनु माहत दुरि जाई—६-१६२।

(१) शुद्ध, बिह्या। (२) सुंदर, नीरोग। कुंदनपुर—संज्ञा पुं. [सं. कुंडिनपुर] विदर्भ देश का एक नगर जिसके राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर लाये थे। उ.—कुंदनपुर को भीषम राई—१० उ.-७।

कुंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु। कुंद्रा—संज्ञा पुं [फ़ा,] (१) लकड़ी का लहा। (२) लकड़ी का वह छोटा दुकड़ा जिस पर रखकर लकड़ी गढ़ी जाती है। (३) बन्दूक का पिछला भाग। (४) दस्ता,

सूठ। (६) बड़ी म्गरी।

कुंदी—संज्ञा स्त्री. [हि. कुंदा] (१) कपड़ों को मुगरी से कूटना। (२) खूब मारना पीटना।

कुंदुर—संज्ञा पुं. [सं.] पीला गोंद। कुंदेरना—सज्ञा पुं. [सं. कुंदलन = छोदना] खुरचना, छीलना।

कुँ देरा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँदेरना + एरा (प्रत्य.)] खरादने का काम करनेवाला ।

कंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, घट। उ.—सम-स्वेद

सीकर गुंड मंडित रूप श्रंबुज कोर | उमँगि ईषद यौं सम तज्यौ पीयूप कुंम हिलोर—ए. ३१०। (२) हाथी के सिर के दोनों श्रोर का उभड़ा हुश्रा भाग । उ.— (क) बाज सौं टूटि गजराज हाँकत परयौ मनौ गिरि चरन धरि लपिक लीन्हे । बारि बाँधे बीर चहुँधा देखत ही बज्र सम थाप बल कुंम दीन्हे—२५६०। (ख) तब रिस कियौ महाबत भारी गा। श्रंकुस राखि कुंम पर करच्यौ हलधर उठे हँकारी—२५६४। (३) दसवीं राशि। (४) प्राणायाम के तीन भागों में एक। (४) एक पर्व जो प्रति बारहवें वर्ष होता है। (६) एक राग।

कुं भक—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणायाम के तीन भागों में से एक जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोका जाता है। उ.—जोग विधि मधुवन सिखि ब्राई जाइ""। सब ब्रासन रेचक ब्रह पूरक कुंभक सीखे पाइ—३१३४।

कुं भकरन - संज्ञा पुं. [सं. कुंभकर्ण] एक राचस का नाम जो रावण का भाई और बड़ा बली था। प्रसिद्धि है कि यह छह महीने सोता था।

कुं भकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] रावण का भाई जो छः महीने तक सोता था।

कुं भकार - संशा पुं. [सं.] कुम्हार।

कुंभज, कुंभजात, कुंभयोति, कुंभसंभव—संज्ञा पुं. [सं.] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घड़े से हुई थी।

कुंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।

कुं भार-संशा पुं. [सं. कुंभकार] कुम्हार।

कुंभिका — संशा स्त्री. [सं.] (१) जलकुंभी। (२) वेश्या। (३) कायफल।

कुँभिलाना — कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] (१) ताजा न रहना, मुरमा जाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति मलीन होना, सुस्त हो जाना, उदासी छाना। कुँभिलानी — कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] (१) कुम्हला गयी, मुरमा गयी। उ.—(क) हरबराइ उठि धाइ प्रात ते विधुरीं श्रलक श्रम्ह बसन मरगजे तैसीये कुँभिलानी मात-११-३। (ख) प्रफुलित कमल गुंजार करत श्रिल पहु फाटी कुमुदिनि कुँभिलानी — २२४८। (२) उदास हो गयी, सुस्त हो गयी। उ.—(ख) निटुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी। " "।
मनो तुषार कमलन परयौ ऐसे कुँ भिलानी— पृ. ३४१।
(ग) ऊधौ जिय जानी मन कुभिलानी कृष्न संदेस
पठाये— ३४४१।

कुँभिलानो, कुँभिलानो—िक. श्र. [हिं. कुम्हलाना] कुम्हला गया, उदात हो गया, प्रभाहीन हो गया। उ.—श्रित रिप्ति कृत है रही किसोरी करि मनुहारि मनाइए। ""। छूटे चिहुर बदन कुँभिलानो सुहथ सँवारि बनाइए— १६८८।

कुँभिलाहि—िक. त्र. [हिं. कुम्हलाना] सूख जाती है,
मुरमा जाती है। उ.—जल में रहहि जलिह ते
उपजिह जलिही बिन कुँभिलाहि—२७५७।

कुंभी-संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

संशा स्त्री.— (१) बंसी। (२) एक नरक का नाम, कुंभीपाक।

कुंभीनस—हंशा पुं. [सं.] (१) साँप। (२) रावण। कुंभीपाक—संशा पुं. [सं.] एक नरक जिसमें मांसाहारी व्यक्ति खाँखते हुए तेख में डाला जाता है।

कुंभीपुर—संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर का एक नाम, पुरानी दिल्ली।

कुंभीर—संज्ञा पुं. [सं.] नाक नामक जलजंतु। कुँवर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार] राजपुत्र, राजकुमार। उ.— इक दिन नृपति सुरुचि-गृह ग्रायो। उत्तम बुँवर गेद बैठायो—४-६।

कुँविरे—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. कुँवर] (१) कुमारी। (२) राजकन्या,प्रतिष्ठित व्यक्ति की कन्या। उ.—(क) गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही, हृदय दुहुनि छिपाइ। सूर प्रभु के बचन सुनि-सुनि रही ुँविर लजाइ—६७६। (ख) नयो नेह, नयो गेह, नयो रस, नवल बुँविर वृष्मानु-किसोरी—६८५।

कुँवरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँवरि] बेटी, पुत्री । उ.— स्रदास बिल-बिल जोरी पर, नंद-कुँवर बृषमानु-कुँवरिया—६८८।

कुँवरी - संज्ञा स्त्री. [हिं. बुँवरि] कुमाी, कुँवरि। उ.— बुँवरी ऋहि जसु हेमखंम लगि ग्रीव कपोत विसारी—२३०४। कुँवरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँवर + एटा (प्रत्य.)] छोटा लड़का, बचा।

कुँवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. कुग्राँ] कूप, कुग्राँ। कुँवार, कुँवारा—वि. [सं. कुमार, प्रा. कुँवार] जिसका ब्याह न हुग्रा हो।

कुँ हकुँ ह—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर, जाफरान।
कु—उप. [सं.] एक उपसर्ग जो शब्द के आदि में जुड़कर
'नीच', 'बुरा' आदि का अर्थ देता है, जैसे कुपुत्र,
कुसंग।

संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

कुर्श्रक—संज्ञा पुं. [सं. कु+श्रंक] (१) बुरे श्रंक। (२) बुरा भाग्य, दुर्भाग्य।

कुआँ—संज्ञा पुं. [सं. कूप, प्रा. कूव] कूप। कुआँर, कुआर—संज्ञा पुं. [प्रा. कुँमार, हिं. क्यार] भादों के बाद का महीना।

कुई — संज्ञा स्त्री. [हिं. कुइयाँ] छोटा कुत्राँ। संज्ञा स्त्री. [सं. कुत्र] कुमुदिनी।

कुइयाँ—संशा स्त्री. [हिं. कुग्राँ] छोटा कुग्राँ। कुकड़ना—कि. ग्रा. [हिं. मिकुड़ना] सिकुड़ जाना, संक्षित होना।

कुकड़ी—संशा स्त्री. [सं. कुक्कुटी] कच्चे सूत की अएटी। कुकनू—संशा पुं. [यू.] एक पत्ती।

कुकरना — कि. त्र. [हिं. विकुड़ना] सिकुड़ जाना।
कुकरी — संशा स्त्री. [सं. कुक्कुट, पु. हिं. कुकड़ा] मुरगी।
कुकिप — संशा पुं. [सं. कु — बुरा] दुष्ट किप। उ. —
संभु की सपथ, सुनि कुकिप कायर कुपन, स्वास
त्राकास बनचर उड़ाऊँ – ९-१२६।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० कु = बुरा + कर्म] बुरा या खोटा काम, दुष्कर्म।

कुक्रमी—वि० [हिं० कुक्मे] बुरा काम करनेवाला, पापी। कुक्रवि—संश्रा पुं० [सं० कु=बुरा + किव] बुरा किव, पापी किव, ऐसा किव जिसने कोई पुग्य कार्य न किया हो । उ०—सूरदास बहुरी वियोग गति कुक्रवि निलज हो गावत—३३६२।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चित्रय जाति। (२) कुत्ता। (३) एक साँप का नाम।

कुकुरमुत्ता - संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर=कुत्ता + मृत] एक बदबुदार बनस्पति।

कुक्ही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुम, प्रा० कुक्कुह] बनमुर्गी। कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गी। (२) चिनगारी। (३) जटाधारी।

कुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

कुत्त—संज्ञा पुं० [सं०] पेट, उदर।

कुत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेट। (२) कोख। (३) गोद। कुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुत्तेत्र, प्रा० कुखेत] बुरा स्थान, कुठाँव। उ०—चारों श्रोर ब्यास खगपति के भुंड भुंड बहु श्राये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल श्रंग कुन्हिलाये।

कुख्यात—वि. [सं. कु+ख्यात] बदनाम, निंदित।
कुख्याति - संज्ञा स्त्री. [सं.] बदनामो, निंदा।
कुगंधि - संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी गंध, दुर्गंध। उ०—हंस
काग को भयी संग ।...। जैसे कंचन काँच संग
ज्यों चंदन संग कुगंध। जैसे खरी कपूर दोउ यक मय
यह मइ ऐसी संधि—२९१२।

कुगति—संशा स्त्री. [सं.] बुरी दशा, दुर्गति । कुगहिन – संशा स्त्री. [सं. कु+ग्रह्ण] वह हठ या ग्राग्रह जो उचित न हो।

कुघा—संशा स्त्री. [सं. कुित्त] श्रोर, तस्फ, दिशा। कुवात—संशा पुं० [सं. कु+हिं. घात] (१) हुरा श्रवसर या समय। (२) बुरी चाल, छुल-कपट।

कुच—संशा पुं. [सं.] स्तन, छाती।
वि.—(१) सिमटा हुआ, संकुचित। (२) कंजूस।
कुचकुचा—वि. [अनु. कुचकुच] कोंचा या मसला हुआ।
कुचकुचाना—कि. स. [अनु. कुचकुच] बारबार कोंचना
या चुमाना।

कुचक्र—संज्ञा पुं. [सं] षड्यंत्र, छलकपट। कृचक्री—संज्ञा पुं. [सं. कुचक्र] छली, षड्यंत्रकारी। कुचना—कि. अ. [सं. कुंचन] सिकुड्ना, सिमिटना, संकुचित होना।

कि. श्र. [हिं. कूँचना] दब जाना, कुचल जाना। कुचर – संज्ञा पुं० [सं.] (१) श्रावारा। (२) कुकर्मी। (३) दूसरे की निंदा करनेवाला।

कुचलना—िक. स. [हिं. कूँचना] (१) दबाना, मसल देना। (२) पैरों से रेंदिना।

कुचाल—संशा स्त्री. [सं. कु+हिं, चाल] (१) बुरा चाल-चलन। (२) खोटापन, दुष्टता। कुचालिया, कुचाती—वि. [हिं. कुचाल] (१) जिसका श्राचरण श्रच्छा न हो। (२) जिसकी नीति ठीक न हो, दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारी। उ.—जिनि हति स हट, प्रलंब, तृनावृत, इंद्र-प्रतिज्ञा टाली। एते पर नहिं तजत अघोड़ी कपटी कंस कुचाली -- २५६७। कुचाह—संशा स्त्री. [सं. कु + हिं. चाह] बुरी या अशुभ

बात, अमंगलसूचक समाचार।

कुचिल-वि. [हिं. कुचैहा] मैला, गंदा। उ.-कहो कैसे मिले स्थाम संघाती। कैसे गए सुवंत कौन विधि परसे हुते बस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-७२।

कुचिलगे — कि. स. [हिं. कुचलना] दब गया, मसल गया। कुची-संज्ञास्त्री. [हिं. कुंजी] (१) कुंजी, ताली। (२) कूचा, ब्रुश।

कुचील-वि. [सं. कुचेल] मैले वखवाला, मैला-कुचैला, मिलिन। उ.—(क) हों कुचील, मितहीन सकल विधि, तुम कृपालु जगजान—१-१००। (ख) कजल कीच कुचील किये तट ऋंचर, ऋधर कपोल। थिक रहे पथिक सुयश हित ही के हस्त चरन मुख बोल-३४५४। (ग) कुटिल कुचील जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि धर त्रानी—३०८६। (घ) दुर्बल बिप्र कुचील सुदामा ताको कंठ लगाये— ८१८ सारा.।

कुचीलनि - वि. बहु. [सं. कुचेल, हिं. कुचील + नि (पत्य.) मैले-कुचैलों से, मलिन लोगों से। उ.— साधु-सील, सद्रूप पुरुष की, अपजस बहु उचरती। श्रीधड़ - श्रसत-कुचीलिन सौं मिलि, मायाजल मैं त्तरतौ-१२०३।

कुचीला-वि. [हिं. कुचील] (१) मैला, गंदा। (२) मैले या गंदे वस्रवाला।

कुचेल-संज्ञा पुं. [सं.] मैला कपड़ा।

वि.—(१) मैला, गंदा। (२) मैले कपड़ेवाला। कुचेष्ट—वि. [सं.] (३) बुरी ग्राकृतिवाला। (२) बुरी चालबाजी।

कुचेष्टा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुरी चाल या चेष्टा। (२) बुरी श्राकृति-प्रकृति।

कुचैन-संज्ञास्त्री. [सं.कु + हिं.चैन] व्याकुलता, श्रशांति। कुचैल, कुचैला—वि. [हि. कुचैला] (१) जिसका कपड़ा मैला हो। (२) मैला, गंदा। उ.—पट कुचैल, दुरवल द्विज देखत, ताके तंदुल खाये (हो)। संपति दे वाकी पतिनी कौं, मन-ग्रिभलाष पुराए (हो) - १-७।

कुच्छि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुच्चि] (१) पेट। (३) कोख। कुच्छित-वि. [सं. कुत्सित] बुरा, नीच। कुछ-वि. [सं. किंचित, पा. किंची, पू. हिं. किछु] थोड़ा, जरा।

सर्व. [सं. कश्चित, पा. कोचि] (१) कोई (वस्तु), थोड़ी (वस्तु)। उ. - जब वह विप्र पढ़ावें कुछ कुछ सुनके चित धरि राखें—११० सारा.। (२) कोई (विशेषता या बड़ी बात)।

मुहा० - जो कुछ कर सो थोरा - सब कुछ करने की सामर्थ्य है, शक्ति या सामर्थ्य इतनी अधिक है कि बड़े से बड़ा काम करना भी उनके लिए साधारण बात होगी। उ-इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी। सूरदास जसुदा की नंदन, जो कछु करें सो थोरी--१०-२६३।

कुजंत्र—संज्ञा पुं. [सं. क्यंत्र] टोना, टोटका। कुज — संशा पुं. [सं.] (१) मंगल ग्रह । उ. — भाल बिसाल ललित लटवन मिन, बालदसा के चिक्र सुहाए । मानौ गुरु सनि-कुज आगें वरि, सिहिं मिलन तम के गन आए-१०-१०४। (१) पेड़। (१) (कु = पृथ्वी) पृथ्वी का पुत्र नरकासुर।

वि. - लाल रंग का।

कुजा-संज्ञा स्त्री. [सं. कु = पृथ्वी + जा] पृथ्वी की पुत्री सीता।

कुजात, कुजाति, कुजाती—संशा स्त्री. [सं. कुजाति] बुरी या नीच जाति।

वि.—(१) बुरी जाति का। (२) पतित या नीच, दीन-दुखी या अनाथ। उ.—कही कैसे मिले स्याम संघाती। कैसे गये सु कंत कौन विधि परसे हुए बस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-८७।

कु जोग-संज्ञा पुं. [सं. कुयोग] बुरा मेल या संबंध, कुसंग। (२) बुरा संयोग या ग्रवसर।

क जोगी - वि. [सं. कुयोगी] जो संयमी न हो। क्जा—संज्ञा पुं. [फा. कूजा=प्याला] (१) पुराना मिट्टी का प्याला। (२) सिट्टी के कुज्जे में जमाई हुई मिश्री।

कुटंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना + त (प्रत्य.)] (१) कुटाई, पिटाई। (२) मार, चोट।

कुट-संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर (२) किला, गड़। (३) कलश।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुष्ठ] एक माड़ी।

संज्ञा पुं. [सं. कूट=कूटना] कुटा हुआ अंश।
कुटका—संज्ञा पुं. [हिं. काटना] कटा हुआ छोटा ठुकड़ा।
कुटज—संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली चृत्त, कुरैया, कची।
उ.—कुटज कुमुद कदंव कोविद कनक आरि सुकंज।
केतकी करवील बेलड बिमल बहु बिधि मंत-२८२८।

कुटना—संज्ञा पुं. [हिं. कुटनी] (१) नायक का दूत । (२) परस्पर भगड़ा करनेवाला।

संज्ञा पुं. [हिं. कुटना] कूटने का हथियार। कि. ग्र.—कूटा जाना।

कुटनी—संज्ञा स्त्री. [तं. कुट्टनी] (१) नायक की दूती। भगड़ा करनेवाली।

कुटिया—संज्ञा स्त्री. [मं. कुटी] भोपड़ी।

कुटिल — वि. [सं.] (१) कपटी, छली, शठ, खला। उ.—

(क) साँचे सूर कुटिल ये लोचन ब्यथा मीन छिषि
छानि लयी-२५३३। (ख) मन्नयुद्ध प्रति कंस कुटिल
मित छल किर इहाँ हँकारे—२५६६। (ग) रिपु
भ्राता जन्यो ज विभीषन नििस्चर कुटिल सरीर-२६०
सारा.। (२) वक्र, टेड़ा। उ.—कुटिल भ्रूपर्र तिलक
रेखा सी असिलिनि सिखंड —१-३०७। (३) घूमा
या बल खाया हुआ। (४) छल्लेदार, घुँघराला। उ.
—लला हों वारी तेरें मुख पर। कुटिल अलक मोहन
मन विहसनि, भृकुटी विकट लिति नैननि पर-१०६३। (ख) कुटिज कुंतल मधुपनिल मनु कियो चाहत
लरनि—३५१।

कुटिलता—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) टेढ़ापन। (२) छल, कपट। कुटिलाई—संज्ञास्त्री. [हिं. कुटिल] कुटिलता।

कुटो—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पर्णाताला, कुटिया, क्रोपड़ी। (२) घास-फूस का घेरा। उ.—तुम लिछ-मन या कुंज-कुटी में देखी जाइ निहारि। कोउ इक जीव नाम मम ले ले उठत पुकारि-पुकारि—६-६५। कुटीर — संज्ञा पुं. [सं. कुटी] कुटी। उ.— स्रदास स्वामी श्रह प्यारी बिहरत कुंज कुटीर — १५६१।

कुटुँ ब, कुरुम्ब – संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुनबा। कुटुम्बी—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार या कुटुम्ब के अन्य प्राणी।

खुर्म—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुटुम्ब । उ.— उग्रसेन सब कुटुम लों ता ठौर सिधायो — १० उ.-३। कुटेक—संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा + हिं. टेक] अनुचित बात पर ग्रह्ना।

कुटेब—संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा + हिं. टेव = श्रादत] खराब या बुरी श्रादत । उ — नैनन यह कुटेव पकरी। लूटत स्थाम रूप श्रापुन ही निसि दिन पहर घरी —ए. ३३०।

कुटौनी— संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना+ग्रौनी] (१) धान कूटने का काम। (२) धान कूटने की मजूरी।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटनी] दूती, कुटनी। कुट्टमित—संज्ञा पुं. [सं.] सुख-विलास के समय खियों का दुख या कष्ट का बनावटी भाव जो विशेष प्रिय लगता है।

कुठाँउ, कुठाँय, कुठाँव—संज्ञा स्त्री. [मं. कु+हिं. ठाँव]
(१) बुरी ठौर या जगह। उ० — यह सब क लियुग
को परमाव, जो नृप को मन गयो कुठाँव। (२)
संकट में, विपत्ति के स्थान में। उ० — जो हिर ब्रत
निज उर न धरेगो। तो को अस त्राता जु अपन करि,
कर कठावँ पहरेगों—१-७५।

कुठाट—संश पुं. [सं. कु = बुर:+हिं. ठाट] (१) बुरा साज-सामान। (२) बुरा विचार, प्रबंध या आयोजन। कुठाय—संश स्त्री. [हिं. कुठाँव] बुरा ठौर।

कुठार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लकड़ी काटने की कुल्हाड़ी। उ०—जद्यपि मलय बच्छ जड़ काटे, करकुठार पकरे। तक सुभाव न सीतल छाँड़े, रिपु - तन ताप हरे—१-११०। (२) परशु, फरसा। (३) नाश करनेवाला व्यक्ति।

कुठारपाणि, कुठारपानि—संज्ञा पुं. [सं. कुठार+पाणि] वह जिसके हाथ में परशु या फरसा हो, परशुराम। कुठारावात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल्हाड़ी की चोट। (२) गहरी चोट।

कुठारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कुल्हाड़ी। (२) नाश करने वाली स्त्री।

कुठाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोना-चाँदी गलाने की घरिया।

कुराहर—संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. ठाहर = जगह] (१) बुरी जगह। (२) वेमीका।

कुठिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कोष्ठ, प्रा. कोट्ठ] मिट्टी का बड़ा बरतन जिसमें अनाज रखा जाता है।

कुठौर—संज्ञा पुं [सं. कु + हिं. ठौर] (१) बुरा स्थान।

कुड़कुड़ाना—कि.श्र. [श्रनु.] मन ही मन कुढ़ना या चुब्ध होना।

कुड्बुड़ाना—कि. ग्र. [ग्रनु.] मन में कुड़ना। कुड़मज़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूल की कली। (२) एक नरक का नाम।

कुडरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) गेंडुरा, इँडुरी । (२) नदी के घुमाव के बीच की जमीन ।

कुडील—वि. [सं. कु + हिं. डील] भदा, भोंडा। कुढंग—संज्ञा पुं. [सं. कु + हिं. ढंग] बुरी रीति या चाला।

वि. (१) बुरा, बेढंगा। (२) बुरी तंरह का। दुढंगा—वि. [हिं. कुढंग] (१) जो काम का ढङ्ग न जाने, उर्जडु। (२) भद्दा।

कुढंगी—वि. [हिं. कुढंग] बुरी चाल का, जिसका ग्राचरण ठीक न हो।

कुढ़, कुइन—संज्ञा स्त्री. [सं, कुढ़, प्रा. कुड्ढ] भीतरी कोध या दुख।

कुट्ना—िक. श्र. [हिं. कुट्न] (१) मनही मन खीमना या चिट्ना। (२) ईप्यों या डह करना। (३) दुखी होना, मन मसोसकर रह जाना।

कुढब - वि. [सं. कु + हिं. ढब] (१) बुरे ढंग का। (२) कठिन।

संज्ञा पुं.—बुरा स्वभाव, बुरी प्रकृति।

कुटर—वि. [सं. कु + हिं. दर] (१) जो ठीक ढला न हों। (२) भरा।

कुढ़ाना—ि कि, स. [हिं. कुढ़ना] दूसरे का जी दुखाना। कुगा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेला। (२) बचा। कुतका—सज्ञा पुं. [हिं. गतका] (१) डंडा, सोंटा। (२) वह डंडा, जिससे भाँग घोटी जाय।

कुतना—िक. श्र. [हिं. कृतना] कृता जाना। कुतरना—िक. स. [सं. कर्तन=कतरना] (१) (कुछ भाग) दाँत से काटना। (२) (कुछ भाग) निकाल लेना। कुतरा—संजा. पुं. [हिं. कुत्ता] कुता।

कुतर्क—संज्ञा. पुं. [सं.] व्यर्थ का तर्क, बकवाद। कुतर्की—संज्ञा पुं. [सं.] व्यर्थ की बात करनेवाला। (२) बकवादी।

कुतवार—संज्ञा पुं [हिं. कोतवाल] कोतवाल । कुतवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोतवाल] (१) कोतवाल का काम । उ.—सेस न पायौ श्रंत जाकी फनवारी। पवन बुहारत द्वार सदा संकर कुतवारी—११२८।

(२) कोतवाली।
कुतवाल—संज्ञा पुं. [सं. कोटपाल, हिं. कोतवाल]
पुलिस का एक बड़ा कर्मचारी जिनके अधीन कई
थाने और थानेदार रहते हैं, कोतवाल। उ.—दगाबाज
कुतवाल काम रिपु, सरबस लूटि लयो—१-६४।

कुताही—संज्ञा स्त्री. [फा. कोताही] कमी, कसर। कुतुक—संज्ञा पुं. [हिं. कौतुक] इच्छा।

कुतृह्ल संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रीड़ा, आनंद, आमोद-प्रमोद। उ.—(क) उर मेले नंदराई के गोप-सखनि मिलि हार। मागध-बंदी-सूत आति करत कुतृहल दार् —१०-२७। (ख) साँभ कुतृहल होत है जहँ तहँ दुहियत गाय-४६२। (२) प्रबल इच्छा, उत्कंठा। (३) कोतुक। (४) अचरज, अचंभा। (५) एक आभूषण।

कुतुहली—वि. [सं. कुत्रहत्तिन्] (१) तमाशा देखनेवाला। (२) कौतुकी।

कुत्ता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) श्वान, कृकुर। (२) नीच मनुष्य।

कुत्स- संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि।

कुत्सन— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निंदा। (२) नीच या बुरा काम।

कुत्सा—संज्ञा स्त्री [सं.] निंदा।

कुत्सित-वि. [सं.] निंदित, नीच, बुरा।

कुथ - संज्ञा पुं. [सं,] (१) कथरी, कथा। (२) हाथी की फूल। (३) रथ या पालकी का स्रोहार। (४) एक कीड़ा।

कुद्कता—िक. ग्र. [हिं. कूदना] कूदना-फाँदना। कुद्रत—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शक्ति, सामर्थ्य। (२) प्रकृति, माया। (३) रचना, कारीगरी। कुद्रा—संज्ञा पुं. [हिं. कुदाल] कुद्रार। कुद्रसन—िव. [सं. कुदर्शन] कुरूप, भद्दा। उ.— (क) कामी, कृपिन, कुचील, कुद्रसन, को न कृपा विसार्यो। तार्तं कहत दयाल देवमिन, काहें सूर विसार्यो।—११०१। (ख) वामी, कुटिल, कुचील कुद्रसन, त्र्रपराधी, मितिहीन—१०११। कट्यान—िव [स] जो देखने में श्रद्यान लगे।

कुदर्शन—वि. [स.] जो देखने में अच्छा न लगे। कुदलाना—कि. अ. [हि. कूदना] उछलना-कूदना। कुद्रांव—संज्ञा पुं. [सं. कु=चरा+हि. दांव] (१) बुरा दाँव-घात, घोखा। (२) कष्ट की स्थिति। (३) बुरा स्थान।

ऋदाई—वि. [हिं. वृदाँव] दाँवघात करनेवाला, छली-कपटी।

शृदाउँ, कुदाउ— संज्ञा पुं. [हिं. कुदाँव] कुघात, कुदाँव। कुदान— सज्ञा पुं. [सं.] (१) बुरा या अनुचित (धन का) दान। (२) बुरे पात्र को दान।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कूदना] (१) कूदने की किया। (२) कूदने की दूरी।

कुदाना - कि. स. [हिं. कूदना] कूदने को प्रेरित करना। कुदान-संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. दाम] खोटा सिक्का या रुपया।

कुदाय— संज्ञा पुं. [हिं. कुदांव] दाँव-घात, छला-कपट।
कुदार, कुदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुदाल] जमीन खोदने
का एक ग्रोजार 13.—तनु गिरि जानि ग्रानि ग्रवनी
इहि उडि भीत रहे। गमन वान्ह छन छन तु वाम
ससि किरनि कुदार गहे—रूष्ट्र

कुदाल, कुदाली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुद्दाल] जमीन खोदने या गोड़ने का ग्रीजार।

कुदिन-संज्ञा पुं. [सं.] (१) कष्ट-संकट के दिन। (२) वह दिन जब कष्टदायक घटना हो।

कुदिष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुटिष्टे] पाप या वासना की दृष्टि । कुटिष्टि—संज्ञा. स्त्री. [सं.] ब्रिशे या पाप की दृष्टि । कुदेव—संज्ञा. पुं. [सं. कु = भूमि + देव] बाह्यण । संज्ञा. पुं. [सं. कु = ब्रुश + देव] राज्ञस ।

कुद्रव—संज्ञा पुं. [देश.] तलवार चलाने का एक हंग। कुधर—संज्ञा, पुं. [सं. कुझ] (१) पहाद। (२) शेषनाग। कुधातु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खरी धातु। (२) लोहा। कुनकुना—वि. [सं. कदुष्ण] थोड़ा गरम, गुनगुना। कुनना—कि. सं. [सं. च्णान] (१) खरादना। (२) खरोचना।

कुनबा—संज्ञा पुं. [कुटुंब, प्रा. धुडुंब] परिवार। कुनह—संज्ञा स्त्री. [फा. कीनः] (१) हेष, मनमुटाव। (२) पुराना बेर।

कुनाई – संज्ञा स्त्री. [हिं० कुनना] (१) खरादने या खुर-चने पर निकलनेवाला चूरा। (२) खरादने या खुरचने की किया।

कुनाम - संज्ञा स्त्री. [सं०] बदनामी, बुराई। उ० — वृन्दा बन हरि बैठे धाम। काहे को गथ हरयो सबन को बाहे अपनो कियो कुनाम—१८८१।

कुनारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कु = बुरा] दुष्टा स्त्री । उ.— हरि, हों महा अधम संसारी । आन समुक्त में बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी—१-१७३।

कुनित—[सं० वनिणत] बजता हुआ, सनकारता हुआ,
शब्द करता हुआ । उ०—(क) कनक-रतन-मनिरिचत किट-किंकिनि कुनित पीतपट तिनयाँ—१०१०६। (ख) किंकिनी किट कुनित कंकन, काचुरी
सनकार। हृदय चौकी चमक बैठी सुमग मोतिनहार।
(ग) सिख हरिष भूले बृषमानुनंदिनी सोभि सँग नँदलालनो। मनिमय नूपुर कुनित कंकन किंकिनी
सनकारनो—२२८०।

कुपंगु—संज्ञा पुं० [सं.] बुरी तरह श्रपाहिज। उ०— स्वान कुञ्ज, कुपंगु, कानौ, स्ववन पुच्छ-विहीन। मग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी श्राधीन—१-३२१। कुपंथ—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] (१) बुरा मार्ग। (२) बुरी रीति-नीति।

कुपढ़—वि० [सं० कु + हिं० पढ़ना] श्रनपढ़। कुपश्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुरा मार्ग (२) खुरी चाला। संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] हानिकारी भोजन।

कुपर्थी—वि० [सं.] बुरे मार्ग पर चलनेवाला। वि० [सं० कुपथ्य, कुपथ्यी] हानिकारी भोजम करनेवाला। सज्ञा स्त्री०—(१) हानिकारी भोजन करने की किया।(२) बदपरहेजी। उ०—जो हुती निकट मिलन की त्रासा सो तो दूर गयी। जथा योग ज्यों होत रोगिया कुपथी करत नयी—२६०१।

कुपध्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह त्राहार-विहार जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारी हो ।

कुपना—कि. श्र. [हिं. कोपना] श्रश्यसन्न होना। कृपाठ संज्ञा पुं० [सं.] बुरी सलाह।

कुपात्र—वि०—[सं०] (१) अयोग्य। (२) जो दान का अधिकारी न हो।

कुपार-संज्ञा पुं० [श्रक्पार] समुद्र ।

कुर्पत—वि०—[सं०] (१) क्रोध में भरा हुन्ना । (२)

कुपीन—संज्ञा ं० [सं० कौपीन] लॅंगोटी, कफनी, कच्छी। उ.—जीरन पट कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि—१-३४१।

कुपुटना—िक. स. [हिं. कपटना] काटकपट करना, छिपा कर निकाल लेना।

कुपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा पुत्र, कपूत।

कुपेड़े—संज्ञा पुं. [सं. कु + पेंड़] बुरा मार्ग। उ.—छाँडि राजमारग यह लीला कैसे चलिहं कुपेंड़े—३०६६। कुपेड़ो—संज्ञा पुं. [सं कु+पेंड़] बुरा पथ या मार्ग। उ.— राजपंथ तें टारि बतावत उज्ज्वल कुचल कुपेड़ो —३३१३।

कुप्रबन्ध—संज्ञा. पुं. [सं. कु + प्रबंध] बुरा इंतजाम ।

कुप्रयोग — संज्ञा पुं. [स. कु + प्रयोग] वस्तु, पद या अधिकार का अनुचित प्रयोग।

कुफुर, कुफ—संज्ञा पुं. [ग्र.] (१) इसलाम से भिन्न धर्म। (२) इसलाम धर्म के विरुद्ध बात।

कुबंड—संज्ञा पुं. [सं. कोदंड] धनुष।

वि. [सं. कु + बंठ = खंड] जिसके शरीर का कोई ग्रंग खंडित हो।

कुच — संज्ञा पुं. [हिं. कूवड़] कूबड़।

कुबजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुब्जा] कंस की एक दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबड़ा—वि. [सं, कुब्ज] जिसकी पीठ मुक गयी हो। वि.— मुका हुआ। कुबड़ी—वि. स्त्री. [हिं. कुबढ़ा] (१) जिसकी पीठ सुक गयी हो। (२) मोटी छड़ी जिसका सर सुका हो।

कुवत—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. बात] (१) बुराई, निंदा। (२) बुरी चाल।

कुवरी—संज्ञा स्त्री. [हि.कुबड़ा] (१) कंस की कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। (२) जिसकी पीठ कुकी हुई हो।

कुबलय—संज्ञा पुं. [सं. कुबलय] नीला कलम। उ.— कुबलयदल कुसमय सैय्या रचि पंथ निहारत तोर— ६२६ सारा.।

कुत्रत्या—संज्ञा पुं. [सं. कुत्रत्या] कुत्रत्यापीड़ नामक कंस का हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

कुवाक—संज्ञा.पुं. [सं.कुवाक्य] (१) कड़ी या कठोर बात। (२) गाली।

कुवानि — संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. वानि] बुरी आदत, कुटेव।

कुबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+बानी (वाशिज्य)] बुरा व्यवसाय।

संशा स्त्री. [सं. कु + वाणी] बुरी या श्रशुभ बात । संशा स्त्री. [सं. कु+हिं. बानि] बुरी श्रादत ।

कुबिज — संज्ञा पुं. [सं. कुडज] पीठ का टेढ़ापन, कूबड़ । उ.—हरि करि कृपा करी पटरानी कुबिज मिटायौ डारि— २६४०।

कुबिजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुब्जा] कुब्जा नामक कंस की दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबुद्धि—वि. [सं.] जिसकी बुद्धि अष्ट हो, दुर्बुद्धि, मूर्ख। संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा] (१) मूर्खता। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबुधि—वि. [सं. कुबुद्धि] जिसकी बुद्धि अध्य हो, मूर्ख। संशा स्त्री. [सं.] (१) मूर्खता। उ.—तजो हरि-विमुखन को संग। जिनकें संग कुबुधि (कुमिति) उप-जित है, परत भजन में भंग — १-३३। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबेर-संज्ञा पुं. [सं. कुबेर] एक देवता।

संज्ञा स्ज्ञी. [सं. कुवेला, हिं.कुवेला] बुरा समय। कुवेरिया— संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेजा, हिं. कुवेला] अनुपयुक्त समय, बुरा काल। उ.—आवहु कान्ह, साँभ की

बेरिया। गाइनि माँभ भए हो ठाढ़े, कहति जननि यह बड़ी कुबेरिया—१०-२४६।

कुबेला— संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेला] बुरा समय। कुबोल— संज्ञा पुं० [सं.कु+हिं० बोल] बुरी या अशुभ बात। कुबोलना—वि० पुं० [हिं० कु + बोलना] बुरी या अशुभ बात कहनेवाला।

कुबोलिनो, कुबोली—वि. स्त्री. [हिं. कुबोल] अप्रिय या कटु बात कहनेवाली।

कुडज — वि. [सं.] जिसकी पीठ टेढ़ी हो, कुबड़ा। उ.— स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्वन-पुच्छ, विहीन। भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी आधीन—१-३२१।

कुड जा—संहा स्त्री० [सं०] (१) कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी श्रीर प्रसिद्धि है कि जिसे उन्होंने श्रपना लिया था। (२) कैकेयी की मन्थरा नामक दासी जो कुबड़ी थी।

कुटबा — संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] कूबड़, कोहान, डिल्ला। कुभा—संज्ञा स्की० [सं०] (१) पृथ्वी की छाया। (२) काबुल नदी।

कुभाउ—संज्ञा पुं० [सं० कुभात] बुरा या अनुवित विचार। उ०—यह सब कलिजुग की परभाउ। जो मृप के मन भयउ कुभाउ—१-२६०।

कुभाव — संज्ञा पुं. [सं. कु + भात्र] बुरा, अनुचित या अशुभ विचार।

कुमंठी, कुमंडी — संज्ञा स्त्री [सं. कमठ = बाँस] पेड़ की पतली श्रीर लचीली टहनी।

कुमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कु + मंत्र] बुरी सलाह. बुरी सलाह के अनुसार अनुचित कर्य। उ.-तें कैकई कुमंत्र कियो। अपने कर करि काल हॅकारयो, इठ-करि नृप-अपराध लियो—६-४८।

कुमंत्रणा—संज्ञा. स्त्री. [सं०] बुरी सलाह।

कुमक—संशा स्त्री. [तु.](१) सहायता, मदद। (२) पचपात, तरफदारी।

कुमकुम संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] (१) गुलाल । (२) केशर।

उ.—(क) कुमकुम को लेप मेटि, काजर मुख
लाऊँ—१-१६६। (ख) तहाँ स्याम घन राष
उपायो । कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायो (ग) उने
उने घन बरसत चख उर सरिता सलिल भरी। कुम-

कुम कडजल कीच बहै जनु कुचयुग पारि परी— २८१४। (३) कुमकुमा।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [तु. कुमकुमा] (१) लाख के बने पोले गोले जो अबीर गुलाल भरकर एक दूसरे को होली के दिनों में मारते हैं। (२) काँच के बने छोटे-बड़े गोले।

संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर। उ.—(क) मलयज पंक कुमकुमा मिलिके जल जमुना इक रंग —१८४२। (ख) मृगमद मलय कपूर कुमकुमा सींचिति ग्रानि ग्राली—२७३८।

कुमग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] कुमार्ग, खुरा मार्ग। ड.—श्रदभुत राम नाम के श्रंक। श्रंधकार-श्रज्ञान हरन को रिवि-सिस जुगल-प्रकास। बासर-निसि दोऊ करें प्रकासित महा कुमग श्रन्थास—१-६०।

कुमत—संज्ञा स्त्री. [सं कुमित] (१) दुर्बुद्धि। उ.— बाजि मनोरथ, गर्ब मत्त गज, श्रसत-कुमत रथ-स्त— ११४१। (२) दुर्बुद्ध नायिका। उ.—मेरी कही न मानत राधै। ए श्रपनी मत समुभत नाहीं कुमत कहाँ पन नाधे—सा. ६५।

कुमिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्बुद्धि । (२)
कुमंत्रणा । उ — मंत्री काम कुमित दीवे कौं,
क्रोध रहत प्रतिहारी—१-१४४(३) पुरंजन नामक
एक प्राचीन राजा की रानी का नाम। उ.—तन
पुर, जीव पुरंजन राव। कुमित तासु रानी कौं
नाँव—४-१२।

कुमया—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + माया] निष्ठ्रता, कठोरता, निर्देयता, श्रनुचित व्यवहार। उ.—यह कुमया जो तब ही करते। तौ कत इन ये जिवत श्राजु लौं या गोकुल के लोग उबरते—२७३८।

कुमाच — संज्ञा पुं. [श्र. कुमाश] (१) रेशमी वस्त्र । (२) कौंच नामक लता।

कुमार—संज्ञा पुं० [सं] (१) पाँच वर्ष की आयु का बालक। (२) पुत्र, बेटा। उ.—सब तज भजिए नंद-कुमार—१-६८। (३) किशोर, वह जो किशोरावस्था का हो। उ.—बालमीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र उच्चार। ताको फल मोहिं आजु भयो, मोहि दरसन दियों कुमार। (४) वह मार (कामदेव)

जो शत्रुका सा कठोर व्यवहार करे। उ.— वज में त्राजु एक कुमार। तपनरिपु चल तासु पति हित ग्रंत हीन विचार—सा. ३०।

वि०—जिसका विवाह न हुआ हो, कुआँरा। कुमारग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] बुरा या अनुचित मार्ग।

कुमारि— संज्ञा स्त्री. [सं. कुमारी] राजकुमारी। उ.— श्री रघुनाथ-रमिन, जग-जननी, जनक-नरेस कुमारी — ६-६५।

कुमारिका—रंज्ञा स्त्री. [सं. कुमारी] बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या। उ.—रिषि कहा ताहि, दान रित देहि। में बर देहुँ, तोहिं सौ लेहि। तू कुमारिका बहुरौ होइ। तोकों नाम धरै नहिं कोइ —१-२२९।

कुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं.] (१) वह कन्या जिसकी अवस्था बारह वर्ष से अधिक न हो। (२) सीता जी का एक नाम। (३) पार्वती (४)। दुर्गा।

वि०—जिस कन्या का विवाह न हुआ हो। कुमारी-पूजन — संज्ञा पुं० [सं,] वह देवी-पूजा जिसमें कमारियों का पूजन किया जाता है।

कुमारिल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रसिद्ध मीमांसक जो जाति के भृष्टे ।

कुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं.] (१) ब्रिरी राह। (२) पाप की रीति या चाला, अधर्म।

कुमार्गी—वि. [हिं. कुमार्ग] (१) बुरे मार्ग पर चलने वाला। (२) पापी, अधर्मी।

कुमीच—संज्ञा पुं॰ [सं. कु + मीच=मृत्यु] (१) कृत्सित
मृत्यु पानेवाला व्यक्ति। (२) अधम मृत्यु। उ.—
कहा जाने कैवाँ सुवी, (रे) ऐसें कुमित कुमीच। हरि
सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच
—१-३२५।

कुमुख—संज्ञा पुं० [सं.] (१) रावण पत्त का एक वीर जिसका नाम दुर्मुख था। (२) सुत्रर।

वि.—(१) भद्दे मुँहवाला । (२) बुरे या अनुचित शब्द कहनेवाला ।

कुमुद्-संज्ञा पुं० [सं.] (१) कुईं, कोईं। (२) एक लाल कमल जो चंद्रमा को देखकर (या रात्रि में) खिलता

है। उ.—श्राँगन खेलें नंद के नंदा। जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु चंदा—१०-११७। (३) चाँदी। (४) राम-पच के एक बन्दर का नाम। (४) कपूर। (६) विष्णु का एक दरवारी।

वि.—(१) कंज्स। (२) लोभी।
कुमुद्कर—संशा पुं० [सं.] चंद्रमा की किरण।
कुमुद्कला—संशा स्त्री० [सं.] चंद्रकला।
कुमुद्करण—संशा स्त्री० [सं.] चंद्र किरण।
कुमुद्की—संशा स्त्री० [सं. कुमुद्दिनी] (१) कुँईं, कोई।

(२) वह स्त्री जो अनुचित बातों में आनन्द ले। उ. —कत मो सुमन सो लपटात। " कुमुदनी संग जाहु करके केसरी की गात — सा. ७१।

कुपुद्वन—संज्ञा पुं ि [सं. कुमुद + वन] वृंदावन के समीप एक गाँव। (क) उ.— ग्राजु चरावन गाइ चली जू, कान्ह, कुमुद्वन जैऐ। सीतल कुंज कदम की छिहियाँ, छाक छहूँ रस खेहैं - ४४५। (ख) मधु-वन ग्रीर कुमुद्वन सुंदर बहुतावन ग्रिमराम —१०८८ सारा.।

कुमुद्।—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी का नाम जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो "। रतना कुमुदा मोहा करना ललना लोभा नृप। इतिनन में कहि कौने लीन्हों ताको नाउ बताउ—१५८०। (ख) रहे हिर रैनि कुमुदा गेह —२१६०।

कुमुदिनी — संज्ञा स्त्री० [सं. कुमुदिनी] कुई, कोई जो रात में खिलती है ग्रौर दिन में मुँद जाती है। उ. — कुमुदिनि स कुची बारिज फूले – १०-२३३।

क्मुदिनीनाथ — संज्ञा. पुं. [सं.] चंद्रमा। क्मेर — संज्ञा पुं. [सं.] दिल्णी ध्रव।

कुमैत—संज्ञा पुं. [तु॰ कुमेत] स्याही लिये लाल रंग का मजबूत श्रोर तेज घोड़ा। उ.— निकसे सबै कुँश्रर श्रसवारो उच्चै:श्रवा के पोर। लीले सुरंग कुमैत स्याम तेहि पर दे सब मन रंग—१० उ०-६।

कुमोद—संज्ञा पुं० [सं. कुमुद] (१) कुईं। (२) लाल कमल।

कुमोदनी, कुमोदिनी—संशा स्त्री. [सं. कुमुदिनी] कुई, कोई, कुमुदिनी।

कुम्मैत, कुम्मैद—संज्ञा पुं. [तु० कुमेत] (१) घोड़े का स्याही लिये लाल रंग। (२) वह घोड़ा जिसका रंग स्याही लिये लाल हो।

वि.— स्याही लिये लाल रंग का।

कुम्हड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कूष्मांड, पा. कुम्हंड, पा. कुमंड]

(१) एक बेल जिसमें बड़े बड़े गोल फल लगते हैं।

(२) कुम्हड़े का फल।

कुम्हड़ोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुम्हड़ा + बरी] पीठी में कुम्हड़े के ट्कड़े मिला कर बनायी हुई बरी।

कुम्हलाना — क्रि. श्र. [सं. कु + म्लान] (१) मुरभाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति या शोभा फीकी पड़ना।

कुम्हार—संज्ञा पुं. [सं. कुंभकार, प्रा. कुंभार] मिट्टी के बरतन बनानेवाला।

कुम्ही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंमी] पानी पर फैलने, फूलने त्रीर फलनेवाला एक पौधा। उ.—लोचन सपने के भ्रम भूते। ""। निदरे रहत मोहिं नहिं मानत कहत कौन हम तूले। मोते गये कुम्ही के जर ज्यौं ऐसे वे निरमूले। सूर स्याम जल रासि परे श्रब रूप-रंग श्रनुकूले।

कुम्हिलाई, कुम्हिलाई — कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] (१)
प्रफुल्लतारहित हुई, कांतिहीन हो गयी। उ.— सुता
लई उर लाइ, तनु निरिष्ट पिछिताइ, डरिन गइ
कुम्हिलाइ, सूर बर्नी—ए०--६६८। (२) मुरभाने
लगी, सूख चली। उ.—सिंस उर चढ़त प्रेम पावक
परि बंक कुसुम्म रहे कुम्हिलाई—सा. उ. १६।

कु.म्हत्ताए—कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] कुम्हला गये, कांति या शोभाहीन हो गये। उ.—(क) काहैं श्राजु श्रवार लगायी कमल बदन कुम्हिलाए-५११। (ख) चारो श्रीर ब्यास खगपति के भुंड भुंड बहु श्राए। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल श्रंग कुम्हिलाए —सा. १०२।

कुम्हिलात—कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] कांतिहीन होता है, प्रफुल्लतारहित हो जाता है। उ.—सुंदर तन सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात—९-४३। कुम्हिलाना—कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] मुरमाना, उदास होना।

कुम्हिलानि – कि. श्र. [हिं. कुम्हलाना] मुरमा गये, स्खने लगे। उ.—बाटिका बहु विपिन जिनके एक वै कुम्हिलानि—३३५५।

कुम्हिलानी—कि. श्र. [हिं. कुम्हिलाना] कुम्हला गया, मिलन हुत्रा, प्रफुल्लतारहित हो गया। उ.—(क) है निरदई, दया कछु नाहीं, लागि रही गृह काम। देखि छुधा तें मुख कुम्इलानी, श्रित कोगल तन स्थाम— ३६१। (ख) देखियत कमल बदन कुम्हिलानी, तू निरमोही बाम—३६७।

वि — कुम्हलाया हुआ, मिलन। उ. — पातकाल तें बाँधे मोहन, तरिन चढ्यो मिध आनि। कुम्हिलानो मुख चंद दिखावति, देखो धों नँदरानि—३६५।

कुम्हिलहै — कि. ग्र. [हिं. कुम्हलाना] कांतिहीन होगा, प्रफुल्लरहित हो जायगा। उ.—(क) तिज वह जनक-राज-भोजन-सुख, कल तृन-तलप, विपिन-फल खाहु। ग्रीषम कमत बदन कुम्हिलहै, तिज सर निकट दूरि कित न्हाहु—१-३४। (ख) तुम्हरी कमल-बदन कुम्हिलहै, रंगत घःमहिं माँभ—४११।

कुयश—संज्ञा पुं. [सं. कु + यश] बुराई, बदनामी। कुयोनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] नीच योनि। कुरंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मृग, हिरन। (२) बादामी रंग का हिरन।

संज्ञा पुं. [सं.कु = बुरा+हिं. रंग] (१) बुरा रंग-ढङ्ग। (२) स्याही जिये जाल रंग। (३) स्याही जिये जाल रंग का घोड़ा।

त्रि.— खरे रंग का।

कुरंगक—संज्ञा पुं. [सं. कुरंग] हिरन, मृग।
कुरंगलां छन—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।
कुरंगसार—संज्ञा पुं. [सं.] कस्त्री जो हिरन (कुरंग) की

नाभि से निकलती है, मुश्क। कुरंगिना— संज्ञा स्त्री. [सं. कुरंग] हिरनी।

कुरागना—संशा स्त्रा. [स. कुरग] हरना। कुरंड—संशा पुं. [सं. कुर्श्वंद = मिण्क] एक खनिज पदार्थ।

संज्ञा पुं. [सं.]एक पौधा जिसके फूल सफेद होते हैं।
कुरकुट—संज्ञा पुं. [हैं. कुक्कुट] सुर्गा।
कुरकुटा—संज्ञा पुं. [सं कुट = कूटना] (१) किसी चीज
का छोटा दुकड़ा। (२) रोटी का दुकड़ा।

कुरकुर - संज्ञा पुं. [ग्रन्.] खरी चीजों के टूटने का शब्द । कुरकुरा - वि. पुं. [हिं. कुरकुर] जिसे तोड़ने पर क्रक्र शब्द हो।

क्रक्री — संज्ञा स्त्री. [श्रनु.] पतली मुलायम हड्डी। वि. स्त्री. [हिं. कुरकुरा] जिसे तो इने में कुरकुर शब्द हो।

कु (च - संज्ञा पुं. सं. क्रों व] पानी के पास रहनेवाला काँकुल नामक जल-पची।

कुरता—संज्ञा पुं. [तु] एक पहनावा। कुरना—कि. ग्र. [हिं. कुरा = देर] (१) देर लगाना।

(२) पिचयों का कलख करना। कुर बान-वि. [ग्र.] निछ।वर। कुरबानी-संज्ञा स्त्रो. [ग्र.] बलिदान।

कुरमा-संज्ञा पुं. [हिं. कुनवा] परिवार।

कुररा—संज्ञा पुं [सं. कुरर] (१) कराँकुल नामक जल कुरिहार—संज्ञा पुं. [हिं. कोलाहल] शोरगुल। पत्ती । (२) टिटिहर ।

कुरल-संज्ञा पुं. [सं.] कुंडली।

कुरलना—क्रि. ग्र. [तं, कलरव या कुरव] पिचयों का कलरव करना।

मुरला-संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाल फूलवाला एक वृत्त । (२) सफेद मदार का वृत्त ।

वि. [तं. कुरव] जिसका स्वर कटु या कठोर हो। कुरव - संज्ञा पुं. सं. कु + डिं. रव] बुरा या अशुभ स्वर। वि.— बुरी बोली बोलनेवाला।

बुरवना-कि. स. [हिं. कुराना] एक जगह बहुत सा ढेर लगा देना।

कुरवाना-कि. स. [सं कतेन] (१) खोदना, खरोचना। (२) नोचना।

कुरवारति—कि. स. [हिं. कुरवारना] खोदती है, खरोचती है। उ.- पधा हरि वी गरव गहीली ।....। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली 3089-

कुरवारही-कि. स. [हिं. कुरवारना] खोलती है, करोदती है। उ.— अपने कर नखनि अलक कुरवा-रही कबहुँ बाँधे अतिहिं लगत लोभा-१५६३। कुरविंद—संज्ञा पुं. [सं. कुरुविंद] दर्पण, शीशा। कुरा - संज्ञा पुं० [सं. कुरव] कटसरैया का पौधा।

कुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुराह] ऊँचा-नीचा गड्ढा श्रीर तंग रास्ता।

कुरान-संज्ञा पुं. [अ.] इस्लामी धर्मश्रंथ।

कुराय - संज्ञा स्त्रो, [हिं. + कुराह] (१) ऊँवा नीचा श्रोर ंतंग रास्ता। (२) गड्ढा।

कुराह-संज्ञा स्त्री. [सं. कु + फा. राह] (१) ऊँचा-नीचा रास्ता। (२) बुरी रीति नीति या चाल ।

कुराहर-संज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] शोर-गुल।

कुराही - वि. [हिं. कुराह + ई (प्रत्य.)] कुमार्ग पर चलनेवाला।

कुरिया—संज्ञास्त्री. [हिं. कुटिया] (१) कोपड़ी। (२) महल।

कुरियार, कुरियाल—संज्ञा स्त्री. [सं. नल्लोल] चिड्यों का पंख खुजलाकर सुखी होना।

कुरी-संज्ञा पुं. [सं.] अरहर की फलियाँ।

संज्ञा स्त्री. सिं. कुत्त विश, खानदान।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा = हेर] भाग, दुकड़ा। क्रोति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी रीति, अनीति, कुचाल । उ.—श्रव राघे नाहिन वजनीति। नृप भयौ कान्ह काम अधिकारी उपजी है ज्यों कठिन कुरीति— र्रेर्री

कुरु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक चंद्रवंशी राजा जिनके ं वंश में पांडु ग्रीर धतराष्ट्र हुए थे। (२) कुरु के ं बंश में जन्मा व्यक्ति।

क्रई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुडव] बाँस या मूँज की छोटी डिलिया।

क्रह्मेत्र—संशा पुं. [सं.] एक प्राचीन तीर्थ जो सरस्वती नदी के किनारे था। यह अंबाले और दिल्ली के बीच में स्थित है। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के त्रतिरिक्त कई बड़े युद्ध यहाँ हुए थे। ग्रहण ग्रीर क्म्म के अवसर पर यहाँ बड़ा मेला लगता है।

कुरुख — वि. [सं. कु + फ़ा. रख] जो मुँह बनाये हो, क्षित, कुद्ध। उ.—थिकत सुमन हग अरुन उनींदे कुरुख कटाच, करत मुख थोरी। खंजन मृग श्रक-ं लात घात उर स्याम ब्याध बाँधे रति होरी।

कुरुखि - संज्ञा पुं. [हिं. कुरुख] कटाच, तिरछी चितवन।

कुरुषेत—संशा पुं. [सं. वरुदोत्र] कुरुषेत्र। उ.—या रथ बैठि बंध की गर्जाहे पुरवे को वरुषेत —१-२६। कुरुच्छेत्र—सशा पुं. [सं. कुरुच्चेत्र] ग्रम्बाले ग्रीर दिल्ली के बीच में स्थित एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जहाँ महाभारत का युद्ध हुग्रा था। कुरुपति—संशा पुं. [सं.] दुर्योधन। कुरुप—संशा पुं. [सं. कुर्म्म] कछुग्रा। कुरुपा—कि. ग्रा. [हिं. कलरवना] बोलना, कलरव करना।

कुरुराज—संशा पुं. [सं.] दुर्थोधन।
कुरुविंद—संशा पुं. [सं.] दर्पण, शीशा।
कुरुप—वि. [सं.] असुंदर, बेडोल, बेढंगा, बदसूरत।
कुरुपता—संशा स्त्री. [सं.] असुंदरता, बदसूरती।
कुरेदना—कि. स. [सं वतन] जाचना, खरोदना।
कुरेर—संशा पुं. [सं० वल्लोल] आसोद-प्रमोद, मन-बहलाव।

कुरेलना—िक. स. [हिं. कुरेदना] खुरचना या खोदना। कुरैया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुठज] एक पेड़ जिसके फूल संदर होते हैं।

कुरीना—िकि. स० [हिं० कुराना] देर लगाना। कुलङ्ग — संज्ञा पुं० [फा.] पानी के किनारे रहनेव ली एक चिड़िया जिसका सिर लाल होता है और शरीर मटमेला।

कुलंग, कुलंजन — संशा पुं० [सं०] एक पौधा।
कुल — संशा पुं० [सं०] (१) वंश। उ.—(क) राम भवत
बत्सल निज बानौं। जाति, गोत, कुल, नाम गनत
निहं, रंक होइ के रानौं—१.११। (ख) भुव पर निहं
राखौ उनकौ कुल-१०४३। (२) जाति। (३) समूह।
उ.—जरासंघ बन्दी करें नृप-कुल जस गावै-१.४।
वि. [श्र.] समस्त, सब।

कुलकंटक—संशापुं० [सं०] परिवारियों को कष्ट देने वाला।

कुलकना - कि. ग्र. [हिं० क्लिकना] हर्ष से उछलते लगना।

कुलकलंक—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपने कुल में दाग लगाये।

कुल-कानि—संज्ञा स्त्री. [सं० कुत + हि० कानि =

मर्यादा] वंश की मर्यादा, कुल की लज्जः। उ०—जन की छौर कौन पति राखै। जाति-पाँति कुत-कानि न मानत, बेद पुराननि साखै—१-१५।

कुलकुल—संज्ञा पुं० [ग्रन्०] पानी बहने का शब्द । कुन्कुलाना—कि० ग्र० [ग्रन्०] कुलकुल शब्द करना। सु 10—ग्राँतें कुन्कुलाना—भूख लगना।

कुलच्या — संशा पुं० [सं०] (१) बुरा चिन्ह या लच्या। (२) बुरा श्राचरण या व्यवहार।

कुत्तक्या। — वि॰ [सं॰] बुरे चिन्हवाली । (२) बुरे ग्र.च.णवाली।

कुलचन्द—संगा पुं० [मं०] वंश को चन्द्रमा के समान स्वकी तिं से प्रकाशित करनेवाले । उ.—सोई दसरथ-कुलचन्द ग्रमित वल, ग्राए सारँगपानी—६-११५। कुलच्छन —संग्रा पुं० [सं० कुलच्छा] (१) बुरा चिन्ह। (२) बुरा ग्राचरण।

कुलच्छिनि, कुलच्छनी—संज्ञा स्त्री. [सं० कुलचर्णा] (१)
बुरे लच्छावाली। उ०—के हों कुटिल, कुचील,
कुंच्छिनि, तजी कंत तबहीं—६-६१। (२) बुरे
आचरणवाली।

कुलज — वि० [सं० कुल + ज = उत्पन्न] (१) कुल में उपन्न, वंश का। (२) अच्छे कुल में उपन्न। वि० — [सं. कुल + हि० लाज = लजानेवाला] कुल को लजानेवाला।

वि०—[सं० कु + लज्जा] निर्लं जा । उ०— निर्धिन, नीच, कुलज, दुर्बुद्धी भोंदू, नित को रोऊ । तृप्ना हाथ पसारे निसि दिन, पेट भरे पर सोऊ— १-१८६।

कुलजा, कुलजात —वि० [सं•] (१) कुल या वंश में उत्पन्त। (२) अच्छे कुल में जन्मा।

कुत्तट—वि० पुं० [सं०] अनेक स्थियों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला, व्यक्षिचारी। उ०—तच चित चोर भोर वजवासिनि प्रेम नेक ब्रत टारे। लें सरवस नहिं मिले सूर-प्रभु कहिये कुलट विचारे।

कुल्हरा — वि० स्त्री० [सं०] अनेक पुरुषों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध रखनेवाली, न्यभिचारिणी।

कुत्तटी—वि० स्त्री० [सं० कुलटा] अनेक पुरुषों से गुप्त देस करनेवाली। उ०—(क) अहो सखी तुम ऐसी हो। अब लों छलटी करि जानित मोकों री सब तैसी हो -१५३६। (ख) उत हे री पढ़त ग्वार इत गारी गावित ए नंद नाहिं जाये तुम महिर गुनन भारी। कुलटी उनते को है नंदादिक मन मोहे बाबा बृषमानु की वे सूर सुनहु प्यारी —२४२६।

कुलतारक, कुलतारन—वि [सं० कुल + हिं० तारक या तारन] वंश को अपने आचरण से पवित्र करने या तारनेवाला।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] परंपरा से जिस देवता की पूजा कुल में सभी शुभ श्रवसरों पर की जाती हो, कुलदेवता। विश्वास है कि सभी संकटों से कुल-परिवार की ये रचा करते हैं। उ०—साँभ हिं तें श्रविहीं विरुभानों, चंदहिं देखि करी श्रवि श्रारति। वार-गर कुलदेव मनावित, दोउ कर जोरि सिरहिं लें धारति—१०-२००।

कुलदेवता—संज्ञा० पुं० [सं०] बुल का इष्टदेव, कुलदेव।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा कुल में बहुत समय से होती आयी हो।

कुलधर, कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] बेटा, पुत्र । कुलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] परिवार की रीति या परंपरा । कुलाति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का बड़ा । (२) श्रध्यापक जो शिचा देने के साथ साथ विद्यार्थियों का भरण-पोषण भी करे । (३) महंत । (४) विश्व-विद्यालय का प्रधान ।

कुलपूज्य-वि० [सं०] जिस (ब्यक्ति) का मान कुल के स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, सभी करते हों।

कुलफ — संज्ञा पुं० [अ० कुलुफ] ताला। उ० — लोचन लालची भये री। सारँगरिपु के हरत न रोके हरि सरूप गिधए री। काजर कुलुफ मेलि में राखे पलक कपाट दये री — ए० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलफा—मंज्ञा पुं० [फ़ा० खुर्मः] (१) एक साग । (२) जमी हुई बड़ी कुलफी।

कुल फी—संज्ञा स्त्री ० [हिं० कुलुफ] (१) पेंच। (२) टीन का पात्र जिसमें दूध की बरफ जमाते हैं। (३) जमी हुई दूध की बरफ। कुलबधू—संशा स्त्री० [सं० कुलवधू] (१) कुलीन वंश की वधू। (२) मान-मर्यादा से रहनेवाली स्त्री।

कुलबुलाना—कि॰ ग्र॰ [ग्रनु॰ कुनबुल] (१) धीरे-धीरे हिलना-डुलना। (२) चंचल होना।

कुलबोरन — वि० [हिं० कुल + योरन = ड्वाना] (१) श्रपने श्राचरण से वंश की मान-मर्यादा मिटाने वाला। (२) श्रयोग्य।

कुललज्या — संज्ञा स्त्री० [सं० कुल+लज्जा] वंश की मान-मर्यादा, कुल की लाज। उ० — लोचन लालची भये री। । । है आधीन पंच ते न्यारे कुललज्या न नये री—ए० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलवंत--वि० [सं०] श्रच्छे वंश का, कुलीन।
कुलवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रच्छे कुल की वधू।
(२) मान-मर्यादा से रहनेवाली वधू।

कुलवान्—वि० [सं० कृत + हिं० वान्] अच्छे कुल का। कुलसे—संज्ञा पुं० स्वि० [सं० कृतिश] वज्र को भी। उ०—हमारे हिरदे कुलसे (कुलिसे) जीत्यो—रूप्पा

कुलह, कुलहा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुलाह] (१) टोपी। (२) शिकारी चिड़ियों की आँख पर पहनाया जाने वाला टोपी की तरह का ढक्कन।

कुत्ति, कुलिहिया. कुत्तही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा. कुलाह, हिं० कुलही] बचों की टोपी, कनटोप। उ०—(क) स्याम बरन पर पीत भगुलिया, सीस कुलिहिया चौतिनयाँ— १०-१३२। (ख) कुत्तिह लसत सिर स्याम सुभग श्रति बहु विधि सुरंग बनाई—१०-१४८।

कुलांगार—वि० [सं०] वंश का नाश करनेवाला। कुलाँच, कुताँट—पंत्रा स्त्री. [तु. कुताच] चौकड़ी, छुलाँग।

कुताँचना—कि० श्र० [तु. कुताव] चौकड़ी भरना, छुताँग मारना।

कुलाचार—संज्ञा पुं. [सं० कुल + ग्राचार] वह रीति-नीति जो किसी वंश में प्रचलित रही हो।

कुलाधि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुल = समूह + ग्राधि = रोग, दोष] पाप।

कुलाबा—संज्ञा पुं. [श्र.] लोहे का छल्ला जो दरवाजे को चौखटों से जकड़े रहता है। कुताल—संज्ञा पुं. [सं.] (२) जंगली मुर्गा। उ.—जैसें स्वान कुलाल के पाछें लिंग धावे—२-६। (२) कुम्हार। उ.—ऊधो भली भई अब आये। विधि कुलाल की हैं काचे घट ते तुम आनि पकाये—116१।

कुलाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा॰] ऊँची टोपी।
कुलाहर, कुलाहल—संज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] चिल्ल'हट,
शोर, हल्ला। उ,—ग्रस्व देखि कह्यौ, धावहु-धावहु।
भागि जाहि मित, बिलँब न लावहु। कपिल कुनाहल
सुनि त्र्यकुलायौ। कोपि-दिष्टि करि तिन्हें जरायौ—
६-६। (ख) जा जल सुद्ध निरिख सन्मुख है, सुन्दरि
सरसिज-नेनी। सूर परस्पर करत कुलाहल, गर स्गा
पहिरावेनी—६-११। (ग) ग्रापुस में रुव करत
कुलाहर घौरी धूमरि धेनु बुलाये—४००। (घ)

४७१, सारा.।

कुलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] चिह्या। कुलिक—संज्ञा पुं० [सं.] (१) कारीगर, शिल्पकार। (२) कुलीन वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

इलधर संग छाक भरि काँबर करत कुलाइल सोर—

कुलिश—संज्ञा पुं, [सं.] (१) हीरा।(२) वज्।(३) ईश्वरावताशें (राम, कृष्ण आदि) के चरणों का वज्र-श्राकार का एक चिन्ह।(४) कुठार।

कुतिस — संज्ञा पुं. [सं. कुलिश] वज्र । उ. — हृद्य कठोर कुलिस तें मेरी — ७४।

कुलीन—वि. [सं.] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न, श्रच्छे वंश का। (२) पवित्र, शुद्ध, निर्मल।

कुलुफ-संज्ञा पुं. [अ. कुफ़ल] ताला। उ.—नैना न रहें री मेरे इटकें। किल्लु पिंद दिये सखी यहि ढोटा घूँघर वारे लटकें। कजल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक सँदूक पट अटकें।

कुलेल—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्लोल] खेल, कीड़ा, आनंद। कुलेलना—कि. आ. [हिं. कुलेल] खेलन, आनन्द मनाना।

कुल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नहर। (२) छोटी नदी। (३) कुलीन स्त्री।

कुल्ल - ति. [ग्र. कुत] सब, समस्त, पूरा, तमाम। उ.मुल जिम जोरे ध्यान कुल्ल की, इरिसौं तहँ लै राखें।

निर्भय रूपे लोभ छाँडिके, सोई बारिज राखें—१-१४। कुल्ला—संज्ञा पुं. [फा. काकुल। सं. कुंतल] ब ल, पष्टा। कुल्ली—संज्ञा स्त्री. [फ्रा. काकुल। (सं. कुंतल)] बाल, पष्टा, जलफ।

कुल्हड़ — संज्ञा पुं. [सं. कुल्हर] मिट्टी का पुरवा, चुक्कड़। कुल्हरा, कुल्हाड़ा – संज्ञा पुं० [सं. कुठार] लकड़ी कटने या चीरने का एक श्रीजार।

कुल्ह्यी, कुल्ह्याड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. कुल्ह्ड] छोटा कुल्हाड़ा।

कुल्हारा, कुन्हारी—संज्ञ स्त्री. [हिं. कुल्हाड़ा] पेड़ काटने या लकड़ी चीरने का एक श्रोजार, कुल्हाड़ा।

महा—पाउँ कुल्हारौ मारौ अपने आप अपनी हानि करना। उ. — इद्री स्वाद-बिबस निसि बासर, आप अपने हारौ। जल औंड़े मैं चहुँ दिनि पैर्घो, पाउँ कुल्हारौ मारौ—१- ५२।

कुत्र — संज्ञ पुं. [सं.] (१) कमल । (२) फूल । कुत्र ज — संज्ञा पुं. [सं. कुत्र + ज] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

कुवल्य-संशा पुं. [सं.] (१) नीली कोई। (१) नील कमल।

कुवलयापीड़, कुवलिया - संज्ञा पुं. [सं•] कंस का एक हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ. - कुवितया मल मुब्दिक चानूर से कियों में कर्म यह ग्राति उदासा — २५५१।

कुवाँ-संज्ञा पुं. [सं० कूप, हिं. कुआँ] कुआँ। कुवाँर—संज्ञा पुं० [हिं० कुवार] आश्विन मास। कुवाच्य—वि० [सं०] जो बात कहने योग्य न हो, गंदी। संज्ञा पुं०—गाबी, दुर्बवन।

कुवाट—संज्ञा पुं. [सं. वपाट] किवाड, द्रवाजा। कुवारा—संज्ञा पुं० [सं. कुपारा] धनुष। कुवार—संज्ञा पुं० [सं. अश्वनी = कुमर] आश्विन का महीना।

कुवि बार—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा विचार।
कुवेर—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवता जो विश्रवस् ऋषि
के पुत्र ग्रौर रावण के सौतेले भाई थे। इल विला
इनकी माता थी। विश्वकर्मा से कहकर सोने की
लंका इन्होंने ही बनवायी थी। जब शिव के वर से

शक्तिशाली होकर रावण ने इनसे लंका छीन ली तो इन्होंने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने इन्हें इंद्र का भंडारी और समस्त संसार के धन का स्वामी बना दिया। इनके एक ऑख, तीन पैर और अठ दाँत हैं। इनका पूजन नहीं होता।

कुवेराचल—संज्ञा पुं, [मं.कुवेर+श्रचल] कैलास पर्वत। कुवेष—संज्ञा पुं० [सं० कु+वेश] (१) बुरी वेश-भूषा, मेले-कुचेले वस्त्र। (२) श्रसगुन। उ०—वातें बूभति यों बहाति। सुनहुस्याम वै सखी स्थानी पावस रितु

राधिहं न सुनावति ।...। कबहुँ रुप्रगट पपी हा बोलत कहि कुवेष करतारि बजावत—३४८५।

कुत्यवहार - संज्ञा पुं० [संत] बुरा या अनुचित व्यवहार।
कुश — संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक घास जो पवित्र मानी
जाती है और जिसका प्रयोग प्रायः कर्मकांड तथा
त ए में होता है, दाभ, डाभ। (२) जल। (३) रामचन्द्र का एक पुत्र। (४) सात द्वोपों में से एक जो चारो
और घृत-समुद्र से घिरा है। उ.—सतों द्वीर कहे
सु क मुनि ने सोइ कहत अब सूर। जंबु, सज्ञ, कौंच,
शाक, शाल्मिल, कश, पुष्कर भरपूर—३४ सारा०।
कुशाध्व ज — संज्ञा पुं० [सं०] जनक के छोटे भाई का नाम।
कुशाध्व ज — संज्ञा पुं० [सं०] कुश वा बना हुआ छुरला

जो कर्मकांड ग्रादि के ग्रवसर पर पहना जाता है। कुशल — वि. [सं.] (१) चतुर, प्रवीण। (२) भला, ग्रच्छा, श्रेष्ठ। (३) पुरायात्मा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजी-खुशी, चेम, मंगल। उ०—न्हात बार न खसै इनको कुशल पहुँचें धाम— २५६५। (२) वह जिसके हाथ में कुश हो। (३) शिव का एक नाम।

कुशत हो म—संश पुं. [सं०] राजी खुशी। कुशलता—संश स्त्रो. [सं०] (१) चतुराई। (२) योग्यता। संश स्त्री. [हं० कुशत] कह्याण, होम।

कुशलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं० कुशता] कल्याण,कुशल, चेम।

उ.—मेरी कह्यी सत्य के जानी। जो चाही वज की
कुशलाई तौ गोवर्धन मानी—६१५।

कुशलात, कुशलाता — संज्ञा स्त्री. [सं० कुशजता] कुशल-चेम समाचार, मंगल-सूचना । उ.— (क) सधुकर ल्याये जोग सँदेसो। भली स्याम कुशलात (कुसजात) सुनाई सुनति भयो ग्रँदेसो—३२६३। (ल) दुहूँ को कुशलात कहियो तुमिह भूनत नाहि—२६१८। (ग) ऊधो जननी मेरी को मिलिहो ग्रह कुशजात कहोगे—२६३२।

कुशनातें—संशास्त्री. बहु. [हिं० कुशलता] चेम या कुशल सूचक समाचार। उ.—किह कहि उधी हरि कुश-लातें।...। कहि कुशलातें साँची वातें त्रावन कह्यो हरि नाथे – ३४४१।

कुशलो — वि० [सं. कुशलिन्] (१) सकुशल (२) स्वस्थ। कुशतन — संज्ञा पुं० [सं.] एक वन जो गोकुल के पास है। कुशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुश।

कुशाम — वि० [सं.] कुश की नोक सा तेज, तीव। कुशासन — संज्ञा पुं. [सं. कुश+ग्रासन] कुश का बना ग्रासन या चटाई।

कुशिक — संज्ञा पुं०. [सं.] एक राजा जिनके पुत्र गाधि थे श्रोर पोत्र विश्वामित्र।

कुशोलव – संज्ञा पुं० [सं०] (१) किव। (२) नट। कुशोश, कुशेशय — संज्ञा पुं. [सं०] कमल।

कुश्ता—रंज्ञा पुं. [फ़ ० कुश्तः] धातुश्रों को फू ककर बनाया हुश्रा चूर्ण।

कुरती—संज्ञ स्त्री० [फ़ा.] लड़ाई, मल्लयुद्ध। कुट, कुट – संज्ञा पुं० [सं.] कोड़ नाम का रोग। कुटमांड—संज्ञ. पुं [मं.] कुम्हड़ा। कुसग संज्ञा पुं. [सं. कु + संग] हरे लोगों का साथ। कुसंगित—संज्ञा स्त्री. [सं० कु = संगित] तुरे लोगों का साथ।

कुसंकार - संज्ञा पुं० [सं०] इरी वासना, वातावरण का इरा प्रभाव।

कुस—संज्ञा पुं०[सं० कुश] एक प्रकार की वास जिसका प्रयोग यज्ञों में होता था और जो अब भी पिवत्र समभी जाती है। उ०—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव ग्रहित विचारी। साक पत्र लें सबै ग्रघाए, न्हात भजे कुस डारी १-१२२।

कुसन्नासन — संज्ञा पुं. [सं. कुश = ग्रासन = कुशासन] कुश की बनी चटाई।

कुसगुन—संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा (उप.)=हि. सगुन] असगुन, बुलहाण, बुरा सगुन। उ०— फटवत स्रवन

स्वान द्वारे पर, गररी करत लगई। माथे पर ह्वे काग ं डड़ न्यो, कुसगुन बहुतक पाई —५४१।

कुसमय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा या अनुपयुक्त समय। (२) बुरे या दुख के दिन।

कुसमित - वि० [सं. कुसुमित] फूलों से युक्त । उ.--१००३ सारा.।

कुसरात—संज्ञा पुं० [हिं० कुशलात] कुशलता। कुसल —संज्ञा पुं॰ [सं॰ कुशल] (१) चेम, मंगल, राजी-खुशी। उ०— (व) सुनि राजा दुर्जीधना, हम तुम पें श्राए। पांडव सुत जीवत मिले, दे कुसल पठाए। छेम-क्सल अरु दीनता दंडवत सुनाई-१-२३८। (ख) प्रभु जागे, अर्जुन तन चितयौ, कब श्राए तुम, वुसल खरी-१-२६८। (२) चतुर। उ०-परम कुसल को बिद लीला नट मुसुकनि मन हरि लेत -- १०-१48 |

कुसलई — संज्ञा स्त्री० [सं० कुशत + हिं. ई (प्रय.)] चतुरता।

कुसलाई - संज्ञा स्त्री. [सं. कुशल + हिं. त्राई (प्रत्य.)]

(१) चतुरता, कुशलता। (२) कुशल-चेम, खैरियत। क्सलात — संज्ञा स्त्रो. [सं. कुशल, हिं. कुशलता] कुशल, च्रेम, श्रानन्द-मंगल। उ.—(क) स्वै दिन एक से नहिं जात। सुमिरन-भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन कुसलात - २-२२। (ख) कही कपि, जनक-सुता-कुसलात — ६-१०४। (ग) सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे, पूछी कुस तात — ६-६६। (घ) सूर ज श्रात्म जथासंब कर बूमी सखी कुमलात —सा.५२। कुसली—संज्ञा पुं. [हिं. करेली] (१) गोम्मा या पिराक नामक पकवान। (२) आम की गुठली।

कुसाइत - संशा स्त्रे॰ [सं. कु. + अ. साअत] (१) बुरा समय। (२) बुरा मुहूर्त्त ।

कुसाखी—संज्ञा पुं. [सं० कु + साखिन = वृत्त] बुरा पेड़। कसासन—संशा पुं० [सं० कुशासन = कुश + श्रासन। कुश की बनी चटाई।

संज्ञा पुं. [सं. कु + शासन] बुरा राजप्रबन्ध। कसी-संज्ञा पुं० [सं. कुशी] हल की फला। क्स्ंब-संज्ञा पुं० [सं. कुसुंभ या कुसुंबक] एक वृत्त। कुसुंभ - संज्ञा पुं० [सं.] (१) कुसुम। (२) केसर, कुम-कुम। (३) लाल रंग। उ.—ऐसो माई एक कोद को हेतु। जैसे बसन कुसुम रँग मिलिक नेक चटक पुनि स्वेत-३३०६।

क्सुंभा—संज्ञा पुं. [सं. कुसुंभ] कुसुंभ का लाल रंग। मधुर मिल का कुसिमत कुं नन दंपति लगत सोहाये - कुसुंभी - वि. [सं. कुसुंम] कुसुंम के रंग का, लाल। उ.—(क) दीजै कान्ह काँचे हूँ को वंमर। नान्ही नान्ही बूँदन बरषन लागी भीजत कुसुंभी स्रंबर— १५६६। (ख) स्थाम अङ्ग कुसुंभी सारी फल गुंजा कः भाँति। इत नागरी नीलांबर पिहरे जनु दामिनि घन काँति—पृ० ३१३।

> क् सुंग - संशा पुं. [सं. कुसुम्म, कुसुंबक] कुमकुम, केसर, चंपक। उ.—सिस उर चढ्त प्रेम पावक परि बंक कुसुंम रहे कुम्हिलाई — सा. उ. १६ । क्सुम—संज्ञा पु. [सं.] फूल, पुष्प, सुमन । उ.—सुनि

सीता सपने की बात। " कुसुम विमान बैठी बैरेही देखी रावव-पास—६-८३।

संज्ञा पुं. [सं. कुसुंभ, कुसुंदक] (१) एक वृत्त । (२) लाल रंग। (३) एक राग।

क्सुमिन — संज्ञा पुं. बहु. सवि. [सं. कुसुम + हिं० नि (प्रत्य.)] फूलों से। उ.—सब कुसुमनि मिलि रस करे, (पै) कमल बँधावै आप। सुनि परिमिति पिय प्रम की, (रे) चातक चितवन पारि-१-३२५।

कुसुमपुर — संज्ञा पुं. [सं.] पटना का पुराना नाम। कुसुमरेगा - संज्ञा पुं. [सं.] पराग। क्सुमवागा— संज्ञा पुं, [सं.] कामदेव।

कुसुमशर, कुसुमसर — संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव । उ.— कुसुमसर रिपुनन्द बाह्न हरिष हरिषत गाउ -- २७१५ ।

कु सुमां जिल, कु सुमां जिली - संशा स्त्री. [सं. कु सुम + अंजिलि फूलों से भरी हुई अंजिली। उ. - कुसुमां-जिति वरषत सुर ऊपर, सूरदान बिल जाई—६२६। क्सुमाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वसंत । उ.—ठौर ठौर भिल्जी ध्वनि सुनियत मधुर मेघ गुंजार । मानो मन्मथ मिलि कुमुमाकर फूले करत बिहार - १०४१ सारा.। (२) वाटिका।

क्सुमागम—संज्ञा पुं. [कुसुम + श्रागम] वसंत ।

कुसुमायुध—संज्ञा पुं. [सं. वृसुम + श्रायुध] कामदेव। कुसुमाविल, कुसुमावली— संज्ञा स्त्री. [सं.वृसुम + श्रविल] फूलों का गुच्छा।

कुसुमासव - संज्ञा पुं० [सं. वुसुम + श्रासव = मदिरा] पुष्परस, पुष्पमधु।

कुसुमित— वि. [सं.] (१) फूलों से युक्त, पुष्पत । उ.—
मधुर मिल्लिका वृसुमित कुंजन दंपित लात सोहाये
— १००३ सारा. । (२) फूलों की कोमलता से युक्त,
फूलों के समान सुखदायी सरल और सीधा-सादा।
उ.—कुसुमित धर्म कर्म की मारग जं को उकरत
बनाई। तदिप विमुख पाँनी सो गनियत, मिक्त हृदय
नहिं आई—१-६३।

कुसून— संज्ञा पुं. [सं. कु + स्त्र, प्रा. सुत्त] (१) बुरा स्ता। (२) बुरा प्रबन्ध।

कुसेस, कुसेसय, कुसेसे—संज्ञापुं [सं. कुशेशय] कमल। उ.—राजिव दल इंदीवर सतदल कमल कुमेसय (कुसेसे) जाति। निसि मुदित प्रातिहं ए बिगसत ए विगसत दिन राति—१३४६।

कुस्टो—संशा पुं. [सं. कुष्ट] कोड़ी। कुस्तुभ—संशा पुं. [सं०] विष्णु। कुहँकुहँ—संशा पुं. [हिं. कुह्युह] कुमकुम, केसर। कुहक—संशा पुं. [सं.] धोखा, माया।

वि.—(१) धूर्त, ठग। (२) जादू जाननेवादा। कुहकना—िक. ग्र. [सं. बुहु ह या बुहू] पिचयों का मीटे स्वर में बोबना, पीकना, कबरव करना।

कुहिकिनी—संज्ञास्त्री. [सं. कुहुक या कुहू] (१) कोयल । (२) जादूगरनी।

क्रहकुह—संज्ञा पुं. [सं. कुमकुम] केसर, जाफरान। कुहकहाना—क्रि. श्र. [हिं. कुहकुह] कोयल का क्रकना। कुहन, कुहना—िक्र. स. [सं. कु + हनन = मारना] बहुत मारना पीटना।

संज्ञा पुं० [त्रानु. कुहू=कोयल की बोली] गाना।
कुहप—संज्ञा पुं. [सं. कुहू=त्रामावस्या + प] रजनीचर,
राचस।

कुहबर—संज्ञा पुं. [हिं. को बर] वह स्थान जहां विवाह के अवसर पर कुल देवता स्थापित किये जाते हैं। कुहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेद, सूराख। (२) गले का छेद। (३) खाली या शेष भाग। उ.—कहा कहें छिब ग्राज की मुख-मंडित खुर-धूरि। मानौ पूरन चंद्रमा कहर रह्यो ग्रापूरि-४३७।

संशा पुं. [हिं. बुहरा, कोहरा] जमी हुई भार के वण जो वायु में मिले रहते हैं, कोहरा। उ.— विछुरन की संताप हमारी तुम दरसन दें काट्यो। ज्यों रिब तेज पाइ दमहूँ दिसि दौष कुहर की फाट्यों — ६-२७।

कुहरा—संज्ञा पुं. [हिं. कोहरा] कोहरा। कुहराम— संज्ञा [त्र्य. क़हर+त्र्याम] (१) रोना-पीटना। (२) हलचल।

कुहरित—िव. [हिं. कोहराम] शब्दायमान। कुहाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं. कुल्हाड़ा] कुल्हाड़ा। कुहाना—िक. ग्रा. [सं. कोधन्, पा. कोहन] रूठना, रिसाना।

कुहारा, कु इारो — संज्ञा पुं. [सं. कुठार, हिं. कुल्हा इा] कुल्हा इा, टाँगी। उ.—इंद्री स्वाद विवस निसि वासर आपु अपुनपौ हारौ। जल श्रोंड़े में चहुँ दिसि पैरचौ, पाउँ कु हारो (कुल्हारौ) मारौ — १-१५२।

कुहासा—संज्ञा पुं. [सं. कुहेड़ो] कुहरा।
कुही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुधि] एक शिकारी चिड़िया।
संज्ञा पुं. [फ़ा. कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति।
वि. [हिं. कोह=कोध, कोही, कोधी] कोध करने
वाला, कोधी। उ. —मूक्, निंद निगोड़ा, भोड़ा,
कायर काम बनावै। कलहा, कुही, मूषक रोगी श्रक्
काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६।

कुहु—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहू] श्रमावस्या। कुहुकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] को मला। कुहुक—संज्ञा पुं. [श्रनु.] पिचयों, विशेषतः कोयल श्रीर मोर का मधुर स्वर।

कुहुकना— कि. श्र. [हिं. कुहुक+ना (प्रत्य.)] पिचयों, विशेषतः कोयल श्रीर मोर का मधुर स्वर में बोलना। कुहकवान—संज्ञा पुं. [हिं. कुहुकना + वाण] एक तरह का वाण जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है। कुहुकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुहुक] कोयल। कुहुकुहाना—कि. श्र. [हिं. कुहुकना] पिचयों का मधुर

पुरुषा कार्यः अ. िए. कुटुकना विश्वास स्वर में बोलना। कुहुकहानि—संशा स्त्री. [हिं. कुहुक] पित्तयों की मीठी बोली। उ.-ज्यों कोइ लखत काग जिवाए भन्न अभन्न कहाइ। कुहुकुहानि सुनि रितु बसंत की अन्त मिले कुल अपने जाइ-३०१३।

कुहुराति—संशा स्त्री. [सं. कुहू + रात्रि] अमावस्या की काली रात। उ.—दामिनी थिर घनघटा बर कबहुँ ह्रै एहि भौति। कबहुँ दिन उद्योत कबहूँ होत अति कुहुराति—सा. उ. ५।

कुहू— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रमावस्या की रात। उ.—
(क) स्रदास रसराप्ति वरिष के चली जनौ हरतिलक
कुहू उग्यौ री–६६१। (ख) सदा सरद ऋतु सकल
कला ले सनमुख रहे जन्हाइ। सो सित पच्छ कुहू
सम बीतत कबहुँ न देत दिखाइ–३४८६। (ग) नॅद
नंदन बृन्दावन चंद। । जठर कुहू ते बहिर बारिनिधि दिसि मधुपुरी सुद्धंद-१३३१। (२) श्रमावस्या
की श्रिधिष्ठात्री देवी। (३) मोर या कोयल को मीठी
बोली।

यौ. — कुहू कुहू - 'कुहू ''कुहू ' का शब्द । कुहे लिका — संज्ञा स्त्री. [सं.] कुहरा, कोहरा। कुहो — संज्ञा स्त्री. [हिं. कुक] बोली, ध्वनि । (२) मोर, कोयल श्रादि की कुक।

कूँख- संज्ञा स्त्री. [सं. कुिच] कोख, पेट।
कूँखना-कि. त्रा. [हिं. काँखना] काँखना।
कूँचना- कि. स. [त्रानु. कुचकुच] कुचलना, कूटना।
कूँचा-संज्ञा पुं. [सं. कूची भाड़, बढ़नी।
कूँची- संज्ञा स्त्री. [हिं. कूँचा=भाड़्] (१) छोटी भाड़।
(२) चूना पोतने की भूँज की कूँची। (३) चित्रकार की त्लिका।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुंचिका] कुंजी या कुंडी जो दर-वाजे में उसे बंद करने के लिए लगी रहती है। उ,-सहज कगट उघरि गए ताला कूँची टूटि— २६ १५। कूँज— संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोंच] कोंच पन्नी।

कूँजत—कि. श्र. [हिं. कूँजना, कूँजना] (१) मधुर स्वर से बोलता है। उ.-(क) ऊध्रव कोकिल कूँजत कानन। तुम इमकी उपदेस करत हो भसम लगावन श्रानन। (ख) पिहा गुंज, कोकिल बन कूँजत, श्रक मोरनि कियो गाजन-६२२। (२) चिल्लाता या दहाड़ता है। उ.—बातें बूभत यों बहरावित। सुनहु स्याम वे सखी सयानी पावस-रितु राधिहं न सुनावित। घन गर्जत मनु कहत कुसलमित कूँजत गुहा सिंह समुभावित—३४८५।

क्ँजना—कि. श्र. [हिं. कूजना] (१) बोलना, चित्लाना। (२) मधुर स्वर से बोलना।

कूँड, कूँड—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंड] (१) लोहे की टोपी जो लड़ाई के समय पहनी जाती है। (२) कुएँ से पानी निकालने का टोपीनुमा बरतन।

कुँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंड] (१) बड़ा बरतन । (२) गमला । (३) शीशे की बड़ी हाँडी जिसमें रोशनी जलायी जाती है।

कूँड़ी, कूँडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूँड़ा] (१) पत्थर की प्याली। (२) छोटी नाँद।

क्रूँथना—संज्ञा पुं. [सं. कुंथन=दुख सहना] (१) दुख से कराहना। (२) कबूतरों का 'गुदूरगूँ' करना।

कूँद्ना-कि. स. [हिं. कुनना] खराद्ना। कूँग्राँ - संज्ञा पुं. [सं. कूप] कुग्राँ, कूप।

कूई—- संज्ञा स्त्री. [सं. कुव+ई (प्रत्य.)] कमल की तरह का एक पौधा जो जल में होता है श्रीर चाँदनी रात में खिलता है, कोकाबेली, कुमुदिनी।

कूक — संज्ञा स्त्री. [सं. कूजन] (१) लंबी मधुर ध्वित । उ० — सोवत लिरकिनि छिरिक मही सौं हँ सत चलै दें कुक-१०-३१७। (२) कर्कश स्वर। उ० — यह सुनत रिस भरवी दौरिबे को परवी सूड़ि भटकत पटिक कूक परवी — २५६२। (३) मोर या कोयल की सुरीली बोली। (४) रोने का महीन स्वर।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हूक] हूक, कसक, वेदना। उ०-ऊथी, कहा हमारी चूक। वै गुन-श्रवगुन सुनि सुनि हरि के हृदय उठत है कूक।

कूकना—कि. श्र. [सं. कूजन] (१) लंबी सुरीली ध्वनि निकालना । (२) कर्कश स्वर से बोलना । (३) कोयल या मोर का बोलना ।

क्तर—संज्ञा पुं० [सं. कुक्कर] कुत्ता, श्वान। उ०— उदर भरघो कूकर-सूकर लों, प्रभु कों नाम न लीनो —१-६५। क्रुकरकीर—संज्ञा पुं. [हिं. कूकुर+कौर] (१) बचा-खुचा भोजन, दुकड़ा। (२) तुच्छ वस्तु।

कूच—संज्ञा पुं० [तु०] यात्रा करना, जाना, प्रस्थान।
मुहा०—देवता कूच कर जाना – बहुत भयभीत
होना।

कूचा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] गली। संज्ञा पुं. [सं. क्रोंच] क्रोंच पत्ती, करॉकुल। कूचिका, कूची—संज्ञा स्त्री० [सं. तूलिका] ब्रश,

त्तिका।
कृज-संशास्त्री. [हिं. कू जना] (१) ध्वनि, शब्द। (२)
शब्द करने की किया।

कृ जत-कि. श्र. [सं० कृ जन] मधुर स्वर से बोलते हैं।
उ०-(क) कनक कि कनी, नूपुर कलरव, कृ जत
बाल मराल । (ख) उपजत छिवकर श्रधर संख
मिलि सुनियत सहद प्रसंसा। मानहु कहन कमल-मंडल में कृ जत हैं कल इंसा—२५६६।

क्रुजन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मधुर ध्वनि । (२) शब्द करने की फिया।

क्तना — क्रि. ग्र. [सं. कू जन] कोमल शब्द या ध्वनि करना, बोलना, कलरव करना।

कूजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. कूजः] (१) मिट्टी का पुरवा या कुल्हड़। (२) मिट्टी के पुरवे में जमायी हुई मिश्री। संज्ञा. पुं. [सं. कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल। उ०-कूजा, मरुश्रो, मोगरो मिलि कूमक हो।

कूजित—वि. [सं. कूजन] (१) बोला हुग्रा, ध्वनित। (२) गूँजा हुग्रा स्थान। (३) पत्तियों के कलस्व से युक्त।

कुजै—िक. श्र. [हिं. कूजना] मधुर शब्द करती है; कोमल स्वर से बजती है। उ.—(क) पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै—१०-१३४। (ख) चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि कल कूजै—६६२।

कुट—संज्ञा पुं. [सं०] (१) पहाड़ की चोटी। (२) ग्रन्न का ढेर। (३) छल, धोखा। (४) मूठ। (४) ग्रुप्त भेद या रहस्य। (६) वह रचना जिसका ग्रर्थ सरलता से न स्पष्ट हो। (७) गृद हास्य या व्यंग्य। वि.—(१) मूठा। (२) छिलया। (३) बनावटी। (४) श्रन्छा, प्रधान। (४) धर्म भ्रष्ट।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुट] एक श्रोषधि। उ० — कूट काइफल सोंठि चिरेता कटजीरा कहुँ देखत — ११०८। संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटना] कूटने-पीटने को किया। संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटना] फोपड़ी।

कृटता—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) कठिनाई । (२) फ्रूठ । (३) छुल-कपट ।

कूटन — संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना] (१) कूटने की किया या भाव। (२) मारना-पीटना।

कूटनी — कि. स. [सं. कुट्टन] मारना, पीटना, ठोंकना। कूटनी ति — संज्ञा स्त्री. [सं.] दाँव-पेंच की चाल जिसका भेद दूसरे न पा सकें।

कूटयोजना—संज्ञा पुं. [सं.] षड्यंत्र। कूटस्थ — वि. [सं.] (१) अचल। (२) अविनाशी। (३) छिपा हुआ।

कूंटि — संशा स्त्री. [हिं० कूटना] कुटी, मारना, पीटना। उ. — कूटि करेंगे बलभैया अब हमहीं छें। कि किनि देहु – २४०८।

कूटै— कि॰ स॰ [सं. कुट्टन, हिं. कूटना] कूटे, कूटकर। उ.—बिनु कन दूस को कूटै—२-२०।

कूड़ा—संज्ञ पुं. [सं० कूट, प्रा० कूड=हेर] वेकार या वेकाम चीज।

कूद — वि० [सं. कूइ, पा० कृघ] नासमम, मूढ़। कृत — संज्ञा पुं० [सं. त्राकृत = ग्राशय] (१) अनुमान। (२) संख्या, परिमागा ग्रादि का श्रनुमान।

कृतना—िक. स. [हिं. कृत] (१) अनुमान या अंदाज करना । (२) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान या अंदाज करना ।

कूते—कि० स० [हिं. कूतना] अनुमान करे। कृथना—कि. स. [सं. कुंथन] मारना-पीटना। कूद—संज्ञा स्त्री. [हिं० कूदनः] उछलने कूदने की किया या भाव।

यौ० — कूद-फाँद — (१) उछ्छलना-कूदना । (२)

कूदत—कि. श्र. [हिं० कूदना] कूदते ही, उछ्जता-फाँदता है। उ.—सुनि के सिंह-भयान श्रवाज। मारि फलाँग चली सो भाज। कूदत ताको तन छुटि गयो —4-३। कूदन-क्रि. श्र. [हिं. कूदना] कूदना, फॉदना। उ.— नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन-कमल पर बारी —१-२२१।

कूदना—िक. श्र. [सं. स्कुंदन,] (१) उछलना, फाँदना। (२) जानकर गिरना। (३) किसी के बीच में दखल देना। (४) बहुत खुश होना। (४) शेखी मारना। कि. स.—लाँघना, नाँघ जाना।

कृति - कि. श्र. [हिं. कूदना] कूदकर, उछलकर, फाँद कर । उ.—जैसें नेहरि उफिक कूप-जल, देखत श्रपनी प्रति । कृदि परघी, कछु मरम न जान्यो, भई श्राइ सोइ गति—१-३००।

क्दो-कि. श्र. [हिं. कूदना] कूदा, कूद पड़ा। उ. क्दो, कालीदह में कान-सा. ७३।

कुनना— कि. स. [हिं. कुनना] खरादना, खरोचना।
कूप - संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुर्यों। उ.—(क) सँदेसनि
मधुबन कूप भरे। (ख) परो कूप पुकार काहू सुनी ना
संसार—सा. ११८। (२) छेद। (३) गहा।

कूपिन—संज्ञा पुं, [सं, कूप+हिं, नि. (प्रत्य.)] कुछों में।
उ.—नरक-कूपिन जाइ जमपुर परथौ बार छनेक
—१-१०६।

कूपमंद्धक—संज्ञा पुं. [मं.] (१) कुएँ में ही रहनेवाला, मेढक। (२) संसार की बहुत कम जानकारी रखने वाला, अनुभवहीन व्यक्ति।

कूपहिं—संज्ञा पुं. [सं. कूप + हिं (प्रत्य.)] कूप में, कुएँ में। उ.—पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं को करि कृपा बचावै—१-४८।

कृब,कृबड़—संज्ञा पुं. [सं. कृबर] (१) पीठ का उभाड़ या टेढ़ापन। (२) किसी चीज का उभाड़ या टेढ़ापन। कृबरी—संज्ञा स्त्री. [हं. कुबड़ी, कुबरी] कुब्जा नामक कंस की एक दासी जिसकी पीठ पर कृबड़ था। श्रीकृष्ण से इसको बड़ा प्रेम था श्रीर मन्तों का विश्वास है कि उन्होंने भी इसे श्रपना लिया था।

कूबा-संज्ञा पुं. [हिं. कूबड़] कूबड़।

र—[सं. कर] (२) जिसमें दया न हो, निर्दयी, कठोर। (२) डरावना। (३) डुण्ट, कुमार्गी, खरा। उ.—(क) तो जानों जो मोहिं तारिहो, सूर कूर कवि होट १-१३२। (ख) साँचे कूर कुटिल ए लोचन वृथा

मीन छि बि छीन लई—-२५२७। (ग) सूरवरी लें जाहु तहाँ जहँ कुवजा कर रई—सा. ३१। (४) बेकार, निकम्मा।

कूरना—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूर] (१) निर्देयता, कडोरता। (२) मूर्खता। (३) अरिसकता। (४) कायरता।

कूरपन-संज्ञा पुं. [हि. कुर (१) कठोरपन। (२) कायर-

कूरम — संज्ञा पुं. [सं. कूर्म] विष्णु का दूसरा अवतार कञ्जुआ। उ. — हरि जू अपनौ विरद सँभारघौ। सूरज प्रभु कूरम तनु धारघौ— द-७।

कूरा - संज्ञा पुं. [सं. कूट, प्रा. कूड = हेर] (१) हेर, राशि। (२) भाग हिस्सा।

कूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा] (१) टीला, धुस । (२) छोटी राशि।

कुरे, कुरे—ित्र. [सं. कूर, हिं. कूर] निर्देशी, कठोर। उ.— (क) पूरनता ए नैनन पूरे। "। ए अलि चपल में दरस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—३०४२। (ख) सूर नृप कूर अकूर कुरे (कूरे) भयो धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३।

कूर्च—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौहों के बीच का स्थान। (२) मूठ। (३) दंभ। (४) सिर।

कर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कलुआ, कच्छप। (२) विष्णु का दूसरा अवतार जो पौष शुक्ल द्वादशी को कछुए के रूप में हुआ था। उ.—कर्म को रूप धरि, धरथी गिरि पीठि पर— ६-८। (३) एक ऋषि।

क्रिंका,कर्नी संशा स्त्री. [सं. क्रिंका] एक प्राचीन बाजा।

कृल-संशा पुं. [सं.] (१) किनारा, तट। (२) नहर। (३) तालाव।

कि. वि.—पास, निकट, समीप।

कृत्हा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी। कृत्हा—संज्ञा पुं. [सं. कोड=कोड, कोर] कमर में पेडू के दोनों तरफ निकली हुई हिड्डियाँ।

क्वत-संज्ञा स्त्री. [या.] बल , शक्ति । क्वर-संज्ञा पुं. [सं.] (१) रथ का एक भाग जिस पर ज्या बाँधा जाता है। (२) रथिक के बैठने का स्थान । (३) कुबड़ा । वि.—सुन्दर।

क्षमांड—संशा पुं. [सं.] (१) कुम्हड़ा। (२) पेठा। (३) एक ऋषि।

कह-संज्ञास्त्री. [हिं. कुक] (१) हाथी की चिंघाड़। (२) चिल्लाहट।

क्ही—संज्ञा स्त्री. [हिं, कूही] एक शिकारी चिड़िया। कुकाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कंधे श्रोर गले का जोड़, घाँटी।

कुच्छ।—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कष्ट, दुख। (२) पाप। (३) एक व्रत जिसमें पंचगव्य (गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर ग्रोर गोमूत्र) खा कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है। वि.—कठिन, कष्टसाध्य।

कृत—ि [सं.] (१) किया हुआ, संपादित। उ०— (क) मन-कृत-दोष अथाह तंरगिनि, तिर निहं सक्यौ, समायौ—१६७। (ख) और कहाँ लों कहीं एक मुख या मन के कृत काज—१-१०२। (२) बनाया हुआ, रिवत। उ.—तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहे मम साथ—११०४ सारा०। (३) संबंध रखने वाला, तत्संबंधी।

संज्ञा पु॰ [सं.] (१) सतयुग। (२) चार की संख्या।

संज्ञा पुं. [सं. कृत्य] काम-काज। उ.—(क) बड़ी बेर भइ अजहुँ न ग्राए गृह-कृत कछु न सुहाइ— ५८०। (ख) अपने कृत तें हों नहिं बिलमत सुनि कृपाल वृजराई—१-२०७।

कृतक—िव. [सं.] अनित्य, कृत्रिम।

कृतकर्मा—वि. [सं.] (१) जिसने अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर ली हो। (२) चतुर।

संज्ञा पुं०-(१) संन्यासी। (२) परमेश्वर।

कृतकाम—िव, [सं.] जिसकी इच्छा पूरी हो चुकी हो। कृतकारज—िव. [सं. कृतकार्य] जिसको अपने कार्य में सफलता मिल चुकी हो।

कृतकार्य—िव. [सं.] जिसका काम पूरा हो चुका हो। कृतकृत्य—िव, [सं.] (१) जिसका कार्य या उद्देश्य सफल हो चुका हो, सफल मनोरथ। (२) धन्य। कृत्यन — वि. [सं. कृतक्त] किये हुए उपकार को न मानने वाला, अकृतज्ञ।

कृतःन-वि. [तं.] जो दूसरे का उपकार न माने, श्रकृतज्ञ।

कृतद्मता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दूसरे का किया हुआ उपकार न मानने का भाव।

कृतताई—संज्ञा स्त्री. [हिं.कृतव्न] किये हुए उपकार को न मानने का भाव।

कृतहती—िव. [सं. कृतहत] श्रकृतज्ञ, नमकहराम । उ.— महा कठोर सुन्न हिरदे को, दोष देन कों नीको। यड़ो कृतहती श्रोर निकम्मा, बेधन, राकोक्तीको—१-१८६। कृतज्ञ—िव. [सं.] उपकार माननेवाला। उ.—मध्यन

कृतज्ञ — वि. [सं.] उपकार माननेवाला । उ. — मध्यन के सब कृतज्ञ धर्मीले । ऋति उदार परहित डालत हैं बोलत बचन सुसीले — ३०५५।

कृतज्ञता—संज्ञा स्त्रो. [सं.] दूसरों के उपकार को मानने का भाव, निहोरा मानना।।

कृतदंड — संज्ञा पुं. [सं.] यमराज । उ.—गोगन सला भाव करि देखे दुष्ट नृपति कृतदंड । पुत्र भाव बसु-देव देवकी देखे नित्य श्रखंड ।

कृतिनंद्क - वि. [सं.] जो किये हुए उपकार को न

कृतमुख - संज्ञा पुं. [सं.] पंडित।

कृतयुग — संज्ञा पुं. [सं.] सतयुग । उ. — कृतयुग धम भये त्रेता में पूरन रमा प्रकास — ३०६ सारा. ।

कृतिबद्य - वि. [सं.] किसी विद्याया कला का पूर्ण ज्ञाता, पंडित।

कृतवेदी—िव. [सं.] दूसरे का उपकार माननेवाला। कृतहस्त—िव. [सं.] (१) काम में चतुर । (१) वाण चलाने में कुशल।

कुनहिं—संज्ञा पुं० सिंश हिं. हिं (प्रत्य.)]
किये हुए उपकार को । उ.—(क) स्रदास जो
सरवस दीजे कारे कृतिहं न मानै—३४०४। (ख)
तिनहिं न पतीजे री जे कृतिहं न मानै—२७=६।

कृतहीन—वि. [सं.] कृतघ्न। कृतांजिल—वि. [सं.] हाथ बाँधे या जोड़े हुए। कृतांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) झंत करनेवाला। (२) यमराज। (३) कमों का फल। (४) मृत्यु।
कृतात्मा— वि. [सं. कृतात्मन्] शुद्ध ग्रात्मावाला, महात्मा।
कृतारथ—वि. [सं. कृतार्थ] कृतकृत्य, सफल-मनोरथ।
उ.—(क) बन में करी तपस्या जाइ, नहीं हरि चर-नि सौं चित लाइ। या विधि नृपति कृतारथ भयी
— ६-१७४। (ख) नृपति कह्यौ मेरे गृह चित्र करी
कृतारथ मोय— ८०० सारा।

कृतार्थ— वि० [सं.] (१) जो सफलता से संतुष्ट हो। (२) संतुष्ट। (३) दुशल। (४) दूसरे के उपकार से प्रसन्न।

कृतान्त्र—वि. [सं.] धनुष चलाने में निपुण । कृति—संशा स्त्री. [सं.] (१) करनी, करत्ता । उ.—(क) निज कृति दोष विचारि स्र, प्रभु तुम्हारी सरन गयें — १-२६८ । (ख) यह हित मने कहत स्रज प्रभु इहि कृति को फल तुरत चखेहों — ७-५ । (ग) नेन उघारि विप्र जो देखे, खात कन्हेया देखन पायो ।देखो ग्राइ जसोदा, सुत कृति, सिद्ध पाक इहि ग्राइ जुठायो — १०-२४८ । (२) बड़ा काम । (३) जादू। संशा पुं.—विष्णु।

कृतिका—संज्ञा स्त्रो [सं. कृतिका] एक नचत्र।
कृतिवासा, कृतिवासा—संज्ञा पुं. [सं. कृत्तिवास] महादेव।
कृती—वि. [सं॰] (१) कुशल। (२) साधा। (३) पुण्यात्मा।
(४) जिसने महान कार्य किया हो।

कृत्ति—संशास्त्री. [सं.] (१) मृगचर्म। (२) चमड़ा। (३) भोजपत्र। (४) कृत्तिका नचत्र।

कृति.का— संशा स्त्री. [सं.] (१) सत्ताइस नक्षत्रों में तीसरा जिसमें छः तारे हैं। इनका श्राकार श्राग्न-शिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी मानी जाती है श्रीर श्राग्न इसकी श्रिधष्टात्री है। (२) बैंबगाड़ी। कृत्तिवास—संशा पुं. [सं.] महादेव का एक नाम जो गजासुर को मारने के बाद उसकी खाल श्रोड़ बेने के कारण पड़ा था।

कृत्य - संज्ञा पुं. [सं.] (१) वे काम जिनका करना धर्म की दृष्टि के ग्रावश्यक हो। (२) करनी, करत्त । उ०— सूर स्थाम के कृत्य जसोमित ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत—४८०। (३) भूत-प्रेत। कृत्यका — संज्ञा स्त्री. [तं.] भयंकर कार्यं कर सकनेवासी साहसी स्त्री।

कृत्यिविद्—ित्र. [सं.] कर्तव्य-पालन में चतुर। कृत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक राज्ञसी जिसे तांत्रिक अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके विपत्ती का नाश करने के लिए मेजते हैं। उ.—(क) रिशि सकोध इक जटा उपारी। सो कृत्या मइ ज्वाला भारी— ६-५। (ख) तब सिव ने उन कृत्या दीन्शें बाढ़ो क्रोध अपार— ७०७ सागा। (२) तंत्र-मंत्र से साधे गये घातक कर्म। (३) कर्कशा स्त्री।

कृत्रिम — वि. [सं.] नकली, बनावटी। कृदंन — संज्ञा पुं [सं.] वह शब्द जो धातु में 'कृत' प्रत्यय लगने से बनता है, जैसे भोक्ता।

कृपण्—िव. [सं.] (१) कंजूस, सूम। (२) नीच, दुष्ट। कृपण्ता—संशास्त्री. [सं.] (१) कंजूसी, सूमता। (२) (२) नीचता।

कृपन—वि. [सं. कृपण] (१) कंजूस, स्म, अनुदार।
उ.—(क) कृगनिधान स्रकी यह गति, काशों कहै,
कृपन इहिं काल—१-१२६ (ख) स्याम अछ्य निधि
पाइके तउ कृपन (कृपण) कहावै—ए० ३२२। (ग)
कीज कहा कृपन की संपति बिन भोजन पिन दान—
२०५१। (घ) हम नितिदिन करि कृगन की सम्पति
कियो न कबहू भोग—२७६३। (२) तुच्छ, नीच।
कृपनाई—सज्ञा स्त्री. [सं. कृपण + आई (प्रत्य.)] कंजूसी,
स्मता।

कृपया — क्रि. बि. [सं.] कृपापूर्वक। कृपा — संज्ञा स्त्रो. [सं॰] (१) निस्वार्थ भाव से दूसरे की भलाई करने की भावना या इच्छा। अनुग्रह, दया। (२) चमा।

कुगकरन—वि. [सं. कृग + करण] कृपाल । उ.— भक्त-वञ्जल, कृपाकरन, ग्रसरन-सरन, पतित उद्धरन कहै बेद गाई - ८-६।

कृपाचाय संज्ञा पुं. [सं,] ये गौतम के पौत्र श्रौर शरद्वत के पुत्र थे। इन्होंने कौरवों श्रौर पांडवों को शख-विद्या सिखायी थी।

कृपारा, कृपान — संज्ञा पुं. [सं.] (१) तलवार। (२) कदार।

कृपानाथ — संज्ञा पुं. सं. कृपा करनेवाले । कृपानिधि - संज्ञा पुं. [सं. कृपा + निधि] (१) कृपा के भांडार, ऋत्यन्त कृपालु। (२) कृपालु ईश्वर। कृपापात्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यक्ति जो दया का अधिकारी हो।

कृपायतन—संज्ञा पुं. [सं.] दया के भांडार, बहुत दयाला। कृपाल-वि. [सं. कृपालु] कृपा करनेवाला, दथालु । कृपालता—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपालुता] दया का भाव। कृपाला—वि. सं. कृपालु दया करनेवाला। उ.— जो तुम जानत तस्त्र कुपाला मौन रहौ तुम घर अपने --- ३२१२ |

कृपालु—वि. सं.] कृपा करनेवाला, दयालु । कृपालुता— संज्ञा स्त्री. [सं.] दया का भाव। कृपावंत-संज्ञा पुं. [सं.] (१) कृपा करनेवाला । उ०-स्रदास प्रभु कृपावंत है ले भक्ति में डारों १-१७८। (२) कृपालु ईश्वर । उ.— सूरदास जो संतन को हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहिं — १-७४।

कृषिण, कृषिन—वि. [सं. कृषण] कंजूस, सूम, श्रनु-दार । उ. - कहा कृतिन की माया गनिये, करत फिरत अपनी अपनी-१-३६।

कृपिगाता, कृपिनता, कृपिनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपणता] कंजूसी।

कृपो— संज्ञा स्त्री. सं.] द्रोणाचार्य की पत्नी जो कृपाचार्य की बहन थी। इसी के गर्भ से अरवत्थामा का जन्म हुआ था।

कृमि - संज्ञा पुं. [सं.] छोटा की डा। कृशता, कृशताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुवलापन। (२) कमी।

कृशानु—संज्ञा पुं ० [सं.] अगिन, श्राग। कृशित-वि. सं. दुबला-पतला।

कृष-वि. [सं. कृश] पतला, चीणाप । उ.—(क) कृप (कुश या कुस) कटि सबल डंड वंधन मनो विधि दीन्हो बंधान — १६९७। (ख) लई जाइ जब स्रोट श्रटन की चीर न रहत कृष गात - २५३६ |

कृषक — संज्ञा पुं० सिं. किसान, खेतिहर। कृषि—संशा स्त्री [सं,] खेती, किसानी।

कृषिक — वि. [सं. कृषि] खेती-बारी से सम्बन्धित। कृषिफ न-संज्ञा पुं० सिं.] फसल, पैद वार । कृषी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्वांप] खेती, किसानी। उ.— ते खोजत-खोजत तहँ श्राए। जहँ जड़ भरत कृषी मैं छाए--५-३।

कृष्ण -वि. [सं] (१) श्याम, काला। (२) नीला, श्रासमानी।

संज्ञा पुं. - यदुवंशी वसुदेव के पुत्र जो कस के कारागृह में देव की के गर्भ से जन्मे थे । मधुरा के श्रत्या वारी राजा कंस को मार कर प्रजा को इन्होंने सुखी किया था। द्वारका में यादवों का राज्य स्थापित करने वाले ये ही थे। महाभारत के भयंकर युद्ध में ये पांडव पत्त में रहे। एक बहे लिये का तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई। ये विष्णु के आठवें अवतार माने जाते हैं।

कुरणचद्र—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

कुडण द्वेपायन - संज्ञा पुं. [सं.] वेदन्यास जो पराशर के पुत्र थे।

कृष्णपद्म—संशा पुं. [सं.] वह पत्त जिसमें चंद्रमा है। ऋँधियारा पन्ता

कृष्णस्या - संज्ञा पुं. [सं.] अर्जन। कुष्णसखी — संज्ञास्त्री, [सं.] द्रौपदी । कृष्णसार -संज्ञा पुं. सं. (१) काला मृग। (२) शीशम।

कुष्णा—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) द्रीपदी । (२) दिस्य कृश—िव [सं.] (१) दुबला पतला। (२) छोटा। अपरत की एक नदी। (३) राधा की एक सखी। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो।। दर्वा रंभा ऋष्णा ध्याना मैना नैना रूग। इतिनन में कहि कौने लीन्ही ताको नाउ बताउ-१५८०। (४) अगिन की एक चिह्ना। (४) आँख की पुतली। (६) काली देवी।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो ग्राँधेरी रात में प्रिय से मिलने संकेत-स्थल पर जाय।

कृष्णाष्ट्रमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भादों के कृष्णपत्त की अष्टमी जिस दिन श्रीकृष्ण का जनमोत्सव मनाया जाता है।

कुन्नाकृति—संशा पुं.[सं. इष्ण + त्राकृति] कृष्ण-स्वरूप, कृष्ण लच्या, कृष्ण की त्राकृति । उ. — सुनि सानंद चले बलिराजा, ऋाहुति जज्ञ बिसारी। देखि सरूप सकल कृष्नाकृति, कीनी चरन जुहारी-----१४।

कृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण।

कृस—वि० र सं० कृश] दुबली, पतली, चीगा। उ०— कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हों कुस, इहिं भिस स्र स्याम-बदन चहूँ-१०-२६५।

कुसानु — संज्ञा स्त्री० [सं० कृशानु] स्त्रिगि।

कुसानु सुत - संज्ञा पुं० िसं० कुशानु + सुत] अग्निका पुत्र धूम । उ० — सुन-कृसानु-सुत प्रवत्त भए मिल चार स्रोर ते ऋ ये—साट ११।

कृष्य-वि. [सं.] खेती के योग्य (भूमि)।

कुरन-संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण] श्रीकृष्ण ।

कें चुत्रा-संज्ञा पुं. [सं. किंचि लिक, पा. के चुत्रो] एक वीड़ा जो प्रायः बरसात में जन्मता है ग्रौर मिट्टी खाता है।

कें चुर, केंचूत-संशा स्त्री [सं. कंचुक] सर्प जैसे की ड़ों के शरीर के ऊपर की वह भिल्ली जो प्रतिवर्ष अपने अप श्रवाग होकर गिर जाती है।

कें चुरि, कें चुलि, कें चुली — संशा स्त्री. [हिं. कें चुल] किल्ली, केंचुल। उ.—(क) नैन बैन मुख नासिका ज्यों केंचुलि तजे भुजंग—११८२। (ख) ज्यों भुजंग तजि गयौ कें चुं जी सो गति भई हमारी-३०५६।

केंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी घेरे के ठीक बीव का विंदु। (२) मुख्य स्थान जहाँ से दूर-दूर फैले कार्यों का संचालन हो। (३) बीच या मध्य। (४) अधिक 💀 समय तक रहने का स्थान ।

केंद्रित - वि. [सं.] केंद्र-स्थान में इकट्ठा किया हुआ। केंद्री — वि. [सं. केंद्रिन्] बीच में स्थित। केंद्रीकर्गा - संज्ञा पुं. [सं.] शक्तियों-अधिकारों आदि को केंद्र में एकत्र करना।

केंद्रीय-वि. [सं. केंद्र] जिसका सम्बन्ध केंद्र से हो। केंवरा, केंवरो—संज्ञा पुं. [हिं. केवड़ा] केवड़े का पौधा श्रीर फूल । उ.—तहाँ कमल केंवरो फूले जहाँ केतकी कनेर फूले संतन दित ही फूत डोल-२४०६।

क्र-प्रत्य. [हिं. का] सम्बन्ध सूचक 'का' विभक्ति का बहु

वचन रूप। एक वचन प्रयोग भी होता है जब सम्बन्ध वान् के ग्रागे कोई विभक्ति होती है। उ. - छाँड़ि सुखधाम ऋह गरुड़ तिज साँवरी पवन के गत्रत तें ऋधिक धायौ-१-५।

सर्व. - [सं. कः] कौन ?

के उ-सर्व. - [हिं. के + उ (प्रत्य.) = भी कोई। केउर - संज्ञा पुं. [सं. केयूर] एक आभूषण।

बे. उ. सर्व. [हिं. के + ऊ (प्रत्य.)] कोई।

त्रि. - कई, कितने ही।

केकइ—संज्ञास्त्रो. [सं. कैकेयो] राजा दशरथ की छोटी रानी जो भरत की माता थी।

केकड़ा- संज्ञा पुं. [सं.कर्कट, पा. ककट पानी का एक कीड़ा |

केकय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तरी भारत का एक प्राचीन देश जो वर्तमान काश्मीर में है। (२) इस देश का निवासी या राजा। (३) कैकेयी के पिता।

केक यी-संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी।

केका-संज्ञा स्त्री. [सं.] मोर की बोली या कूक। केकि, केकी - संज्ञा पुं. [सं. के किन्] मोर, मयूर। उ.-के भी पच्छ मुकुट सिर भाजत, गौरी राग मिलै सुर गावत — ५०६ ।

कं चित्-सर्व. [सं.] कोई-कोई।

केड़ा—संज्ञा पुं. [सं. करीर = बाँस का कल्ता] (१) नया पौधा, कोयल । (२) किशोर, नवयुवक ।

के गिक - संज्ञा पुं. [सं. को गिका] तंबू, रावटी।

केत-संज्ञा पु. [सं. वेतु] एक राचस का कवंध। यह रात्तस समुद्र-मंथन के समय श्रमृत-पान करते करते विष्णु द्वारा मारा गया था। इसका धड़ राहु कहाता है। सूर्य श्रीर चन्द्रमा ने इसे पहचाना था; इसी लिए प्रहण-काल में यह उन्हीं को प्रसता मानाजाता है। उ.-राम-नाम बिनु वयों छूटोगे, चंद्र गहै ज्यों केत--१-२६६ |

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, भवन । (२) स्थान, बस्ती।(३) ध्वजा।(४) बुद्धि।(४) सलाह (६) अन्त।

केतक-संशा पुं. [सं.] केवड़ा।

वि. [सं. कित + एक] (१) कितने । (२) बहुत । (३) बहुत कुछ ।

कतकर संशास्त्री, [सं. वेतकी] केतकी का पौधा और फूल।

केतकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक छोटा माड़ या पौधा जिसके सफेद फूल बहुत सुगंधित होते हैं। प्रसिद्धि है कि इसके फूल पर भौरा नहीं बैठता। उ.—लोचन लालच तें न टरें। ""। ज्यों मधुकर रुचि रच्यों केतकी कंटक कोटि अरें। तैसोई लोभ तजत नहिं लोभी फिरि फिरि फिरी फिरे—२७७०। (२) एक रागिनी का नाम। उ.—रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गायों। जैजैदंती जगतमोहिनी सुर सो बीन बजायों—१०१७ सारा.।

केतन — संज्ञा पुं. [सं.] (१) निमंत्रण । (२) ध्वजा। (३) चिन्ह। (४) घर। (४) स्थान।

केतने — वि॰ [हि॰ कितना] कितने (संख्यात्राचक) उ॰ — हों श्रिल केतने जतन विचारों — सा॰ ६७।

केता-वि. [सं. कियत्] कितना।

केतारा-संज्ञा पुं. [देश,] एक तरह की अख।

केति, केतिक—िव. [सं. कित + एक](१) कितना, किस कदर। उ.— (क) तुम मोते अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पढ़ाए (हो)—१-७। (ख) कही बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति अजबालिहें। (ग) केतिक दूरि गयौ रथ माई—२५८०। (घ) आगें दें पुनि ल्यावत घर वौं तु मोहिं जान न देति। सूर स्याम जसुमत मैया सौं हा हा किर कहे वेति—४२४। (२) बहुत।

केती—िव. [हिं. केता] कितनी । उ.—एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ-बनाई— ३३३४।

केतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञान। (२) प्रकाश। (३) ध्वजा, पताका। (४) चिन्ह (४) एक राज्ञस का कबन्ध, जो नौ प्रहों में माना जाता है। (६) पुच्छल तारा जिसकी पुँछ से प्रकाश निकलता है।

केतुमान—वि. [सं.] (१) तेजस्वी। (२) जिसके पास ध्वजा हो। (३) बुद्धिमान।

बेते - वि. [हिं. वेता] कितने । उ. - रावा निसि केते स्नान्तर सिस, निभिष चकोर न लावत - १-२१० ।

केतो, केतो—वि. [हिं. केता] कितना, कितना ही। उ.-वहाँ, विषय सौं तृष्ति न होइ। केतो भोग करो निन कोई— ६-८। (ख) मोहन हमारो भैया वेतो दिध पियतौ — ३७३।

बेदिला, केदली— संज्ञा पुं. [सं. बदली] केले का पेड़। उ.—खग पर कमल कमल पर केदिला केदिला पर हरि छान। हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर ससि भान—२१६१।

वेदार—संज्ञा पुं [सं] (१) हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदार नामक शिविलंग है। उ.—ग्रस्व मेध जज्ञहु जौ कीजै, गया बनारस-ग्रह केदार। राम नाम-सिर तक न पूजै, तनु गारौ जाइ हिवार—२-३। (२) एक राग जो रात्रि के दूसरे पहर में गाया जाता है। उ.—राग-रागिनी साँचि मिलाई गायें सुधर गुंड मलार। सहवी सारँग टोडी भैरवों केदार २२७६। (३) वृच्च के नीचे का थाला, थाँवला। (४) कामस्प देश का एक तीर्थ। (४) श्रीराम की सेना का एक बंदर। उ०—किप सोभित सुभर ग्रनेक संग। ज्यौं पूरन सिस सागर तरंग। सुग्रीव विभीषन जामवंत श्रंगद सुषेन केदार संत—६-१६६।

केदारनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय का एक पर्वत जिस पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है।

वेदारों, केदारों—संज्ञा पुं. [स. वेदार] मेघराग का चौथा भेद जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। उ.—(क) मधुरें सुर गावत केदारों, सुनत स्याम चित लाई। स्रदास प्रभु नंदसुवन कों नींद गई तब श्राई—१०-२४२। (ख) ऊँछ श्रड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन। करत विहार मधुर केदारों सफल सुरन सुख दीन—१०१४ सारा.।

केना—संज्ञा पुं. [सं. क्रेशि = मोल लेना] (१) वह श्रक्त जो साग-भाजी लेने पर बदले में दिया जाता है। (२) साग भाजी।

केम-संज्ञा पुं. [सं. कदंब] कदंब ।

के यूर—संज्ञा पुं. [सं.] बाँह में पहनने का एक श्राभूषण; श्रंगद, भुजबंद, भुजभूषण। उ.—श्रंग- श्रभूषिन जनि उतारित। दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, ले केयूर भुज स्याम निहारित—५१२।

केयूरी—वि. [सं.] जो केयूर नामक श्रतंकार धारण किये हो।

केर-ग्रव्य० [सं. कृत] संबंध सूचक विभक्ति । ग्रवधी भाषा में 'का' के लिए इसका प्रयोग होता है।

केरा—संज्ञा पुं. [हिं. केला] केला, कदली। उ.— खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख रस सोरा—१०-२११।

वेराना—संज्ञा पुं. [हिं. किराना] मसाला, मेवा आदि । केराव—संज्ञा पुं. [सं. कलाय] मटर।

बेरि-पत्य. [सं. कृत] की।

संशा स्त्री. [सं. केलि] कीड़ा।

बेरी—प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' श्रथवा 'के' विभक्ति का स्त्री. रूप]की। उ.—(क) नाहीं सही,परित मोपै श्रब, दारुन त्रास निसाचर केरी—६६३। (ख) सूर स्याम तुमको श्रित चाहत तुम प्यारी हिर केरी —१४५७।

संज्ञा स्त्री. [देश.] कची ग्रंबिया।

केरे—प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' का बहु० रूप] के । उ.—(क) गाउँ हमारो छाँड़ि जाइ बसिही केहि केरे —१०१५। (ख) बहुरि तातो कियो डारि तिन पर दियो ग्राय लपटे सुतहु नंद केरे—२५६०।

वेरो, केरो-पत्य. [सं. कृत, हिं. केर] का, के। उ.- अजान जानिक अपनो दूत भयो उन केरो-१४३१।

केलक—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचनेवाले लोग।

केला—संज्ञा पुं. [सं. कदल, प्रा. कयल] एक पेड़ जिसके पत्ते खूब लंबे और गूदेदार फल मीठे होते हैं।

केलि—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) खेल, कीड़ा, लीला। उ.—ग्राउ धाम मेरे लाल कें ग्राँगन बाल-केलि कों गावित है—१०-७३।(२) रति, समागम।(३) हँसी-ठट्टा।(४) पृथ्वी।

केलिक—संज्ञा पुं. [सं.] त्रशोक वृत्ता। केलिकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरस्वती की वीणा। (२) रति, समागम। केलिकिल—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का विदूषक।
संज्ञा स्त्री.— कामदेव की स्त्री, रित।
केली—संज्ञा स्त्री. [सं. कदली, प्रा. कदली] छोटी जाति का केला।

संशा स्त्री. [सं. केलि] कीड़ा, त्रानंद, विनोद, रंजन। उ.—मधुकर हम नहोहिं वे बेली। जिन भिज तिज तुम फिरत श्रीर रँग करत कुसुम रस केली —२६६४।

केंवट—संज्ञा पुं. [सं. केंवच प्रा. केवह] चिता श्रीर वेश्या माता से उत्पन्न एक वर्ण संकर जाति जिसके लोग प्रायः नाव चलाते हैं। उ.—जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन-१-३०८।

केवड़ा, केवरा—संज्ञा पुं [सं. केविका] (१) सफेद केतकी का पौधा। (२) इस पौवे का फूल। (३) इस फूल का उतारा हुआ अरक।

वेवल-वि. [सं.] (१) अकेला। (२) पवित्र। (३) उत्तम, श्रेष्ट। (४) जिसमें दूसरी बात या चीज की मिलावटन हो।

क्रि. वि.—सिर्फ, मात्र।

संशा पुं.—विशुद्ध और सम्यक ज्ञान।
केवली—संशा पुं. [सं. केवल+ई (प्रय.)] (१)
मुक्ति का अधिकारी। (२) मुक्ति प्राप्त।
केवाँच—संशा स्त्री. [हिं. कोंछ] एक बेल।
केवा—संशा पुं. [सं. कुव=कमल] कमल की कली।
संशा पुं. [सं. किवा] बहुना, मिस।
केवाई — संशा स्त्री. [हिं. केवा] कुई, कुमोदनी।
केश—संशा पुं० [सं०] (१) किरण। (२) विश्व। (३)
विष्ण। (४) सूर्य के बाल। (१) केशी नामक देख

जो कंस का सेवक था। केशकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बाल सँवारने की क्रिया। केशट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) कामदेव का

शोषण नामक वाण। केशपशि—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट। केशर—संज्ञा पुं० [सं० केसर] केसर। वेशरिया—वि० [हिं० केसरिया] केसर के रंग का। केशरी— संज्ञा पुं० [सं. केसरी] (१) सिंह । (२) हनुमान के पिता का नाम ।

केशव — संशा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम ।

(२) श्रीकृष्ण का एक नाम । (३) परमेश्वर । केशिविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] बालों का सँवारना । केशांत—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन संस्कार । केशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राज्ञस जिसे श्रीकृष्ण ने

—सज्ञा पु० [स०] एक राचस जिस आ मारा था।

केशिनी—वि० [सं०] सुंदर बालवाली। केशी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] (१) एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। (२) एक यादव।

वि०- अच्छे बालोंवाला।

केस-संज्ञा पुं० [सं० केश] सिर के बाल।

मुहा०—केस खसै—बाल बाँका हो, कष्ट पड़े।
उ०—जाकों मनमोहन ग्रांग करें। ताकों केस खसै
निहं सिर तैं, जो जग वैर परे—१-३७ | केस निहं
टारि सके—बाल बाँका न कर सके, कुछ हानि न
पहुँ चा सके। उ.—जाकी कृपा पित ह्रे पावन पग
परसत पाहन तरे। सर केस निहं टारि सके को उ,
दाँति पीसि जो जग मरे—१-२३४।

केसपास—संज्ञा पुं० [सं० केशपाश] बालों की लट। उ०—बरना भख कर में अवलोकत केसपास कृतबंद —हिंदह सारा.।

केसर—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की तरह पतली सीकें जो फूलों के बीच में होती हैं। (२) एक प्रकार के फूल का केसर जिसका रंग लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है। (३) घोड़े, सिंह आदि की गरदन के बाल, अयाल। (४) स्वर्ग। (५) नाग-केसर।

केसरि—वि० [हिं० केसर] केसर के रंग का, पीले रंग का। उ०—केसरि चीर पर श्रदीर मानो परची खेलत फागु डारची खिलारी-—२५६५।

केसरिया—वि० [सं० केसर+इया (प्रत्य०)] (१) केसर के रंग का। (२) जिसमें केसर पड़ी हो।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] (१) सिंह । (२) घोड़ा (३) नागकेसर। (४) हनुमान जी के पिता का

नाम। (१) राम की सेना का एक बंदर। उ०— नल-र्नल द्विवद-केसरी-गवच्छ। किप कहे किछुक हैं बहुत लच्छ—६-१६६।

केसव—संज्ञा पुं० [सं० वेशव] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण का एक नाम।

केसवराई—संज्ञा पुं० [सं० केशव + हिं० राय] श्री
कृष्ण का एक नाम, केशवराय। उ०—वर गहि
छीर पियावत श्रपनी, जानित केसवराई—१०-५२।
केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, हिं० खेसारी] एक
तरह का मटर।

केसि, केसी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्, केशी] वंस का दरबारी एक राचस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—बकी बका सकटा त्रिन केसी बछ वृष भये समे श्रील बिन गोपाल इति बैर कीन—सा.उ. ३६।

केसू — संज्ञा पुं ० [सं० किंशुक] टेसू, पलाश।

केहरि, केहरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] (१) सिंह, शेर। उ० कठुला-तंठ, बज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए—१०-६६। (२) घोड़ा।

केहरिनहा—संज्ञा पुं० [सं० वेहरि + हिं० नख] बघनहा।

केहरी—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

केहा—संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केस्रा] (१) मोर। (२) बटेर के बराबर एक पत्ती।

केहि, केही—वि० [सं० कि] किस। उ० झहा सिव स्तुति न सकैं करि मैं बपुरो केहि माहीं—१० उ०-१३२।

केहूँ — कि वि० [सं० कथम्] किसी भाँति या तरह। केहू — सर्व० [हिं० के] कोई।

कैं—प्रत्य० [हिं० कर] कर, करके। उ० - लच्छागृह तें का दि कें पांडव गृह ल्यावें—१-४।

प्रत्य [हिं० के] कमें, संप्रदान ग्रोर ग्रधिकरण का विभक्ति-प्रत्यय, के, के यहाँ। उ०—(क) जैसें गैया बच्छ कें सुमिरत उठि ध्यावै—१-४। (ख) कीन जाति ग्रह पाति बिदुर की ताही कें पग धारत—१-१२। प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक विभक्ति-प्रत्यय, के। उ०—(क) तिज बैवुंठ, गहड़ तिज, श्री तिज, निकट

दास कें त्रायौ—१-१०। केंकर्य—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा, सेवकाई। केंचा—वि. [हिं. काना+ऐंचा = कनैचा] ऐंचाताना। संज्ञा पुं. [तु. केंची] बड़ी केंची।

केंची—संशा स्त्री० [तु०] (१) कतरनी । (२) तिरछी रखी हुई तीलियाँ-सलाइयाँ स्त्रादि ।

केंचुल—संशा स्त्री० [हिं० केंचुल] केंचुल।

केंड़ा- संज्ञा पुं० [सं० कांड = एक माप] (१) नापने का एक पैमाना। (२) चाल, ढंग। (३) चतुराई।

केंती—कि वि० [हिं० के + तीर] श्रोर से। उ०— मेरी कैंती बिनती करनी—६-१०१।

के -िव. [सं. कति, प्रा. कइ] कितना (संख्या), किस कदर (परिमाण)। उ. — जैसें श्रंधी श्रंध कृप में गनत न खाल-पनार। तैसेहिं सूर बहुत उपदेसें सुनि सुनि गे के बार—१-८४।

श्रव्य. [सं. किम्] या, वा, श्रथवा, या तो। उ.— (क) राम भक्तबत्सल निज बानों। जाति, गोत, कुल नाम गनत निहं रंक होइ के रानो—१-११। (ख) जन्म सिरानो ऐसें ऐसें। के घर घर भरमत जदुपति बिनु, के सोवत, के बैसें। के कहुँ खान पान रमना-दिक, के कहुँ बाद श्रनेसें। के कहुँ रंक, कहूँ ईस्व-रत्ता, नट-बाजीगर जैसे—१-२६३।

प्रत्य.—[हैं. का] सम्बन्ध-सूचक विभक्ति, के, कर। उ.—(क) रोर के जोर तें सोर घरनी कियो चल्यो द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ों—१-५। (ख) महा मोहिनी मोहि श्रात्मा श्रपमारगाहिं लगावै। ज्यों दूती परं-वधू भोरि के, ले पर-पुरुष दिखावै—१-४२।

कि.स.[हिं. करना] (१) करो, उपयोग में लाम्रो। उ०—नम तें निकट म्रानि राख्यो है, जल-पुट जतन जुगै। ले म्रपने वर काहि चंद कों, जो भावें सो कै—१०-१६५। (२) करके। उ०—सुनि स्रवन, दस-बदन सदन-म्राभिमान, के नैन की सैन म्रांगद बुलायो—६-१२८।

संज्ञा पुं.—[देश.] एक तरह का मोटा धान। संज्ञा स्त्री. [श्र. के] वमन, जलटी।

कैकइ, कैकई—संज्ञा स्त्री, [सं. कैकेयी] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी। कैकस—संज्ञा पुं ० [सं.] राज्ञसं। कैकेथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कैकय देश या गोत्र की स्त्री। (२) राजा दशस्य की रानी जो कैकय देश की राजकुमारी थी।

केटभ—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो मधु का छोटा भाई था और विष्णु द्वारा मारा गया था।

कैटमा-संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा का एक नाम।

केटमारि—संज्ञा पुं. [सं. कैटम + ग्रार] विष्णु का एक नाम जो केटम देख को मारने के कारण पड़ा था। उ.—बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ, परम प्रान-जीवन-धन मेरे तुम बारे। मनौ वेद-बंदीजन, सूतवृंद मागधगन, विरद बदत जे जे जै जैति कैटमारे—१०-२०५।

कतव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोखा, छल कपट। (२) जुआ, चूत। (३) लहसुनियाँ।

वि.—(१) छली, कपटी।(२) जुग्रारी। कतवापह्न ति—संशा स्त्री. [सं.] एक ग्रालंकार जिसमें विषय का किसी बहाने से गोपन या निषेध किया जाय।

कैथ, कैथा—संज्ञा पुं० [सं. किपत्थ] एक कँटी ला पेड़। कैथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कायस्थ] एक पुरानी लिपि जो अधिकतर बिहार में प्रचलित है।

केंद्र—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कारावास । उ०—साचौं सो तिखहार कहावै । ... । मन महतौ करि केंद्र अपने मैं, ज्ञान-जहतिया लावै—१-१४२। (२) बंधन । (३) शर्त, प्रतिबंध।

कैदखाना — संशा पुं. [फा. कैदख़ाना] जेलखाना, कारागार, बंदीगृह।

केदी—संज्ञा पुं. [श्र. केद] जो केद हो, बंदी। केदु—संज्ञा स्त्री. [हिं. केद] बंधन, प्रतिबन्ध। उ०— हारि मानि उठि चल्यौ दीन हो जानि श्रपुन पे केदु —३४६८।

केंग्रों, केंग्रों — श्रव्य. [हिं. कें + धों] या, वा, श्रथवा।

उ. — कैंधों तुम पावन प्रभु नाहीं, के कछु मो मैं

भोली। तो हों श्रपनी फेरि सुधारों, वचन एक जी

बोली— १-१३६।

केन—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचिका] (१) बॉस की पतली टहनी। (२) पतली टहनी। विकास संज्ञा स्त्री. [देश.] एक खनिज पदार्थ। केनित—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक खनिज पदार्थ।

कैफ—संज्ञा पुं. [त्र्र.] (१) नशा, मद। (२) चारा जिसमें मादक द्रव्य मिला हो।

कैंफियत—संज्ञा स्त्री, [ग्र.] (१) समाचार, हाल । (२) विवरण। (३) विचित्र घटना।

केंबा—संज्ञा स्त्री. [देश.] तीर का फल। केंबा—संज्ञा स्त्री., श्रव्य० [हिं. कें = कई + बार] (१)

कितनी बार। (२) कई बार।

केंबार—सज्ञा पुं. [हिं. किवाड़] किवाड़। केम, केमा—संज्ञा पुं. [सं. कदंब] चौड़े सिरे के पत्तेवाला कदंब।

कैयो—कि. वि. [हिं. के = कई + यो] कई प्रकार के, कई तरह के। उ.—कैयो भाँति केरा करि लीने—२३२१। कैर—संज्ञा स्त्री. [सं. करील] एक कँटीली भाड़ी।

करव — संज्ञा पु. [सं.] (१) कुमुद । (२) सफेद कमल ।

(३) शत्रु। (४) जुम्रारी। कैरवाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कैरवों का समूह। कैरवि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा।

करवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदनी (रात)।

करा-संशा पुं. [सं. करव = कुमुद] (१) भूरा (रंग)।

(२) लाज भलकवाली सफेदी। (३) एक तरह

वि.—जिसकी ग्राँखें भूरी हों।

केरात—िव. [सं.] किरात जाति या देश संबंधी । संशा पु. [सं.] (१) एक तरह का चंदन। (२) बजी श्रादमी। (३) एक तरह का साँप। (४) एक चिड़िया।(४) राग का एक भेद।

करी—ित्र. स्त्री. [हिं. करा] (१) भूरे रंग की। (२) लाली लिये सफेद रंग की।

संज्ञा स्त्री. [हिं. केरी] छोटा श्राम, श्रॅंबिया। प्रत्य. [सं. कुत, हिं. 'केर' का स्त्रीतिंग रूप] की। केल—संज्ञा स्त्री० [हिं. कला] वृत्त की नयी पतली शाखा, कनखा।

केलास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय की चोटी जिस पर शिव जी का निवास माना जाता है, शिव का

निवास स्थान। (२) एक प्रकार के षद्कोण मंदिर। (३) स्वर्ग।

कैफी—वि. [श्र.] (१) मतवाला। (२) नशेबाज। कैलासपति—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी। कैलासवास—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु।

कैत्तासी—संज्ञा पुं. [सं. कैलास = ई (प्रत्य.)] (१) कैलास निवासी शिव। (२) कुबेर।

केवर्त - संज्ञा पुं. [सं. कैवर्त्त] एक वर्णसंकर जाति, केवट, मल्लाह।

केवर्तिका-संशा स्त्री. [सं.] एक खता।

कैवल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्धता, मिलावट न होना।

(२) मुक्ति, निर्वाण। (३) एक उपनिषद का नाम। कैवाँ, कैवा—िक वि. [हिं. कै — कई + नाँ = बार] कई बार। उ.—कहा जाने कैवाँ मुनौ, (१) ऐसे कुमिति, कुमीच। हिर सौं हेत विसारि कै, (१) सुख चाहत है नीच—१-३२५।

केशिक—वि. [सं.] बड़े बालवाला।

संज्ञा पुं.—(१) केशसमूह। (२) केशश्रंगार। केशिकी— संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक की एक वृत्ति। कैसा—वि. [सं. कीटश, प्रा. करेस] (१) किस तरह का।

(२) किसी प्रकार का नहीं (निषेधात्मक प्रशन-रूप में)।

कि. वि. [हिं. का + सा] के समान, की तरह। कैसिक—कि. वि. [हिं. कैसा] कैसे, किस भाँति।

कैसे, कैसें—िक. वि. [हिं. कैसा] (१) किस प्रकार से, किस रीति से। उ.—कहि, जाकों ऐसी सुत बिछुरे, सो कैसें जीवे महतारी—१०-११। (२) किस हेतु, किस लिए, क्यों।

मुहा०—कैसेहुँ करि — किसी प्रकार से, बड़े यत्नों से, बड़े भाग्य से, राम राम करके। उ.—ढोटा एक भयी कैसेहुँ करि कौन कौन करबर विधि भानी—

कैसो, कैसो—िव. [हिं. कैसा विसा। उ.—उनहूँ कैं गृह, सुत, द्वारा हैं, उन्हें भेद कहु कैसो—२-१४।

कि. वि. [हिं. का+सा] के समान, की तरह। उ.-कबहुँ नाहिं इहिं भाँति देख्यो ग्राजु कैसी रंग-४१७। कैहूँ—कि. वि. [हिं. कै = कैसे+हूँ (प्रत्य.)] किस तरह, किस प्रकार।

कैहें - कि. स. [हं. वहना] कहेंगे। उ.- सबै के हैं इहै भली मित तुम यहै नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे --र६०५।

केहै-कि. स. [हिं. करना] करेगा, संपादन करेगा। उ.--कहचौ तो हिं याह त्रानि जब गैहै। तू नारायन सुमि-रन कहै----र।

केहों-कि. स. [हिं. करना] करूँगा। उ.-जब मैं भिक्त स्याम की कैहों। जानत नहीं कहा मैं पैहों-४-६। केही - कि. स. [हिं. कहना] कहोगे, मुख से बोलोगे।

उ.—(क) एक गाँव एक ठाँव को बास एक तुम केही, वयों मैं सैहों—८४३। (ख) कबहुक तात तात मेरे मोहन या मुख मोसों केही-र्६५०।

कोंइछा- ज्ञासं पुं. [हिं. कोछा] श्राँचल का भाग जिसमें कुछ बाँधकर कमर में खोंसा जाय।

कोंई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी, प्रा. कुउई] कुमुदिनी। कोंचना-कि. स. [सं. कुच्] चुभाना, गड़ाना।

कोंचा-संज्ञा पुं. [हिं. कोंचना] (१) पत्ती फँसाने की लासा लगी लग्वी। (२) भड़भूजे का कल्छा।

कों छ-संज्ञा पुं. [सं. कच, प्रा. कच्छ] स्त्रियों के अंचल का छोर या कोना।

कोंछना—कि. स. [हिं. कोंछ] स्त्रियों की साड़ी का या मद्रौं की बंगाली ढंग से पहनी जानेवाली घोती का श्रागे का भाग चुनना।

कोंछियाना - क्रि. स. [हिं. कोछ] कोंछना।

कोंछी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंछ] साड़ी या घोती का वह भाग जो चुनकर पेट के आगे खोंसा जाय, नीबी।

कोड़ई—संज्ञा पुं. दिश. एक कँटी जा पेड़।

कोड्हा, कोंढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंडल] धातु का छल्ला। कोंढ़ी-संज्ञा स्त्री. [सं. कोष्ठ] कली जो खिली न हो। कोंध- संज्ञा स्त्री. [सं. कोण अथवा कुत्र, पु. हि. कोद,

कोध] दिशा, श्रोर। उ०—एक कींध ब्रज सुन्दरी एक कोंध ग्वाल-गोविन्द हो । सरस परस्पर गावहीं द नारि गारि बहु इंद हो - २४४६।

कोंप-संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंपल] कल्ला, अकुर।

कोंपना-कि. ग्र. [हिं. कोंपल] कोंपल निकलना।

कोंपर—संज्ञा पुं. [हिं. कोंपल] अधपका आम । कोंपल-संज्ञा स्त्री. [सं. कोंमल या कुपल्लव] नयी पत्ती, कल्ला, कनखा।

कोंबर, कोंबरी-वि. स्त्री. [सं. कोमल]।(१) कोमल, नरम, मुलायम। (२) सहनीय, भली लगनेवाली। उ. - प्रात-समय रवि-किरिन कोंवरी, सो कहि सुतिहं बतावति है। आउ धाम मेरे लाल कें आँगन, बाल केलि कों गावति है-१०-७३।

कोंस - संज्ञा पुं. सं. कोश] लंबी कली, छीमी। कोंहड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. कुम्हड़ा] कुम्हड़ा, सीताफल। कोंहड़ोरी-संज्ञा स्त्री. [हिं. वोहड़ा = कुम्हड़ा + बरी] कुम्हड़े या पेठे की बरी।

कोंहरा—संज्ञा पुं. [देश.] उबाले हुए चने या मटर जो छोंक कर खाये जाते हैं।

कोंहार—संज्ञा पुं. [हिं. कुम्हार] कुम्हार।

को - सर्व [सं. कः] कौन, किसने। उ. - (क) ऐसी को करी श्रर मक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धारी लाजैं — १-५। (ख) तूको ? कौन देश है तेरी, के छल गहची राज सब मेरो - १-२६०।

प्रथा.—कर्म श्रीर संप्रदान कारकों की विभक्ति कोञ्चा-संज्ञा पु. [सं. कोश या हिं. कोसा] (१) रेशम का कीड़ा। (२) रेशमी कीड़े का घर। (३) कटहल का कोया।

कोइ-प्रत्य- [हिं. का] का। उ.-सुनि देवता बड़े, जग-पावन तू पति या कुल कोई-१०-५६। संशास्त्री. [हिं. कुँईं] कुमुदिनी। उ - पूरनमुखं

चंद्र देख नैन-कोइ फूलीं—६४२। कोइरी—संज्ञा, [हिं. कोपर=साग-पात] साग-तरकारी बोने वाली एक जाति।

कोइल, कोइलिया - संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) मथानी में लगी गोल छेददार लकड़ी। (२) करघी के बगल में लगी करघे की लकड़ी।

संशा स्त्री. [सं. कोंकिल, हिं. कोयल] कोयल। कोइली—संशा स्त्री. [हिं. कोयल] कचा आम जिस पर कोयल के बैठने से कोला सा दाग पड़ जाय।

कोई—सर्व. [सं. कोपि, पा. कोवि] (१) अज्ञात मनुष्य या पदार्थं। (२) अनिर्देशित ब्यक्ति या वस्तु। (३) एक

भी (मनुष्य)। उ.—हरि शौं मीत न देख्यो कोई— १-१०।

वि.—(१) मनुष्य या पदार्थ जो अज्ञात हो। (२) अनेक में से कोई एक। (३) एक भी।

क्रि. वि. -- त्राभग।

कोड—सर्व, [हिं. को + हू = भी] कोई। उ.— स्रदास की वीनती कोउ ले पहुँचावें—१-४।

को उक—सर्व. [हिं. को उ + एक] को इ एक, कुछ लोग। को ऊ— सर्व. [हिं. को + हू (पत्य.) = मं।] को ई, को ई भी। उ.—ग निका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल को ऊ न पिता री—१-३४।

कोकंब—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ जिसके सब भाग खटे होते हैं।

कोक—संशा पुं. [सं.] (१) चकवा पत्ती, चकवाक। उ.—स्रस्याम पर गई बारने निरष कोक जनु कोकी—सा. ११२। (१) कोकदेव जो रितशास्त्र के आचार्य थे। (३) संगीत का एक भेद। (४) विष्णु। (४) भेड़िया।

कोकई— वि. [तु. कोक] गुलाबीपन लिये नीला। कोककला—संशा स्त्री. [सं.] रित विद्या, कामशास्त्र। उ.—(क) हाव-भाव, कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाई— ६६०। (ख) कोककला-गुन प्रगटे भारी— १२१६। (ग) कोककला वितपन्न भई हो कान्हरूप तनु श्राधा—१४३७।

कोकन-संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ ।

कोकनद — संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाल कमल। (२) लाल कुमुद।

कोकना—क्रि. स. [फ़ा. कोक = कची सिलाई] कची सिलाई करना, लंगर डालना।

कोवनी—संज्ञा पुं. [सं. कोक = चकवा] एक तरह का

संज्ञा पुं. [तु. कोक = श्रासमानी] एक रंग।

वि. [देश.] (१) छोटा, नन्हा । (२) घटिया, मामूली।

कोकम-संज्ञा पुं. [देश] एक दिचाणी पेड़।

कोकव-संज्ञा पुं० सं. एक राग।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं, [सं,] कोकदेव नामक एक पंडित-

कोका—संज्ञा पुं. [हिं. कोक] एक तरह का कबूतरे। संज्ञा पुं. — चकवा।

कोक। बेरी, कोका बेली—संज्ञा स्त्री. [सं. कोका + हिं बेती] नीली कुई या कुमुदिनी

कोकाह-संज्ञा पुं. [सं.] सफेद रंग का घोड़ा।

कोकिल—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कोयल । (२) छप्पय छंद का एक भेद।

कोकिल'— संज्ञा स्त्री. [सं.] कोयल ।

को की -- संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा चकवा।

कोको-संज्ञा स्त्री. [अनु.] कौआ।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कु चि, प्रा. कु किख] (१) गर्भाशय। उ०—(क) जसुमित कोख आय हरि प्रगटे असुर तिमिर कर दूर—सारा, ३६। (ख) धन्य कोख जिहिं तोकों राख्यो, धनि घरि जिहिं अवतारी—७०३।

मुहा०—कोख भाग सहाग भरी— पति-पुत्र का सुख देखनेवाली और भाग्यवती । उ.—धिन दिन है, धिन यह राति, धिन-धिन पहर-धरी । धिन धिन महिर की कोख, भाग-सहाग भरी—१०-२४ । कोख की औंच—संतान का वियोग, संतान की ममता।

(२) उदर, पेट।(३) पेट के दोनों बगलों का स्थान। कोखजली—वि. स्त्री. [हिं. कोख — जलना] जिसकी

संतान मर जाती हो।

कोखबंद—वि. [हिं. कोख + बंद] जिसके संतान हुई ही न

कोखि—संज्ञा स्त्री. [सं. कु ज्ञि, प्रा. कु निख, हिं. को ख]
गर्भाशय, गर्भ । उ.—(क) याकी को खि स्रोतरे जो
सुत करें प्रान-परिहारा—१०-४ । (ख) स्रहो जसोदा
कत त्रासित हो यहै को खि को जायो—३४६ । (ग)
तिनमें प्रथम लियो कर्यप गृह दिति की को खि
मॅभार—सारा. ४४ ।

को खिजरी—वि. स्त्री, [हिं. को ख-। जलना] जिसकी संतान जीवित न रहे, जिसे संतान का सुख न मिले। उ.— पाऊँ कहाँ खिलावन को सुख, में दुखिया दुख को खिजरी—१०-८०।

कोगी—संज्ञा पुं. [देश.] एक जानवर (सोनहा) जो लोमड़ी के बराबर होता है।

कोचना—कि. स. [सं. कुच् = लिखना] चुभाना, गड़ामा। कोचरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक वनी लता।

कोचरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पत्ती। कोचा—संज्ञा पुं. [हि. कोचना] (१) हल्का घाव। (२) चुटीली बात, ताना।

कोजागर-संज्ञा पुं. [सं.] शरद की पूर्णिमा।

कोट—संज्ञा पुं. [सं. कोटि] (१) यूथ, जत्था। (२) समूह, ढेर। उ.— (क) सभा मँभार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि घरी। सुमिरत पट को कोट बढ़्यो तब, दुख-सागर उबरी—१-१६। (ख) जैसे बने गिरिराज जू तैसे अन को कोट—६१२ (ग) दसहूँ दिसि तें उदित होत हैं दावानल के कोट—२७०३।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) महल, राजप्रासाद। उ.— स्वनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन। कंचन वोट वॅगूरिन की छिष मानहु बेठे मैन— २५५८। (२) दुर्ग, किला। उ.—(क) मय, माया-मय कोट स्वारो। ता मैं बैठि सुरिन जय करौ। तुम उनके मारे निहं मरौ—७-७। (ख) रही दे घूँ घट पट की श्रोट। मनो कियो फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट—सा. उ. १६। (३) शहरपनाह, शावीर।

वि. [सं. कोटि] करोड़ । उ.— (क) राधे आज मदन-मद माती । सोहत सुंदर संग स्थाम के षरचत कोट काम कल थाती— सा. ५०। (ख) भादों की अधराति अँध्यारी । द्वार-कपाट कोट भट रोके दस दिसि कंत कंस-भय भारी—१०-११।

कोटपाल—शंशा पुं० [सं.] दुर्गरत्तक। कोटर—संशा पुं [सं०] (१) पेड़ का खोखला भाग। (२) दुर्ग के आसपास का वन।

कोटरी — संज्ञा स्त्री [रं०] दुगी, चंडिका।

कोटि—वि. [सं.] सौ लाख की संख्या, करोड़।

संज्ञा स्त्री [सं.] (१) धनुष का सिरा। (२) वर्ग, श्रेणी। (३) उत्तमता। (४) समूह, जत्था।

कोटिक—िव. [संकोटि + क (प्रत्य.)] (१) करोड़।

(२) ग्रमित, ग्रसंख्य।

कोटिक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] विषय प्रतिपादन-क्रम । कोटिच्युत—वि. [सं.] पद से नीचे भेजा हुन्ना । कोटिच्युति—संज्ञा स्त्री. [सं.] पद से गिराने की किया । कोटितीथ—संज्ञा पुं. [सं] एक तीर्थ जो उज्जैन, चित्रकृट न्नादि ग्रनेक स्थानों पर है । कोटिनि—संशा पुं. [सं. कोटि + हिं. नि (प्रत्य)] करोड़ों का समूह, ढेर । उ.—पांडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिनि बसन पुजाए । बिपति काल सुमिरत तिहिं श्रवसर जहाँ तहाँ उठि घाए— १-१५८ ।

कोटिफली—संज्ञा पुं. [सं.] गोदावरी नदी के सागर संगम के समीप एक तीर्थ । प्रसिद्धि है कि इंद्र का ग्रहिल्या संबंधी पाप यहीं स्नान करने से दूर हुआ था।

कोटिबंध - संशा पुं. [सं.] पद, महत्व या मूल्य के श्रनुसार श्रेणी-विभाजन करना।

कोटिबद्ध—िव. [सं.] श्रेणियों में विभक्त। कोटिशः—िकि. वि. [सं०] बहुत तरह से। वि.—बहुत बहुत।

कोटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] (१) नोक या धार। उ.— मेली सिंज मुख-श्रंबुज भीतर उपजी उपमा मोटी। मनु बराह भूधर सह पुहुमी धरी दसन की कोटी—१०-१६४। (२) किसी श्रस्त्र की नोक।

कोटू—संज्ञा पुं. [देश.] एक पौधा जिसके बीजों का आटा फलहार रूप में खाया जाता है।

कोट्टवी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) वाणासुर की माता जो पुत्र की श्रीदृष्ण से रक्ता के लिए वस्त्र त्याग कर युद्ध चेत्र में श्रायी थी। (२) वस्त्ररहित स्त्री। (३) दुर्गा।

कोठ—िव. [सं. कुंठ] बहुत खद्दा। कोठिरया, कोठरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोठा + ड़ी (री)] छोटा या तंग कमरा।

कोठा—संज्ञा पुं. [सं. कोष्ठक] (१) बड़ा कमरा। (२) भंडार।(३) अटारी।(४) पेट (४) गर्भाशय।(६) खाना (शतरंज या चौपड़)। (७) शरीर या मस्तिष्क का भीतरी भाग।

कोठार—संज्ञा पुं. [हिं. कोठा] अन्न आदि का भंडार। कोठारी—संज्ञा पुं. [हिं. कोठार + ई (प्रत्य.)] भंडारी।

कोठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोठा] (१) बड़ा और बढ़िया पक्का मकान। (२) उस धनी या महाजन का मकान जो खूब लेन-देन करता हो या थोक विकेता हो।

मुहा,— कोठी खोलि—लेन देन का काम या बड़ा कारबार शुरू करके। उ.—करहु यह जस प्रगट त्रिभुवन निठुर कोठी खोलि। कृपा चितवनि भुज उठावह प्रेम बचननि बोलि—ए. ३४२ (१७)।

(३) अनाज का भंडार या कोठार। संज्ञा स्त्री [सं. कोटि=समूह] बाँसों का समूह जो एक साथ उगे हों।

कोठीवाल—संज्ञा पुं. [हिं. कोठी + वाला (प्रत्य.)] (१) बड़ा महाजन। (२) बड़ा व्यापारी।

कोड़ना—िक. स. [सं. कुंड = खंडित करना] खेत गोड़ना। कोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कवर=गुथे हुए बाल] (१) चाबुक, सोंटा। (२) उत्तेजक बात। (३) चेतावनी।

कोड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोड़ना] खेत गोड़ने की मज-

कोड़ाना—कि. स. [हिं. कोड़ना का प्रे.] कोड़ने का काम दूसरे से कराना।

कोड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] बीस का समूह। कोढ़—संज्ञा पुं. [सं. कुष्ट] एक भयानक रोग। मुहा,—कोढ़ की (में) खाज—दुख पर दुख।

कोढ़ी—संज्ञा पुं, [हिं. कोढ़] कोढ़ नामक भयानक रोग से पीड़ित मनुष्य जो घृणित और अस्प्रस्य समभा जाता है। उ.—उल्टी रीति तिहारी ऊधौ सुनै सु ऐसी को है।...। मुडली पटिया पारि सँवार कोढ़ी लावै केसरि।...। सो गति होई सबै ताकी जो ग्वारिन जोग सिखाबै—३०२६।

कोगा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोना। (२) दो दिशाओं के बीच की दिशा। (३) हथियारों की धार। (४) सोटा, इंडा।

कोगार्क-संज्ञा पुं. [सं.] एक तीर्थ जो जगन्नाथपुरी में है। कोत-संज्ञा स्त्री. [ब्र. क़ुवत] बल, शक्ति। संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद, कोध] दिशा।

कोतल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सजा हुआ घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो। (२) राजा की सवारी का घोड़ा। वि.— जिसे कोई काम न हो।

कोतवार, कोतवाल—संज्ञा पुं. [सं. कोटपाल] (१) धित कोतवार, कोतवाल एक प्रधान कर्मचारी। (२) सभा या पंचायत में भोजनादि का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी। कोतवाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोतवाल + ई (प्रत्य,)] (१)

कोतवाल का कार्यस्थान। (२) कोतवाल का पद। कोतह—वि. [फ़ा.] छोटा, कम। कोता, कोताह—वि. [फ़ा. कोतः] छोटा, कम। कोताही—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] कमी, त्रुटि। कोति—संज्ञा स्त्री. [सं. कुत्र — किधर] दिशा, श्रोर। कोथ—संज्ञा पुं. [सं.] श्राँख का एक रोग। कोथला—संज्ञा पुं. [हिं. स्थल या कोठला] (१) बड़ा थैला। (२) पेट।

कोथली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोथला] रुपए रखने की थैली जो कमर में बाँध ली जाती है।

कोथी—संज्ञा स्त्री. [देश.] म्यान के सिरे का छक्षा। कोदंड – संज्ञा पुं. [सं.] (१) धनुप, कमान। उ.—तोरि कोदंड मारि सब जोधा तब बल भुजा निहारचौ— २५८६। (२) धनराशि। (३) मेंहि।

कोद—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण श्रथवा कुन] (१) दिशा, श्रोर। उ.—(क) श्रानंदकंद, सकल सुखदायक, निसि दिन रहत केलि रस श्रोद। सूरदास प्रभु श्रंबुज लोचन, फिरि चितवत ब्रज-जन-कोद—१०-११६। (ख) नारि-नर सब देखि चितत भए, दवा लग्यौ चहुँ कोद—५६२। (२) कोना।

कोदइत—संज्ञा पुं. [हिं. कोदो+ऐत (प्रत्य.)] कोदो दलने वाला।

कोदई— संज्ञा स्त्री. [सं. कोद्रव] कोदों। कोदन—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद, कोध] दिशा, श्रोर, तरफ। उ.—श्रन्नकूट जैसो गोवर्धन। श्रक्ष पकवान धरे चहुँ कोदन—१०२५।

कोदरा, कोदव—संशा पुं. [हिं. कोदो] एक कदन्न । कोदवला—संशा स्त्री. [हिं, कोदो] एक घास । कोदों, कोदो—संशा पुं. [सं. कोद्रव] एक कदन्न । मुहा.—कोदों देकर पढ़ना (सीखना)-बेढंगी शिह्ना पाना । छाती पर कोदों दलना—दूसरे को बेबस करके

कुढ़ाना या जलाना।

कोद्रव—संज्ञा पुं. [सं.] कोदो, कोदई।
कोध—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद] ग्रोर, दिशा। उ.—(क)
नर नारी सब देखि चिकत भे दावा लग्यो चहुँ कोध।
(ख) एक कोध गोविंद ग्वाल सब एक कोध त्रजनारि—२३६६।

कोन—संज्ञा पुं. [सं. कोगा] कोना, कोर, किनारा। उ.— (क) नैन कोन की श्रंजन-रेखा पटतर कहूँ न छीजै— २१६७। (ख) तीनि लोक जाकें उदर-भवन, सो सूप कें कोन परयो है (हो)—१०-१२८।

कोना—संज्ञा पुं. [सं. कोण] (१) कोण, श्रंतराल । (२) नुकीला सिरा। (३) (वस्त्र या इमारत का) छोर या खूँट। (४) एकांत स्थान।

कोनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोना] (१) दीवार के कोने पर चीज रखने की पटिया। (२) मृति अ।दि के कोनों का सजाना।

कोनी—सर्व. [हिं. कौन+ई] कौन, कौन (स्त्री०)। उ.— अहन अघर दसरावली छिब बरने कोनी (कौनी) —१८२१।

कोप-संज्ञा पुं [सं.] क्रोध, रिस, गुस्सा। उ.—मदन वान कमान ल्यायो करिष कोप चढ़ांय—सा. ३२।

कोपन-वि. [हिं. कोपी] कोध करनेवाला।

कोपना—कि. श्र. [सं. कोप] कोध करना, नाराज होना। वि.—कोध में भरी हुई, श्रश्रसन्न।

कोपभवन—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ कोई स्त्री. पुरुष ग्रपने मित्रों-संबंधियों से ग्रप्रसन्न होकर चला जाय।

कोपर—संज्ञा पुं. [सं. कपाल] कुंडेदार बड़ा थाल या परात। उ.—(क) दिध-फत्त-दूव कनक कोपर भरि साजत सौंज विचित्र बनाई—६-१६६। (ल) मिन-मय ग्रासन ग्रानि धरे। दिधि मधु-नीर कनक के कोपर ग्रापुन भरत भरे—६-१७१।

संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपलव] डाल का पका

कोपल-संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपल्लव] नयी पत्ती, कल्ला, श्रंकर।

कोपलता-संज्ञा स्त्री. [सं.] एक बेल ।

कोपली —िवि. [हिं. कोपल] नये निकले हुए पत्ते के रंग का, बैंगनी रंग का।

संज्ञा पुं. - कालापन लिये हुए लाल या बैंगनी रंग।

कोपि-कि, श्र. [सं. कोप, हिं. कोपना] कोप करके,

कोधित हो कर । उ.—(क) कोपि कौरव गहे वेस जब सभा में, पांडु की बधू जस नैंकु गायो—१-५ । (ख) कोपि के प्रभु बान लीन्हों तबहिं धनुष चढ़ाइ —६-६०।

कोपित—वि. [सं. कुपित] (१) ऋइ, कोधित। उ०— प्रात इन्द्र कोपित जलधर ले ब्रज मंडल पर छायौ —३०७७। (२) अत्रसन्त ।

कोपी—वि. [सं. कोपिन] (१) कोप करनेवाला, कुछ, अप्रसन्त । उ०—सन ते परम मनोहर गोपी। "। वारे किवजा के रंगहि राँचे तदिप तजी सोपी। तदापि न तजे भजे निसि-वासर नेकहू न कोपी-३४८७। (२) जल के किनारे रहनेवाला एक पन्ती।

वि. [तं. कोऽपि] कोई, कोई भी।

कोपीन-संज्ञा पुं. [सं. कौपीन] साध-संन्यासियों की लँगोटी, कफनी, काछा।

कोपे—िकि. श्र. [सं. कोप, हिं. कोपना] क्रोधित हुए, कुद्ध हुए। उ.—श्राजु श्रित कोपे हैं रनराम—१५८। कोपे—िकि. श्र. [हिं. कोपना] क्रोध करता है, रुष्ट होता है। उ.—कोपे तात प्रहलाद भगत की, नामहिं लेत जरे—१८२।

कोपो-कि. य. भृत. [हिं. कोप्यो कुद हुया। उ.-

को प्यो — कि. त्र. [हिं. कोपना] कोध किया, कुद हुआ। उ.—(क) जो सुरपित कोप्यो ब्रज ऊपर, कोध न कुछू सरें — १-३७। (ख) इत पारथ कोप्यो है हम पर, उत भीषम भट राउ—१-२७४।

कोफत—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दुख । (२) परेशानी । कोबिद—वि. [सं.कोविद] पंडित, विद्वान । उ.—परम कुशल कोबिद लीलानट, मुसुकनि मन हरि लेत —१०-१५४।

को बिदा—ि। स्त्री. [सं. को विद] पंडिता, शौड़ा। उ.— स्र स्याम को विदा सुभूषन कर विपरीत बनावै-सा. ५।

कोबिदार—संज्ञा पुं. [सं. कोविदार] कचनार का पेड़ या फूल।

कोमता—संज्ञा पुं. [देश.] एक कँटी ला पेड़। कोमल—वि. [सं.] (१) मृदु। (२) सुन्दर, मनोहर। (३) सुकुमार। (४) कचा। (४) संगीत में स्वर का एक भेद।

कोमलता, कोमलताई - संज्ञा स्त्री. [सं. कोमलता] (१) मधुरता, सुन्दरता।

कोमला, कोमलावृत्ति—संशा स्त्री. [सं.] काव्य में एक मधुर वृत्ति।

कोमलाई—संज्ञा स्त्री, [सं, कोमलता] (१) कोमलता। (२) सधुरता।

कोय—सर्व. [हिं. कोई | जोई । उ.— निश्चय किए मुक्त सब माधव ताते जिये न कोय — २९५ सारा. ।

कोयर—संज्ञा पुं. [सं. कोंपल] (१) साग-सब्जी। (२) हरा चारा।

कोयल-संज्ञास्त्री. [सं. को किल] को किला। संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

कोयला—सज्ञा पुं. [सं. को किल = जलता हु ग्रा श्रंगारा]
(१) जला हु ग्रा काला पदार्थ जो ग्रंगारा बुक्ताने से
बच जाता है। (२) एक खनिज पदार्थ।
संज्ञा पुं. [देश.] सोम नाम का पेड़।

कोया—संज्ञा पुं. [सं. कोण] (१) आँख का डेला।
(२) आँख का कोना।
संज्ञा पुं. [सं. कोश] कटहल के फल की गुठली
जिसमें बीज रहता है।

कोर—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण] (१) किनारा, सिरा। सिय ग्रंदेस जानि सूरज-प्रभु लियो करज की कोर— ६२३। (२) कोना। उ.—(क) सूरके प्रभु कुपासागर चिते लोचन कोर। बढ़्यों बसन-प्रवाह जल ज्यों, होत जयजय सोर—१-२५३। (ख) मन हर लियो तनक चितवनि में चपल नैर की कोर—३१४३। महा.—कोर दबना—वश, श्रधिकार या दबाव में होना।

(३) बैर, द्रेष । उ.—उतते सूत्र न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर—ए. ३३५ । (४) दोष, खराई । (४) हथियार की धार । (६) पंक्ति, कतार । (७) स्थान, घर । उ.— स्वन ध्वनि सुर नाद मोहत करत हिरदे कोर—३३५ । (८) रेखा । उ.—बहुरी देख्यों ससि की श्रोर । तामें देखि स्यामता कोर—५-३ । संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) चैती की पहली सिचाई। (२) जलपान का चवेना।

संज्ञा पुं. [सं.] शरीर के श्रवयवों की वह संधि जहाँ से वे मुड़ सकते हैं; उँगली, कुहनी श्रादि की संधि, गाँठ, पोर। उ.—इक सली मिलि हँसति पूछति खैंचि कर की कोर—३३८९।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़, हिं. कोरा] (१) गोद, उछंग, फंदा, पकड़। उ.—कॅपति स्वास त्रास त्रास त्रात मोकति ज्यों मृग केहरि कोर—२१६२। (२) आलिंगन। उ.—सूर स्थाम स्थामा भरि कोर ग्ररस परस रीभत उपरे नाहीं में समाई-—१५६५।

कोरक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कली, श्रधिखला फूल। (२) फूल की हरी कटोरी जिसमें फूल रहता है; कमल की डंडी।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री.[हिं. कोर+फ़ा. कसर] (१) दोप और कमी। (२) कमी-बेशी।

कोरत—िक, स. [हिं. कोरना, कोड़ना] कटता है, खुरचता है, कुरेदा जाता है, कचोटता है। उ.— सूर स्थाम पिय मेरे तौ तुम ही जिय तुम बिनु देखें मेरो हिय कोरत—१५२०।

कोरना—कि. स. [हिं. कोड़ना] (१) गोड़ना, खोदना। (२) कुतरना, कुरेदना।

कि. स. [हिं. कोर + ना (प्रत्य.)] जकड़ी छील-छाज कर नुकीली करना।

कोरिन—संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़, हिं. कोरा+नि प्रत्य.)] गोद में, पकड़ में। उ.—मन्मथ पीर श्रधिक तनु कंपित ज्यों मृग केहरि कोरिन—र∽४२।

कोरवा — संज्ञा पुं. [हिं, कोरा] गोद । कोरहा — वि. [हिं, कोरा+ हा (प्रत्य.)]। नोकदार। वि. [हिं, कोरा = गोद] गोद में ही रहनेवाला।

कोरा—िव. [सं. केवल] (१) जो काम में न लाया गया हो, श्रञ्जूता, नया। (२) जो घोया न गया हो। (३) जिस (कागज इत्यादि) पर कुछ लिखा न गया हो, सादा। (१) खाली, रहित। (१) दोष या पाप से रहित। (६) श्रपद। (७) निर्धन। (८) केवल, खाली। संज्ञा पुं. [सं. करक] एक चिड़िया।
संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़] गोद। उ.—(क) कान्हें
जमुमित कोरा तें रुचि करि कंठ लगाये—१०-५३।
(ख) नंद उठाइ लिये कोरा करि, श्रपनें सँग
पौढ़ाइ—५१८।

कोरापन—संज्ञा पुं. [हिं. कोरा + पन (पत्य)] श्रब्धूतापन, नयापन।

कोरि—वि. [सं. कोटि] करोड़। उ.—तुरतहीं तोरि, गनि, कोरि सकटनि जोरि, ठाढ़े भये पौरिया तब सुनाये—५८४।

कोरिया— संज्ञा पुं. [सं. कोल = सुत्रर, हिं. कोरी] हिंदुत्रों में एक जाति, कोरी जो कपड़ा बुनने का कार्य करते हैं, हिन्दू जुलाहे।

संज्ञा स्त्री.—भोपड़ी। उ.—हुँ हि फिरे घर को उ

कोरी—संज्ञा पुं. [सं. कोल = सुत्रर] हिंदु श्रों में एक छोटी जाति जो कपड़े बुनती है।

संज्ञा स्त्री. [सं. कोरिया श्रॅं. स्कोर] बीस का समूह, कोड़ी।

वि. [सं. कोटि, हिं. कोरि] करोड़ों। उ.—(क) ब्रज कहा खोरी। छत अरु अछत एक रख अंतर मिटत नहीं कोइ करहु कोरी-२८०। (ख) निकसे देत असीस एक मुख गावत कीरित कोरी—१० उ.—१५१।

संज्ञा पुं. [सं- क्रोड, हिं. कोर] (१) गोद। (२) श्रालिंगन। उ.—निधि लौं भरत कोस श्रभ्यंतर जो हित कहो सु थोरी। भ्रमत भोर सुख श्रौर सुमन सँग कमल देत नहिं कोरी—३२४४।

वि. स्त्री. [हिं. कोरा] (१) जो काम में न लायी गयी हो, नयी। उ.—(क) जाउ लेहु आरे पर राखों काल्ह मोल ले राखें कोरी। (ख) कोरी मदुकी दहचीं जमायों जाख न पूजन पायों—३४६। (२) जो घोयी म गयी हो। (३) जो रँगी, जिखी या चित्रित न हो, सादी। (४) रहित। (५) दोषरहित, निष्कलंक। उ.—दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही ज स्याम भये चाढ़ी। (६) अपद। (७) निर्धन। (८) खाजी, केवज। (१) सादी, जिसमें घी न जगा हो। उ.—

रोटी, वाटी, पोरी, भोरी । इक कौरी इक घीव चभोरी—३९६।

कोरं—िव. [हिं. कोरा] (१) ताजा, हरा, जो सूखा न हो।

उ.—मधुप करत घर कोरे काठ मैं वँधत कमल के
पात—३३८६।(२) सूखे, जो पानी, दही या खटाई
में भिगोचे न गचे हों। उ.—मूँग-पकौरा पनौ पतवरा। इक कोरे इक भिजे गुरवरा—३६६। (३)
नचे, जो पहने न गचे हों, जो धुले न हों। उ.—
काढ़ों कोरे कापरा (ग्रह) काढ़ों घो के मौन। जातिपाँति पहिराइ के (सब) समदि छतीसो पौन
—१०-४०।

कोरो-संज्ञा पुं. [हिं. कोर] (१) खपरैल का नीचे का बाँस। (२) रेंड का सूखा पेड़।

कोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुअर। (२) गोद। (३) आलिंगन की स्थिति में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। (४) एक जंगली जाति। (४) काली मिर्च। (६) बेर का फल।

कोलना—कि. स. [सं. कोड़न] लकड़ी, पत्थर ग्रादि को बीच से खोखला करना। कि. स.—बेचैन-होना।

कोलाहल—संशा पुं. [सं.] (१) शोरगुल, हल्ला। (२) एक संकर राग।

कोलिया - संज्ञा स्त्री. [सं. कोल = रास्ता] (१) पतली गली। (२) पतला पर लंबा खेत।

कोली—संज्ञा स्त्री. [सं. कोड़, प्रा. कोल] गोद, श्रॅंकवार। संज्ञा पुं. [हिं. कोरी] हिंदू जुलाहा।

कोल्हू — संज्ञा पुं. [हिं. कूल्हा ?] तेल पेरने का यंत्र। को बिद् — वि. [सं.] (१) पंडित, विद्वान। (२) चतुर, प्रवीण। उ. — सूर स्थाम हित जानि के तब काम को विद निजकर कुटी सँवारी — २२६६।

कोविदार—संज्ञा पुं. [सं.] कचनार का पेड़ या फूल। कोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रंडा। (२) गोलक। (१) बिनखिली कली। (४) शराब का प्याला। (४) पूजा का पंचपात्र। (६) तलवार ग्रादि की म्यान। (७) ग्रावरण, खोल। (८) थैली। (१) वह ग्रंथ जिसमें शब्द ग्रीर उसके ग्रर्थ संकलित हों। (१०) रेशम, कटहल ग्रादि का कोया। (११) संचित धन, खजाना।

कोशकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शब्द-क्रोश बनानेवाला। (२) म्यान आदि बनानेवाला। (३) रेशम का कीड़ा।

कोशज—संज्ञा पुॅ. [सं.] (१) रेशस। (१) शंघ घोंधे आदि जीव। (३) मोती।

कोशपाल-संज्ञा पुं. [सं.] कोशाध्यक्त ।

कोशल— संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरयू और घाघरा का तट-वर्ती प्रदेश जिसकी प्राचीन राजधानी अयोध्या थी। (२) अयोध्या नगर। (३) एक राग।

कोशला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अयोध्या जो कोशल की प्राचीन राजधानी थी।

कोशिलिक—संज्ञा पुं. [सं.] घूस, उक्कोच।

कोशागार—संज्ञा पुं. [सं.] खजाना, भंडार।

कोशाधिपत, कोशाधिपति, कोशाधीष, कोशाध्यत्त—
संज्ञा पुं. [सं] खजांची भंडारी ।

कोशिश-संज्ञा पुं. [फ़ा.] चेण्टा, प्रयत्न।

कोष—संज्ञा पुं. [सं,] (१) फूलों की बंधी कली। उ.—
स्र-मध्प निसि कमल-कोष-बस, करो कृपा दिन-भान
—१-२००। (२) स्थान। (३) संचित धन। (४)
समूह। (४) शब्द-कोश। (६) कोबा।

कोषाधिप, कोषाधिपति, कोषाधीश, कोषाध्यत्त— संज्ञा पुं. [सं.] खजांची, भंडारी।

कोष्ठ—संज्ञा पुं. [सं] (१) पेट का भीतर भाग। (३) कोठा। (३) भंडार, खजाना। (४) चारो स्रोर से चिरास्थान।

कोष्ठक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान को घेरने की दीवार या लकीर। (२) बहुत से खानेवाला चक्र। (३) बाइकेट।

कोस—संशा पुं. [सं. कोश] फूलों की बँधी हुई कली।

उ.—बात-बस समृनाल जैसें प्रात पंकज-कोस। निमत

मुख इमि अधर सूचत सकुच में कछु रोस—३५०।

संशा पुं. [सं. कोश] दो मील की नाप। उ.—
कोस द्वादस रास परिमित रच्यो नंदकुमार—१८३७।

मुहा०—काले कोसों—बहुत दूर। कोसो दूर रहना

या भागना—बहुत दूर रहना।

कि. स. [सं. क्रोशण] गाली देना, ब्रश मनाना।
मुहा.—पानी पीकर कोसना—बहुत ब्रश मनाना।
कोसनि—संशा पुं. सिव. [हिं. कोस+नि (प्रत्य.)] कोसों,
कोसों तक।

मुहा, — कारे को सिन — काले को सों — बहुत दूर। उ. — मथुरा हुते गए सखी री श्रव हिर कारे को सिन — १० उ.-१८८।

कोसभ, कोसम—संज्ञा पुं. [सं. कोशाभ्र] एक बड़ा पेड़। कोसल—संज्ञा पुं. [सं. कोशल] कोशल देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

कोसलपति — संज्ञा पुं. [सं. कोशलपति] (१) श्री रामचंद्र। उ.—सीता करति बिचार मनहिं मन, त्र्राजु-काल्हि कोसलपति त्र्रावें — ६-८२। (२) र जा दशस्थ।

कोसलपुर—संज्ञा पुं. [सं. कोशलपुर] श्रयोध्या नगर। कोसा—संज्ञा पुं. [हिं. कोश] एक तरह का रेशम। संज्ञा पुं. [सं. कोश=प्याला] बड़े दीपक की तरह का मिट्टी का पात्र।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोसना + काटना] बहुत बुरा मनाना ।

को सिबे—िक.स. [हिं. कोसना] को सने, ब्ररा चेतने, ब्ररा-भला कहने। उ.—गिह-गिह पानि महिनया रीतो, उरहन कें भिस आवत-जात। करि मनुहार, को सिबे कें डर, भिर भिर देत जसोदा मात—१०-३३२।

कोसिला—संज्ञा स्त्री. [सं, कीशल्या] कौशल्या जो राजा दशस्य की पत्नी और श्रीराम की माता थी।

कोसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोशिकी] एक नदी। कोसों—कि० स० [हि० कोसना] कोस्, खुरा चेत्, खुरा-भला कहूँ। उ०—जसुदा तू जो कहति ही मोसों। दिनप्रति देत उरहने आवति, कहा तिहारें कोसों— १०-३१५।

कोह—संज्ञ पुं० [सं० कोघ] कोघ, गुस्सा। उ०—(क) श्रव में मरों, सिंघु में बूड़ों, चित में श्रावे कोह। सुनो बच्छ, धिक जीवन मेरो, लिछमन-राम-बिछोह—६-पर। (ख) जानिके में रह्यो ठाढ़ो, छुवत वहा जु मोहिं। सूर हरि खीमत सखा सों, मनहिं कीन्हों कोह —१०-२१३।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] पहाड़ ।
संज्ञा पुं० [सं० ककुम, प्रा० कउह] अर्जुन बृच ।
कोहनी—संज्ञा स्री० [सं० कको णि] बाँह के बीच का
जोड़।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर] विवाह के अवसर पर कुल देवता की स्थापना का स्थान।

कोहरा— संज्ञा पुं० [हिं० कुहरा] कुहासा, कुहरा। कोहल— संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशास्त्र के प्रणेता एक

सुनि। (२) एक तरह की शराब। (३) एक बाजा। कोहाँर—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] कुम्हार। कोहा—संज्ञा पुं० [सं० दोश = पात्र] नाँद के आकार का मिही का पात्र।

कोहान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] ऊँट का कूबड़, डिल्ला। कोहाना—कि० अ० [हिं० कोह = क्रोध] (१) रूठना। (२) क्रोध करना।

कोही—वि० [हिं० कोध] कोधी, गुस्सैल। उ०—सुर ग्रति छमी, ग्रसुर ग्रति कोही—३-६।

वि० [फ़ा० कोह = पहाड़] पहाड़ का, पहाड़ी। कोहु—संज्ञा पुं० [सं० कोघ, हिं० कोह] कोघ, गुस्सा। उ०—कृपा करो, मम प्रोहित होहु। कियो बृहस्पति मोपर कोहु—६-५।

कों—विभ०-प्रत्य० [हिं० को] कर्म श्रोर सम्प्रदान कारकों का विभक्ति-प्रत्यय, को । उ०—(क) जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, श्रंधे कों सब कुछ दरसाइ—१-१ । (ख) सिव-विरंचि मारन कों धाए यह गति काहू देव न पाई—१-३।

कोंकिर—संज्ञा सी० [सं० ककर, हि० कंकर] हीरे या काँच की कनी, किरिच या रेत। उ०—सुन री सखी इहै जिय मेरे भूलि न श्रीर चितेहों। श्रव हठ सूर इहै ब्रत मेरो कोंकिर खे मिर जैहों—२७७६। कोंकुम—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह के पुच्छल तारे। कोंच—संज्ञा सी० [सं० व च्छु] एक बेल। कोंची—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचिका] बाँस की पतली

टहनी।
कोंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] एक बेल, केवाँच।
कोंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडिन मुनि का पुत्र।
कोंतिक—वि० [सं०] भाला या बरळा चलानेवाला।

कौतिय—संशा पुं । [सं] (१) कुंती के पुत्र। (२) अर्जुन वृत्त ।

कोंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंधना] बिजली की चमक। कोंधिति—कि० ग्र० [हिं० कोंधना] बिजली चमकती है। उ०—बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कोंधित जात—१०-१२।

कोंधना—कि० ग्र० [सं० कनन = चमकना + ग्रंघ] बिजली का चमकना।

कोंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी। कोंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंधना] बिजली की चमक। उ०—कारी घटा सधूम देखियत ऋति गति पनन चलायौ । चारौ दिसा चितै किन देखौ दामिनि कोंधा लायौ।

कोंधे — कि० ग्र० [हिं० कोंधना] बिजली चमके । उ० — धन-दामिनि धरती लों कोंधे, जमुना-जल सों पागे — १०-४।

कोंभ, कोंभसपि—संशा पुं० [सं०] सो वर्ष पुराना घी। कोंर—संशा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़। कोंल—संशा पुं० [सं० कमल] कमल। कोंवरा—संशा पुं० [सं० कोमल] कोमल।

कोंहर, कोंहरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक सुंदर जाल फल जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि इसके पास साँप नहीं आता। किव इससे प्रायः एँड़ी की उपमा देते हैं।

को-प्रत्य [हिं का] का। उ०-दुर्बासा को साप निवारची, अंवरीष-पति राखी-१-१०।

को आ—संशा पुं० [सं० काक] काग, काक । को आना—कि० अ० [हिं० को आ] (१) चिंकत होकर इधर-उधर ताकना। (२) सोते-सोते बड़बड़ाने लगना। को आर—संशा पुं० [हिं० को आ + सं० रव = शब्द] को ओं का शोरगुल।

कौटिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टेढ़ापन । (२) कपट, कुटिलता। (३) चाणक्य का एक नाम।

कोटुंबिक—िव. [सं.] (१) कुटुम्ब संबंधी। (२) परिवार-वाला।

कौड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कपर्वक, प्रा. कबह्त्रा, कबहुत्रा] बड़ी कौड़ी।

संशा पुं. [सं. कुंड] तापने का श्रवाव। कोड़िया—वि. [हि. कोड़ी] कोड़ी के रंग का। संशा पुं. [हिं. कोड़िल्ल] कोड़िल्ला पत्ती, किल-किला पत्ती।

कोड़ियाला—वि. [हिं. कौड़ी] हल्के नीले रंग का। संज्ञा पुं.—(१) हल्का नीला रंग। (२) एक विषेला साँप जिस पर कोड़ी की तरह की चित्तियाँ

होती हैं। (३) कंजूस धनी जो सॉॅंप की तरह रुपए पर बैठा रहे, खर्चे नहीं। (४) एक पौधा।

की डिल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ी] (१) किल किला नाम की चिड़िया। (२) एक पौधा।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कपर्दिका, प्रा. कवड़ डिन्ना] (१) एक समुद्री कीड़े का अस्थिकोष।

मुहा०-कौड़ीका-जिसका कुछ दाम न हो, बहुत मामूली। कौड़ी के तीन तीन—बहुत सस्ता। कौड़ी हून लहै—कौड़ी को न लेना या पूछना— बिलकुल निकम्मा समभना, कुछ भी कदर न करना। उ० — सूरदास स्वामी बिनु गोकुत कौड़ी हू न लहै — २७११। कौड़ी-कौड़ी करि-एक एक कौड़ी (जैसे पाई, पाई), कुछ भी न छोड़ना, जरा भी रियायत न करना। उ०—दान लेहुँ कौड़ी कौड़ी करि बैर श्रापने लहों - ११२५। कौड़ी कौड़ी को मुहताज-बहुत ही गरीब। कौड़ी कौड़ी चुकाना, भरना-पाई पाई श्रदा कर देना। कौड़ी फेरा करना—जरा जरा सी बात के लिए दौड़े आना। कौड़ी भर—बहुत जरा सा। कानी, मंभी या फूटो कौड़ी—(१) दूटी हुई कौड़ी।(२) बहुत थोड़ा धन। कौड़ी लगि मग की रज छानत - कौड़ी के लिए मारे मारे फिरना, तुच्छ वस्तु के लिए बहुत परिश्रम करना। उ० — सब सुख निधि हरिनाम महामुनि, सो पापहुँ नहिं पहिचानत। परम कुबुद्धि तुच्छ रस लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत-१-११४। कौड़ी कौड़ी जोड़त-बहुत कष्ट से थोड़ा थोड़ा धन जोड़ता है। उ० - लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, कौड़ी कौड़ी जोरें। कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावे, खाइ मारि के श्रीरै--१-१८६।

(२) धन, रुपया-पैसा। (३) श्रधीन राजाश्रों से विया जानेवाला कर। (४) श्राँख का डेला। (४) छाती के नीचे की हड़ी। (६) जंघे, काँख और गले की गिलटी। (७) कटार की नोक।

कौराप — संज्ञा पुं. [सं.] (१) राचस। (२) वासुकी-वंशज एक साँप। (३) पापी प्राणी।

कौणपदंड—संज्ञा पुं. [सं.] भीष्म।

कौतिक, कौतिग—संशा पुं. [सं. कौतुक] खेल, कुत्हल, श्रद्भुत बात।

कौतुक—संज्ञा पुं. [सं.] उ०—(१) क्रत्हल । (२) अचंभे की बात , अचंभा । उ०—तबही नंदराय ज्ञ खाये कौतुक सुनि यह भारी । विस्मित भये देव ने राख्यो बालक यह सुखकारी—सारा. ४१६ । (३) विनोद । उ.—संग गोप गोधन गन लीन्हे नाना गति कौतुक उपजावत—४८० । (४) प्रसन्नता । (४) खेल-तमाशा, खिलवाड़ । उ०—(क) कौतुक करि मतंग तब मारयौ—२६४३ । उ०—जहाँ तहाँ कौ कौतुक देखि । मन मैं पावै हर्ष विसेषि—४-११ । (६) विवाह में पहना जानेवाला सूत्र ।

कौतुकिया—संज्ञा पुं. [हिं. कौतुक + इया] (१) कौतुक करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतुकी—वि. [सं.] (१) खेल तमाशा करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतूह, कौतूहल — संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेल-तमाशे।
उ०—(क) श्रानँद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन
नर नारी—१०-४। (ख) बन में जाइ करो कौतूहल
यह श्रपनो है खेरो—१०-२१६। (ग) ग्वाल-बाल
सँग करत कौतूहल गवनपुरी मंस्नार—२५७२। (२)
प्रसन्नता, श्रानंद। उ०—सुर नर मुनि फूले, भूलत
देखत नंदकुमार—१०-८४।

कौतूहलता—संशा स्त्री, [हिं. कुत्हल] कौतुक, कुत्हल। कौत्स—संशा पुं. [सं.] (१) कुत्स ऋषि के एक शिष्य। (२) कृत्स कृत साम-गान।

कौक-संज्ञा स्त्री. [हिं. कौन+तिथि] (१) कौन सी तिथि? (२) कौन संबंध ?

कौथा—िव. [हिं. कौन + सं. स्था (स्थान)] कौन सा ? गणना में किस संख्या या स्थान का। कौधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] करधनी। कौन—सर्व. [सं० कः, किम्, प्रा. कवण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जिसका प्रयोग व्यक्ति या वस्तु के संबंध में परिचय पाने के लिए किया जाता है।

वि.—किस जाति का ? किस प्रकार का ? कौनप—संज्ञा पुं. [सं. को गाप] (१) राचस। (२) एक सर्प।

कौना—सर्व० [हं. कौन] किसे, किसको । उ.—नटवर ग्रंग सुभ सजे सजौना । त्रिभुवन में बस कियो न कौना । सूर नन्द सुत मदन-लजौना—२४२१ ।

कौनी—वि० [हिं० कौन] किस, किसी। उ.—वहा करों कौन भांति मरों मन धीरज न धरे—२७८३।

कौने— वि. [हं, कौन] कौन, किस। उ.— मेरें संग आह दोउ बैठे, उन बिनु भोजन कौने काम—१०-२३५। कौनेहुँ— वि. [हं० कौन] किसी भी प्रकार से। उ.— कौनेहु भाव भजें कोउ हमको, तिन तनताप हरें री — ७८७।

वीनें—वि. [हिं. वीन] (१) कौनने, किसने। (२) क्या वया। उ.— टद्यम वहा होत तंवा वीं, वीनें कियी उपाय—६-१२१।

कौपीन — संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधुक्रों की लँगोटी। (२) कौपीन से दके शरीर के भाग। (३) पाप। (४) ाकाम।

कौम—संज्ञा स्त्री. [ग्र.] जाति, वर्ण । कौमकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक केतु तारा। (२) रक्त, खून।

कोमार—संशा पुं. [सं.] (१) पाँच वर्ष तक की कुमार-श्रवस्था। (२) कुमार।

कोमारभृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] बाबा-चिकित्सा शास्त्र। कोमारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पहली पत्नी। (२) कार्तिकेय की शक्ति। (३) पार्वती का एक नाम। कोमी—वि. [ग्र. क्रोम] (१) जातीय। (२) राष्ट्रीय। कोमुद्—संज्ञा पुं. [सं.] कातिक मास।

कौमुदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाँदी, ज्योत्सना। (२) कार्तिक पूर्णिमा। (३) कार्तिकी पूर्णिमा का उत्सवं। (४) कुमुदिनी।

कोमोदकी, कोमोदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु की गदा। कौर—संज्ञा पुं. [सं. कवल] (१) ग्रास, गस्सा, निवाला। उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत श्रपमान । जहँ-जहँ जात तहीं तिहं त्रासत श्रस्म, लकुट पदत्रान—१-१०३। (ख) तब श्रापुन कर कीर उठायो—२३२१।

मुहा०—मुँह का कौर छीनना-किसी का हिस्सा मार लेना।

(२) अन्न का वह भाग जो चक्की में पिसने के लिए एक बार में डाला जाय।

कौरना - कि. स. [हिं. कौड़ा] भूनना, सेंकना। कौरनि - संज्ञा पुं. सिव. [हिं. कौरा + हिं. नि (प्रत्य.)] को ने को ने में, को ने की दीवार पर। उ. - कौरनि सथिया चीतितं नवनिधि - १०-३२।

कौरव — संज्ञा पुं. [सं.] कुरु राजा की संतान, दुर्योधन श्रौर उसके भाई।

वि. — कुरु सम्बन्धी।

कौरवपति—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन। कौरव्य—संज्ञा पुं. [सं.] कौरव।

कौरा— संज्ञा पुं. [सं. कोल, कोड़] द्वार का कोना। संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ा] (१) बड़ी कौड़ी। (२) श्राग तापने का श्रजाव।

कौरी - संज्ञा स्त्री [सं. कोड़] (१) गोद, ग्रॅंकवार। (२) ग्रांबिंगन।

मुहा॰—कौरी भर कर मिलना—सस्नेह त्रालिंगन करना। उ.—पाछे ते लिता चन्दाविल हरि पकरे भुज भरि कौरी की—२४०५।

संज्ञा स्त्री.—एक मिठाई। उ.—(क) पेठा पाक, जलेबी, कौरी। गोंद पाक, तिनगरी, गिंदौरी-३६६। (ख) पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्ज्वल सुन्दर सौरी—२३२१।

कौरे—संज्ञा पुं. [हिं कौड़ा] एक 'गली फल। संज्ञा पुं. [हिं. कोड़] द्वार का कोना।

मुहा० — कौरे लगना — (१) दूसरे की बात सुनने या अन्य किसी घात में छिपकर द्वार के पीछे खड़े होना। उ. — मन जिनि सुनै बात यह माई । कौरे लग्यो क्तिहूँ कहि देहें सो जाई। (२) मुँह फुला कर या रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना।

क्रि, स. [हिं. कोरना] भूने, सेंके। उ, -कुंदरू

त्रीर ककोरा कौरे । कचरी चार कचेंडा सौरे —२३२१।

कौरें - संज्ञा पुं. [हिं, कौरा] द्वार का कोना।
मुहा० - कौरें लागी - पकड़ने की घात में थी,

उसके पीछे जगी थी। उ०—माखन-चौर री मैंपायौ। बहुत दिवस मैं कोरें लागी, मेरी घात न आयौ— १०-२८८।

कौरै—संज्ञा स्त्री. [हं. कौरी] (१) ऋँकवार, गोद। (२) आर्केंगन, छाती से लगना।

मुहा०—कोरै लग्यौ हो हगो—छाती से लगा होगा, श्रालिंगित होगा। उ०—मन जिनि सुनै बात यह माई। कौरै लग्यौ हो हगो कितहूँ कहि दैहै को जाई —१६६५।

कौरी — संशा पुं. [सं. कौरव] कुरुवंशी, कौरव। उ० – क्यों विस्थास करहिंगो कौरौ सुनि प्रभु कठिन कीती —११-३।

भोरो-दल-संज्ञा पुं, [ं. कौरव + दल] कौरवों की सेना 1

कील—संशा पुं. [सं.] उत्तम कुल का।
संशा पुं. [सं. कमल] कमल ।
संशा पुं. [सं. कवल] कौर, श्रास।
संशा पुं. [देश.] एक तरह का गाना।
संशा पुं. [तु. करावल] सेना की छावनी का
मध्य भाग।

संज्ञा पुं. [श्र.] (१) कथन, वाक्य। (२) प्रतिज्ञा, प्रण।

यौ०-कौल-करार-इ निश्चय।

कौला, कौले—संज्ञा पुं. [सं. कोल = कोड़, गोद; हिं. कौरा] (१) द्वार का कोना, कौरा।

मुहा०—कौले लगना—द्वार के कोने में छिपना। कौला सींचना—पूजा आदि अवसरों पर द्वार के इधर-उधर पानी छिड़कना।

(२) पाला ।

कोलों—कि. वि. [हिं. को = कोन या कव + लों = तक] कब तक, किस समय तक। उ॰—धिक तुम, धिक या कहिबे ऊपर। जीवित रहिही कोलों भूपर—१-२८४।

कौवा - संज्ञा पुं. [सं. काक, प्रा. काश्रो] (१) एक काला पत्ती, कौश्रा, काग। (२) काँह्याँ श्रादमी। (३) गले की घाँटी, लंगर, लखरी।

कौवाल—संज्ञा पुं. [य्य. को बाल] मुसलसानी गवैयों की एक जाति।

कौवाली—संज्ञा स्त्री. [अ. क़ौवाली] (१) कौवालों का गाना। (२) कौवालों का पेशा।

कौश — संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुश नामक द्वीप। (२) रेशमी वस्त्र।

कौशल-संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुशलता। (२) कोशल देशवासी।

कौशलेय — संज्ञा पुं. [सं.] कोशल्या का पुत्र, राम। कौशल्या — संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी। (२) धृतराष्ट्र की माता। (३) पाँच बत्ती की ग्रारती।

कौशिक— संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) कृशिक राजा के पुत्र गाधि। (३) कृशिक राजा के वंशज विश्वामित्र। (४) कोशाध्यत्त। (४) कोशकार। (६) एक राग।

कौशिकी—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) चंडिका। (२) कोसी नदी। (३) एक रागिनी। (४) काव्य में एक वृत्ति। कौशिल्या—संज्ञास्त्री. [सं. कौशल्या] राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माताथी।

कौषिकी—संज्ञास्त्री. [सं. कौशिकी] एक देवी, चंडिका। कौषेय—वि. [सं.] रेशमी।

संज्ञा पुं. - रेशमी कपड़ा।

कौसल—संज्ञा पुं. [सं. कौशल] (१) चतुरता। (२) कोशल देशवासी।

कौसलनरेस — संज्ञा पुं. [सं. कोशलनरेश] श्रीरामचंद्रजी। कौसल्या — संज्ञा स्त्री. [सं. कौशिल्या] राजा दशस्थ की बड़ी रानी जो राम की माता थी।

कौसिक—संज्ञा पुं. [सं. कौशिक] (१) इंद्र। (२) विश्वामित्र।

कौसिया-संज्ञा पुं. [देश.] एक संकर राग।

कोसिला—संशा स्त्री. [सं. कोशल्या] कोशल्या जो राजा दशरथ की पत्नी ग्रोर राम की माता थी। उ.— रामहिं राखो कोऊ जाइ। जब लिंग भरत अजोध्या ग्रावें, कहति कोसिला माइ—६-४७।

कौ सिल्या—संज्ञा स्त्री [सं. कौशल्या]राजा दशरथ की पती जो राम की माता थी।

कौसुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगली कुसुम। (२) एक साग।

कौरतुम—संज्ञा पुं. [सं.] (३) समुद्र से निकला हुआ एक रत्न जिसे विष्णु अपने वह्यस्थलपर धारण किये रहते हैं। (२) एक प्रकार की मणि।

कौस्तुम-मनि-धर—सज्ञा पुं. [सं,] कौस्तुम मनि को धारण करनेवाले विष्णु का अवतार श्रीकृष्ण । उ.— कंबु कंठ-धर कौस्तुम-मनि-धर बनमालाधर मुक्त-माल-धर —५७२ ।

कीहर-संज्ञा पुं. [सं. ककुम] अजु न वृत्त । कीहर-संज्ञा पुं. [देश] इंद्रायन।

क्या — सर्व. [सं. किम्] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम ।

मुहा. — क्या कहना है (१) बहुत अच्छा है।

(२) बहुत खुरा है (ब्यंग्य)। क्या क्या — बहुत कुछ ।

(किसी की) क्या चलाना — बराबरी न कर पाना।

क्या जाता है — क्या हानि होती है। क्या पड़ना—
कुछ गरज न होना। क्या से क्या हो गया — दशा

बिलकुल बदल गयी। क्या समसते (गिनते) हैं —
कुछ नहीं गिनते। (तो) फिर क्या है — (तो) बड़ा

वि.—(१) कितना।(२) इतना (ऐसा) ज्यादा। (३) विचित्र, श्रद्भुत।(४) बहुत श्रच्छा।

कि. वि.—(१) किस लिए ? किस कारण ?

मुहा.—ऐसा क्या—इसकी क्या जरूरत है ? क्या
श्राये क्या चले —इतनी जल्दी जाने की क्या जरूरत
है ?

(२) नहीं।

श्रच्छा हो जाय।

श्रव्य० — केवल प्रश्नसूचक श्रव्यय। मुहा. — क्या श्राग में डालूँ — यह मेरे किस काम का है ?

क्यार—संज्ञा पुं, [सं, केदार] पेड़ का थाला। क्यारी—संज्ञा स्त्री. [हिं० कियारी] बाग या खेतों के मेड़ों की बीच की गहरी जमीन जिसमें पेड़ों की पंक्तियाँ लगायी जाती हैं। क्यों, क्यों—कि. वि. [सं. किम्, हिं. क्यों] (१) किस कारण ? किस जिए ?

मुहा.—क्योंकर—िकस प्रकार। क्यों नहीं—(१) ठीक है (समर्थन में)। (२) हाँ, जरूर (स्वीकृति सूचक)। (३) ठीक नहीं है (व्यंग्य)। (४) कभी नहीं (व्यंग्य)। क्यों न हो—(१) बहुत खूब (प्रशंसा-त्मक)। बहुत खुरा (व्यंग्य)।

(२) किस प्रकार, कैसे।

कंदन - संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोना, विलाप। (२) वीरों का श्राह्मान।

क्रकच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़। (२) ग्रारा।(३) एक बाजा।(४) एक नरक।

क्रकचा-संज्ञा स्त्री. [सं.] केतकी।

क्रकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़। (२) किख-किला चिड़िया। (३) आरा। (४) दरिद्र।

कतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दृ संकल्प। (२) इच्छा। (३) विवेक। (४) जीव। (४) विष्णु। (६) श्रश्व-मेथ। (७) कृष्ण का एक पुत्र।

क्रप — संज्ञा पुं. [तं.] (१) दयालु। (२) क्रपाचार्य। क्रम — संज्ञा पुं. [तं.] (१) डग भरने की क्रिया। (२) वस्तुओं या कार्यों का सिलसिला। (३) धीरे धीरे काम करने की प्रणाली।

मुहा.—क्रम क्रम करके—धीरे धीरे, शनैः शनैः।

उ. – (क) लरखरात गिरि परति हैं, चित घुटुरुनि धावें। पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि के, पग द्वेक चलावें

—१०-११२। (ख) जो को उदूरि चलन को करें।

क्रम क्रम करि डग डग पग धरें। क्रम से, क्रम क्रम से—धीरे धीरे।

(४) कार्य-संपादन की व्यवस्था। (४) वामन की एक नाम। (६) एक काव्यालंकार। (७) कर्म, प्रयत्न, श्रम। उ.—ग्रगम सिंधु जतनि सिंज नौका, हि कम-भार भरत। सूरदास-व्रत यहै, कृष्ण भिज, भव-जलनिधि उतरत—१-५५।

संज्ञा पुं. [सं. कर्म] कार्य, कृत्य। क्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] पैर। क्रमनासा—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्मनाश] कर्मनाशा नदी। क्रमशः—कि. त्रि. [सं.] (१) सिलसिलेवार। (२) थोड़ा थोड़ा।

क्रमसंख्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक क्रम से लिखी हुई संख्या।

क्रमांक—संज्ञा पुं. [सं.] एक क्रम से लिखे जानेवाले श्रंक।

क्रमागत—वि. [सं.] (१) धीरे धीरे किसी रूप को शप्त । (२) जो सदा से होता आया हो, परंपरागत।

क्रमात्—क्रि. वि. [सं.] (१) सिलसिले से। (२) सिल-सिले से ग्रागे। (३) धीरे धीरे।

क्रमानुकूल — कि. वि. [सं. क्रम+अनुकूल] सिलसिलेवार। क्रमानुसार — कि. वि. [सं. क्रम+अनुसार] सिलसिलेवार। क्रमान्वय — क्रि. वि. [सं. क्रम+अन्वय] एक के बाद एक। क्रमान्वय संज्ञा पुं. [सं.] (१) कीड़ा। (२) पेट का एक रोग।

क्रिमिक—िक, वि. [सं.] (१) जो धीरे-धीरे हुआ हो। (२) सो सदा से होता आया हो।

क्रमुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुपाश का पेड़। (२) कपास का फल।

कमें—संज्ञा पुं. [सं. कम + ऐ (प्रत्य.)] कम, नियम, पूर्वापर-संबंधी व्यवस्था, सिलसिला। उ०—भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-वेग, न कमें गह्यो। सर एक पत्त गहरु न कीन्ह्यों, किहिं जुग इतो सह्यों—१-४६।

क्रय-संज्ञा पुं. [सं.] खरीदना, मोल लेना।

कयी-संज्ञा पुं. सं. क्रयिन विरोदार ।

क्रय्य-वि. सं. जो वेचने के लिए हो।

क्रवान-संज्ञा पुं. [हिं. किरवान] तलवार।

ऋव्य-संज्ञा पुं. [सं.] मांस ।

क्रव्याद—संशा पुं. [सं.] (१) मांसाहारी जीव। (२)

क्रांत — वि. [सं.] (१) दबा या ढका हुआ। (२) जो प्रस्त हो। (३) आगे बढ़ा हुआ।

संज्ञा पुं.—(१) घोड़ा। (२) पैर।

क्रांति — संशा स्त्री. [सं.] (१) गर्मन, गति। (२) एक कल्पित वृत्त जिस पर सूर्य पृथ्वी के चारो श्रोर घूमता जान पड़ता है। (३) एक स्थिति से दूसरी में परिवर्तन, उत्तरफेर। क्रांतिमंडल — संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त जिस पर सूर्यं पृथ्वी की परिक्रमा करता जान पड़ता है।

क्राथ — संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंसा करने की किया। (२) शम की सेना का एक बंदर। (३) धतराष्ट्र का एक पुत्र। (४) एक राजा जो बाहू मह का अवतार माना जाता है।

क्रिसि— संज्ञा पुं. [सं. कृमि] (१) कीड़ी। (२) पेट का एक रोग।

क्रियमागा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो किया जा रहा हो। (२) एक प्रकार का कर्म।

किया—संशा स्त्री. [सं.] (१) किसी काम का होना, कर्म। (२) प्रयत, चेष्टा। (३) श्रारंभ। (४) व्याकरण का एक श्रंग। (४) श्राद्ध श्रादि प्रेत कर्म। उ०—हिर के देखत तजे परान। तासु किया किर सब गृह श्राप्। राजा सिंहासन बैठाए—१-२८०।

यौ०-किया-कर्म-सृतक कर्म।

(६) नित्यकर्म। (७) उपाय।

क्रियात्मक—वि. [सं.] (१) क्रिया-सम्बन्धी। (२) क्रिया के रूप में प्रस्तुत किया हुआ।

क्रियानिष्ठ—िव. [सं.] संध्या, तर्पण त्रादि नित्यकर्म विधि विधान से करनेवाला।

क्रियापंथ—संज्ञा पुं. [सं] कर्मकांड । उ.— क्रिया पंथ स्रुति ने जो भाख्यों सो सब ग्रसुर भिटायों । बृहद् भानु ह्व के हिर प्रगटे छन में फिर प्रगटायों ।

क्रियावान् — वि. [सं.] कर्मनिष्ठ, कर्मठ।

कियाविशेषगा—संज्ञा पुं. [सं.] वह शब्द जिससे किया के काल, भाव या रीति का पता चले।

क्रीट—संशा पुं. [सं किरीट] किरीट नाम का सिर का आभूषण। उ.— क्रीट मुकुट सोमा बनी सुम अंग बनी बनमाल। सूरदास प्रभुगोकुल जनमे, मोहन मदन गोपाल।

कीड़त—संज्ञा स्त्री. [सं.] कीड़ा करता है, ग्रामोद-प्रमोद में मग्न रहता है। उ.—(क) निकट ग्रायुध वधिक धारे, करत तीच्छन धार। ग्रजा-नायक मगन कीड़त, चरत बारम्बार—१-३२१। (ख) सुधा-सर जनु मकर कीड़त....—६२७। काड़ना—संशा पुं. [सं.] (१) कीड़ा करना। (२) आमोद-प्रमोद।

क्रीड़नक—संशा पुं. [हिं. क्रीड़ा] खिलोना।

क्रीड़ना—संशा स्त्री. [सं.क्रीड़ा] खेलना-कूदना, ग्रामोद-प्रमोद करना।

क्रीड़ा—संशा स्त्री. [सं.] (१) खेल, केलि, आमोद प्रमोद। (२) लीला। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्नुति गाई— १-६। (३) एक वृत्त।

कोड़ाचक—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त । कोड़ाथल—संज्ञा पुं. [सं. क्रीड़ास्थल] खेल-कूद या लीला का स्थान।

कोड़ारथ—संज्ञा पुं. [सं.] फूलों का रथ। कीड़ाशैल —संज्ञा पुं. [सं.] बनावटी पहाड़।

को इास्थल — संज्ञा पुं. [सं.] की इा या लीला का स्थान। को ड़ित — वि. [सं. की ड़ा] वह व्यक्ति जिसने की ड़ा की हो।

क्रीड़ें—िक. श्र. [सं. क्रीड़ा, हिं. क्रीड़ना] कल्लोलते हैं, श्रामोद-प्रमोद करते हैं, खेल मचाते हैं। उ.—एक विरध-किसो नालक, एक जोबन जोग। कुन्न जन्म सु प्रोम-सागर, क्रीड़ें सब ब्रज लोग—१०-२६।

क्रीत—िव. [सं.] खरीदा या मोल लिया हुआ। संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोल लिया हुआ पुत्र। (२) मोल लिया हुआ दास।

ं संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्ति] यश, कीर्ति । उ.—सुनौ भौं दे कान अपनी लोक लोकनि कीत (कीती)। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमनि जीत—३४७६।

क्रीतक—संशा पुं. [सं.] खरीदा हुग्रा पुत्र। क्रोति, क्रोती—संशा स्त्री. [सं. कीर्ति] यश, कीर्ति, सुनाम। उ.—(क) वै सब परम विचित्र स्यानी श्रक् सब ही जग क्रं ति—३४७ । (ख) हों कहा कहों सूर के प्रभु निगम करत जाकी क्रीति—१०उ.— १७५। (ग) क्यों विश्वास करहिंगो कौरी सुनि प्रभु कठिन क्रीती—११-३।

कोला—संज्ञा स्त्री. [सं. कीड़ा] लीला, केलि, खेलकूद, श्रामोद-प्रमोद। उ.—सूरदास प्रमु की यह लीला। सदा करत ब्रज में यह कीला—१०२८।

कुद्ध—वि. [सं.] कोपयुक्त, कोध में भरा हुआ। कुमुक – संज्ञा पुं. [सं.] सुपारी। कुश्वा—संज्ञा पुं. [सं.] सियार, गीदड़।

करूर—वि. [सं.] (१) दूसरों को कष्ट देनेवाला। (२) निर्दय, कठोर। उ.—सूर नृग करूर ऋकूर करूरे भयो धनुष देखन कहत कपटी महा है—१५०३। (३) कठिन। (४) तीखा,तीच्या। (४) गरम। (६) खरा,नीच। (७) घोर।

संशा पुं. [सं.] (१) पका हुआ चावल। (२) लाल कनेर। (३) बाज पत्ती। (४) सफेद चील। (४) विषम राशियाँ। (६) रवि, मंगल, शिन, राहु श्रीर केतु यह जिनसे युक्त तिथि या नचत्र में शुभ कार्य विजेत हैं।

संज्ञा पुं. [सं. अकर] अकर जो श्रीकृष्ण के चाचा थे और कंस की अज्ञा से उन्हें मथुरा ले गये थे। उ. आप कर ले चले स्थाम को हित नाही को उहिर के—२५२६।

क्र्यकर्मा - संशा पुं. [सं.] (१) नीच या कठोर कर्म करनेवाला। (२) सुरजमुखी।

क्रूरगंध—संज्ञा पुं. [सं.] गंधक। क्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निर्देयता, कठोरता। (२) नीचता, दुष्टता।

क्रूरा—िव. स्त्री. [सं.] दुष्ट स्वभाववाली। क्रूरात्मा—िव. [सं.] दुष्ट स्वभाववाला।

करूरै—िव. [सं. करू] अधिक कठौर, बहुत निर्दयी। उ.—सूर नृप करू अकर करूरै भयो धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३।

क्रेता—संशा पुं. [सं.] खरीदार, मोल लेनेवाला। क्रोंच—संशा पुं. [सं.] क्रोंच पर्वत।

क्रोड़ - संज्ञा स्त्री [सं.] (१) दोनों बाहों के बीच का (छाती का) भाग। (२) गोद, श्रॅंकवार।

क्रोड्पत्र - संशा स्त्री. [सं.] श्रितिरिक्त या प्रक पत्र। क्रोध-संशा पुं. [सं.] कोप, रोष, गुरुश। क्रोधन-संशा पुं. [सं.] कोध से उत्पन्न, मोह। क्रोधमान-संशा पुं. [सं. क्रोध + मान] गुरुते में भरा हुश्रा, क्रोधित। उ. - खंभ फारि, गल गांज मन्त्रल, कोधमान छिब बरिन न ग्राई। नैन ग्रहन, विकराल दसन ग्राति, नख सौं हृदय विदारघो जाई—७-४। क्रोधवंत — वि. [हिं. क्रोध + वंत = वाला] गुस्से में भरा हुग्रा। उ.—मांडव धर्मराज पे ग्रायो। क्रोध-वन्त यह बचन सुनायो—३-५।

क्रोधवश - कि. वि. सं.] क्रोध में।

संज्ञा थुं. [सं.] (१) एक राचस। (२) एक साँप।

क्रोधा—संज्ञा पुं. [सं. क्रोध] कोप, गुस्सा। उ. क्रोटि कोटि तिनके सँग जोधा। को जीतै तिनके तनु क्रोधा —२४५६।

क्रोधित—वि. [हिं. क्रोध] कुपित, कुद्ध। क्रोधी—वि. [सं.] जो बहुत क्रोध करता हो, जो शीघ क्रोध से भर जाता हो।

क्रोंच—संशा पुं. [सं.] (१) कराँकुल पत्ती। (२) सात द्वीपों में एक। उ.—सातों द्वीप जे कहे सुक सुनि ने सोई कहत अब सूर। जंबु प्लन्त क्रोंच शाक शाल्मिल कुश पुष्कर भरपूर—सारा ३४। (३) एक राज्स। (४) एक अस्त्र।

क्तांत-वि. [सं.] थका हुआ।

क्तांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) थकावट । (२) परिश्रम । क्तिशित — वि. [सं.] जिसे बहुत दुख हुआ हो ।

क्लिप्ट—िव [सं.] (१) दुखी। (२) कठिन, मुश्किल से समभ में ग्रानेवाली। (३) जो सरलता से सिद्ध या सत्य न हो सके।

किष्टता – संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कठिनता। (२) काव्य का एक दोष जिससे भाव समभने में कठिनाई हो। किष्टत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विलष्टता का भाव। (२)

रुष्टत्व—सत्तापु. [स.] (१) विलष्टता का भाव। (२ काव्य का एक दोष।

क्लीव—वि. पुं. [सं.] (१) नपुंसक, षंड, नामर्द । (२) कायर, डरपोक।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री, [सं.] नपुंदकता।

क्तीवत्व-संज्ञा पुं. [सं.] नपुंसकता।

क्लेद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गीलापन। (२) पसीना।

क्लेदक—संज्ञा पुं. [सं] (१) पसीना लानेवाला। (२) शरीर की दस अग्नियों में एक।

क्लेद्न-संज्ञा पुं. [सं.] पसीना लाने का काम।

क्लेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुख, कष्ट । (२) लड़ाई, भगड़ा।

क्लेशित-वि. [सं.] दुखी, पीड़ित।

क्लोम-संज्ञा पुं. [सं.] फेफड़ा।

क्त्रचित-कि. वि. [सं.] बहुत कम, शायद कोई।

क्वगा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वीणा का शब्द। (२) धुँघरू का शब्द।

क्विणित—वि. [सं.] (१) शब्द करता हुआ। (२) गूँजता हुआ। (३) बजता हुआ।

क्वाँर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, पा. कुवाँर, हिं. कुत्रार] भादों के बाद का महीना।

क्वाँरा—वि. [सं. कुमार] जिसका विवाह न हुन्ना हो, कुन्नारा।

क्वाँरापन—संज्ञा पुं. [हिं. कारापन] कुमारपन।

क्वाथ—संज्ञा पुं. [सं.] ग्रोषिधयों को उब लकर निकाला हुग्रा रस, काड़ा। (२)व्यसन। (३) दुख।

क्वान—संज्ञा पु. [सं. क्वण] (४) घुँघरू का शब्द। (२) वीणा की भनकार।

ववार—संज्ञा पुं. [सं. कुमार] (१) कुमार, पुत्र, कु वर। उ.—भयौ सुरुचि तें उत्तम क्वार। ग्रारु सुनीति कें श्रुव सुकुमार—४-६। (२) कारा, बिनब्याहा।

क्वारछल—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, हिं. क्वार + छल] क्वारापन।

क्वारपत, क्वारपन—संज्ञा पुं. [हि. क्वारा-पत या पन] कारा होना, कुमारपन।

क्वारा—वि. [सं. कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, कुआरा।

क्वारापन—संज्ञा पुं. [हिं. कारा+पन] कुमारपन।
क्वासि—वावय [सं.] त् कहाँ या किस स्थान पर है।
उ.—चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर। तुव चिनु
कुँअर कोटि बनिता तिज सहत मदन की पीर।
गद्गद सुर पुलिकत विरद्दानल स्रवत विलोचन नीर।
कासि कासि बृषभानुनंदिनी बिलपत विषिन अधीर।

ववैला—संज्ञा पुं. [हं. कोयला] (१) ग्रंगारा। (२) ग्रंपाता कोयला।

त्तंत्रव्य—वि. [सं.] त्तमा के योग्य, त्तम्य। त्तंता—वि. [सं.] त्तमा करनेवाला, त्तमाशील। त्तरा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समय का बहुत छोटा भाग। (२) समय। (३) अवसर। (४) उत्सव।

ज्ञान कि. वि. [सं. ज्या + क (प्रत्य.) ज्ञा भर में। उ.—बहुत दिनन के, विरह ताप दुख मिलत ज्ञाक में मेटे— दर्४ सारा.।

च्राद- संज्ञा पुं. [सं.] (१) जला। (२) ज्योतिषी। (३) जो रात में देख न सके।

च्रादा - सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात । (२) हल्दी ।

च्रादाकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

च्चणद्यति—संज्ञास्त्री. [सं.] बिजली।

च्रणप्रभा-संज्ञा स्त्री. [स.] बिजली।

चणभंग, चणअंगु, चणभंगुर—वि. [सं चणभंगुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला । उ.—सुख संपति दारा सुत इय गय हठै सब समुदाय। चणभंगुर (छनभंगुर) ए सब स्याम बिनु त्रांत नाहिं संग जाय।

चित्ति—वि. [सं.] च्या भर में (शीघ्र ही) नष्ट हो जाने वाला।

चिंशिकता—संज्ञास्त्री. [सं.] च्रण भर में, या बहुत शीघ्र नष्ट होने का भाव।

चिंगिकवाद – संज्ञा पुं. [सं.] एक सिद्धांत जिसमें प्रति च्या परिवर्तित होते होते वस्तु का नष्ट हो जाना मानते हैं।

च् ित्रा स्त्रा स्त्री. [सं.] बिजली।

निष्नी - संज्ञा स्त्री. [सं.] रात ।

न्नग्रेक-कि. वि. [सं. न्या + एक] च्या भर।

चत-वि. [सं.] जो तोड़ा-फोड़ा गया हो, जिसे चिति पहुँची हो, घायल।

संज्ञा पुं. [स.] (१) घाव। (२) फोड़ा, त्रण। (३) मार-काट। (४) ज्ञति पहुँचना।

च्तज – वि. [सं.] (१) घाव से उत्पन्न। (२) लाल रंगका।

संज्ञा पुं. [सं] (१) रक्त, खून। (२) मवाद। (३) बुरी खंसी। (४) शरीर में बहुत घाव लगने पर मालूम होने वाली प्यास।

चत-विचत—वि. [सं.] (१) घायल, लहू-लुहान। (२) नष्ट-भ्रष्ट।

च्नति संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हानि, नुकसान। (२) नाश।

चन्न-संज्ञा पुं. [सं.] (१) बला। (२) राष्ट्र। (३) धन। (४) शरीर। (४) जला। (६) चिहिय।

चत्र कर्म (धर्म)—संज्ञा पुं. [सं०] (युद्ध, दान, रचा आदि) चत्रियों के कमे।

चत्रप — संज्ञा पुं. [सं०] ईरानी मांडलिक राजाओं की उपाधि जो भारतीय शासकों ने अपना ली थी।

त्तत्र वित—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

त्तित्रा—संज्ञा पुं [तं. त्तिय] च त्रिय। उ.— दियौ उनपै कह्यौ तुम को उ त्तिश्रा कपट करि बिप्र कौ स्गाँग स्गाँग्यौ — १० उ.—१५१।

च्त्रिनी-संज्ञा स्त्री. [सं.] मजीठ।

त्तिय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चार वर्णों में दूसरा जिसका काम देश का शासन और उसकी रक्षा माना गया था। (२) एक वर्ण का व्यक्ति। (३) राजा। (४) शक्ति।

दात्रो—संज्ञा पुं. [सं. चत्रिय] (१) चत्रिय वर्ण। (२) इस वर्ण का व्यक्ति।

त्त्र-संज्ञा पुं. [सं.] दाँत।

त्तपणक — वि. [स.] निर्लं जा।

संज्ञा पुं.—(१) दिगंबर जैन साधु। (२) बौद्ध भिचु।

त्तपात-सज्ञापुं. [सं.] प्रभात।

चपा- संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात । (२) हल्दी ।

द्मपाक्रर - संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

त्तपाचर — संज्ञा पुं. [सं.] राज्य ।

त्त्पानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चद्रमा। (२) कपूर।

त्तपापति - संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) कपूर।

त्तम-वि. [सं.] योग्य, समर्थ।

संज्ञा पुं. - बला। शक्ति।

क्रि. स. [हिं. त्तमना] त्तमा करो । उ.— त्तम ग्रपराध देवकी मेरो लिख्यो न मेट्यो जाई। में ग्रपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई— ३८६ सारा.।

द्दमणीय—वि. [सं.] त्रमा के योग्य। द्वमता – संज्ञा स्त्री. [सं.] योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति। द्वमताशील—वि. [सं. च्यता + शील] योग्य, समर्थ, सशक्त।

इमता-कि. स. सं. चमा चमा करना, माफ करना। च्तमनीय - कि. स. [सं. च्तमणीय] च्तमा के योग्य।

वि. [सं. च्म] बली, शक्तिशाली।

च्मवाना—क्रि. स. [हिं. च्मना] चमा कराना।

च्रमवाय-कि. स. [हिं. च्रमवाना] च्रमा कराकर, दूसरे से समवाकर। उ.—बहुरि विधि जाय समवाय के रुद्र को विष्णु विधि रुद्र तहँ तुरत आये।

चारा—संशा स्त्री. [एं] (१) दिये हुए कष्ट को सहन करने श्रीर कष्ट देनेवाले के प्रति प्रतिकार की इच्छा न रखने की वृत्ति। (२) सहनशीलता। (३) पृथ्वी। (४) दुर्गा का नाम। (४) राधा की एक सखी का नाम। (६) एक छंद।

च्माई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमा+ई (प्रत्य०)] च्रमा करने की किया।

द्माए-कि. स. [हैं. द्यमाना] चमा कराये, चमा करवा दिये। उ.—तब हरि उनके दोष चमाए — ८६।

च्माना-कि. स. [हिं. च्मना] चमा कराना। कि. स. [हिं. च्मा] चमा करना।

न्नमान-कि. स. [हिं. न्नमाना निमा कराने के लिए। उ. - यह सुनि के श्रकुलाई चले हिर कृत श्रपराव च्रमानै---२०५३।

द्मापन-संज्ञा पुं [सं. चमा+हिं. पन] (१) चमा करने का काम। (२) चमा कराने का काम।

चमायौ - कि. स. [हिं. चमना] चमा कराया। उ.— कौरवन भिलि बहुति भाँति भिनती करी दोष तिनशो द्विजन मिलि चभायौ - १० उ.-१४६।

चमालु — वि. सं० चमावान्, चमाशील।

चमावत-क्रि. स. [हिं. चमावना] चमा करते हैं। उ.-परी पाँय अपराध च्मावत सुनत मिलैगी धाय । सुनत बचन दूतिका बदन ते स्याम चले श्रकुलाय - १७३ सारा.।

चमावना - कि. स. [हिं. चमना का प्रे.] चमा कराना। त्तमावान् -वि. पुं. [सं. च्मावत्](१) च्मा करनेवाला। (२) सहनशील।

द्माशील - वि. [सं.] (१) चमा करनेवाला। (२) शांत प्रकृतिवाला।

सूर स्याम जुवतिन सौं कहि कहि सब अपराध च्तमाहीं - पृ. ३४१ (७०१)।

द्मितव्य-वि. [सं.] जो चभा किया जा सके।

च्रमी-वि. [सं. च्रमा+ई (प्रत्य.)] (१) च्रमा करनेवाला । उ.—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही । सुर अति च्रमी श्रमुर श्रति कोही। (२) शांत प्रकृतिवाला।

चमैंगे — कि. स. [हं. च्मना] चमा करेंगे। उ. — श्रव इमकौ ऋपराध द्यमेंगे कृपा करी मुख बोलों जू - 88481

त्तम्य — वि. सं. त्रमा करने योग्य।

च्चयंकर—वि. सं.] नाश करनेवाला।

स्य-संज्ञा पुं. [सं.] (१) धीरे घीरे घटना या कम होना। (२) प्रलय। (३) नाश। (४) घर। (४) चयी रोग। (६) अंत।

चयवान् — वि. [सं. च्यवत्] नाश होनेवाला। च्यो-वि. [सं.] चंद्रमा। संज्ञा स्त्री. [सं. क्य] एक भयंकर रोग ।

च्चर-वि. [सं.] नाशवान्।

संश पुं. [सं.] (१) जल। (२) मेव। (३) शरीर। (४) अज्ञान । (४) जीवात्मा ।

चरण-संशा पुं. [सं.] (१) धीरे धीरे वहना। (२) भगड़ा। (३) नाश होना।

चांत-वि. [सं.] सहनशील, चमावान्। चांति — संज्ञा स्त्री. [सं.] सहनशीलता।

द्या-संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी ।

चात्र—वि. [सं०] चत्रिय संबंधी । संज्ञा पुं. सं.] चित्रयपन ।

न्ताम — वि. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) दुर्बल, बलहीन। (३) थोड़ा।

चार—संज्ञा पुं० [सं.] (१) श्रीषिधयों को जलाकर तैयार किया हुन्ना नमक। (२) नमक। (३) सजी। (४) शोरा। (४) भस्म। (६) काँच।

वि. [सं.] (१) खारा। (२) धूर्त ।

चालन-संज्ञा पुं. [सं.] घोना।

चालित—वि. [सं.] धुला हुआ, साफ।

चमाहीं - कि. स. [हिं. चमाना] चमा कराते हैं। उ, - चिति-- संशा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी। उ, - अमल अकास

कास कुसुमिन चिति लच्चण स्वाति जनाए—२८५४।
(२) जगह, घर। (३) चय। (४) प्रलयकाल ।
चितिज—संज्ञा पुं० [सं](१) वह वृत्ताकार स्थान जहाँ
आकाश और पृथ्वी, दोनों मिले जान पड़ते हैं। (२)
मंगल ग्रह। (३) वृत्त।

चितिभार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत । (२) दिगाज। (३) कच्छप।

चिपा-संज्ञा स्त्री. [सं.] रात।

द्विप्त — वि. [सं.] (१) त्यक्त । (२) अपमानित । (३) पागल ।

निप्र—िक वि० [सं.] (१) जल्दी, शीघा (२) तुरंत। वि. [सं.] (१) तेज। (२) चंचल।

चीगा—संशा पुं. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) छोटा, सूचन। (३) घटा हुआ।

चीएक - वि. [सं.] चीए करनेवाला।

चीग्गता—संशास्त्री. [सं.] (१) कमजोरी। (२) दुवला-पन। (३) छोटापन।

चीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूध। (२) दव। (३) जल। (४) पेड़ों का दूध। (४) खीर।

दीरज-संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) शंख। (३) कमल। (४) दही।

वि.—दूध से बना हुआ, दूध से उत्पन्न।

चीरिध — संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र। उ.— पसुपति मंडल मध्य मनो चीरिध नीरिध नीरि के — २५६६।

स्रीरिनिधि - संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

चीरनीर--संज्ञा पुं. [सं.] (१) आलिंगन। (२) मिलन।

द्वीरस—संशा पुं. [सं.] दूध-दही की मलाई।

च्चीरसागर-संज्ञा पुं. [सं.] एक समुद्र।

चीरसार—संशा पुं. [सं.] मनखन।

चीरोद-संज्ञा पुं. [सं.] चीरसागर।

चीरोदक—[सं. चीर + उदक] दूध और पानी।

वि.—दूध के समान उज्ज्वल । उ.—त्तीरोदक घूँघट हातो करि सन्मुख दियो उघारि । मानो सुधा-कर दुग्ध सिधु ते कढ्यो कलंक पखारि—१६८६।

संज्ञा पुं० [सं.] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्राचीन काल में बनता था। उ.—कहा भयो मेरो गृह माटी को। हों तो गयो गुपालहिं मेंटन श्रीर

खरच तंदुल गाँठी को ""। नौ तन चीरोदक (घीरोदक) जुवती पे भूषन हुते न कहुँ माटी को। स्रदास-प्रभु कहा निहोरो मानतु रंक नास टाटी को। चीरोदतनय—संज्ञा पुं० [सं.] चंद्रमा जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसका पुत्र माना जाता है।

चीरोदतनया—संशा स्त्री. [सं०] लच्मी जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसकी पुत्री मानी जाती है।

चीरोद्धि—संशा पुं. [सं ०] चीरसागर।

चीव-संज्ञा पुं [सं०] पागल।

च्राणी - संशास्त्री. [सं०] पृथ्वी।

चुराग् वि. [सं०] (१) अभ्यासी, अभ्यस्त । (२) जो दुकड़े-दुकड़े या चूर चूर हो। (३) टूटे अंग का, खंडित।

चुत् - संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख, चुधा। चुद्र-वि. [सं०] (१) कंजूस। (२) नीच। (३) छोटा। (४) निर्धन।

संज्ञा पुं. [सं०] चावला का कण।

चुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) घुँघरू । (२) घुँघरू । (२) घुँघरू करधनी।

चुद्रता—संशा स्त्री. [सं.] (१) नीचता। (२) श्रोछापन। चुद्रपति—संशा पुं. [सं.] कुवेर। उ.—स्द्रगति, चुद्रपति, लोजपति वोकपति, धरनिपति, गगनपति, श्रगम बानी।

जुद्र प्रकृति—िव. [सं.] तुच्छ या नीच स्वभाववाला। जुद्र बुद्धि—िव. [सं.] नीच स्वभाव का।

जुद्रमति — वि. [सं.] नीच बुद्धिवाला, ऋोछी बुद्धिवाला। उ.—बरष दिन संयोग देत मोकों भोग जुद्रमति ब्रजलोग गर्व कीनो—६४४।

जुद्रावली—संशा स्त्री. [सं.] जुद्रघंटिका, किंकिणी, करधनी। उ.—श्रंग श्रभूषन जनि उतारित। दुलरी श्रीव माल मोतिन की लें केयूर भुज स्याम निहारित। जुद्रावली उतारित किंट तें शोंपित धरित मन ही मन वारित।

जुद्राशय—वि. [सं.] नीच स्वभाव का, 'महाशय' का विपरीतार्थक।

चुधा—संशा स्त्री. [सं.] भूख। चुधातुर—वि. [सं.] भूखा।

ज्ञुधावन्त-वि. [सं. जुधा + वंत (प्रत्य.)] भूखा। द्धाधित-वि. [सं.] भूखा। चुप-संज्ञा पुं. [सं.] (१) माड़ी, पौधा। (२) श्री कृष्ण की पत्नी, सत्यभामा का पुत्र। चुड्ध-वि. पुं.] (१) चंचल । (२) व्याकुला। (३) डरा हुग्रा। (४) कुद्ध। ज्ञुभित-वि. [सं.] (१) व्याकुल। (२) चोभ से युक्त। ज्ञर—संशा पुं. [सं.] (१) छुरा। (२) उस्तरा। दोत्र—संज्ञा पुं. िसं.] (१) खेत। (२) समतल भूमि। (३) स्थान। (४) तीर्थं स्थान। (४) शरीर। (६) रेखात्रों से घिरा हुआ स्थान। न्ने त्रज—वि. िसं. े (१) खेत से उत्पन्न। (२) चेत्र-जनित। च्चित्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेत का रखवाला। (२) किसान। (३) जीवात्मा। च्रेत्रफल-संज्ञा पुं [सं.] वर्ग की लम्बाई-चौड़ाई का गुणन फल, वर्ग परिणाम। च्रेत्री—संशा पुं. सं. च्रेत्रिन् (१) खेत का स्वामी। (२) स्वामी। द्येप-संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठोकर। (२) निंदा। (३) दूरी। (४) (समय) बिताना। द्योपक-वि. [सं.] (१) मिलाया हुआ। (२) निंदनीय। संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाव खेनेवाला, केवट। (२) ह्योरिक—संज्ञा पुं. [सं.] नाई। ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश। द्मा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

च्चेमं करी-मंज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक तरह की चील। (२) एक देवी। चान-संज्ञा पुं. [सं.] (१) रचा। (२) कुशल मंगल। (३) सुख। (४) स्रानन्द। द्यंमी-वि. सं. द्येमिन् (१) कुशल करनेवाला । (२) भलाई चाहनेत्राला। चोि (१) पृथ्वी। (२) पुक की संख्या । चोिगिप—संज्ञा पुं. सिं.] राजा। चोणो- संज्ञा स्त्री, [सं.] पृथ्वी । चोग्गीपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा। चीम - संज्ञा पुं. [सं.] (१) खलबली । (२) घबराहट। (३) भय। (४) शोक। (४) कोध। चोमन-वि. सं.] चोभ उत्पन्न करनेवाला। चोभना—कि. ग्र. [सं. चोभ] (१) व्याकुल होना। (२) भयभीत होना। (३) चंचल होना। चोभित-वि. [सं. चोभ] (१) वबराया हुआ। (२) विचलित। (३) डरा हुआ। चोभी - वि. [सं. चोभिन्] व्याकुल, चंचल । चौिए, चौएी—संशास्त्री. [सं.] पृथ्वी । द्गीम-संज्ञा. पुं. [सं.] कपड़ा। चौर, चौरकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] हजामत।

(頓)

ख-देवनागरी वर्णमाला के कवर्ग का दूसरा अचर, स्पर्श, महाप्राण व्यंजन । कंट्य वर्ण । खं—संज्ञा पुं. िसं० खम्] (१) खाली या शून्य स्थान। (२) शून्य, विंदु। (३) स्राकाश। (४) स्वर्ग। (४) सुख। (६) मोच। खंक-वि. [सं० कंकाल] बलहीन। खंख, खंखी — वि. िसं० कंक] (१) रिक्त, खाली। (२) उजाड़, बीरान। (३) निर्धन।

खंखर—वि. [हिं० खंख] बीरान, उजाड़। खँखार—संज्ञा पुं. िहिं० खखार ो गाढ़ा कफ। खँखारना—कि. श्र. [हिं० खखार] (१) खाँसना। खखारकर कफ निकालना। खंग, खँग—संज्ञा पुं. [सं० खड्ग] (१) तलवार। (२) गैंडा। संज्ञा स्त्री • — धाव । उ • — कुं भकरन तनु खंग लग गई लंक विभीषन पाई।

खंगड़ —संज्ञा पुं. [त्रानु०] कूड़ा-कबाड़ा। वि. —उग्र, उदंड।

खँगना — कि. स. [हिं. छीजना] कम होना, घटना। खंगर — वि. [देश०] बहुत सूखा।

खँगहा—ित्र. [देश॰] बड़े दाँतवाला (पश्च), दँतैला। संज्ञा पुं.—गेंडा।

खँगारना, खँगालना—क्रि. स. [सं० चालन] (१) खाली पानी से साफ करना। (२) खाली करना, उड़ा ले जाना।

खँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं० खाँगना] कमी, घटी। खँगुत्रा—संज्ञा पुं. [हिं० खाँग] गैंडे के मुँह का सींग। खँगील —वि. [हिं० खँगहा] जिसके दाँत बाहर निकले हों, दँतील।

खगौरिया—संशास्त्री. [देश] गले का एक गहना, हँ सुली

खँचना—कि. श्र. [हिं. खाँचना] चिह्न पड़ना, चिह्नित होना।

खँवाना—कि. स. [हिं० खाँचना] (१) ग्रंकित करना, चिह्न बनाना। (२) जल्दी लिखना। (३) खींचना। खँचिया—संशा स्त्री. [हिं० खाँची] साबा, बड़ी डिलया। खँचैया—वि. [हिं० खाँचना] खींचनेवाला।

खंज— संज्ञा पुं० [सं० खंजन] खंजन पत्ती । उ०— आ लिंगन दे अधर पान करि खंजन खंज लरे। वि.—[सं०] लॅंगड़ा, पंगु।

खं जक-वि. [हिं० खं ज] लँगड़ा, पंगु।

खँजड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. खंजरीट] डफली की तरह एक बाजा।

खंजन—संज्ञा पुं. [सं०] (१) एक सुंदर पन्नी जो बहुत चंचल होता है श्रोर जिसकी उपमा किव नेत्रों से देते हैं। (२) एक तरह का घोड़ा। (३) एक छंद।

खंजन-रति—संज्ञा पुं. [सं०] बहुत गुप्त विवाह। खंजनिका – संज्ञा स्त्री. [सं०] एक चिड़िया।

खंजर- संशा पुं० [फ़ा०] कटार।

खंजरि, खंजरी—संशा पुं. [सं. खंजरीट = एक ताल] डफली की तरह एक छोटा बाजा। उ. कंसताल कटताल बजावत सुंग मधुर मुँह चंग। मधुर खंजरी पटह प्रश्व मिलि सुल पावत रतभंग — १०७३ सारा.।

संज्ञा स्त्री. [फा. खंजर] (१) छोटा खाँड़ा। (२) एकं तरह का रेशमी धारीदार कपड़ा।

खं तरीट—संशा पुं. [सं.] खंजन पन्नी। उ.— (क) मनोहर है नैनन की भाँति। ""। खंजरीट मृग मीन बिचारित उपमा को अकुलाित-—२१४७। (ख) बालभाव अनुसरित भरित हग अप्र अंशुकन आनै। जनु खंजरीट जुगज जठरातुर लेत सुभष अकुलाने —२०५३। (ग) मनहुँ मुदित मरकत मनि-आँगन खेलत खंजरीट चटकारे।

खंजा—सज्ञा स्त्री. [सं.] एक वृत्त ।

खंड, खंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाग, हिस्सा। उ.—
तासौ सुन निन्यानवे भए। "तिन मैं नव नवखंड ग्रिधकारी—५-२। (२) खाँड, चीनी। (३)
दिशा। (४) देश, पौराणिक भूगोल के श्रनुसार प्राचीन द्वीपों के नौ या सात भाग। उ.—ग्रिखल
ब्रह्मांड खंड की महिमा दिखराई मुख माँहिं—१०२५५।

वि.—खंडित, छोटा। संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] खाँड़ा।

खंडक — वि. [सं.] (१) खंड-खंड करनेवाला। (६) किसी बात का खंडन करनेवाला।

खंडकाव्य — संज्ञा पुं. [सं.] वह काव्य जिसमें कथा की घटना विशेष का वर्णन हो। इसमें काव्य के सब लक्षण नहीं होते।

खंडत — वि. [सं. खंडित] दूटा फूटा, अपूर्ण, असंबद्ध। कि.स. [हिं. खंडना] खंड खंड करता है।

खंडन — संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोड़ना। (२) काटना। (३) असत्य, अशुद्ध या अनु चित सिद्ध करना। खंडना — कि. स. [सं. खंडन] (१) तोड़ना - फोड़ना। (२)

(बात या सिद्धांत को) श्रयुक्त ठहराना।

खंडतीय—वि. [सं.] खंडन करने योग्य। खंडपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

खंडपरशु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव जी। (२) विष्णु।

(३) परशुराम ।

खंडपाल—संशा पुं. [सं.] हलवाई। खंडपूरी—संशा स्त्री. [हिं खाँड़ + पूरी] पूरी जिसमें मेबे-मसाले और चीनी भरी हो। खंडप्रलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटा प्रवाय। (२) किसी प्रदेश या खंड का नाश।

खंडबरा — संज्ञा पुं. [हिं. खंडौरा] मिश्री का लड्डू, स्रोला।

खंडर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] किसी गिरे हुए भवन का बचा हुआ भाग, खँडहर।

खंडरना—संज्ञा पुं. [हिं. खंडर] खंडित करना, नाश करना।

खँडरा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँड़ + हिं. बरा (प्रत्य.)] एक पकवान या बड़ा।

खंडिरिच— संज्ञा पुं. [सं. खंजरीट] खंजन पत्ती । खंडल—संज्ञा पुं. [सं.] खंड प्रहण करनेवाला। संज्ञा पुं. [सं. खंड] खंड।

खँडला-संशापुं, [सं. खंड] दुकड़ा।

खँडवानी - संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँड़ + पानी] (१) शरबत।

(२) वर पत्तवालों को भेजा गया जल पान या शरबत।

खंडशः — कि. वि. [सं. खंड] खंड खंड करके। खंडसार, खंडसाल — संज्ञास्त्री. [हिं. खाँड + शाला] स्थान जहाँ खाँड़ बनती हो।

खॅडहर—संज्ञा पुं. [सं. खंड + हिं. घर] टूटे हुए भवन का शेष, खंडर ।

खंडा — संज्ञा पुं. [सं. खंड] (१) भाग, हिस्सा। (२) देश; पौराणिक द्वीपों के नौ-नौ या सात-सात भाग। उ.— एक एक रोम कोटि ब्रह्म डा। रिव सिस ध नी धर नवखंडा— १०७०।

खंडि—कि. स. [सं. खंडन, हिं. खंडना] तोड़कर, टुकड़े करके। उ.—स्यंदन खंडि, महारिथ खंडों, कपि-ध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

खंडिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँख। (२) वह व्यक्ति जो प्रथ को खंडश: पढ़े। (३) एक ऋषि।

खँडिका संशास्त्री, [सं.] निश्चित समय पर श्रदा किया जानेवाला ग्रंश, किश्त।

खंडित—िव, [सं. खंड] (१) दूटी हुई, असंबद्ध, भग्न। उ.—(क) चारि मास बरसे जल खूटे हारि समुभ उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी अकथ कहानी— २४५७। (ख) नैनन निरित्व निमेष न

खंडित प्रेम-व्यथा न बुकाई— २९७६। (२) जो पूरे न हो, अपूर्ण।

खंडिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऐसी नायिका जिसका पति रात में अन्य स्त्री के पास रहकर प्रातःकाल लौटे। उ.—नित्य रास जल नित्य बिहार। नित्य मानं खंडिताभिसार—२३८०।

खंडिनी-संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

खंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. खंड] (१) लगान या कर इत्यादि की किश्त। (२) एक तोल या माप।

खंडे—िक. स. [हिं. खंडना] खंडन करे, तोड़े, न माने, उल्लंघन करे। उ.—ि पिता-यचन खंडे सो पापी, सोइ प्रहलादिहं कीन्हों। निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हों—१-१०४।

खंडीं - कि. स. [हिं. खंडना] दुकड़ें-दुकड़े कर दूँ। उ.—हांदन खंडि, महारिथ खंडीं, कपिथ्वज-सहित उड़ाऊँ — १-२७०।

खंडौरा—सज्ञा पुं. [हिं खाँड+श्रोरा (प्रत्य.)] खाँड का खड्डू, श्रोला।

खंतरा—संज्ञा पुं. [सं. कांतार या हिं. श्रंतरा] (१) कोना, श्रंतरा। (२) दरार। (३) छोटा गढ़ा।

खंदक— संज्ञा पुं. [त्र.] (१) गड्ढा (२) दुर्ग के चारो श्रोर की गहरी खाई।

खंदा — संज्ञा पुं. [हिं. खनना] खोदनेवाला, नाश करने वाला। उ.— देव्य दलन गजदंत उपारन, कंस केसि धरि फंदा। स्रदास बिल जाइ जसोमित सुत्र के सागर दुख के खंदा।

खँधवाना—िक. स. [हिं. खाली] खाली कराना। खंधार—संज्ञा पुं. [स्कंधवार] सेना के रहने की जगह, छावनी।

संज्ञा पुं. [सं. खंडपाल] सामंत, सरदार। खँधियाना—िक. स. [हिं. खाली] किसी पदार्थ को पात्र से बाहर निकालना।

खंबारा—संज्ञा पुं. [हिं. खंभार] घबराहट, चिंता। उ. —कंस परचौ मन इहै बिचारा। राम-कृष्ण बध इहै खंबारा— २४५६।

खंभ—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ, प्रा. खंभ] (१) स्तंभ, खंभा। (२) सहारा, श्रासरा।

खंभा—संज्ञा पुं. [हिं. खंभ] (१) स्तंभ। (२) सहारा। खंभार— संज्ञा पुं. [सं. क्तोभ] (१) चिंता (२) घबराहट। (३) डर, भय। (४) शोक।

खंभार, खंभारी—संज्ञा पुं. [हं. खँभार] (१) खलबली, व्याकुलता, घवराहट। उ.—बहुत अचगरी जिनि करो, अजहुँ तजी भवारि। पकरि कंस ले जाइगी, कालिहि परे खँमारि—५८६। (ल) जैहे बात दूरि लों ऐसी परिहै बहुरि खँमारि—१०८८। (२) चिंता, ठेस, शोक। उ.—देखी जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकुत भई सुकुमारि। कबहुँक इत, कबहूँ उत डोलित, लागी प्रीति-खँमारि—६७६।

संशा स्त्री. [सं. काश्मरी, प्रा. कम्हरी] एक वृत्त । कि. श्र.—भयभीत कर दी, कॅपा दी, विचलित कर दी। उ.—धायौ पवनहुतै श्रति श्रातुर धरनी देह खभारी—२५६४।

खंभारी—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] डर, भय। उ.— तब ब्रह्मा करि बिनय कहची, हरि, याहि सँहारी। तुम हो लीला करत, सुरिन मन परची खँभारी—३-११।

खंमिया- संज्ञा स्त्री. [हिं. खंमा] छोटा खंमा।

खँव—संज्ञा स्त्री. [सं. खं] खत्ता जिसमें श्रनाज भरा जाय।

खँसना—कि. ग्र. [हिं. खसना] गिरना, सरकना, खिसकना।

ख-संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राकाश। (२) स्वर्ग। (३) शून्य। (४) शहा। (४) शब्द।

खइए—िक. स. [सं. खादन, पा. खात्रन, खान; हिं. खाना] खाइए, भोजन की जिए। उ.—जुठा खइए मीठे कारन आपुहि खात लड़ावत — ए. ३३१।

खई—संज्ञा स्त्री. [सं. च्यी] (१) च्य करनेवाली किया।
(२) विरोध. तकरार, भगड़ा। उ.—(क) सुत-सनेहतिय कुटुम्ब मिलि, निसि दिन होत खई—१-२६६।
(ख) त्यौंरी भौंहन मोतन चितवे नैंक रहो तो करे
खई—१२६१। (ग) कहतिह पोच सोच मनही मन
करत न बनित खई—२७६१। घ) भोजन भवन कछू
निहं भावत पलकन मानों करत खई सी—१६८३।
(३) युद्ध, लड़ाई।

खक्खा—संज्ञा पुं. [श्रनु॰] जोर की हँसी। खखरा—संज्ञा पुं. [हिं. खंखड़] (१) बाँस का टोकरा।

(२) बड़ा देश।

खखरिया — संज्ञा स्त्री. [देश.] पतली कुरकुरी पूरी। खखसा — संज्ञा पुं. [हिं. खेखसा] एक तरकारी। खखार — संज्ञा पुं. [ग्रन्.] गाड़ा कफ।

खखारना — कि. त्र. [सं. चरण] (१) खाँसना । (२) खरख राहट के साथ कफ खींचना ।

खखेटना—िक, स. [सं. श्राखेट=शिकार] (१) पीछा करना । (२) घायल करना । (३) दबाना, व्याकुल करना ।

खखेटा, खखेटचौ - संज्ञा पुं. [हिं. खखेटना] (१) शंका, संदेह। (२) छिद्र।

खखोंडर—संज्ञा पुं. [सं. ख + कोटर] पेड़ के खोखले में बना हुआ घोसला।

खखोरना—िक. स. [हिं. खखोलना] खोजना, छानबीन करना।

खगंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] त्राकाशगंगा।
खग —संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्ती, चिड़िया। (२) गंधर्व।
(३) वाण। (४) देवता। (४) सूर्य। (६) चंद्र।
(७) वायु।

खगउड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कड़ा। खगकेत्—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

खगत—िक, स. [हिं. खगना] चित्त पर श्रसर करती है, मन में बैठती है। उ.—जाही सो लगत नैन ताही खगत बैन नख सिख लौं सब गात ग्रसति—१८६।

खगना — कि. स. [हिं, खाँग = काँटा] (१) गड़ना, चुभना।

(२) चित्त पर प्रभाव डालना। (३) अनुरक्त होना।

(४) उभर ग्राना, चिन्तित होना। (४) श्रटक जाना, ग्रड़ रहना।

खगनाथ, खगनायक, खगपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) सूर्थ।

खगपतिश्विरि—संज्ञा पुं. [सं. खगपति = गरुड़ + श्रिरि = शत्रु] शेषनाग । उ. — जब दिध-रिपु हरि हाथ लियो । खगपति-श्रिर डर, श्रसुरिन संका, बासरपति श्रानंद कियो — १०-१४३।

खगभूप - संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) सुत्रा, तोता। उ. - सेमर-फूल सुरँग त्राति निरखत, मृदित होत खग-भूप। परसत चौंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कें क्य---१-१०२।

खगराइ—संज्ञा पुं. [सं. खग+हिं. राय] खगपति, गरुड़। खगहा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँग= पैना दाँत] गैंडा।

खगी-कि. स. [हिं. खगना] उभर आयी, चिह्नित हो गयी। उ.— यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई।

खगे—िक. स. [हिं. खगना] (१) लिप्त हुए, अनुरक्त हुए। उ.— प्रफुलित बदन सरोज संदरी श्रति रस नैन रॅंगे। पुहुकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे—पृ. ३५० (६४)। (२) अटके थे,अड़ रहे थे, उत्तभे थे। उ.—न्हात रहीं जल में सा तहनी तब तुम नैना कहाँ खगे—१३१८।

खगेश-संज्ञा पुं. [सं. खग + ईश] गरुड ।

खगी—संशा पुं. [सं. खग] पची । उ.—इहै कोऊ जानै री। वाकी चितवनि मैं कि चंद्रिका मैं किथौं मुरली माँभ ठगोरी। देखत सुनत मोहि जा सुर नर ं मुनि मृग श्रौर खगो री—-२३६१।

खगोल विद्या, ज्योतिष।

खगा— संज्ञा स्त्री [सं. खड्ग, प्रा. खगा] तलवार। खमास—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्ण महरा।

खचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जड़ना। (२) अकित या चित्रित करना।

खचना - कि. श्र. [सं. खचन = बाँचना, जड़ना] (१) जड़ा जाना। (२) ग्रंकित या चित्रित होना। (३) रमना, श्रड़जाना। (४) श्रटकना, फँसना।

खचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मेघ। (३) गृह। (४) नत्तत्र । (४) वायु । (६) पत्ती । वि.— स्राकाश में चलनेवाला।

खचरा—वि. [हिं. खचर] (१) वर्णसंकर, दोगला। (२) दुष्ट, नीच।

खचाई—कि. स. [हिं. खचाना] श्रंकित या चिन्हित की।

मुहा०-ग्रपनी खचाई-ग्रपनी ही बात ऊपर रखी,

दूसरे का तर्क न सुना। उ.—सुनौ घों दे कान श्रपनी लोक लोकन कीति । सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन जीति।

खचाखच-- क्रि. वि. [अनु.] ख्ब भरा हुआ, उसाउस । खचाना-कि. स. [हिं. खँचाना] (१) श्रंकित करना। (२) शीघ्र लिखना, खींचना।

खवावट—संशास्त्री. [हिं. खाँचना] खचन, गठन। खचावनो—वि. [हिं. खँचाना] जड़े हुए। उ.— पटली बिच बिद्रुम लागे हीरा लाल खचावन --- २२८० ।

खचि-कि. श्र. [हिं. खचना] (१) जड़कर। उ.--(क) कंचन खंभ, मयारि, मरुवा-इाडी, खचि हीरा विच लाल प्रवाल-१० ८४। (व) किथी बज्रकनि लाल नगनि खचि तापर बिद्रम पौति—१४१०। (ग) विद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि मनिम्य मंदिर बने बनावत-१०-उ.-५। (घ) इम सर-घात ब्रजनाथ सुधानिधि राखे बहुत जतन करि सचि सचि । मन मुख भरि भि नैन ऐन हैं उर प्रति कमल कोस लौं खचि खचि-२६०२ । (२) रमकर, अड़कर।

खगोल—संज्ञा पुं [सं.] (१) श्राकाशमंडल । (२) खचित—वि. [सं. खचन = वाँधना, जड़ना] (१) जड़ा हुआ। उ.—(क) कनक खचित मनिमय आभूषन, मुख स्नम-कन सुख-देत ६२८। (ख) चार चक्र मनि खित मनोहर चंचल चमर पताका— २५६६। (२) चित्रित, लिखित।

> खची-कि. श्र. [हिं. खचना] (१) श्रंकित हुई, चित्रित हुई। उ.—देत भाविर कुंज मंडप पुलिन में बेदी रची। बैठे जो स्थामा स्थाम बर त्रैलोक की सोभा खची। (१) जड़ी गई। उ.—चौकी हेम चंद्र मनि लागी हीरा रतन जराय जरी— ए. ३४५ (४१) ।

> खचे-कि. श्र. [हिं. खचना] ग्रटके, फँस गये। उ. - नैना पंकज पंक खर्च। मोहन मदन स्थाम मुख निरखत भ्रवनं बिलास रचे - पृ. ३२४।

खचेरना - क्रि. स. [हिं. खदेरना] दबाकर वश में करना। खच्यौ-कि. श्र. भूत. [हिं. खचना] रम गया, श्रड़ गया, मग्न हो गया। उ.—(क) आजु हरि ऐमे रास रच्यौ।। गत गुन मँद अभिमान अधिक रुचि लै लोचन मन तहँ इ खच्यो — पृ. ३५० (६६)। (ख) एक दिन बेंकुठवासी रास बुन्दावन रच्यो । सोई स्वरूप बिलोकि माधी स्राह इन बिधि तनु खच्यो — ३२६०।

खश्चर - संशा पुं. [देश] एक पशु।
खज - वि. [सं. खाद्य, प्रा. खाज] जो खाने योग्य हो।
खजला—संशा पुं. [हें. खाजा] एक पक्वान।
खजहजा—संशा पुं. [सं. खाद्य त्र, प्रा. खज्जाज] उत्तम

वि. - खाने योग्य।

खजानची—संज्ञा पुं. [हिं. खजाना] कोषाध्यच । खजाना, खजीना—संज्ञा पुं. [ग्र. खजाना] (१) कोष, भंडार, धनागार । (२) कर ।

खजुआ, खजुना—संज्ञा पुं. [हिं. खाजा] खजला या खाजा नाम की मिठाई। उ.—दोना मेलि घरे हैं खजुन्ना। होंस होय तो ल्याऊँ पूत्रा।

खजुलाना — कि. स. [हिं. खजुलाना] शरीर को नाखून श्रादि से सहलाना या रगड़ना।

खजुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुनली] खुजलाहट । संज्ञा स्त्री. [हिं. खाजा] एक मिठाई। खजर खजरी—संज्ञा स्त्री [सं खर्जर हिं

खजूर, खजूरो—संज्ञा स्त्री. [सं. खर्जूर, हिं. खजूर]
(१) एक प्रकार की मिठाई। उ.—मधुरी ऋति सरस
खजूरी। सद परिस धरी घृत पूरी—१८३। (२)
खजूर का फल, खजूर।

खट - संज्ञा पुं. [अनु.] दूटने, टकराने या ठोंकने-पीटने का शब्द।

खटक — संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खटकने की किया। (२) आशंका, चिता।

खटकत — कि. श्र. [हिं. खटवना] बुरा लगता है, खलता है। उ. बता मोहन खटकट वाकें मन, श्राजु कही यह बात—५२७।

खटकता — कि. श्र. [हिं. एटक (श्रन्.)] (१) 'खटखट' का शब्द होना। (२) किसी चीज के गड़ने, चुभने या श्रा पड़ने से पीड़ा होना (३) बुरा लगना। (४) भगड़ा होना। (४) श्रिनेष्ट या श्रपकार की श्राशंका होना। (६) श्रनुपयुक्त जान पड़ना।

खटहा—संज्ञा पुं. [हिं. खटकना] (१) 'खटखट' शब्द। (२) डर, आरांका। (३) चिता।

खटकोना—कि. स. [हिं. खटकना] 'खटखट' करना। खटकी—कि. ग्र. स्त्री. [हिं. खटकना (ग्रनु.)] खटक, खटकनेवाली बात। उ.—काल्हि मैं कैसे निदरित ही मेरे चित पर टरित न खटकी — १३०१।

खटखट—संज्ञा स्त्री. [त्रानु.] (१) ठोंकने पीटने का शब्द। (२) खटपट, भगड़ा, भंभट।

खटखटाना — कि. स. [श्रनु.] खटखट शब्द करना। खटना — कि. श्र. [हि.] (१) धन कमाना। (२) बड़ी मेहनत करना। (३) विपत्ति में पीछे न हटना।

खटपट— संज्ञा स्त्री. [त्रानु.] (१) टकराने या ठोंकने पीटने का शब्द। (२) भगड़ा।

खटपटिया - वि. [हिं. खटपट] भगड़ालू। खटपद — संज्ञा पुं. [सं. षट्पद] भौरा।

खटपदी—संज्ञा स्त्री. [सं. षट्पदी] (१) छः पंक्तियों का छन्द। (२) छप्पय छंद।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री. [हि. खाट + पाटी] खाट की पाटी ।

खटमल—संज्ञा पुं, [हिं. खाट + मज = मैज] खटकीड़ा।

खटिमिड्डा, खटमीठा—िव. [हिं. खट्टा + मीठा] जो कुछ खट्टा हो और कुछ मीठा।

खटमुख-संज्ञा पुं. [सं. घटमुख] कार्तिकेय।

खटरस—संज्ञा पुं. [सं. षट् + रम] खटा, मीठा, कडुआ, तीखा आदि छः रस।

खटराः—संज्ञा पुं. [षट्राग] (१) मंभट, मगड़ा, बखेड़ा। (२) व्यर्थ की चीजें।

खटला संज्ञा पुं. [देश.] कान का छेद जिसमें स्त्रियाँ वालियाँ पहनती हैं।

खटवाट, खटवाटी, खटवाटू - संज्ञा स्त्री. [हिं. खाट + पाटी] खाट की पटी।

खटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटा] (१) खटापन, अम्लता। उ.— (क) भरता भँटा खटाई दीनी-२३२१। (२) वह पदार्थ जिसका स्वाद खटा हो।

खटाका- संज्ञा पुं. [अनु.] 'खट' का शब्द । खटाखट—संज्ञा पुं. [अनु.] खटखट का शब्द ।

कि. वि.— (१) चटपट। (२) जल्दी।
खटाति—कि. श्र. [हिं. खटाना] (१) निर्वाह होता है,
निभता है। उ.—मधुकर कह कारे की न्याति। ज्यों
जल मीन कमल मधुन को छिन नहिं प्रीति खटाति
—३१६८। (२) परीचा में ठहरता है।

खटाना—क्रि. ग्र. [हिं. खट्टा] (किसी वस्तुका) खट्टा हो जाना।

कि. श्र. [सं. स्कभू, स्कब्ध; प्रा. खडु = ठहरा हुश्रा] (१) निर्वाह होना, निभना। (२) परीचा में डटे रहना।

खटापट, खटापटो —संज्ञा स्त्री. [हि. खटपट] लड़ाई, सगड़ा, तकरार।

खटात्र—संज्ञा पुं० [हि. खटाना] निर्वाह, निमना। खटास—संज्ञा स्त्री. [हि. खटा] खटापन।

खटिक—संज्ञा पुं. [सं. खद्दिक] तरकारी वेचनेवाली पुक जाति।

खटीक—संज्ञा पुं. [हिं. खटिक] (१) खटिक। (२) कसाई.।

खटोलना,खटो ता—संज्ञा पुं. [हैं खाट + श्रोला (प्रत्य)] (१) बच्चों की खाट। (२) पालना। (३) पालकी।

खट्टा—िव. [सं. कटु] अम्ल, तुर्श। संज्ञा पुं. [सं. खट्या] पलँग, चारपाई।

खटवांग—संज्ञा पुं० [सं.] (१) एक सूर्यवंशी राजा। (२) शिव का एक अस्त्र।

खट्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] खटिया, चारपाई। खड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धान का पयाल। (२) घास। (३) एक ऋषि।

खड़क संज्ञास्त्री. [हिं. खटक] खटकने का भाव, खटक।

खड़कना—िकि. श्र. [श्रनु.] (१) खड़ खड़ का शब्द होना। (२) खटकना।

खड़खड़ाना—िक्र. स. [श्रमु०] (१) खड़ खड़ का शब्द करना। (२) खटखटाना।

कि. स्र.— खड़ खड़ का शब्द होना। खड़खड़िया—संज्ञा स्त्री, [हिं, खड़खड़ाना] पालकी, पीनस। खड़ग—संज्ञा पुं. [सं. खड़ग] तलवार ।
खड़गी— वि. [सं. खड़ग] जो तलवार लिये हो।
संज्ञा पुं. [सं. खड़ग] गैंडा।
खड़जी—संज्ञा पुं. [हिं. खड़गी] गैंडा।
खड़जी—संज्ञा स्त्री [त्रान.] (१) खटखट की ध्वनि।

खड़बड़—संज्ञा स्त्री. [त्रानु.] (१) खटखट की ध्विन । (२) उलट-फेर, गड़बड़ । (३) हलचल ।

खड़बड़ाना—िक. श्र. [श्रन.] (१) घबड़ाना। (२) उलट-फेर का होना। (३) घबरा देना।

खड़बड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़बड़ाना] (१) उलट फेर, गड़बड़ी । (२) घबराहट।

खड़िबड़ा, खड़बीहड़—वि [हिं. खड़ु + सं. विघट, प्रा. बिहड़] ऊँचा-नीचा, जो समाल नहो।

खड़मंडल-संज्ञा पुं. [सं. खंड + मंडल] गड़बड़, भंभट, भमेला।

वि.—(१) उलट-पुलट, नष्ट-भ्रष्ट।

खड़सान—संशा पुं. [हिं, खर + सान] बहुत तीच्या सान जिस पर तलवार उतारी जाती है।

खड़हर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] दूटा फूटा मकान, मन्दिर श्रादि।

खड़ा—वि. [सं. खड़क = खम्मा, थूनी] (१) समकोण उठा हुन्ना, दंड की तरह सीधा।

मुहा.—खड़े खड़े-भटपट । खड़ा जवाब-साफ इन्कार । खड़ा होना-सहायता करना । खड़ी पछाड़ें खाना—बहुत सोभ से पृथ्वी पर गिरना ।

(२) टिका हुआ, स्थिर। (३) उत्पन्न। (४) सन्नत्त, तैयार। (४) आरंभ। (६) बनाया हुआ, उठायाहुआ। (७) तैयार, जो काटी न गयी हो। (८) जो पका न हो, कच्चा। (६) समूचा, पूरा। (१०) जो बहता हुआ न हो।

खड़ाऊँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काठ + पाँव; या खटपट श्रनु] पादुका।

खड़ाका—सज्ञा पुं. [अनु.] खड़खड़ शब्द, खटका। खड़ानन—संज्ञा पुं. [सं. षडानन] कार्तिकेय। खड़िया—संज्ञा स्त्री [सं. खटिका] एक तरह की सफेद मिटी, खड़ी।

मुहा. - खिड्या में कोयला - बेमेल बात।

संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या हिं. खड़ा] फली पत्ती रहित ग्ररहर का पेड़ या डंठल। खड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया मिट्टी।

खड़ी बोलो—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ी + बोली] आधुनिक हिंदी का वह रूप जिसका प्रचार सारे भारत में है। इसमें संस्कृत के साथ साथ अरबी, फारसी के भी प्रचलित शब्द घुले मिले हैं।

खड् आ— संशा पुं [हि, कड़ा] हाथ या पाँव का कड़ा। खड्ग — रंशा पुं. [सं.] तलवार । उ. — श्रद्रराज इहि अन्तर आयो। वृषभ-गाइ को पाइ चलायो। ताहि परीछित खंग उठाइ। बहुरो बचन कहयो या भाइ — १ २६०।

खड्गकोश-संज्ञा पुं. [सं] ग्यान।

खड्गपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त जो यमराज के यहाँ है और जिसमें पत्तियों की जगह तलवारें कटारें आदि लगी हैं। पापियों को इसपर चढ़ने का दंड दिया जाता है।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह की कटारी। खड्गारीट—संज्ञा पुं [सं.] चमड़े की ठोल। खड्गारी—संज्ञा पुं, [सं.] शिकारी। खड्गी—संज्ञा पुं. [सं. खड़िंगिन्](१) वह जो तलवार लिये हो। (२) गैंडा।

खडु, खड्ढा—संज्ञा पुं. [सं. खात्] गढ़ा।
खण्क—संज्ञा पुं. [सं. खनक] चूहा।
खतंग—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कबूतर।
खत—संज्ञा पुं. [ग्र. ख़त] (१) चिट्ठी, पत्र। (२)
लिखावट। (३) रेखा, धारी। (४) दाढ़ी के बाल।
संज्ञा स्त्री. [सं. चिति, प्रा. खिति) पृथ्वी।
संज्ञा पुं. [सं. चत] घाव।

खतखोट—संज्ञा स्त्री. [सं. च्त + हिं. खुडु] घाव की सूखी हुई ऊपरी पपड़ी, खुरंड।

खतना—श्र. [हिं. खाता] खाते में लिखा जाना, खित-याया जाना।

खतम—वि. [श्र. ख़त्म] समाप्त ।

खतर, खतरा—संज्ञा पुं. [ग्रा. ख़तर, ख़तरा] (१) डर। (२) ग्राशंका। खता—संज्ञा स्त्री. [त्रा. खता] (१) कस्र, त्रपराध । उ.—स्रदास चरनि की बिल-बिल, कीन खता तें कृपा बिसारी—१-१६०। (२) घोखा। (३) भूल चूक।

संज्ञा पुं. [सं. चत] घाव।
खतावार—वि. [हं. खता + वार] ग्रपराधी, दोषी।
खति—संज्ञा स्त्री. [सं. चिति] हानि, नुकसान।
खितया—संज्ञा स्त्री. [हं. खता] छोटा गड्ढा।
खितयाना—िक. स. [हं खाता] प्रतिदिन का ग्राय-व्यय श्रलग-श्रलग खातों या मदों में लिखना।

खितयावे — कि. स. [हिं. खाता, खितयाना] प्रति दिन की श्राय व्यय श्रादि खातों में यथानुसार लिखता है। उ.—संचो सो लिखहार कहावे ।। बट्टा काटि कसूर भरम की, फरद तले ले डारे। निहचे एक श्रसल में राखे, टरें न कबहूँ टारें। किर श्रवारजा प्रेम प्रीति की, श्रसत तहाँ खितयावे। दूजे करज दूरि किर देयत, नेंकु न तामें श्रावे—२-१४२।

खितयौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खितयाना] (१) आय-व्यय का खाता। (२) खितयाने की क्रिया। (३) जगान आदि जिखने का कागज।

खत्ता—संज्ञा पुं. [सं. खात] (१) श्रन्न रखने का गड्ढा। (२) प्रांत, स्थान।

खत्म—ित. [हिं. खतम] समाप्त, जो चुक गया हो। खत्रवट, खत्रवाट—संशा स्त्री. [सं. चत्री+वट (प्रत्य.)] वीरता।

खद्ग — संज्ञा पुं. [फा.] वाण, तीर। संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुगनू। (२) सूर्य।

खदखदाना, खदबदाना — कि. श्र. [श्रन.] किसी चीज को इतना उबालना कि 'खदबद' शब्द होने लगे।

खद्रा - संज्ञा पुं. [हिं. खता] (१) गड्ढा। (२) बछड़ा। वि.—[सं. जुद्र] बेकाम चीज, रही।

खदान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना या खान] खान जिसमें से खनिज पदार्थ निकलते हैं।

खिर्-संज्ञा पुं. [सं.] (१) कतथा । (२) चंद्रमा। (३) इंद्र।

खदुका—संशा पुं. [सं. खादक] (१)ऋणी। (२) ऋण लेकर व्यापार करनेवाला।

खदेदना, खदेरना — कि. स. [हिं. खेदना] भगाना, दूर हटाना।

खदड़, खदर — संज्ञा पुं. [देश.] हाथ से काते सूत का हाथ से बुना कपड़ा।

खद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुगन्ँ। (२) सूर्य। खद्योतक—संज्ञा पुं. [सं॰] (१) सूर्य। (२) विषेले फल का एक वृत्त।

खत—संज्ञा पुं. [सं. च्ला] (१) च्ला, पल भर का समय, लमहा। उ.—खन भीतर, खन बाहिर श्रावति, खन श्राँगन इहिं भाँति—५४०। (२) समय। (३) तत्काल। उ.—खन गोपी के पाँइँ परे धन सोई है नेम—३४४३।

कि. वि.—तुरंत।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] मंजिल, तल्ला, मरातित्र। संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक वृद्य। (२) एक कपड़ा।

खनक—संज्ञा स्त्री. [खन से अनु.] खनखनाहट।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) चूहा। (२) चोर जो सेंध
खगाये। (३) खोदनेवाला। (४) भूतत्व।

खनकना—िक. श्र. [श्रनु.] खनखन शब्द होना। खनकाना—िक. स. [श्रनु.] खनखन शब्द करना। खनखनाना—िक. श्र. [श्रनु.] खनखन शब्द करना। खनन—संशा पुं. [हिं. खनना] खोदने का कार्य। खननहारा—िव. [हिं. खनना + हारा] खोदनेवाला। खनना—िक. स. [सं. खनन] (१) खोदना। (२) (खेत श्रादि) गोड़ना।

खनवाना—िक. स. [हिं. खनाना] खुदवाना। खनहन — वि. [सं. चीण+हीन] (१) निर्वेख। (२) निर्दोष, सुन्दर।

खनाना — कि. स. [हिं. खनना] खनने को प्रेरित करना, खदवाना।

खनावत—िक. स. [हिं. खनना] खोदते हैं, खोदकर, खोदने (से)। उ.—वे हरि रतन रूप सागर के क्यों पाइए खनावत घूरे (धूरे)—३०४२।

खनावे—िक. स. [हिं. 'खनना' का प्रे.] खोदवाता है।

उ.—(क) परम गंग को छाँ डि पियामो दुरमित कूप
खनावे—१-१६८। (ख) बसत सुरसरी तीर मंदमित कूप
कुप खनावे—२-६।

खिन—िक. स. [हिं. खनना] खोदकर। उ.—(क) कूप खिन कह जाइ रे नर, जरत भवन खुकाइ। सूर हरि को भजन करि ले. जनम-मरन नमाइ—१-३१५। भरत भवन खिन कूप सूर त्यों मदन ऋगिनि दिहि जैहै—२०३४।

खितज—वि. [सं.] खान से खोदकर निकाला हुआ। खित्याना—िक. स. [हिं. खनना] खाली करना। खनोना—िक. स. [हिं. खनना] खोदना, कुरेदना। खनोवित—िक. स. [हिं. खनना] खोदनी है। उ.— द्रुम साखा अवलंब बेलि गहि नख सों भूमि खनोवित—१८००।

खपची — संज्ञा स्त्री. [तु. कमची] बाँस की पतली तीली। खपड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खपरि, पा. खपट]। (१) खपड़ेल में लगाये जानेवले मिट्टी के पके हुए दुकड़े।

(२) भिखमंगों का खपर। (३) ठीकरा। संज्ञा पुं. [सं. चुरपत्र] चौड़े फल का तीर। खपड़ेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपरैल] खपड़ों से छायी हुई छत।

खपत — संज्ञा स्त्री. [हिं. खपना] (१) समाई, गुंजाइश। (२) माल की बिकी।

कि. श्र.— खपता है, काम में श्राता है। खपना — कि. श्र. [सं. च्लेपण] (१) काम में श्राना, ब्यय

खपना—। क. श्र. [स. चपण] (१) काम म श्राना, व्यय होना। (२) निभ जाना। (३) नष्ट होना। (४) तंग हो जाना।

खपर—संज्ञा पुं. [हिं. खपड़ा] खप्पर, दूटा हुआ पात्र जो भिलारियों के पास रहता है। उ.—गोपाल हिं पानों घों किहिं देस। संगी मुद्रा कनक खपर करिहों जोगिन मेष —२७५४।

खपरेल - संज्ञा स्त्री. [हिं. खपड़ा] खपड़े से छायी छ।जन या छत ।

खपाना — क्रि. स. [सं. चेपण] (१) काम में लगाना। (२) निभाना। (३) स्वारथ करना, समाप्त करना। (४) तंग करना।

खपायी — िक. स. भूत. [हिं. खपाना] नष्ट कर री। उ. — मैना मैधनायक रितु पावस बान बुष्टि करि सैन खपायो।

खपुत्रा—वि. [हिं खपना = नष्ट होना] कायर, डरपोंक।

खार-संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुपारी का पेड़ । (२) बघनस्वा।

खपुष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राकाशकुसुम। (२) श्रसंभव बात।

खप्पड़, खप्पर—संज्ञा पुं. [सं. खप्र] मिट्टी का चौड़ा पात्र जो भिखारियों के पास रहता है। उ.—हृद्य सींगी टेर मुरली नैन खप्पर हाथ—३१२६। खफगी—संज्ञा स्त्रो. [हिं. खफा] न राजगी, कोघ। खफा—वि. [ग्र. खफा] (१) अप्रसन्त । (२) कृद्घ। खफि—वि. [ग्र. खफीफ] (१) थेड़ा, कम । (२) सामान्य। (३) खजित।

खबर—संज्ञा स्त्री. [त्रा. ख़बर] (१) समाचार।
मुहा.— खबर उड़ना (फैलना)—चर्चा होना।
खबर लेना—(१) समाचार जानना। (२) ध्यान
देना, दया दिखाना। (३) दंड देना।

(२) सूचना, जानकारी । (३) संदेश । (४) पता, खोज। (४) सुध, चेत।

खबरगीरी —संज्ञा स्त्री. [फा. ख़बरगीरी] (१) देखभाल। (२) दया, सहायता।

खनरदार—वि. [फ़ा ख़नरदार] होशियार, सावधान। खनरदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा ख़नरदारी] होशियारी, सावधानी।

खबिर—संज्ञा स्त्री. [त्रा. ख़बर] (१) समाचार, वृत्तांत ।

3.—(क) किथों सूर कोई ब्रज पठयो, त्राजु खबिर कै
पावत हैं—२६४६ । (ख) द्वारावित पैठत हिर सों
सब लोगन खबिर जनाई—१० उ.—२७ । २)
सूचना, ज्ञान, जानकारी । उ.—(क) क्यों जू खबिर
कही यह कीन्हीं करत परस्पर ख्याल —२४२७ ।
(ख) कृदि परथौ चिद्ध कदम तें खबिर न करी सबेर—
प्रद्ध । (३) संदेश, सँदेसा। उ.—ज्ञान बुक्ताइ खबिर
दे त्रावहु एक पंथ द्वे काज—२६२५ । (४) चेत,
सुधि, संज्ञा । (४) पता, खोज । उ.—त्रपने कुल की
खबिर करी धौं सकुच नहीं जिय त्रावित—११७४ ।
मुहा.—खबिर करि—ध्यान देकर, खबरदारी से

पता लगाकर, समभ-बूभकर। अपनी बात खबरिकरि देखहु न्हात जमुन के तीर—११४०।

खबरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खबर] समाचार, वृत्तांत। खबरी—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़बरी] समाचार लाने या ले जानेवाला, दूत।

खबीस—संज्ञा पुं. [त्रा. ख़बीस] दुष्ट, भगंकर। ख़ब्त—संज्ञा पुं. [त्रा. ख़ब्त] सनक, भक। खब्ती—वि. [हिं. खब्त] सनकी, भकी। खब्भड़—वि. [हिं. खाबड़] दुबला, जिसके हिंडुयाँ निकली हों।

खभरना — िक. स. [हिं. भरना] (१) मिलाना, (एक वस्तु में दूपरी का) मेल करना। (२) उथल-पुथल करना।

खभार—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] (१) चिंता। (२) दुख। (३) न्याकुलता।

खभारे—संज्ञा पुं. [हिं. खँमार] श्रंदेशा, चिंता। उ.—
कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरें, पुनि पुनि सोचित परी
खभारे। सूर स्थाम यह कहत जननिसों, रहि री मा
धीरज उर धारे—५६५।

खम—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़म] (१) दोष, ठेढ़ापन।
मुहा० —खम खाना—(१) दब जाना। (२)
हारना। खम ठोकना (बजना) (१) ताल ठोककर
लड़ने को ललकारना। (२) दढ़ होना।

(२) गाते समय स्वर में लोच लाने के लिए लिया जानेवाला विश्वःम।

खमकना—कि. श्र. [श्रनु०] खमखम शब्द होना। खमदार—वि [हिं. खम+दार] देदा। खमा—संज्ञा स्त्री. [सं. च्नमा] चमा, दया। खमीर—संज्ञा पुं. [श्र. खमीर] (१) गीले श्राटे का सड़ाव। (२) सड़ा कर तैयार किया हुआ पदार्थ। (३) स्त्रभाव।

खमीरा—वि. [त्र. खमीरा] जिसमें खमीर मिला हो। खय—संज्ञा स्त्री. [त्र.] (१) गवन। (२) चोरी। खया—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] भुजमूल, दंड। खयानत—संज्ञा स्त्री. [त्र. खयानत] धरोहर का कुछ भाग दबा लेना।

ख़ियाल — संज्ञा पुं. [हि. ख़याल] (१) ध्यान, (२) याद। खरग — संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] तलवार। (३) विचार।

खयाली — वि. [हिं. ख्याल] कल्पित, फर्जी। ति. [हिं. खेल] कौतुकी, खिलाड़ी।

खये—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, हिं. खया] भुजमूल । उ.— श्रंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये - Po 3.- Po 9 |

खर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गधा। (२) रावण का भाई जिसे राम ने मारा था। (३) घास, तृरा। वि.— (१) कड़ा। (२) तेज, तीच्या। (३) तेज 😕 धार का । (४) हानिकारी। (४) ग्राड़ा, तिरछा। संज्ञा पुं. [हं. खरा] खरापन, खराई। संज्ञा पुं. [सं खर = तेज] कड़ा, करारा।

ख्वरक—संज्ञा पुं. [सं खड़क = स्थागा] (१) पशुत्रों के रखने का बाड़ा जो प्रायः श्राड़ी-सीधी बल्लियाँ खंभे गाड़कर तैयार किया जाता है। (२) चराई कास्थान। संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक (श्रनु.)] (१) खटका, खट-कने का भाव। (२) भय, श्राशंका। (३) पीड़ा। उ.—हाहा चल प्यारा तेरो प्यारो चौंकि चौंकि परे पातकी खरक पिय हिय में खरक रही- २२३६।

कि. श्र. [हिं. खटकना] रह रह कर पीड़ा होना। खरकना—िक. श्र. [हिं, खर] (१) फाँस चुभने का दर्द होना। (३) चल देना, भाग जाना, सरक जाना। कि. श्र. [हिं. खड़कना (श्रनू.)] खड़खड़ शब्द करना।

खरका-संज्ञा पुं. [हिं, खर] तिनका। संज्ञा पुं. [हिं. खरक] (१) पशुत्रों का बाड़ा। (२) चराई का स्थान।

खरको, खरको—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक (श्रनु.)] खटका, 'खटकने' का भाव। उ. ननदी तौन दिए बिनु गारी नैकहु रहति सासु सपनेहू में आनि गोउति काननि में लए रहे मेरे पाँइन को खरकौ - १४९२।

खरखशा - संज्ञा पुं. [फ्रा. खरख़शा] (१) मगइा, बखेड़ा, मंभट। (२) भय, डर।

खरखोकी—संज्ञा स्त्री [हं. खर = घास-फूस + खाना] घास-फूल भत्तग् करनेवाली अगिन।

खरगोश —संज्ञा पुं. फा.] खरहा। खरच—संज्ञा पुं. श्रि. खर्ज, हिं. खर्चे व्यय, दाम।

उ.—सूरदास कञ्ज खरच न लागत, राम नाम मुख

लेत - १-२६६ ।

खरचना-- कि. स. [फा. ख़र्चे] (१) खर्च करना। (२) उपयोग में लाना।

खरचा — संज्ञा पुं. [हिं. खर्ना] खर्च, व्यय । खरचि - कि. स. [हिं. खरचना] व्यय करना, खर्च करना। उ.—खाइ न सके, खरचि नहिं जाने, ज्यों भुवंग-सिर रहत मनी--१-३६।

खरवियत्-क्रि. स. [हिं. खरचना] व्यय करना, खर-चना। उ.—यामें कळू खरचियतु नाही हपनो मतो न दीजै-२६७२।

खरचें-कि. स. [हिं. खरचना] व्यय करता है। उ.-खरचै लाख, लिखें नहिं एक - ४-१३।

खरतर--वि. [हिं. खर+तर (प्रत्य.)] (१) बहुत तेज। (२) व्यवहार का खरा और सच्चा।

खरतल-वि. [हिं. खरा] (१) स्पष्ट बात करनेवाला ।

(२) शुद्ध हृदयवाला । (३) प्रचंड, उग्र । खरत्त्र्या - संशा पुं. [हिं. खर + बथु श्रा] एक घास। खरदूषरा, खरदूषन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खर और दूषरा नामक दो राज्ञस जो रावण के भाई थे। (२) धत्रा।

वि.— जिसमें अनेक दोष हों। खरधार—संज्ञा पुं. [सं] तेज धारवाला। खरब - संज्ञा पुं. [सं. खर्व] संख्या का बारहवाँ स्थान, सौ अरब की संख्या।

खरवूजा—संशा पुं. [फ़ा. खर्पज:] एक फला। खरभर—संशा पुं. [अनु.] (१) हलचल, गड़बड़। उ.— (क) तब मैं डरिप कियों छोटो तनु, पैठ्यों उदर-मँभारि। खरभर परी, दियौ उन पैंडों, जीती पहिली रारि— ६ १०४। (ख) कटक ग्रिगिनित जुरचौ, लंक खरभर परची, सूर को तेज धर-धूरि ढाँप्यो— ६-१० ६। (२) शोर, गुल - गपाड़ा।

खरभरना - कि. श्र. [हिं. खरभर] (१) चुब्ध होना। (२) घबराना ।

खरभराना-कि. स. [हिं. खरभर] (३) शोर करना।

(२) गड़बड़ मचाना। (३) ब्याकुल करना।

खरभरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरभर] (१) हलचल। (२) शोर-गुल।

खरभरगी—िक. त्र. भूत. [हिं. खरभर] चंचल या व्याकुल होकर खरभराने लगा। उ.—तन जलनिधि खरभरयो त्रास गहि, जंतु उठे त्र्यकुलाइ—१-१२१। खरमंडल—संज्ञा पुं. [हिं. खड़मंडल] ग्रन्थवस्था, गड़बड़ी।

वि.— (१) उत्तरा-पुत्तरा। (२) नष्ट-अष्ट।
खरमस्ती—संज्ञा स्त्री, [फा.] भदी हँसी, पाजीपन।
खरमास—संज्ञा पुं. [सं.] पूस-चैत मास जिसमें शुभ
कार्य करना मना है।

खरमिटात्र — संज्ञा पुं. [हं. जल+पान] जलपान। खरल — संज्ञा पुं. [सं. खल] पत्थर या लोहे का गोल या लंबोतरा पात्र जिसमें डालकर श्रोषधियाँ कूटी जाती हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं. [हि. खर+मास] पूस-चैत मास जिनमें शुभ कार्य वर्जित हैं।

खरसा—संज्ञा पुं [सं. षड्स] एक खाद्य पदार्थ। संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मञ्जी।

संज्ञा पुं. [दश.] (१) गरमो के दिन। (२) अकाल।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ारिश] खुनजी, खाज।
खरमान — संज्ञा स्त्रो. [हिं. खर + सान] एक प्रकार की
तीचण सान जिस पर तीर, तलवार ग्रादि की धार
तेज की जाती है। उ. — फलमलात रित रैनि जनावत ग्राति रस मत्त भ्रमत ग्रानियारे। मानहु सकल
जगत जीतन को कामबान खरसान वारो – २१३२।

खरहर-संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़। खरहरना-कि. अ. [हिं. खर=तिन का + हरना] काडू देना।

खरहरा—संज्ञा पुं. [हिं. खरहरना] (१) डठलों का माडू। (२) पशुत्रों का ब्रुश।

ख्रहरी—संशास्त्री [देश.] एक मेवा।

खरांशु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

नि, — तेज किरणोंवाला।

खरा—वि. [सं. खर = तीवण] (१)तेज। (२) विशुद्ध, विना मिलावट का।

सहा,—खरा खोटा—भला-बुरा। जी खरा खोटा होना— नियत बुरी हो जाना।

(३) छल- कपट रहित, सच्चा।

मुह!.—खरा खेल—सच्चा व्यवहार।

(४) नकद और उचित (मूल्य या वेतन)।

सुहा,—रुपया खरा होना—रुपया मिलने की बात पक्की हो जाना।

(१) स्पष्ट और निष्पत्त बात कहनेवाला। (६) स्पष्ट और सच्ची बात जो सुनने में चाहे कितनी ही अदिय लगे।

मुहा.—खरी सुनाना—सच्ची सच्ची बातें कहना पर यह ध्यान न देना कि ये भली लगेंगी या बुरी।

(७) बहुत, ज्यादा।

खराई—संज्ञा स्त्री. [हिं खरा + ई (प्रत्य.)] 'खरा' होने का भाव, खरापन।

खराऊँ — संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ाऊ] खड़ाऊँ । उ.— एक ग्रॅंचेरो हिये को फूटी दौरत पहिरि खराऊँ — ३४६६ ।

खराद — संज्ञा पुं. [ऋ. खरीत, फा. खरीद] एक श्रोजार जिस पर चढ़ाकर लकड़ी, धातु श्रादि की वस्तुएँ सुडौल, चिकनी श्रीर चमकीली की जाती हैं। उ.— पालनौ ऋति सुंदर गढ़ ल्याउ रे बढ़ैया। सीतल चंदन कटा उ, धरि खराद रंग लाउ, विविध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया — १०-४१।

मुहा.—खराद पर चढ़ना (उतरना)—(१)
सुधर जाना। (२) व्यवहार में कुशल होना। खराद
पर चढ़ाना (उतारना)—सुधारना, ठीक करना।
संज्ञा स्त्री.—(१) खरादने की किया या भाव।

बनावट, गढ़न।

खरादना — कि. स. [हिं. खराद] (१) खराद के सहारे किसी वस्तु को चिकना या सुडोल करना। (२) सुडोल करना।

खरापन—संज्ञा पुं. [हिं. खरा + पन] (१) खरा या शुद्ध होने का भाव। (२) सच्चाई। (३) उन्मत्त हो जाने का भाव। खराय—वि. [ग्र. खराव] (१) खुरा, हीन, जिसकी दशा बिगड़ जाय। (३) जो पतित हो।

खराबी—पंज्ञास्त्री. [फ़ा०] (१) बुराई, दोष। (२) बुरी दशा।

खरायँ६—पंज्ञा स्त्री. [सं. चार + गंध] चार की-सी हुर्गन्ध।

खरारि, खरारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खर दैत्य को मारनेवाले श्री रामचन्द्र। (२) विष्णु। (३) कृष्ण।

(४) धेनुकासुर को मारनेवाले बलराम। खराश—संज्ञा स्त्री. [फ्रा. ख़राश] खरोंच, छिलना। खरिक—संज्ञा पुं. [देश.] ऊल जो खरीफ के बाद बोई जाय।

संज्ञा पुं. [सं. खड़क = स्थाण, हिं, खरक]
पशुत्रों के चरने या रहने का स्थान, बाड़ा। उ.—
श्रहो सुक्त श्रीदामा भैया त्यावहु जाय खरिक के नेरे।
संज्ञा पुं. [सं. चारका, हिं. खारक] छोहारा
नामक मेवा। उ.—खरिक दाख श्रह गरो चिरारी।
पंड बदाम छेहु बनवारी—३६६।

खरिकी—संज्ञा पुं. [सं. खड़क=स्थाणु, हिं. खरक]
पशुश्रों के रहने या चरने का स्थान। उ.—जो
सुख मुनिगन ध्यान न पावत, सो सुख करत नंदसुत
खरिकी—१०-१८१।

खरिकिनि—संज्ञा पुं. बहु. [देश.] गैयों के रहने का स्थान। उ.—रॉमित गौ खरिकिन मैं, बछरा हित धर्ड—१०-२०२।

खिरिया—संशा स्त्री. [हिं. खर+इया (प्रत्य.)] (१) पतली रस्सी की जाली जिसमें घास, भूसा जैसी चीजें बाँधते हैं। (२) भोली।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया। संज्ञा स्त्री. [हिं खार = राख] कंडे की राख। वि.—चोखी।

खरियाना—कि. स. [हिं. खरिया = भोली] (१) भोला या थैली में भरना । (२) छीन लेना। (३) थैली से गिराना।

खरिहान—संज्ञा पुं. [स. एल + स्थान] खेत के पास का स्थान जहाँ फसल काटकर रखी और माड़ी जाती है।

उ.—मौंडि मौंडि खरिहान कोध की, पोता-भजन भरावे—१-१४२।

खरी—िव. स्त्री. [सं. खड़क = खम्भा, धूनी; हिं. पु. खड़ा] खड़ी, खड़ी खड़ी। उ.—(क) आनँद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपात खिलावे—१०-१३०। (ख) माखन दिध हरि खात प्रेम सौं निरखति नारि खरी—११७७।

वि. स्त्री. [सं खर = तीच्रण, हिं. पुं. खरा] (१)
तेज, तीखी, तीव स्वर की । उ.—त्राहि त्राहि द्रोपदी
पुकारी, गई वैकुंठ अवाज खरी—१-२४६ । (२)
अच्छी, थिय, कल्याणकारिणी । उ.—इक बदन
उघारि निहारि देहिं असीस खरी—१०-२४ । (३)
पूर्ण, बिलकुल, बहुत अधिक । उ.—(क) मैं जु
रह्यों राजीवनैन दुरि पाप-पहार-दरी । पावहु मोहिं
कहां तारन कीं, गूढ़-गँभीर खरी—१-१३० । (ख) प्रभु
जागे अर्जुन तन चितयो, कब आये तुम कुसल खरी
—१-२६८ । (ग) ठाढ़ीं जल माहिं गुसाई खरी
जुड़ाई नीर की—३३०३ । (४) विशुद्ध, बिना मिलावट
की । (४) छल कपट रहित, सची । उ.—कपट हेतु
कियो हिर हमसे खोटे होहि खरी—२७४१ ।

संशा स्त्री. [हिं. खिंडिया] खिंडिया। (क) जैसे खरी कपूर दो उप क सम यह भई ऐसी संधि— २६१२। (ख) सब विधि बानि ठानि करि राख्यौ खरी कपूर को रेहु—३०४०।

संशा स्त्री. [हिं. खली] सरसों इत्यादि की खली जो पशुत्रों को खिलायी जाती है।

खरीक—संज्ञा पुं. [हं. खर] तिनका। खरीता—संज्ञा पुं. [ग्र.] (१) थें जी। (२) जेंब। खरीद—संज्ञा स्त्री. [फा, खरीद] (१) मोल लेना। (२) मोल ली हुई चीज।

खरीदना – कि. स. [हिं. खरीद] मोल लेना। खरीदार — संज्ञा पु. [हिं. खरीद] (१) मोल लेने वाला। (२) चाहनेवाला।

खरीदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरीद] मोल लेने की किया।

खरोफ—संज्ञा स्त्री, [त्र्या, ख़रीफ़] श्रसाद से श्राधे

अगहन के बीच में कटनेवाली फसल जिसमें धान, बाजरा, उर्द, मूँग आदि होते हैं।

खरु—संज्ञा पुं. [सं. खर] गधा। उ.—कामधेनु खरु लोइ कात अमृत उपजावै—१० उ. ⊏।

खरे — वि. [हिं. खरा] (१) बहुत अधिक, ज्यादा। उ.—
ऐसी अंघ, अधम, अबिबेकी, खोटनि करत खरे—
१-१६८। (२) ऐठने या रूठनेवाले, जिद पकड़ लेनेवाले।
उ.—पठवति हों मन तिन्हें मनावन निषि दिन रहत
अरे री। ज्यों ज्यों मान करति उत्तटावन त्यों त्यों होत
खरे री—१४४२ (३) तीखे, श्वीच्या, तेज । उ.—
लागो या बदन की बलाई। खंजन तेरे खरे कटाव्यनि
न्याउ गुपाल विकाई—२२२७।

वि. [हिं. खड़ा] खड़े, उपस्थित। उ.—(क)
स्रदास मगवन्त मजन बिनु जम के दूत खरे हैं द्वार—
२-३। (ब) त्रत्स मयौ अपराव आपु लिख, अस्तुति
करत खरे—४८३।

खरेई—िकि. वि. [हिं. खरा + हे] (प्रत्य.) (१) सचमुच, वस्तुत:। (२) बहुत, अत्यन्त। उ. - स्रदास अब धाम दोइरी चिंह न सकत हरि खरेई अमान।

खरो—वि. [सं. खर = तीदण] बहुत श्रधिक, ज्यादा। उ.—बालविनोद खरो जिय भावत—१०-१०२।

खरोंच, खरोंट—संशास्त्री. [सं. तुरण] शरीर के किसी भाग के छिलना कः हलका चिन्ह।

खरोंचना, खरोंटना —िकि. स. [हिं. खरोंच] खुरचना, छीलना।

खरोई—कि. बि. [हिं. खरा + हैं (प्रत्य.)] सचमुच, वस्तुत:।

खरोष्ट्री, खरोष्टी—संशा स्त्री. [सं.] एक लिपि जो भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर अशोक के समय में प्रचित्त थी।

खरोंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरोच] नख या खरोंच लगने से छिलने का हलका चिन्ह।

खरौटना—िक. स. [हिं. खरोच, खनौट] खरोचना। खरौहा—िव. [हिं. खारा + श्रौहा] कुछ कुछ खारा या नमकीन।

खरौ—िव. [सं. खर = तीच्ण, हिं. खरा] (१) विशुद्ध, बिना मिलावट का, 'खोट।' का उलटा । उ.— इक

लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो । सो दुविधा पारस निहं जानत, कंचन करत खरो—१-२२०। (२) बहुत अधिक । उ.—कारो कहि नहि तोहिं खिभावत, बरजत खरो अनेरो—१०-२१६।

वि. [हि. खड़ा] खड़ा, खड़ा हुआ। उ.—भरत पंथ पर देख्यो खरौ—५-४०।

खर्ग—संज्ञा पुं. [हिं. खड्ग] तलवार।

खर्च—संज्ञा पुं. [अ. खर्ज, खर्च] (१) व्यय, काम में लगना। उ.—कहा भयी मेरो गृह माटी को। हों तो गयो हुतो गुगलहिं मेंटन और खर्च तंदुल गाँठी को —१० उ.-७१।

मुहा.—खर्च उठाना — खर्च करना । खर्च निर्वाह करना।

(२) धन जिसे व्यय करके काम चलाया जाय।
खर्चना—िक. स. [हिं. खर्च] व्यय करना।
खर्चीला—िव. [हिं. खर्च] बहुत खर्चनेवाला।
खर्पर—संशा पुं. [सं.] (१) तसले की तरह का भिचा-पात्र। (२) काली देवी का पात्र जिसमें वे रुधिर पान करती हैं।

खर्ब —िव. [सं. खर्व] (१) जिसका श्रंग भंग हो। (२) छोटा, जा छु। (३) वामन, बौना।
संज्ञा पुं.—(१) सौ श्राव की संख्या। (२) नौ
निधियों में एक।

खरी—संशा पुं. [त्रानु.] (१) लंबा कागज जिस पर बहुत विस्तार से लेख लिखा जा सके।

खरोट—िव: [हिं. खुरीट] (१) होशियार, श्रनुभवी। (२) वृद्ध।

खरीटा — संज्ञा पुं. [अनु.] सोते समय नाक से होनेवाला खर खर का शब्द।

खरघो — वि. [सं. खर = तीद्रण, हिं. खरा] (१) बहुत, श्रिधक, खूब। उ.—यहि श्रन्तर यमुना तट श्राए स्नान दान कियो खरघो — २५५२।

खर्ब — वि. [सं.] (१) श्रपूर्ण श्रंगका। (२) छोटा, लघु। (३) वामन, बौना। संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौ श्ररव की संख्या, खरब। (२) नौ निधियों में एक।

खल-वि. [सं.] (१) अधम, दुष्ट, दुर्जन, पापी। (१) स्थान जहाँ फसल रखी श्रोर माँड़ी जाय। (२) घोखा देनेवाला। (३) कर।

बाद्ल ।

खल भई लोक लाज कुल कानी।

संज्ञा पुं. िसं. खत = खरत । पत्थर का दुकड़ा। उ.—इहै मान यह स्र महा सठ हरि नग वदिल संज्ञा पुं. [सं. खालेन्] महादेव। महा खल श्रानत।

खलई — संज्ञा स्त्री. [हिं. खत + ई (प्रत्य.)] दुण्टता। खलक—संज्ञा पुं. श्र. ख़लक े (१) प्राणी। (२) संसार ।

खलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुष्टता, नीचता। खलना—िक. श्र. [सं. खर = ती दण] बुरा लगना। कि. स. िहिं. खल या खर**ल**] (१) खरल में कूटना। (२) नाश करना, पीसना।

खलबल — संशा स्त्री. [अनु.] (१) हलचल। (२) शोर। (३) कुलबुलाहट।

खलबलाना — कि. श्र. [हिं. खतवल] (१) खोलाना।

(२) हिलना-डोलना। (३) विचलित हो जाना। खलबली—संज्ञा स्त्री. [हि. खलबल] (१) हलचल । - (२) घबड़ाहट।

खलल-संज्ञा पुं. [श्र. ख़लल] बाधा, रकावट। खलाइत—संज्ञा स्त्री. [हि. खाल + इत (पत्य.)] धौंकनी।

खलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खल + ई(प्रत्य.)] दुष्टता । खलाना-कि. स. [हिं. खाली] (१) खाली करना।

(२) गड्ढा बनाना। (३) घँसाना, दबाना, पचाना। ख्नार—वि. [हिं. खाली] नीचा, गहरा। खलास—वि. [श्र.] (१) मुक्त, स्वतंत्र । (२) समाप्त ।

ं (३) गिरा हुआ। खलासी — संज्ञा स्त्री. [हि. खलास] मुक्ति, छुटकारा। खलित — वि. [सं. खलित] (१) चलायमान, चंचल, डिगा हुआ। उ.—डोलत महि अधीर भयौ फनिपति

क्रम अति अकुलान । दिग्गज चिलत, खिलत मुनि श्रासन, इंद्रादिक भय मान—६-२६। (२) पतित। खिलयान, खिलहान - संज्ञा पुं. [सं. खल + स्थान] (२) ढेर, राशि।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) पृथ्वी। (३) खिलयाना—िक. स. [हिं. खाल] खाल अलग करनाः। कि. स. [हिं. खाली] खाली करना।

मुहा.—खल भई —िपस गयी, चूर चूर हुई। उ.— खली—संज्ञा स्त्री. [सं. खिल] तेलहन की सीठी या फोकट ।

वि. [हिं. खलना] जी बुरी जगे।

खलीज—संशा स्त्री. [अ.] खाड़ी, उपसागर। खलीता—संज्ञा पुं. [हिं. खरीता] (१) थैली । जेव । खलीफा—संज्ञा पुं. श्रि. ख़लीफा] (२) अधिकारी। (२) खानसामा । (३) न ई ।

खलु—िकि. वि. [सं.] (१) प्रार्थना । (२) निषेध। (३) निश्चय, अवश्य।

खलेल—संशा पुं. [हिं. खली + तेल] फुलेल में मिला हुआ खली जैसे पदार्थी का वह अंश जो छानने पर निकलता है।

खल्ल-संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमड़ा। (२) चातक। (३) खरत ।

खल्लड़—संज्ञा पु. [सं. खल्ल] (१) चमड़े की मशक्र ् (२) खरल। (३) वह चृद्ध जिसका चमङाः सूल गया हो।

खल्व — संज्ञा पुं, [सं.] एक रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

खल्वाट — संज्ञा पूं. [सं.] एक रोग । जस में सिर के बाल गिर जाते हैं।

वि.—गंजा, जिसके सिर के बाल गिर गये हों। खव(--संज्ञा पुं. [सं. स्कंघ] कंघा।

खवाइ-- कि. स. [हिं. खिलाना] खिलाकर । उ.--संग खाइ खवाइ अपने सोच तो इतनो दियो-३२६०। खवाई—कि. स. [हिं. खाना, खवाना] खिलाने पर, खिलाने के पश्चात । उ.—पोषै ताहि पुत्र की नाई । खाहि स्राप तब, ताहि खवाई--५-३।

खनाए-कि. स. [हिं. खिलाना] खिलाया, खिला दिये। उ.—नैन देखि चक्कत भई क्यों पान खावाए -- २७३६ ।

खवाना - कि. स. [हि. खाना] खिलाना।

खवायों—क्रि. स. [हि. खाना, खिलाना] खिखाया, खाने में खगाया। उ.—माखन खाइ, खवायों ग्वालिन, जो उबरयों सो दियो लुढ़ाइ—१०-३०३। खवारा—वि. [हि. खराव] (१) खोटा, खरा। (२)

श्रनुचित।

खवावत—कि. स. [हिं. खवाना] खिलाते हैं, भोजन कराते हैं। उ.—(क) कबहुँ चिते प्रतिबिंब खंभ मैं लौनी लिए खवावत—१०-११७। (ख) जाको राज-रोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४६।

खवात्रन - कि. स. [हिं. खाना, खिलाना] खिलाना, भोजन कराना। उ. — माखन माँगि लियो जसुमित सौं। माता सुनत तुरत ले आई, लगी खवात्रन रित सौं—१०-३१२।

खवान हु — कि. स. [हिं. खिताना] खिलाग्रो। उ. — कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक त्वनी ताहि खवाबहु — १०-१७६।

खतावे—कि. स. [हिं. खाना] खिलाता है, भोजन कराता है। उ.—कृपन, सम, नहिं खाइ खवावें, खाइ मारि के श्रीरे—१०-१८६।

खवावों - क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाऊँ, खाने को दूँ। उ.—तब तमोल रचि तुमहिं खवावों— १०-२११।

खवास—संज्ञा पुं. [अ. खवास] (१) राजाओं-रईसों का खिदमतगार। उ.—मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—१-१४१। (२) राजसेवक। उ.—कि खावास को सैन दै सिरपाँव मँगायो—२४७६। (३) नाई (४) मंत्री।

खवासी — संशा स्त्री. [हिं. खवास + ई (प्रत्य.)] (१) खवास का काम। उ. — इंद्रादिक की कौन चलावें संकर करत खवासी — ३० ८६। (२) सेवा, चाकरी। (३) खवास के बैठने का स्थान।

खेबास्यों—संज्ञा पुं. [हिं. खवास] मंत्री । उ.— तुम हो निपट निकट के बासी सुनियत हुए खवास्यों।

खवैया— संज्ञा पुं. [हि. खाना + वैया (प्रत्य.)] खानेवाला। उ.—खाटी मही कहा रुचि मानो सूर खवैया घी को—३२५१।

खस—संशा पुं. [सं] (१) गढ़वाल प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) इस प्रदेश की एक प्राचीन जाति। संशा स्त्री. [फा. खस] गाँडर घास की जड़ जो बहुत सुगंधित होती है।

खसकंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खसकना + स्रांत] खिसकने की किया।

खसकना—िक. श्र. [हिं. खिसकना (श्रनु.)] (१) स्थान जरा सा हट जना। (२) चले जाना। खसकाना—िक. स. [हिं. खसकना] (१) सरकाना। (२) जाने को प्रेरित करना।

खसखस—संज्ञा स्त्री. [सं. खतखत] पोस्ते का दाना। खसखसा—वि. [यतु.] भुरभुरा।

वि. [हिं. खसखस] बहुत छोटा। खसखाना — संज्ञा पुं. [फ़ा. खम न खाना] खस की टहियों से घिरा स्थान।

खसखसी-संज्ञा पुं. [हिं. खसखस] पोस्ते के फूल का हल्का आसमानी रंग।

वि,—पोस्ते के फूल की तरह हल्के आसमानी रंग का।

खसत—िक. श्र. पुं. [हिं. खसना] खिसकते हैं, सरककर गिरते हैं। उ.—फूत खसत सिर ते भए न्यारे सुभग स्वाति-सुत मानो—ए० ३४६ (४३)।

खसित—िक. श्र. स्त्री. [हिं. खसना] खिसकती है, सरककर गिरती है। उ.—िवहँ सि बोले गोपाल सुनि री ब्रज की बाल उछंग लेत कत घरनि खसित —१८६।

खसना—कि, ग्र. [हिं. खितकना] (१) स्थान से हटना। (२) खिसक कर गिरना।

खसबो—संज्ञा स्त्री. [हं. खुशबू] सुगंध।
खसम-संज्ञा पुं. [त्र्य] (१) पति। उ.—(क) जियत खसम
किन भसम रमायो। (ख) गुष्त प्रीति तासौं करि
मोहन, जो है तेरी दैया। सरदास प्रभु भगरो सीख्यो,
ज्यों घर खसम गुसैयाँ—७३४। (२) स्वामी,
मालिक।

खसाना—िक. स. [हिं. खसना] नीचे गिरना। खसि—िक. श्र. [हिं. खसना] (१) स्खिति होकर। उ.—हद्र को बीर्य खिस के परघो घरनि पर, मोहिनी रूप हरि लिया दुराई— -१०। (२) खिसककर, निरकर। उ.— (क) खिस मुद्राविल चरन श्रम्भो गिरी धरिन बन्तीन — ३४५१। (ख) खिस खिस परत कान्ह किनयाँ तें सुसुकि सुसुकि मन खीभौ —१०-१६०।

खिंसया—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) त्रासाम की एक पहाड़ी। (२) इस पहाड़ी का समीपवर्ती प्रदेश।

वि, [ग्रा. ख़श्सी] (१) जिसके ग्रंडकोश निकाले गये हों, बिधया। (२) नपुंसक। (३) बक्स। खसी—संज्ञा पुं० [ग्रा. ख़श्सी] बकरा।

थि. [हिं. खितया] नपुंसक। खसीस वि. श्रि. ख़तीत] कंजूस।

खसु-- कि. त्र. [हिं. खसना] हटकर, खिसककर।

यों — खसु दीन्ह्यौ — हटा लिया, खिसका लिया। उ. — सूर स्थाम देख्यो ग्रहि ब्याकुत खस दीन्ह्यो, मेटे त्रय ताप—५५६।

खसे, खसे—कि, श्र. [हिं. खसना] (१) गिरे, खिसके। उ. "भूषन खसे सुरत बम दोऊ केसन श्रापु सँवारे —१०११ सार.।

महा.—वार न खसै — बाज बाँका न हो, जरा भी अनिष्ट न हो। उ. —न्हात बार न खसै इन को कुसल पहुँचै धाम —२५६५। केस खसै — अनिष्ट या अमंगज हो। उ. —जाकों मन मोहन अंग करें। ताकों केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै — १-३०।

(२) दूर हो जाय, समाप्त हो जाय। उ.—तन-मन-धन-जोबन खसै (रे) तऊ न माने हार— १-३२५।

खसो—िक. श्र. [हिं. खसना] खिसको, सरको, गिरो।
मुहा.—बार खसो—श्रनिष्ट हो, श्रमंगल हो।
उ.—हम दिन देत श्रसीस प्रात उठि बार खसो मत
न्हातें—३०२४।

खसोट — संज्ञा स्त्री. [हिं. खमोटना] (१) उखाइने-नोचने की किया। (२) छीनने की किया।

खसोटना—िक. स. [सं. कृष्ट] (१) उलाइना, नोचना। (२) वलपूर्वक छीनना। खस्ता — वि. [फा. ख़स्तः] बहुत मुलायम, जो जरा से दबाव से टूट जाय।

खस्यों —िक. श्र. भूत. [हिं. खसकना] श्रपने स्थान से हटा, खिसका, गिरा, नष्ट हुआ। उ.—(क) जैसें सुबहीं तन बद्यों, (रे) तैसें तन हिं श्रनंग। धूम बद्यों, लोचन खस्यों, (रे) सखा न स्भत श्रंग—१-३२५। (ख) जननी मधि, सनमुख सं कर्षन, खेंचत कान्ह खस्यों सिर-चीर—१०-१६१।

खाँखर — [हिं. खाँख] १) छेददार । (२) खोंखजा, पोला।

खाँग — संज्ञा पुं. [सं. खङ्ग, प्रा. खग्ग] (१) कृाँटा। (२) गेंडे के मुँह पर का सींग।

संज्ञ स्त्री [हिं. खँगना] कमी।
खाँगना—िक. ग्र. [सं. खंज, हिं. खोंडा] लँगड़ा।
कि. ग्र. [हिं. छीजना] कम होना।
कि. स.—छेदना।

खाँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खँगना] कमी, त्रुटि, घटी। खाँच — संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१) दो वस्तुश्रों के बीच की संधि। (२) खींचा हुआ निशान। (३) गठन।

खाँचना कि. स. [सं. कर्षण या कसन=खींचना, श्रांकत श्राया खचन=बैठाना] (१) चिह्न बनाना, श्रांकित करना। (२) खोंच खींच कर कसते हुए कोई वस्तु) बनाना। (३) जल्दी लिखना।

खाँचा — संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१) आबा। (२) बड़ा पिंजड़ा। (३) गड्ढा।

खाँची—िक. स. [हिं खाँचना] (१) खोचकर श्रंकित करके, चिह्नित है, खिची है। उ.—(क) सूरदास भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची—१९८। (ख) जाके हृदय जौन कहै मुख ते तौन कैसे हरि को न कहि लीक खाँची—१२८८।

मुहा०—कहति लीक में खाँची। लीक खींच कर कहती हूँ, प्रतिज्ञापूर्वक कहती हूँ जो कहती हूँ, वह सत्य है, श्रटल है। उ.—सूर स्याम तेरे वम राधा कहति लीक में खाँची-१४७५।

(२) लिखना, लिखकर।

संज्ञा स्त्री. [हि. खाँचा] छोटा भावा, डिलिया, खेंची।

खाँचै—िक. स. [हिं. खाँचना] ग्रंकित करता है, खींचता है, चिह्न बनाता है, विचलित करता है। उ.—सीत-उष्न, सुख-दुख निहं माने, हर्ष-सोक निहं खाँचै—१-८१।

खाँड़—संज्ञा स्त्री. [सं खंड] कची शकर। उ.—(क) रस ले ले त्रीटाइ करत गुर, डारि देत है खोई। फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तें खाँड़ न होई—१-६३। (ख) घेवर अति घिरत चभोरे। ले खाँड सरस रस बोरे—१०-१८३।

खाँड्ना—िक्र. स. [सं. खंड — टुकड़ा] चबाकर खाना। खाँडर—संज्ञा पुं. [सं. खंड] टुकड़ा, कतला। खांडन—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचान वन जिसे अर्जुन ने जलाया या और जिसके स्थान पर इंद्रप्रस्थ नगर बसाया गया था।

खांडिविक—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई । खाँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] (१) खड्ग। (२) खड्ग की तरह का एक अस्त्र।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] भाग, दुकड़ा।

खांडिक—संज्ञा पुं, [सं.] हलवाई।

खाँडोंगी—कि. स. [सं. खंड या खंडन, हिं. खाँडना] चबाऊँगी, (दाँत से) काटूँगी। उ.—मेरे इनके कोउ बीच परी जिनि श्रधर दसन खाँडोंगी—१५११।

खाँधना—िक. स. [सं. खादन] खाना। खाँधो—िक. स. [हं. खाँधना] खाया। उ.—नैन नासिका मुख नहीं चोरिदिध कौने खाँध्यो—१४४१। खाँपना—िक. स. [सं. च्लेपन, प्रा. खेपन] (१) खाँसना। (२) जड़ना।

खाँभ—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ, हिं. खंमा] खंभा।
संज्ञा पुं. [हिं. खाम] (१) तिफाफा। (२) थैली।
खाँभना—कि. स. [हिं. खाम] तिफाफे या थैली में
बंद करना।

खाँवाँ—संज्ञा पुं [सं. खं.] बहुत चौड़ी खाई। संज्ञा पुं. [देश०] एक पौधा।

खाँसना—क्रि. ग्र. [सं कासन, प्रा. खाँसन] कफ श्रादि निकालने के लिए वायु को सटके के साथ कंठ से बाहर निकालना।

खाँसी—संज्ञास्त्री. [सं. काश, कास] (१) खाँसने की किया। (२) खाँसने का रोग।

खाइ—कि. स. [हिं. खाना] (१) खा लेना, भोजन करना। उ.—(क) खाइ न सके, खरच नहिं जानें, ज्यों भुवंग-सिर रहत मनी—१-३६। (ख) प्रभु-वाहन डर भाजि बच्यो श्रहि, नातह लेतो खाइ—५७३।

मुहा.—धाइ धाइ खाइ—खाने दोड़ता है। उ.— भूमि मसान बिदित ए गोकुल मनहु धाइ धाइ खाइ—२७००।

(२) काटने से, डसे जाने से । उ.—मैया एक मन्त्र मोहिं त्रावै। विषहर खाइ मरे जो कोऊ मोसों मरन न पावै—७५६।

खाई—िक. स. [हिं. खाना] (१) भच्चण की, पेट में डाली। उ.—पाँची देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि ठगौरी खाई—१-१८७। (२) विषेल की हे (जैसे सपं) ने काट लिया, इस लिया। उ.—(क) ताकी माता खाई कारें। सो मिर गई साँप के मारें—७-६। (ख) गई मुरछाइ, परी धरनी पर मनों मुद्रांगम खाई—१०-५२। (ग) लागे हैं विसारे बान स्थाम बिनु जुंग जाम घायल ज्यों घूमें मनों विषहर खाई हैं—२००। संज्ञा स्त्री. [सं. खानि, प्रा. खाइँ] किले, महल श्रादि के चारों श्रोर रचा के उद्देश्य से खोदी गयी नहर। उ.—(क) लंका फिरि गई राम दुहाई। वस मस्तक मेरे बीस मुजा हैं सौ जोजन की खाई—६-१४०। ख) पिश्चम देस तीर सागर के कंचन कोट गोमती सी खाई—१०उ.-६२।

खाउँ—वि. [हिं. खाऊ] बहुत खानेवाला।

मुहा.—खाउँ खाउँ करें — खाने के लिए रिरियाता है। उ.—मचला, श्रलकैं-मूल, पातर, खाउँ
खाउँ करें भूखा—१ १८६।

खाऊँ - क्रि. स. [हिं. खाना] खा जाऊँ, भच्या कर लूँ। उ.—कही तो गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाहिं न राम— ६-१४८। खाऊ—िव. [हिं. खाना + ऊ (पत्य.)] (१) खूब खाने वाला। (२) दूसरे का धन हड़पनेवाला। (३) खूब रिश्वत लेनेवाला। (४) खूब उड़ाऊ।

खाए—िक. स. [हिं. खाना] 'खाना' का भूत०, बहु०, भोजन किये, भच्चण किये। उ.—पट कुचैल, दुर-बल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो) — १-७।

खाएँ — कि. स. सवि. [हिं. खाना] खाने से, खा लेने पर। उ.—सर मिटे श्रज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाएँ — ६-१३२।

खाक—संज्ञा स्त्री [फ़ा. ख़ाक] (१) धूल, गर्द, भस्म ।

मुहा.— खाक उड़ना – उजाड़ होना, नाश होना ।

खाक उड़ेहै—(१) खाक उड़ेगी, नाश होगा, उजाड़
हो जायगा। (२) धूल बनकर उड़ जायगा। उ.—

या देही कों गरब न करिये, स्यार काग गिध खैहें।

तीनिन में तन कृमि, कै बिष्ठा, कै ह्व खाक उड़ेहै—

१-८६ । खाक उड़ाना—(१) मारे मारे फिरना। (२)

(दूसरे की) हँसी उड़ाना। खाक करना—नाश कर
देना । खाक चाटना—खुशामद करना। खाक
छानना—(१) मारे मारे फिरना। (२) बहुत
द्वं दना। खाक डालना—(१) छिपाना। (२) भूल
जाना। खाक सिर पर डालना—रोना-पीटना। खाक
बरसना—बरबाद हो जाना। खाक में मिलना—
नाश होना।

(२) तुच्छ, साधारण। (३) जरा भी नहीं, नाम को भी नहीं।

खाकसार—वि. [फा. ख़ाकसार] (१) जो धूल में मिला हो। (२) तुच्छ, श्रकिंचन (नम्रतासूचक)। खाका—संज्ञा पुं [फ़ा. ख़ाक:] (१) नकशा, चित्र का

ढाँचा।

मुहा.—खाका उड़ाना—(१) नकल बनाना। (२) निंदा करन।।

(३) खर्च के अनुमान का ब्योरा। (४) कचा चिट्ठा। खाकी—िव. [फ़ा. ख़ाक़ी] (१) भूरा। (२) जो (भूमि) सिची न हो।

संज्ञा पुं [फ़ा. ख़ाक] साधु जो सारे शरीर में राख मलते हैं। खाख—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाक] धूल, मिट्टी, राख, भस्म। उ.—मृगमद मिलै कपूर कुमकुमा केसनि मलया खाक—३३२१।

खाखरा—संज्ञा पुं. [देश॰] एक बाजा।
खाग—संज्ञा पुं. [हिं. खाँग] चुभती है, गड़ती है।
उ.—नासा तिज्ञक प्रसून पदिशिपर चिबुक चाक चित
खाग। दाड़िम दसन मंदकति मुसकिन मोहत सुर
नर नाग— १३१४।

खागना—कि. श्र. [हिं. खाँग = काँटा] चुभना, गड़ना।

कि. श्र. [हिं. खाँगना] कम होना। खागी—कि. श्र. [हिं. खागना] चुभी, गड़ी। कि. श्र. — [हिं. खाँगना] घटी, कम हुई।

खाज—संज्ञा स्त्री. [सं. खजु] खुजली । उ.—पूरे चीर भीरु तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज । काढ़ि काढ़ि थाकको दुस्तासन, हाथिन उपजी खाज—१-२५४। मुहा०—कोढ़ की खाज—दुख या विपत्ति को अधिक बढ़ानेवाली वस्ता।

खाज — संज्ञा पुं. [सं. खाद्य, पा. खज्ज] (१) खाद्य पदार्थ। (२) मैदे की एक मिठाई। (३) एक पेड़।

खाजी—संशा स्त्री, [हिं. खाजा] (१) भच्य या खाद्य पदार्थ। उ.—बातें पै रहि रहित कहन की सब जग-जात काल की खाजी। (२) एक मिठाई।

मुहा०—खाजी खाना—मुँहकी खान, बुरी तरह

खामा—संज्ञा पुं. [हिं. खाजा] एक मिठाई जो बारीक मैदे की बनती है।

खाट—संज्ञा स्त्री. [सं. खट्वा) चारपाई, खटिया। यौ० —खाट खटोला—बोरिया - बँधना, कपड़ा-लत्ता।

मुहा०—खाट (पर) पड़ना—बीमार होना। खाट (से) लगना—खंबी बीमारी से बहुत दुबला हो जाना। खाट से उतारना—मरणकाल निकट आ जाना।

खाटा, खाटी—िव. स्त्री. [हिं. खट्टा] खट्टी। उ.—(क) सूर निरिख नँदरानि भ्रमित भई, कहित न मीठी खाटी—१०-२५४। (ख) आई उघरि प्रीति कलई सी

जैसी खाटी श्रामी—३०८०।

खाटे—वि. [हिं. खष्टा] खरे, तुर्श, श्रम्सा । उ.— भिल्लिनि के फल खाए, भाव सौं खाटे-मीठे-खारे —१-२५ ।

खाटो, खाटो—िव. [हिं. खष्टा] तुर्श, श्रम्ल, खटा। उ.—श्रति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात बिचारो। करत उपाव न पूछत कहू, गनत न खाटो-खारो —१-१५४।

खाड़—संज्ञा पुं. [सं खात] गड्ढा, गर्त । उ.—पुनि कमंडल धरयौ, तहाँ सो बिंह गयौ, बुंभ धरि बहुरि पुनि माटराख्यौ। धरयौ खाड़, तालाब मैं पुनि ध यौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ—⊏-१६।

खाड़व-संज्ञा पुं. िसं. षाड़व] एक राग।

खाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं खाड़] समुद्र का भाग जिसके तीन श्रोर पृथ्वी हो।

संज्ञा स्त्री. [हं. खाड़] अरहर का सूखा पेड़। संज्ञा स्त्री. [हं. काढ़ना] अंतिम बार निकाला हुआ रंग।

खाड़ू—िव [हिं० खाँड़] मीठा। उ.—खी, खाड, घृत, लाविन लाड़ू। ऐसे होहिंन श्रमृत खाँड़ू—३६६। संज्ञा पुं. [हिं. खंड] पतली जकड़ियाँ जिनपर खपड़े रखे जाते हैं।

खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खादर] नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी कुछ दिनों तक भरा रहे।

खात—िक. स. [सं. खादन, पा. खात्रन, खान; हिं. खाना] (१) खाता है, भच्नता है। उ.—जा दिना तें जनम पायो, यह मेरी रीति। विषय-विष हिंठ खात नाहीं, डरत करत अनीति—१-१०६। (२) सहता है, प्रभाव पड़ता है। उ.—भव सागर में पैरिन लीन्हों। ""। अति गंभीर, तीर नहिं नियरें, किहिं विधि उत्तरयों जात ? नहीं अधार नाम अवलो-कत, जित तित गोता खात—१-१७६।

मुहा० - धाइ धाइ खात — खाने दौड़ता है। उ. — श्रव ए भवन देखियत सूनो धाइ धाइ वज खात — २७७६।

संज्ञा पुं. [सं] (१) खोदने की क्रिया। (२) तालाव। (३) कुत्राँ। (४) खाद का गड्ढा।

संशा स्त्री. — वह स्थान जहाँ मद्य तैयार करने के लिए महुत्रा रखा जाता है।

वि—मैला, गंदा।

खातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तलैया । (२) खाई । (३) कर्जदार, ऋणी।

खातमा — संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ातमा] (१) ग्रंत। (२) मृत्यु।

खाता—संज्ञा पुं. [हिं. खाना] खानेवाले । उ.—तीनि लोक विभव दियौ तंदुल के खाता—१-१२३। संज्ञा पुं. [सं. खात] अन्न रखने का गढ़ा, बखार। संज्ञा पुं. [हिं. खत] (१) आयव्यय आदि लिखने की वही।

मुहा०—खाता खोलना—नया संबंध होना। खाता डालना—लेन-देन शुरू करना।

(२) मद, विभाग।

खातिर — संशा स्त्री [श्र. खातिर] श्रादर-सत्कार। श्रव्य – लिये, वास्ते।

खातिरी—संज्ञा स्त्री. [हि. खातिर] (१) ग्रादर-सत्कार। (२) संतोष।

संज्ञा स्त्री. [देश.] नदी किनारे की फसल। वाती—संज्ञा स्त्री. [सं. खात] (१) खोदी हुई भूमि। (२) छोटा ताल। (३) बढ़ई।

संज्ञा पुं.—खोदने का काम करनेवाली जाति। खातो, खातो — कि. स. [हिं. खाना] (१) खाता है, भोजन करता है। उ.—साँच-फूठ करि माया जोरी, श्रापुन रूलो खातो। सरदास कछु फिर न रहेगों, जो श्रायो सो जातो—१-३०२। (२) इस लेता, काट खाता। उ.—श्राजु सबनि धरिके वह खातो धनि तुम हमहिं बचाये—२३६६।

खाद—वि. [सं. खाद्य] खानेयोग्य, भोज्य, भच्य। उ.—खाद-श्रखाद न छाँडै श्रब लौं, सब मैं साधु कहावै—१-१८६।

संज्ञा स्त्री,—पदार्थ जिसके डाजने से खोत की उपज बदती है, पाँस।

खादक—संश् पुं. [सं.] (१) कर्जदार, ऋगी (२)धातु की भस्म जो खायी जाती है।

वि,—खानेवाला।

खादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन। (२) दाँत।
खादनीय—वि. [सं.] खाने योग्य।
खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खात] (१) तराई, कछार, समतत्त भूमि। उ.—मेघ परस्पर यहै १ हत हैं घोय करहु
गिरि खादर। (२) पशुत्रों के चरने की भूमि।
खादि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खाने योग्य पदार्थ, खाद्य
वस्तु। (२) कवच। (३) दस्ताना।
संज्ञा स्त्री. [सं. छिद्र] दोष।

खादित—वि. [सं.] खाया हुआ। खादिम— श्र. ख़ादिम] नौकर।

खादिर, खादिरसार—संज्ञा पुं. [सं.] कत्था।

खादी—वि. [सं. खादिन्] (१) खानेवाला। (२) शत्रु का नाश करनेवाला। (३) काँटेदार।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) हाथ के सूत का बना मोटा कपड़ा। (२) मोटा कपड़ा।

वि. [हिं. खादि = दोष] (२) जिसमें दोष हो। (२) दोष निकालनेवाला।

खादुक—वि. [सं.] हिंसा करनेवाला। खाद्य—वि. [सं.] खानेयोग्य, भच्य। संज्ञा पुं.—भोजन।

खाध, खाधु, खाधुक—संज्ञा पुं. [सं. खाद्य] भोज्य पदार्थ।

वि. [सं. खादक] खानेवाला। खाधे—क्र. स. [हिं. खाना] खाया। उ.—नयन नासिका मुख न चोरि दिध कौने खाधे—३४४३।

खान—संशा पुं. [हिं. खाना] (१) खाना, खाने की किया। उ.—(क) स्रदास प्रभु कों घर तें ले, देहीं माखन खान—१०-२७२। (ख) गोपालहिं माखन खान दे—१०-२७४। (२) भोजन की सामग्री। (३) भोजन की रीति या ग्राचार। उ.—के कहुँ खान पान रमनादिक, के कहुँ बाद ग्रनैसे—१-२६३। (४) खाने के लिए, निगल जाने को, मार डालने के लिए। उ.—भूत प्रेत बैताल रच्यो बहु दौरे विधि की खान—६५ सारा.।

मुहा०—लगत खान—खाने लगता है, खाने दौड़ता है, काटे खाता है। उ.—जिनि धरनि वह सुख बिलोक्यों ते लगत अब खान—२७४६।

संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] (१) खानि, त्राकर। (२) त्राधार-स्थान, उत्पत्ति-स्थान। उ.—कुटिल-खान चंपक चंचल मित सबही ते जु निनारी—३३५६। (३) निधि, कोष। (४) समूह, समाज। उ.—तहँ ते गये जु चित्रकूट को जहाँ मुनिन की खान—२४४ सारा.।

संज्ञा पुं. [ता. काङ् = सरदार] (१) सरदार। (२) पठानों की उपाधि।

खानक—संज्ञा पुं. [सं. खन] (१) खान खोदनेवाला। (२) बेलदार। (३) बढ़ई।

खानगी—वि. [फ़ा. ख़ानगी] घरेलू, श्रापसी, निजी। खानदान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वंश, कुल।

खानदानी—वि. [फ़ा.] (१) ऊँचे कुल का। (२) कुल-परंपरा से चला श्रानेवाला, पैतृक।

खानपान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अज जल, भोजन और पानी, खाना-पीना। उ.—स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई। चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई—६७८। (२) खाने-पीने का आचार-व्यवहार।

खाना—कि. स. [सं. खादन पा० खात्रन, खान] (१) भोजन करना।

मुहा.—जिसका खाना उसे श्राँख दिखाना (गुर्राना)
—उपकार या श्रहसान न मानना । खाने के दाँत श्रीर
दिखाने के श्रीर—करना कुछ दिखाना कुछ । खाना
न पचना—जी न मानना, चैन न मिजना ।

(२) शिकार पकड़ना और भद्मण करना।
मुहा.—(कचा) खा जाना — मार डाजना। खाने
दौड़ना—बहुत भल्लाना और कुद्ध होना।

(३) विषेले कीड़ों का काटना। (४) कष्ट देना, तंग करना। (४) कुतरना, काटना। (६) चूसना, चबाना। (७) बरबाद करना। (६) मार लेना, इड़प जाना। (१) खर्च कर डालना। (१०) रिश्वत लेना। (११) (किसी काम में) रुपया खर्च करा देना। (१२) समाना, भरना। (१३) (बीच बीच में) कुछ छोड़ देना। (१४) सह लेना, बरदाश्त करना।

मुहा — मुँहकी खाना—(१) बुराई के बदले में नीचा देखना। (२) बुरी तरह हार जाना।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ाना] (१) घर, मकान। (२) कोई चीज रखने का घर। (३) अलमारी, मेज आदि का विभाग। (४) कोष्टक। (४) संदूक।

खानाजाद—वि. [फ़ा. ख़ानाज़ाद] जो घर में पैदा हुआ या पाला-पोसा गया हो।

संज्ञा. पुं.—सेवक, दास । उ.—मन विगरधो ये नैन बिगारे | • • • • । ए सब कही कौन हैं मेरे खानाजाद चिचारे— ए० ३२०।

खानि—संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] '१) खानि, श्राकार, खदान। उ.—सूर एक ते एक श्रागरे वा मथुरा की खानि—३०५१। (२) वह स्थान या व्यक्ति जहाँ या जिसमें किसी वस्तु की श्रिधिकता हो, खजाना। उ.— (क) जहाँ न काहू को गम, दुसह दारुन तम, सकल विधि बिषम, खलमल खानि—१७७। (ख) उघरि श्राये कान्ह कपट की खानि—३२५०। (३) श्रोर, तरफ। (४) प्रकार, रीति।

खानिक—संशा स्त्री. [हं. खान] खान, त्राकर, खदान। खानी— संशा स्त्री. [सं. खानि] राशि, समूह, खजाना। उ.—त्रालस भरे नैन, सकल सोभा की खानी —१०-४४१

खापट—संज्ञा स्त्री. [हं. खपाटा] कड़ी भूमि। खापर—संज्ञा स्त्री. [हं. खापट] (१) कड़ी भूमि। (२) जँची-नीची भूमि।

खाब – संज्ञा पुं. [फ़ा. ख्वाब]स्वप्न। खाबड़, खूबड़—वि. [ग्रमु.] ऊँचा-नीचा।

खाम—संज्ञा पुं. [हिं. खामना] (१) चिट्ठी का लिफाफा। (२) जोड़, टाँका।

संज्ञा पुं. [हिं. खांभा] (१) खंभा। (२) मस्तूल। वि. [सं. च्वाम] घटनेवाला।

वि. [फ़ा. ख़ाम] (१) कच्चा। (२) जो दृढ़ न हो। (३) जो अनुभवी न हो।

खामना—क्रि. स. [सं. स्कंभन् = मूँदना, रोकना, प्रा. खंभन] (१) मिट्टी, आटे या मैदा से पात्र का मुँह बन्द करना। (२) लिफाफा बन्द करना।

खामी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ामी] (१) कच्चापन। (२) कमी। (३) श्रनुभवहीनता। खामोश—वि. [फ़ा. ख़ामोश] चुप।

खामोशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ामोशी] चुप्पी।
खायो, खायो —िक. स. भूत. [हिं. खाना] (१) भोजन
किया, भचण किया, खाया। उ. —काम-क्रोध-मदलोभ-ग्रसित हो, विषय परम बिष खायो — १-१११।
(२) विषेले कीट का काटना या डसना। उ. — माया
बिषम भुजंगिनि को बिष, उत्तरयो नाहिन तोहिं।
""। बहुत जीव देह श्रीभमानी, देखत ही इन
खायो — २-३२।

खार— वि. [सं. चार, हिं. खारा] (१) खारी, चार या नमक के स्वाद का। (२) अरुचिकर, अविय, अशुद्ध। उ.— जमुना तो हिं बह्यों क्यों भावें। तो में हेलुवा खेलें सो सुरत्यों नहिं आवें। तेरो नीर सुची जो अब लों खार पनार कहावें—५६१।

यो.—नीर-खार—समुद्र। उ.—कहों तो परवत चाँपि चरन तर नीर खार में गारों—६-१०७। संज्ञा पुं.—(१) लोना, रेह। (२) धूल, राख। (३) एक माड़ी। (४) छोटा तालाब, डबरा। उ.— (क) दई न जात खार उतराई चाहत चढ़न जहाज। (ख) पुनि पाछे अध-सिंधु बढ़त है सूर खार किन पाटत।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ार] (१) काँटा, फाँस । (२) खाँग। (३) डाह, जलन।

मुहा. - खार खाना - जलना, बुरा लगना। खारक - संज्ञा पुं. [सं. चारक, प्रा. खाक] छोहारा। खारा-वि. पुं. [सं. चार] (१) नमक के स्वाद का। (२) श्रक्तिकर, श्रिय, श्रश्च ।

संज्ञा पुं. [सं. द्वार] (१) एक धारीदार कपड़ा। (२) जालदार बँधना। (३) थेला। (४) टोकरा। (४) बाँस का बड़ा पिटारा।

खारि — वि. [हिं. पुं. खार] (१) नमक के स्वाद का। उ.—खारि समुद्र छाँड़ि किन आवत निर्मत जल जमुना को पीजो—१०उ. ६५। (२) अरुचिकर।

खारिक—संज्ञा पुं. [सं. चारक] छोहारा, खारक। उ.— खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, ग्राम, ऊख, रस सीरा—१०-२११।

खारिज—वि॰ [श्र. ख़ारिज] (१) निकाला हुआ। (२) श्रलग । (३) जिसकी सुनवाई न हो। खारी —िव. [हिं. पुं. खार] (१) नमकीन । उ— निर्मल जल जमुना को छाँड्यो सेवत समुद्र जल खारी —१० उ.-६७। (२) श्रक्तिकर।

संशास्त्री. [हिं. खारा] एक तरह का चार,

खारुओं, खारुवा—संज्ञा पुं. [सं. क्तारक] (१) एक प्रकार का रंग। (२) इस रंग से रँगा कपड़ा।

खारे—वि. पुं. [सं. चार, हिं. खारा] (१) नमकीन।
नमककेस्वाद का, खारी। उ.—(क) मधु मेवा पकवान
मिठाई, ब्यंजन खाटे, मीठे, खारे—१०-२६६। (ख)
जेहि मुख सुधा स्थाम रस श्रॅचवत श्रव पीवे जल
खारे—३-६८। (२) कडुआ, श्रक्चिकर। उ.—
भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे—मीठे-खारे
—१-२५।

खारो,खारी — वि. [हिं. खारा] (१) नमक के स्वाद का, खारी। उ.— याको कहा परेखी-निरखी, मधु छीलर, सरितापित खारी-६-३६। (२) कडुआ, अरुचिकर। उ.—कहों कहा कछु कहत न आवे, औ रस लागत खारो री-१०-१३५। (३) बुरा, अनुचित। उ.—करत उपाव न पूछ्रत काहू, गनत न खाटो, खारी—१-१५२।

खाल— संज्ञा स्त्री. [सं. चाल, प्रा. खाल] (१) चमड़ा, खचा।

मुहा.—लाल उड़ाना (उधेड़ना, खीचना)— बहुत मारना-पीटना। लाल कढ़ाइ—खाल उधड़ाना या खिचवाना, कड़ा दंड दिलवाना। उ.—दिन दिन इनकी करों बड़ाई, ब्राहर गए इतराइ। तो मैं जो वाही सों कहिके इनकी खाल कढ़ाइ—२५७८।

(२) मृत शरीर। उ.—कहितू श्रपने स्वारथ मुख को रोकि कहा करिहै खलु खालहि—१०-८०२। (३) घोंकनी। (४) देह, शरीर। (४) किसी चीज का मिला-जुला श्रावरण।

संज्ञा स्त्री. [सं. खात या त्रा. ख़ाली] (१) नीची भूमि। (२) खड़ी। (३) खाली जगह। (४) गहराई।

खालसा—वि. [श्र. ख़ालिस = शुद्ध] (१) जिस पर एक ही का श्रिधकार हो। (२) सरकारी, राजकीय। संज्ञा पुं.—सिक्खों का एक संप्रदाय।
खाला—वि. [हं. ख़ाल = खाली] नीचा, निचला।
संज्ञा स्त्री. [श्र. ख़ालः] माँ की बहिन, मौसी।
खालिक—संज्ञा पुं. [श्र. ख़ालिक] रचनेवाला, स्रष्टा।
खालिस—वि. [श्र. ख़ालिस] श्रसली, शुद्ध।
खाली—वि. [श्र. ख़ाली] (१) जो भरा न हो, रीला।

(२) जिसपर कुछ रखा न हो। (३) जहाँ कोई न हो।
मुहा—खाली हाथ होना—पास में धन, अस्त्रशस्त्र या काम न होना। खाली पेट-बिना कुछ खारे।

(४) हीन, रहित। (४) व्यर्थ, निष्फल। उ.— पुनि लछ्मी हित उद्यम करें। श्ररु जब उद्यम खाली परें। तब वह रहें बहुत दुख पाई—३-१३।

मुहा,—निशाना (वार) खाली जाना—लच्य चूक जाना। बात खाली जाना—वादा मूठा होना। खाली दिन —वह दिन जब कोई शुभ कार्य श्रारंभ करना मना हो।

(६) जो किसी काम में न जगा हो।

मुहा,—खाली बैठना-(१) काम न करना। (२)
बेरोजगार होना।

(७) जिससे काम न लिया जा रहा हो।

कि. वि.—केवल, सिर्फ।

संज्ञा पुं.—वह ताल जो खाली छोड़ दिया जाय।
खालीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाल] चमड़ी, खाल।
खाले —संज्ञा स्त्री [हिं. खाला] निचाई, गहराई।
वि. [हिं. खाल या खाली] नीचा, निचला।
कि. वि.—नीचे।

खाव—संज्ञा स्त्री. [सं. खात] खाली जगह। खार्विद—संज्ञा पुं. [फा. ख़ाविंद] (१) पति। (२) स्वामी।

खास—िव. [श्र. ख़ास] (१) विशेष, मुख्य । (२) निजी, श्रात्मीय। (३) स्वयं। (४) ठेठ, विशुद्ध। खासा—संज्ञा पुं. [श्र.] (१) राजा का भोजन। (२) राजा का घोड़ा या हाथी। (३) एक सफेद सूती कपड़ा।

वि. पुं. [श्र. ख़ास] (१) श्रच्छा-भक्ता। (२) स्वस्थ। (३) सुन्दर। (४) भरा पुरा।

खासियत—संज्ञा स्त्री. [त्र्रा.] (१) स्वभाव। (२) गुण। (३) विशेषता।

खाँहिं, खाहीं — कि. स [हिं. खाना] खाते हैं, भोजन करते हैं। उ.-हंस उज्ज्ल, पंख निर्मल, श्रंग मिल-मिल न्हाहिं। मुक्ति-मुक्ता श्रनिंगने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिं— १-३३८। (ख) बारम्बार सराहिं सूर प्रभु साग-विदुर घर खाहीं— १-२४१।

खाहु—िक. स. [हिं. खाना] खात्रो, खालो। उ. —बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारे, ये श्रमृत फल खाहु —६-८३।

खिंचना — कि. श्र. [सं. कर्षण] (१) घसिटना, सर-कना। (२) बाहर निकलना। (३) किसी श्रोर बढ़ना, तनना। (४) श्राकर्षित होना। (४) चुस जाना, सोखा जाना। (६) भभके से श्रक श्रादि तैयार होना। (७) शक्ति या सार निकलना। (८) रुक जाना। (१) चित्रित होना। (१०) खपते रहना, चला जाना। (११) प्रेम कम हो जाना। (१२) दाम बढ़ जाना।

खिंचवा-वि. [हिं. खींचना] खींचनेवाला।

खिंचवाना—कि. स. [हिं. खींचना] खींचने को प्रेरित करना।

खिंचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना] (१) खींचने की किया। (२) इस काम की मजदूरी।

खिंचाना-क्रि. स. [हिं. खींचना] खींचने की प्रेरणा देना। खिंचाव—संज्ञा पुं. [हिं. खिंचना] (१) खींचने का भाव। (२) तनाव।

खिंचावट, खिंचाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिंचना] (१) खींचने की किया। (२) खींचने का भाव।

बिचिया—वि. [हिं. खींचना] खींचनेवाला।

खिडाना -- कि. स. [सं. दिप्त] फैलाना, बिखराना। खिद्याल-संज्ञा पुं. [हिं. खेल, खियाल] (४) खेल।

(२) हँसी, विनोद।

खिखिंद खिखिंध—संज्ञा पुं. [सं. कि हिंकधा] मैसूर के त्रासपास कि हिकंधा देश की एक पर्वत श्रेणी।

खिचड़वार, खिचरवार—[हिं. खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति। खिचड़ी—संशा स्त्री. [सं. कुसर] (१) मिला हुआ दाल

मुहा,— खिचड़ी पकाना—गुप्त सलाहं करना। वाई चावल की खिचड़ी श्रालग पकाना—बहुमत से श्रालग होकर काम करना। खिचड़ी खाते पहुँचा उतरना—बहुत नाजुक होना।

(२) मिले हुए एक या श्रधिक पदार्थ। (३) मकर संक्रांति जब खिचड़ी रानदी जाती है।

वि.--मिला हुआ।

खिजना—िक. श्र. [हिं. खीमना] मुँमलाना। खिजमत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिदमत] सेवा, टहला। खिजलाना—िक, श्र. [हिं. खिमना] मुँमलाना।

कि. स.—चिढ़ाना, दुखी करना। खिजाँ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खिजाँ] (१) पतम्मड़ की ऋतु। (२) श्रवनित काल।

खिम — संशा स्त्री [हिं. खीभ] भूँभलाहट।

खिमत—िक. श्र. [हिं. खिमना] (१) खिमाते हैं, मुँम-जाते हैं। उ.—(क) जब हिं मो हिं देखत लिरकन संग तब हिं खिमत बल मैया। (ख) जाहु घर तुरत जुब तिजन खिमत गुरुजन कि डरवाई — पृ. ३४० (६७) (ग) मैया जब मो हिंटहल कहति कछु खिमत बबा बुष मान—७२४। (२) हठ करता है। रूठता है। उ.—कहत जननी दूध डारत खिमत कछु श्रनखाइ।

खिमना — कि. श्र. [सं. खिद्यते, प्रा. खिज्जइत] खीमना, मुँभलाना।

खिमने — कि. स. [हिं. खिमाना] चिढ़ाता है, खिमाता है। उ.—यह कहित जहोदा रानी। की खिमने सारँगपानी—१०-१८३।

खिमाइ—कि. स. [हिं. विमाना] विमाकर, चिदाकर, छेड़कर। उ.—हमहिं विमाइ श्रापु मति खोवत या मैं कहा कही तुम पावत —३२६६।

खिमाई—कि. स. [हिं. खिमाना] चिढ़ाया (है), परेशान किया (है)। उ.—कहा करों हरि बहुत खिमाई। सहि नहिं सकी, रिस ही रिस भिर गई, बहुतै ढीठ कन्हाई—३७७। खिमाना—कि. सं [हिं. खिमना] चिढ़ाना, रुठाना, छेड़ना।

खिमायी—कि. स. [हिं. खिमाना] विहाया, दिक किया। उ.—मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिमायी —१०-२१५।

खिमावत कि. स. [हिं. खिमाना] खिमाते हैं, चिढ़ाते हैं, दिक करते हैं। उ.—(क) ऐसें कहि सब मोहिं खिमावत, तब उठि चल्यो खिसेया—१०-२१७। (ख) श्रोर खाल सँग कबहुँ न जहीं, वै सब मोहिं खिमावत—४२४। (ग) सूर स्याम जहँ तहाँ खिमावत कें जो मनभावत दूरि करो लंगर सगरी—१०४५।

खिमावन - संज्ञा पुं. [हिं. खिमाना] चिढ़ाने के लिए, दिक करने की किया। उ.— ऊघो तुम यह मत लैं श्राए। इक इम जरें खिमावन श्राए मानों सिखें पठाए — ३२१०।

खिमनाना कि. स. [हिं. विभाना] चिदाना। खिमि कि. श्र. [हिं. विभना] खीमकर, चिदकर, मुँमलाकर। उ.—स्रदास विभि कहति ग्वालिनी, मन मैं महरि बिचारि —१०-७६।

खिभिताइ—िक. श्र. [हिं. खिभाना] खीभकर, चिड़कर। उ.—रही ताड़ि खिभिताई लकुट लै एकहु डर न डरे—ए. ३३१।

खिमी—कि. ग्र. स्त्री. [हिं. खिमाना] चिही, खीभी। उ.—कछुक खिभी कछु हँसि कहाँ। ग्रति बने कन्हाई – २४४१।

खिमुचर—वि. [हिं. खीमना] शीघ ही चिढ़ने या खीमनेवाला।

खिमोना—वि. [हिं. विभाना] विभानेवाला। खिमोनी—वि. स्त्री. [हिं. विभीना] विभानेवाली। खिड़मना—क्रि. ग्रॅं. [हिं वसकना] चले जाना, चल देना, उठ भागना।

खिड़काना—िक. स. [हिं. खिसकना] (१) टालना, हटाना (२) निकाल डालना, बेच देना।

खिड़की—संशा स्त्री. [सं. खटिकिका] (१) छोटा दर-वाजा, मरोखा । (२) चोर दरवाजा । (३) इस आकार का खाखी स्थान। खित—संज्ञा स्त्री. [सं. दिति] पृथ्वी । खिताब—संज्ञा पुं. [त्र्य. ख़िताब] पदवी, उपाधि । खिताबी—वि. [त्र्य. ख़िताबी] जिसे खिताब मिला हो । खिता—संज्ञा पुं. [त्र्य.] प्रांत, देश ।

खिद्मत—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़िद्मत] सेवा।

खिद्मती—वि. [हिं. खिद्मत] (१) बहुत सेवा करने वाला। (२) जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो।

खिद्रबन—संज्ञा पुं. [हिं. खिद्रबन] बारह बनों में एक। उ.—नंदगाम संकेत खिद्रबन ग्रीर कामबन धाम—१०८९ सारा०।

खिन—वि. [सं. विन्न] उदास, दुखी, चितित। उ. निरखत सून भवन जड़ हैं रहे, खिन लोटत घर, बपु न सँभारत — ६-६२।

संशा पुं. [सं. च्ला] च्ला, पल । उ.—िखन मुँदरी, खिन हीं हनुमित सों, कहित विसूरि बिसूरि —ध-मरे।

मुहा.—खिन खिन—प्रति च्रण।

खिन्न--वि. [सं.] (१) उदास, चिंतित। (२) श्रप्रसन्न। (३) श्रसहाय।

खिपना - कि. श्र. [सं. क्तिप्] (१) खप जाना। (२) तल्लीन होना।

खिपाना—कि. स. [हिं. खपाना] (१) काम में लाना। (२) निभाना। (३) खत्म करना।

खियाना—कि. ग्र. [सं. च्रय] विसना। कि. श्र. [हिं. खाना] खिलाना।

खियाल — संज्ञा पुं. [हिं. ख्याल] (१) ध्यान । (२) विचार।

संज्ञा पुं. [हिं. खेल] (१) खेल, कीड़ा। (२) विनोद।

खिर—संशा स्त्री. [देश.] ढरकी या नार जिसमें बाने का सूत रहता है।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्तीर] (१) खीर। (२) दूध। विरकन—संज्ञा पुं. [हं. खरक] पशुत्रों का बाड़ा। उ. राँभी भी खिरकन मैं बछरा हित धाई।

खिरका— संज्ञा पुं. [हिं. खरक, खरिक] पशुत्रों का बाड़ा।

- खिरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिड़की] मरोखा, गवाच, खिड़की।
- खिरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. चीरिणी] (१) एक ऊँचा पेड़। (२) इसका छोटा फल।
- खिर-लाड़ु—संज्ञा पुं. [हिं. खीर + लड्डू] एक तरह की मिठाई। उ.—खिरलाड़ु लवंगनि लाए। ते करि बहु जतन बनाए—१०-१८३।
- खिराज—संज्ञा. पुं. [त्र्रा. खिराज] कर, मालगुजारी। खिरियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. चीर, हिं. खीर] खीर। उ.— स्रदास प्रभु बैठि कदम तर, खात दूध की खिरियाँ —४७०।
- खिरिना—िक. स. [त्रनु.] खुरचना, खरोचना। खिरोरा, खिरौरा—संज्ञा पुं. [हिं. खैर = कत्था+त्रौरा (प्रत्य.)] कत्थे की टिकिया।
- खिलंद्रा—वि. [हिं. खेल] खेल या खिलवाड़ करने वाला।
- खिलअत—संशा स्त्री. [श्र. ख़िलश्रत] राजा की श्रोर से सम्मान-रूप में दी जानेवाली पोशाक श्रादि।
- खिलकत—संज्ञा स्त्री [त्र्य. खिलकत] (१) संसार । (२) भीड़, समूह ।
- खिलकौरी—संशा स्त्री [हिं. खेल + कौरी (प्रत्य.)] खेल, खिलवाड़।
- खिलिखलाना—कि. श्र. [श्रनु.] खिलिखल करके जोर हँसना।
- खिलत, खिलति—संशा स्त्री. [हिं. खिलग्रत] वस्त्र ग्रादि जो सम्मान-रूप में राजा की ग्रोर से दिये जायँ।
- खिलन—संशा स्त्री. [हिं. खिलना] प्रसन्न होना, प्रमुदित होना। उ.—सूरदास प्रभु की सुन ऋरी ऋाली तेरे ऋंग ऋंग भयो उदोत वह हिलनि मिलनि खिलन की तेरे प्रेम प्रीति जनाई—२१०७।
- खिलना—िक, वि. [सं. स्वलन्] (२) कजी का निक-लना। (२) प्रसन्न होना। (३) शोभित होना। (४) बीच से फटना। (५) श्रजग होना।
- खिलवत संज्ञा स्त्री. [ऋ. ख़िलवत] एकान्त स्थान। खिलवतखाना संज्ञा पुं. [ख़िलवतख़ाना] (१) एकान्त स्थान। (२) मंत्रणागृह।

- खिलवति संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलग्रत] सम्मानसूचक वस्त्रग्रादि।
- खिलवाड, खिलवार—संज्ञा पुं. [हिं. खेलवाड़] खेल, तमाशा।
- खिलवाना—िक. स. [हिं. खाना] भोजन कराना। कि. स. [हिं. खीलना] (१) खिलाने की प्रेरणा देना। (२) प्रफुल्लित कराना।
 - कि. स. [हिं. खोल] (१) खिलाने की प्रेरणा देना। (२) खीलें बनवाना।
 - क्रि. स. [हिं. खेलवाना] खेलने की प्रेरणा देना।
- खिलाई—संज्ञा स्त्री, [हिं, खाना] (१) खाने का काम। (२) खेलने का काम।
- खिलाए—िक. स. भूत० [हिं. खेतना] खेल में लगाया। उ.—कौरव पासा कपट बनाए। धर्मपुत्र कौं जुल्ला खिलाए—१-२४६।
- खिलाड़, खिलाड़ी—संज्ञा पुं.[हिं. खेल + श्राड़ी (प्रत्य.)] (१) खेलनेवाला। (२) कुरती, पटा श्रादि के खेल दिखानेवाला। (३) जादूगर।
- खिलाना—िक. स. [हिं. खेलना] खेलने में लगाना। क्रि. स. [हिं 'खाना' का प्रे.] भोजन कराना। क्रि. स. [हिं. खिलना] विकसित करना।
- िखलाफ—िव. [अ. ख़िलाफ़] विरोधी, उल्टा।
 िखलारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खील—भुना हुआ दाना]
 धिनया और ककड़ी आदि के भुने हुए बीज जो भोजन
 के बाद खाये जाते हैं।
 - संज्ञा पुं. [हिं. खिलाड़ी] खेलनेवाला, खिलाड़ी। उ.—केसरि चीर पर अबीर मानो परयो खेलत फाग डारयौ खिलारी—२५६५।
- खिलावत—कि. स. [हिं. खिलाना] (१) बचों या पित्तयों को) खिलाता है। (२) दना आदि चुगाते हैं। उ. —न।हिंन मोर बकत पिक दादुर ग्वाल मंडली खगन खिलावत—३४८५।
- खिलावति कि. स. स्त्री. [हिं. खिलाना] (खेल त्रादि) खिलाती है, खेलने में लगाती है। उ. जाकी ब्रह्म। पार न पावत, ताहि खिलावत ग्वालिनियाँ १०-१३२।

खिलावन—संज्ञा पुं. [हं. खेल, खिलाना] खेल खिलाने की किया। उ.—पाऊँ कहाँ खिलावन कों सुख में दुखिया, दुख कोखि जरी—१०-८०।

खिलावें — कि. स. [हिं. खिलाना] (वचे को) खिलाती और हँसाती है, खेल में नियोजित करती है। उ.— (क) गुन गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै। (ख) आनंद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपाल खिलावें — १०-१३०।

खिलौना—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + श्रौना (प्रत्य.)]
(१) छोटी मूर्तिं या इसी प्रकार की चीज जिससे
बच्चे खेलते हैं। (२) खेलने की चीज, प्रिय वस्तु।
ड.—दंपति होड़ करत श्रापुस में स्थाम खिलौना
कीन्हों री—१०-६८।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] हँसी, हास्य। संज्ञा स्त्री. [हिं. गिलौरी] पान की गिलोरी। संज्ञा स्त्री. [हिं. खील] कील, काँटा।

खिल्लो—वि. स्त्री. [हिं. खिलना = प्रसन्न होना] बहुत हँसनेवाली।

खिसकना-कि. श्र. [हिं. खसकना] सरकना, एक स्थान से दूसरे को जाना।

खिसकाना—कि. स. [हिं. खसकाना] सरकाना, हटाना।

खिसना—िक. ग्र. [हिं. खसना] किसी स्थान से गिरना, हटना।

खिसलना—िक. श्र. [हिं. फिसलना] रपटना, सरकना। खिसलाना—िक. स. [हिं. खिसलना] रपटाना, फिसलाना।

खिसलाव—संशा पुं. [हं. खिसलना] फिसलने का भाव।

खिसाई—िक. त्र. [हिं. खिसियाना] खिसियाकर, लिजित होकर। उ.—(क) दुर्योधन यह रीति देखि के मन में रह्यो खिसाई—१०उ.-५५। (ख) बहुरि भगवान सिसुपाल को छाँडि दियो गयो निज देस को सो खिसाई—१० उ.-२१।

खिसाना—िक. ग्र. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाना, बिजित होना।

वि.— खिसियाया हुन्ना, लिज्जित।

खिसानी—कि. श्र. [हिं. खिसियाना] लिंजत होकर, खिसियाकर। उ.—देती कही नेकु नहिं बोली फिरी श्राइ तब हमहिं खिसानी—१२८४।

वि.—खिसियायी हुई।

खिसाने—कि. श्र. [हिं. खिसियाना] खिसिया गये, लिंड त हुए। उ.—(क) सखा कहत हैं स्याम खिसाने। श्रापृहि श्रापृ बलिक भए ठाड़े, श्रव तुभ कहा रिसाने— १०-२१४। (ख) जब हरि मुरली श्रधर धरी।……। दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि विसरी। उडुपित, बिद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि श्रधिक डरी—६५६।

वि.—खिसियाये हुए, लिजत।

खिसाय (गये)—िक. या. [हैं. खिसियाना] खिसिया गये, लिजित हो गये। उ.—कळु निहं चलत खिसाय गये सब रहे बहुत पिच हार—२१८ सारा.।

खिसावें — कि. श्र. बहु. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाती हैं, खिजत होती हैं। उ.—तरुनिन की यह प्रकृति श्रनेशी थोरेहि बात खिसावें —११५२।

खिसाहीं — कि. ग्र. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाते हैं, जजाते हैं। उ. —वर्षत घन गिरि देखि खिसाहीं —१०५६।

खिसिमाई—कि. म्र. [हिं. खिरियाना] लजाकर, खिसिया कर । उ.—तब खिसिम्राइ के काल यवन म्रपने सँग ल्यायौ—१० उ.-३।

खिसिश्राइ—कि, श्र. [हिं. खिसियाना] लजाकर, खिसियाकर।

यौ.—गई खिसिग्राई—खिसिया गयी। उ.— रघुपति वह्यौ, निलंज निपट तू, नारि राच्छसी ह्याँ तैं जाई। सूरदास प्रभु इक पत्नीव्रत, काटी नाक गई खिसिग्राई—६-५६।

खिसित्रानपन-संज्ञा पुं. [हिं. खिसित्राना + पन] लजाने का भाव।

खिसित्राना—िक. त्र. [हिं. खीस-दाँत] (१) लजाना, लिंजत होना। (२) कुद्ध होना। वि.— लिंजत।

खिसिआने - वि. [हिं. खिसिआना] लजाये या शरमाये

हुए। उ.—लाज गये प्रभु त्रावत नाहीं हैं जो रहे

खिसियानो, खिसियानो—वि. [हिं. खीस, खिसियाना] खिसियानेवाला, खिसियाया हुग्रा। उ.—(क) हों तो जाति गँवार, पतित हों, निपट निलंज खिसि-ग्रानो—१-१६६। (ख) लाज गए प्रभु ग्रावत नाहीं हों जो रहे खिसिग्रानो (खिसिग्राने)—३३४२।

खिसिआहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसित्राना + हट (प्रत्य.)] लजाने का भाव।

खिसियाइ—िक. श्र. [हिं. खिसिश्राना] लिजित होकर, खिसियाकर। उ.—(क) यह सुनि दूत चले खिसियाइ—६-४। (ख) यासौं हमरी कछु न बसाइ। यह कि श्रसुर रह्यो खिसियाइ—७-७।

खिसियाना—िक. श्र. [हिं. खीस = दाँत] (१) खिजत होना। (२) नाराज होना।

खिसी—संज्ञा स्त्री. [हिं, खिसित्राना] (१) लज्जा, शर्म। उ.—कहा चलत उपरावटे त्राजहूँ खिसी न गात। कंस सौंह दे पूछिये जिन पटके हैं सात—११३७। (२) ढिठाई, घृष्टता।

खिसे — कि. ग्र. [हिं. खसना] (१) हटना, सरकना। (२) नष्ट हो जाय, चला जाय। उ.—तन मन धन जोबन खिसे तऊ न माने हार।

मुहा.— खिसै न बार—बाल बाँका न हो। उ.— इहै असीस सूर प्रभु सों किह न्हात खिसै जिन बार — ३१००।

खिसैया – कि. ग्र. [हिं. खिसियाना] खिसिया कर, लिजत होकर। उ.—ऐसें कहि सब मोहिं खिभावत तब उठि चल्यो खिसैया— १०-२१७।

खिसोंहाँ—वि. [हिं. खिसियाना + श्रौहाँ (प्रत्य.)] क डिजत, खिसियाया हुआ।

खिस्याइ—कि. ग्र. [हिं. खिसिग्राना] (१) लिंजत होकर, खिसियाकर। उ.—सुरपित ताकें रूप लुभायो। बहुरि कुबेर तहाँ चिल श्रायो। पै तिन तिहिं दिसि देख्यो नाहिं। गए ग्विस्याइ दोउ मन माहिं—६-३। (२) कृद्ध होकर, रिसाकर। उ.—श्रस्वस्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-श्रस्त्र को दियो चलाइ—१-२८६।

खिस्याई—कि. ग्र. [हिं. खिसिग्राना] खिसियाकर, खिजत होकर। उ.—रहे पचिहारि, निहं टारि कोऊ सक्यो, उठ्यो तब ग्रापु रावन खिस्याई—६-१३५। खिस्यानो, खिस्यानो कि. ग्र. [हिं. खिसिग्राना]

जिजत हुआ। उ.—श्रावत नहिं लाज के मारे मानो कान्ह खिस्यानो।

खींच—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना] (१) खिंचाव। (२) बहुत माँग।

खींचतान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना + तानना] (१) खींचातानी, नोकभोक । (२) जबरदस्ती अर्थ बैठाना।

खीचना—िक. स. [सं. कर्षण] (१) घसीटना। (२) बाहर निकालना। (३) ऐंचना। (४) श्राकर्षित करना। (४) लिखना, चित्रित करना। (६) सोखना। (७) श्रक श्रादि चुश्राना। (८) रोक रखना। मुहा—हाथ खींचना—(१) काम बन्द करना। (२) उदासीन हो जाना।

खीचरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुसर, हिं. खिचड़ी] मिलाकर पकाया हुआ दाल चावल । उ.—खीर, खाँड खोचरी सँवारी—२३२१।

खीज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खीजना] (१) भु भलाहट। (२) ऐसी बात जो चिढ़ाने के लिए कही जाय।

खीजना—कि. श्र. [सं. खिद्यते, पा. खिज्जह] सुँ सजाना, खिजलाना।

खीजें—कि. श्र. [हिं. खीजना] खिजलाता है, सुँभ-लाता है।। उ.—खिस खिस परत कान्ह किनयाँ तें, सुसुकि सुसुकि मन खीजें —१०-१६०।

खीमा-संशास्त्री. [हिं. खीज] मु मलाहट।

खीमत— कि. ग्र. [हिं. खीजना] मुँभलाते हैं, खिज-लाते हैं। उ.—खीभत जात माखन खत। श्रकन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात—१०-१००।

खीमन — कि. श्र. [हिं. खीजना, खीमना] खीजने लगे, मुँ मलाने लगे । उ.—नंद बबा तब कान्ह गोद करि खीमन लागे मोको — २६२७ ।

खीमना—कि. ग्र. [हिं. खीजना] भुँ मलाना। खीमिहें—कि. ग्र. [हिं. खीजना] खीजेंगी, नाराज होंगी, ग्राप्त होंगी, ग्राप्त होंगी, भुँ मलायँगी। उ.—मली भई दुम्हें

सौंपि गए मोहिं जानं न दैहों तुमकों। बाँह तुम्हारी नैंकु न छाँड़ों, महर खीिकहें हमकों—६८१।

खीमी—कि. श्र. [हिं. खीमना] श्रप्रसन्न हुई, मुँम-जायी। उ.—प्रात गई नीकें उठि घर तें। में बरजी कहँ जाति री प्यारी, तब खीमी रिस भर तें—७४४। खीमे—कि. श्र. [हिं. खीमना] मुँमलाये, रुष्ट हुए। उ.—उन नहिं मान्यो, तब चतुरानन खीमें कोध

उपाय-६४ सारा.।

खीमें — कि. श्र. [हिं. खीजना] खीजती है, कुँ मलाती है, रुट होती है। उ.—(क) तू मोंहों कों मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीमें — १०-२१५। (ख) बाँह गहे हुँ दिति फिरें डोरी। बाँधों तीहिं सके को छोरी। बाँधे पची डोरी नहिं पूरें। बार-बार खीमें, रिस मूरें — ३६१।

खीमो, खीमोे—िक. ग्र. [हिं. खीमना] मुँमलात्रो, खिजलात्रो। उ.—कोऊ खीमो, कोऊ कितनो बरजो जुवतिन के मन ध्यान—८७०।

खीन—वि. [सं. खिन्न] उदास, चितित। उ.— चित्रकूट तें चले खीन तन मन बिस्नाम न पायौ —१-५५।

वि. [सं. चीया] दुर्बल, पतला, पुराना। उ.— (क) भयौ बलहीन खीन तनु कंपित तज्यो बयारि बस पात—२६५७। (ख) यहै अपूर्व जानि जिय लघुता खीन इन्दु एहि दुख भाज्यौ—२३००।

खीनता, खीनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. ह्वीणता] दुर्बं बता। खीनी—वि. [सं. ह्वीण] ह्वीण।

वि. [सं. बिन्न] उदासीन, खिन्न । उ.—देखिकें उमा कों रुद्र लिजन भए, कह्यों में कौन यह काम कीनों। इंद्रिजित हों कहावत हुतो, श्रापु कों समुिक मन माहिं हैं रह्यों खीनों— द-१०।

खीप—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़। उ,—खीप पिंडारू कोमल मिंडी।

खीमा—संज्ञा पुं. [हिं. खेमा] तंबू।

खीर—संज्ञा स्त्री. [सं. चीर] दूध में पकाया हुत्रा चावल । उ.—खीर खाँड खीचरी सँवारी-२३२१। संज्ञा पुं.—दूध । उ.—ए दोउ नीर-खीर निवारत इमहिं बँधायो कंस—३०४६

खीरा—संज्ञा स्त्री. पुं. [सं. चीरक] एक फल जो ककड़ी की जाति का होता है। उ.—(क) खारिक, दाख, खोपरा, खीरा । वेरा, ग्राम, ऊख-रस, सीरा—१०-२११। (ख) खीरा रामतरोई तामें। ग्राम् न रचि ग्रंकुर जिय जामें—२३२१।

खीरी—संज्ञा स्त्री. [सं. चीरनी] खिरनी नाम का फल। संज्ञा स्त्री. [सं. चीर] थन का ऊपरी भाग जिसमें दूध रहता है।

खील—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] भूना हुआ धान, लावा।

> संज्ञा स्त्री. [हिं. कील] (१) कील, कॉंटा। (२) नाक में पहनने की लोंग।

संज्ञा स्त्री. [देश.] भूमि जो बहुत दिन बाद जोती-बोई जाय।

खीलना-- कि. स. [हिं. कील,खील] कील लगाना, कील की तरह तिनके खोंसना।

खीला—संज्ञा पुं. [हं. कील] काँटा, कील। खीली—संज्ञा स्त्री. [हं. खील] पान का बीड़ा। खीवन, खीवनि—संज्ञा स्त्री. [सं. चीवन] मस्ती, मतवालापन। उ.—मेरे माई स्याम मनोहर जीवनि। निरिष्त नयन भूले ते बदन छिव मधुर हँसनिप खीविन। खीवर—संज्ञा पुं. [सं. चीव = मस्त] शूर, वीर। खीस—वि. [सं. किष्क = बघ] नष्ट।

मुहा.—डारत खीस — नष्ट करता है। उ.— काहे को निगुन ग्थान गनत हो जित तित डारत खीस—३१३०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खीज] (१) अप्रसन्नता। (२) क्रोध।

संशा स्त्री. [हिं. खिसियाना] लज्जा। संशा स्त्री. [सं. कीश = बन्दर] दाँत बाहर निकालना।

मुहा.—खीस काढ़ना—(१) दाँत बाहर निकाल कर हँसना । (२) दीनता दिखाकर माँगना । (३) मर जाना ।

संज्ञा स्त्री, [देश,] गाय का दूध जो ज्याने के सात दिन तक निकलता है।

खीसा-संज्ञा पुं. [फ़ा. कीसा] (१) थैला। (२) जे। (३) कपड़े की थैली।

संज्ञा पुं. [हिं. खीस] दाँत जो ग्रोंठ के बाहर

खुँटिला—संज्ञा पुं. [देश. खुटिला] कान में पहने का एक गहना, कर्णफूल । उ.—खुँटिला सुमग जराइ के मुकुता मनि छिबि देत । प्रगट भयो घन मध्य ते सिस मनु नखत समेत—२०६५ ।

खुँदाना— कि. स. [सं. चुएए। = शैंदा हुन्ना] (एक ही स्थान पर घोड़ा) कुदाना।

खुआर—वि. [फ़ा. ख़वार] (१) जिसकी दशा बुरी हो। (२) जिसका कुछ मान न हो।

खुआरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुग्रार] (१) बुरी दशा। (२) अनादर, अप्रतिष्ठा।

खुआरू—वि. [फा. ख्वार] (१) खराब। (२) जिसका आदर न हो।

खुक्ख—वि. [सं. शुष्क या तुच्छ, प्रा. छुच्छ] छूँछा, खाली।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) तकुए पर लपेटा हुम्रा सूत। (२) नैपाली छुरा।

खुखला — वि. [हिं. खोखला] (१) जिसके भीतर पोला हो। (२) छुछा, खाली।

खुचर, खुचुर—संज्ञा स्त्री. [सं. कुचर = दूसरे के दोष निकालनेवाला] दोष निकालने की ऋया या प्रकृति। खुजलाना— कि. स. [सं. खर्ज, खर्जन] खुजली मिटाने के लिए रगड़ना या सहलाना।

कि. श्र.— खुजली जान पड़ना।

खुजली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुजलाना] खुजलाने की इच्छा, अनुभव या रोग।

खुटक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटकना] ग्राशंका, खटका। उ.—(क) मन में खुटक जिन राखहु। दीन बचन मुख ते तुम भाखहु—१०२६। (ख) ग्रपने जिय की खुटक मिटाऊँ—१४४६। (ग) भटक ग्रति सब्द भयो खुटक नृप के हिए ग्रटक प्रानन परयो चटक करनी—२६०६।

खुटकना—कि. स. [सं. खुड्या खुंड] (ऊपरी भाग) खुटकना या तोड़ना।

खुटचाल-संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटी + चाल] (१) दुष्टता, नीचता। (२) दुरा त्राचरण। (३) उपद्रव।

खुटचाली—िव. [हिं. खुटचाल + ईं (प्रत्य.)] (१) दुष्ट, नीच। (२) दुराचारी। (३) उपद्रवी। खुटना—िक. ग्र. [सं. खुड] खुलना।

कि. ग्र. [हिं, छुटना] सम्बन्ध छोड़ देना, ग्रलग होना।

कि. श्र. [सं. खुड् या हिं. खोट] समाप्त होना। खुटपन, खुटपना—संज्ञा पुं. [हिं. खोटा + पन, पना (प्रत्य.)] दोष, ऐव।

खुटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटाई] खोटापन, दोष। खुटाना—कि. श्र. [सं. खुड्= खोंडा, खोट] समाप्त होना।

खुटिला—संज्ञा पुं. [देश.] कान में पहनने का फूल या गहना। उ.—(क) नक बेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुन जुग उतंग को —१०४२। (ख) सिस मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिला खुभी जरायज री—ए. ३४५ (४१)।

खुतबा—संज्ञा पुं. [श्र.] (१) प्रशंसा । (२) सामयिक राजा की प्रशंसा-घोषणा ।

खुत्थी, खुथी—संशा स्त्री. [हिं. खूँटी] (१) श्रनाज कट जाने पर पृथ्वी में गड़ा रहनेवाला पेड़ का भाग। (२) थाती, धरोहर। (३) धन, संपत्ति।

खुद्गरज्ञ—वि. [फ़ा.] स्वयं, श्राप।
खुद्गरज्ञ—वि. [फ़ा.] स्वार्थी, मतलबी।
खुद्गा—कि. श्र. [हिं. खोदना] खोदा जाना।
खुद्मुख्तार—वि. [फा.] जिसपर किसी का दबाव न हो, स्वच्छन्द।

खुद्मुख्तारी—संशा स्त्री. [हिं. खुदमुख्तार] स्वच्छन्दता। खुद्वाना—[हिं. खोदना] खोदने का काम कराना। खुद्दा—संशा पुं. [फ़ा. ख़ुदा] ईश्वर।

थो.— खुदा न ख्वास्ता [फा. ख़ुदा न ख़्वा-स्ता] ईश्वर न करे कि कहीं ऐसा (ख़ुरा, अनिष्ट) हो।

मुहा.—खुदा ख़ुदा करके-बड़ी कठिनता से। खुदा की मार—ईश्वरीय कोष। खुदाई—संज्ञा स्त्री. [फा ख़ुदाई] (१) ईश्वरता। (२) ईश्वर की रची सृष्टि।

संज्ञा स्त्रीं. [हिं. खोदना] (१) खोदने का भाव। (२) खोदने की किया। (३) खोदने की मजदूरी। खुदाव—संज्ञा पुं. [हिं. खोदना] खोदने की किया या भाव। खुदी—संज्ञा पुं. [हिं. खुद] (१) म्रहंभाव। (२) घमगड।

खुनकी—संज्ञा स्त्री, [फा] ठंडक।

खुनखुना—नि. [श्रनु.] खन खन शब्द करके। उ.— खुनखुनाकर हँसत हरि, हर नचत डमरु बजाह— १०-१७०।

संज्ञा पुं. [अनु .] अनु अनु नामक खिलौना। खुनस — संज्ञा स्त्री. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध, गुस्सा। खुनसिन — संज्ञा सिवि. [हिं. खुनसाना] क्रोध से, रिसाकर उ. — सूर इते पर खुनसिन मिरियत अधी पीवत मामी —३०८०।

खुतसाना—कि. श्र. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध करना, गुस्सा होना।

खुनसी — वि. [हिं. खुनसाना] क्रोधी।

खुनुस—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुनस] क्रोध, रिस, फुँफलाहट। उ.—कौन करनी घाटि मोसों, सो करों फिरि कॉंधि। न्याइ के नहिं खुनुस की जै, चूक पल्लें बाँधि—१-१६६।

खुबानी—संशा स्त्री [फ़ा. ख़ूबानी] एक प्रकार का मेवा, जरदालू, कुश्मालू। उ.—श्रीफल मधुर, चिरौंजी श्रानी। सफरी चिउरा, श्रहन खुबानी—१०-२११।

खुभना—कि. स. [श्रन.] चुभना, धँसना। खभराना—कि. श्र. [सं. च्रब्ध] उमड्ना. इतर

खुभराना—कि. ग्र. [सं. चुब्ध] उमड़ना, इतराना, इठलाना।

खुभाना — कि. स. [हिं. खुभना] चुभाना,गड़ाना।
खुभिया, खुभी — संज्ञा स्त्री [हिं. खुभना] (१)
कान में पहनने का एक गहना जो लोंग की तरह
का होता है श्रीर 'लोंग' ही कहलाता है। उ.—
सिंस मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिल खुभी
जरायज री — ए. ३४५ (४१। (१) पीतल, सोने
या चाँदी का छन्ना या खोल जो हाथी के दाँत पर

खदाया जाता है। उ.—मोतिनहार जलाजल मानो खुभी दंत भलकाव।

खुमान—वि. [सं. त्रायुष्मान] बड़ी श्रायुवाबा, त्रायुष्मान।

संज्ञा पुं.-शिव जी ।

खुमार, खुमारि खुमारी—संशा स्त्री. [श्र. ख़ुमार]
(१) मद, नशा | उ.—(क) जब जान्यो ब्रजदेव
सुरारी | उतर गई तब गर्व खुमारी | (ख) तरुनी
स्यामरस मतवारि | प्रथम जोबन रस चढ़ायो श्रातिहि
भई खुमारि | (२) नशा उतरने की दशा । (३)
रात में जागने की दशा ।

खुमी—संज्ञा स्त्री. [ऋ. कुम:] एक छोटा पौधा जो पत्र पुष्प रहित होता है।

संशा स्त्री. [हं. खुभना] (१) सोने की की ल जो दाँतों में जड़ी जाती है। (२) धातु का पोला छुल्ला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ.— गति गयंद कुच कुंभ कि किनी मनहु घंट भहनावै। मोतिनहार जलाजल मानो खुमी दंत भलकावै।

खुमहारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुमारी] नशे की खुमारी, ग्रालस्य। उ.—कबहूँ इत कबहूँ उत डोलन लागी प्रीति खुमहारि।

खुरंट,खुरंड—संज्ञा स्त्री. [सं. तुर = खरोचना + ग्रंड] सूखं घाव की पपड़ी।

खुर—संज्ञा पुं. [सं. चुर] (१) सींगवाले चौपायों के पैर का निचला भाग जो बीच से फटा होता है। उ.—(क) मनह चलत चतुरंग चमू नम बाढ़ी है खुर खेह—२८२० (ख) माधी, नैकुँ इटकी गाइ। ""। भुवन चौदह खुरिन खूंदित, सुधौं कहाँ समाइ—१-५६। (२) चारपाई, चौकी, कुर्सी के पाए का निचला भाग जो भूमि से लगा रहता है।

खुरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुरक] खुरका, ग्रंदेशा।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिल का पेड़। (२)
एक नाच।

खुरचन—संशा स्त्री. [हिं. खुरचना] (१) खुरच कर निकाली हुई वस्तु। (१) गाढ़ी रबड़ी। खुरचना—संशा स्त्री. [सं. चुरण] कुरेदना, करोना, करोचना। खुरचाल—संशा स्त्री. [हिं. खोटी + चाल] (१) दुष्टता। (२) बुरा श्राचरण।

खुरचाली—वि. [हिं. खुरचाल] (१)दुष्ट। (२) जिसका आचरण अच्छा न हो।

खुरतार—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर + ताइन] टाप, खुर या सुम की ठोकर। उ.—धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार—२८२६।

खुरया—संज्ञा [सं. चुरप] घास छीलने का स्रोजार। खुरमा—संज्ञा पुं. [स्र.] (१) एक प्रकार की मिठाई। (२) छोहारा।

खुरहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर + हर (प्रत्य.)] (१) खुर का चिह्न। (२) पतली पगडंडी।

खुराक—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) भोजन। (२) श्रोषध की मात्रा।

खुराकी — संशा स्त्री. [फ़ा.] भोजन के लिए दिया जाने वाला धन।

खुरुक-संज्ञा पुं. [हिं. खुटका] खटका, आशंका।

खुलना — कि. श्र. [सं. खुड, खुल=भेदन] (१)
श्रावरण हटना, परदा न रहना । (२) तितर-बित्र
हो जाना । (३) फटजाना, छेद होना। (१) बंधन
छूटना। (१) बँधी वस्तु का छूटना। (६) कार्य
श्रारंभ होना। (७) (बात का) प्रकट हो जाना।
(८) भेद बताना। (१) सुहाना, श्रच्छा जगना।

खुला — वि. पुं. [हिं. खुलना] (१) जो बँधा न हो। (२) बाधारहित। (३) स्पष्ट, प्रकट।

खुलासा—संशा पुं. [ग्र.] सारांश।

खुली—क्रि. श्र. [हिं. खुलना] (१) प्रकट हुई। (२) स्त्रूटी। (३) शोभित हुई, फली। उ.—ते सब तिज श्रील कहत मिलन मुख उज्बल भरम खुली—३२२१।

खुले—िक. ग्र. [हिं. खुलना] मुक्त, खुल रहे, बंद न रहे, जुड़े या जड़के न रहे। उ.—बंदि-बेरी सबै छूटी, खुले बज्र कपाट—१०-५।

खुल्लमखुल्ला—िक. वि. [हिं. खुत्तना] प्रकट या प्रत्यच रूप से, खुले ग्राम।

खुबारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ख्वारी] (१) बरबादी। (२) बदनामी, श्रपमान।

खुश—वि. [फ़ा खुश] (१) प्रसन्न। (२) श्रच्छा, भता।

खुशामद—संशा स्त्री. [फा] चापल्सी, चाडुकारी। खुशामदी—वि. [हिं. खुशामद + ई (प्रत्य.)] (१) चापल्स, चाडुकार। (२) मालिक की सब तरह से सेवा करनेवाला।

खुशियाली—संज्ञा स्त्री. [फ्रा. खुशी] (१) खुशी, प्रसन्नता। (२) कुशल।

खुशी—संशा स्त्री. [फ़ा. खुशी] ग्रानंद, प्रसन्नता। खुसामित —संशा स्त्री. [हिं. खुशामद] चादकारी, चापलूसी।

खुसाल, खुस्याल—िव. [फा. खुशहाल] खुश, प्रसन्न । खुही—संशा स्त्री. [सं. खोलक] लपेटा हुम्रा वस्त्र जिसे शरीर के ऊपरी भाग की रक्षा के लिए सिर पर बाँधते हैं।

खूँखार—वि. [फ़ा.] (१) हिंसक। (२) कूर।

खूँट—संज्ञा पुं. [सं. खंड] (१) छोर, कोना। उ.—
(क) नीलांबर गिह खूँट चूनरी हँसि हँसि गाँठि
जुराइ हो—२४३६। (ख) हा हा करित सबिन सों
में ही कैसेहु खूँट छुँड़ावित—८६५। (ग) नैना
भगरत आह के मोसों री माई। खूँट घरत हैं धाइ
के चिल स्थाम दुहाई—ए. ३३३ (२८)। (२) औट,
तरफ। (३) भाग।

संज्ञा स्त्री. [सं. खंड] कान में पहनने का एक बड़ा गहना, बिरिया, ढार।

संशा स्त्री. [हं. खूँटना] रोक-टोक, पूछताछ । खूँटना—िक. स. [सं. खंडन = तोड़ना] (१) पूछताँ छ करना, टोंकना। (२) छेड़ना। (३) घट जाना। खूँटा—संशा. पुं. [सं. चोड] (१) बड़ी मेख। (२) गड़ी हुई खकड़ी।

खूँटी—संज्ञा स्त्री. [हं, खूँटा] (१) छोटी मेख। (२) सूखा डंठल। (३) सीमा। (४) लकड़ी का छोटा दुकड़ा जो कुछ श्रटकाने के लिए किसी भीत में जड़ा या लगाया जाता है।

खूँद—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँदना] (१) थोड़ी जगह में घोड़े का धीरे धीरे चलना या पैर पटकना। (२) उछल-कूद। खूँदति - कि. ग्र. [हिं. खूँदना] पैरों से रोंदती है, उछल-कूद कर खराब करती है। उ. - भुवन चौदह खुरनि खूँदति सु घों कहाँ समाइ--१-५६।

खूँदना — कि. श्र. [सं. खुंदन = तोड़ना] (१) पैर पटकना, उछल-कूद करना। (२) पैरों से रोंदना। (३) कूटना, कुचलना।

खूआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक मिठाई या पकवान। उ.—दोना मेलि धरे हैं खुश्रा। हौंस होइ तो ल्याऊँ पुश्रा—-१०-३६६।

ख्क, ख्खू - संज्ञा पुं. [फ़ा. खूक] सुअर।

ख्भा—संज्ञा पुं [सं. गुद्ध, प्रा. गुज्म] (१) फल का रेशेदार भाग जो बेकार समक्षा जाता है। (२) उलका हुआ लच्छा जो काम न आ सके। (३) एक पेड़। उ.—खूका मरुआ कुंद सों कहें गोद पसारी। वकुल बहुलि बट कदम पे ठाढ़ीं ब्रजनारी—१८२२।

खूको—संज्ञा पुं. [हि. खूका] एक पेड़। उ.—खूको मरबो मोगरो मिलि कूमकहो—-२४४५ (३)।

खूटना—िक. श्र. [सं. खुंडन] (१) हकना, बंद होना। (२) चुकना, समाप्त होना।

कि. स. [सं॰ खुंड] छेड़ना।

खुटा—वि. [हिं. खोटा] बुरा, ऋरसिक, नीरस। उ.— प्रभु ज, हों तो महा श्रधमीं। । चुगुल, ज्वारि, निर्देय ऋपराधी, सूठो, खोटो, खूटा—१-१८६।

खूटी—िक. श्र. स्त्री. [हिं.खूटना] (१) रुक गयी, बंद हुई। (२) चुक गयी, समाप्त हो गयी। उ.—(क) कागज गरे मेघ मिस खूटी सर दौ लागि जरे। सेवक सूर लिखेते श्राघो पलक कपाटश्ररे। (ख) तुम्हरेदेस कागर मिस खूटी—१० उ.-८०। (३) मिट गयी, नष्ट हो गयी, निश्चित न रही। उ.—सुरवासुर छल बोलवारी गढ़ श्रत्र श्रवधि भिति खूटी—२७५०।

खूटे—िक. श्र. [हिं. खूटना] समाप्त हो गया, चुक गया। उ.—चिर मास बरसे जल खूटे हारि समुफ्त उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी श्रकथ कहानी—३४५७। खून—संज्ञा पुं. [फ़ा. खून] (१) रक्त, लहू। (२) वध, हत्या।

खूब-वि. [फ़ा. खूब] ग्रच्छा, भला।

कि. वि.—- अच्छी तरह से।
खूबसूरत— थि. [फ़ा. खूबसूरत] सुंदर।
खूबसूरती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ूबसूरती] सुंदरता।
खूबानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ूबानी] एक मेवा।
खूबी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. ख़ूबी] (१) भलाई, अच्छाई।

(२) विशेषता।

खूसट — संज्ञा पुं० [सं. कौशिक] उल्लू. घुग्यू।

वि. — जिसे आमोद प्रमोद व रुचे, अरसिक।

खूसर—वि. [हिं. खूमट] श्रारंसिक, शुप्क हृदय। संज्ञा पुं.— उत्लू।

खेई—क्रि. स. [सं. च्लेपण, प्रा. खेवण, हिं. खेना]
नाव चलायी थी। उ.—मो देखत पाइन तरे, मेरी
काठ की नाई । मैं खेई ही पार कौं, तुम उलिट
मँगाई—६-४२।

संज्ञा स्त्री. [देश.] भाड़ भंखाड़।

खेकस', खेखसा—संज्ञा पुं. [देश.] एक फल। खेचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश में विचरनेवाला। (२) ग्रह। (३) तारा। (४) वायु। (४) देवता।

(६) पत्ती। (७) बादल। (८) शिव।

खेट—संज्ञा पुं. [सं.] (३) गाँव, खेड़ा। (२) घोड़ा। (३) ग्राखेट, शिकार। (४) एक श्रस्त्र।

खेटक—संज्ञा पुं [सं.] (१) गाँव, खेड़ा। (२) बलदाऊ जी की गदा।

संज्ञा पुं. [सं. श्राखेट] शिकार, मृगया। खेटकी—संज्ञा पुं. [सं.] भडुर, भडुरी, भडेरिया। संज्ञा पुं. [सं. श्राखेट] (१) खिलाड़ी, शिकारी। (२) विधिक।

खेड़—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] गाँव। उ.—द्रुम चिंह काहे न हेरी कान्हा, गैयाँ दूरि गईँ। । । छाँड़ि खेड़ सब दौरि जात हैं, बोली ज्यों सिखई। स्रदास प्रभु-प्रेम समुभि के, मुरली सुनि ग्राइ गई —६१२। खेड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खेट] छोटा गाँव। खेड़े—संज्ञा पुं. [हं. खेड़ा] छोटा गाँव।

मुहा.—खेड़े की दूब—दुर्बल, तुच्छ। उ.—नंद नँदन ले गए हमारी सब ब्रज कुल की जब। सूर स्याम तिज श्रौरे स्भे ज्यों खेड़े की दूब—३३६१। खेत—संज्ञा पुं. [सं. चेत्र] (१) जोतने-बोने-योग्य धरती। मुहा.—उबरे खेत—सुधर जाय, उद्घार हो जाय। खूब फूले-फले। उ.—रे मन, राम सौं करि हेत। हरि-भजन की बारि करिलें, उबरे तेरी खेत—१-३११। खेत करना—भूमि बराबर करना। खेत रखना—रखवाली करना।

(२) तैयार फसला । (३) युद्धतेत्र । उ.—(क) मूर्छित सुभट हो नहीं राखिये खेत में, जानि यह बात में इहाँ ल्यायो—१० उ.- ५६। (ख) जैसे सुभट खेत चिह धावै—ए. ३१६। (४) युद्ध। उ.—तापर बैठ कृष्न संकर्षन जीते हैं सब खेत—५६६ सारा.।

मुहा, — खेत त्राना — युद्ध में मारा जाना। खेत करना — लड़ना। खेत छोड़ना — युद्ध से भागना। खेत रखना — युद्ध जीतना। खेत रहना — मारे जाना।

(१) संसार, राज्य, ऐश्वर्य । उ.—ऊँचे चिंद दसरथ लोचन भरि सुत मुख देखे लेत । रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँ जब क्यों यह खेत—९ ३६। (६) स्थान, त्रालय।

मुहा.—नील को खेत—ऐसा स्थान जहाँ दोष, पाप श्रीर कलंक का भागी बनना पड़े। उ.—मजन बिनु जीवत जैसे प्रेत •••। सेवा नहिं भगवंत चरन की भवन नील को खेत—२-१५।

खेतिहर—संज्ञा पुं. [सं. चेत्रघर] खेती करनेवाला, किसान। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत। जैसे प्रथम श्रसाद —श्राँजु-तृन, खेतिहर निरिख उपाटत—१-१०७।

खेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेत + ई (प्रत्य.)] (१) कृषि, किसानी। (२) बोई हुई फसला।

खेद-संज्ञा पुं. [सं.] (१) अप्रसन्नता, दुख। (२) दुख का प्रसंग। उ.—करौं मनोरथ पूरन सबके इहि

श्रंतर इक खेद उपायो—ए. ३४० (६६)। (३) थकावट, ग्लानि। (४) भय, श्राशंका। उ.— फूले द्विजसंत-बेद, मिटि गयौ कंस-खेद, गावत बधाई सूर भीतर बहर के—१०-३४।

खेदना—िक. स. [सं. खेट] मारकर भगाना । कि. स.—िशकार का पीछा करना।

खेदा—संज्ञा पुं. [हिं. खेदना] (१) हिंसक पशुत्रों को घेरकर निर्दिष्ट स्थान पर जाना। (२) शिकार।

खेदित — वि. [सं.] (१) खिन्न। (२) थका हुम्रा। खेना — क्रि. वि. [सं. चेपण, प्रा. खेवण] (१) नाव चलाना। (२) समय काटना, बिता देना।

खेप—संज्ञा स्त्री. [सं. क्तेप] (१) एक बार लादा जाने वाला बोभा। उ.—श्रायो घोष बड़ो ब्योपारी। तादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में श्रानि उतारी। (२) नाव, गाड़ी की एक बार की यात्रा।

संज्ञा स्त्री. [सं. त्र्राच्चेप] दोष। संज्ञा स्त्री.—खोटा सिक्का।

खेपना—कि. स. [सं. चेपण] बिताना, (समय) काटना। खेम—संज्ञा पुं. [सं. चेम] कुशला। खेमटा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक ताला। (२) एक

गाना या नाच।

खेमा—संज्ञा पुं. [श्र.] तंबू, डेरा। खेरा—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] गाँव।

खरे—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं. खेड़ा] गाँव।

मुहा,— खेरे के देवन— निर्जन स्थान के देवी देवता। उ.—जो ऊजर खेरे के देवन को पूजे को मानै। तो हम विनु गोपाल भए ऊघो कठिन प्रीति की जानै—३४०६।

खेरो, खेरो—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं.खेड़ा] गाँव। उ.—
(क) वन में जाइ करो कौत्हल, यह अपनौ है खेरों—
१०-२१६। (ख) इक उपहास त्रास उठि चलते
तिज के अपनो खेरो—१० उ.-१२४। (ग) विछुरत
भेंट देहु ठाढ़े हैं निरखो घोष जन्म को खेरो—२५३२।
खेरौरा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँड + छोरा (प्रत्य.)] खाँड
या मिसरी का लड्डू, आोला।

खेल-संज्ञा पुं. [सं. केलि] (१) मन बहलाने या

व्यायाम के उद्देश्य से किया गया काम, कीड़ा, विला। उ.—कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर, हरत विलम्बन लावै। ताकों लिए नंद की रानी नाना खेल खिलाबै—१०-१२६।

मुहा.—खेल जम्यो-अच्छी तरह खेल होने लगा। उ.—बटा धरनीडारि दीनौ ले चले ढरकाइ। आपु अपनी घात निरखत खेत जम्यौ बनाइ—१०-२४४।

(२) बात, प्रसंग। (२) साधारण काम। (४) काम-क्रीड़ा। (४) स्वाँग, तमाशा। (६) विचित्र व्यापार।

खेतक — संज्ञा पुं. [हिं. खेतना] खिलाड़ी। खेलत— कि. श्र. [हिं. खेतना] खेल खेल कर। उ.— बालापन खेतत हीं खोयो— १-५७।

मुहा.—खेलत-खात रहे— ग्रानन्द से जीवन बिताया, निश्चित रहकर दिन बिताये। उ.— खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्ही जाति तनिक धन इंतर —१०४२। (ख) बाद-विबाद सबै दिन बीते खेलत ही ग्रफ खात—२-२२।

खेलन—कि. श्र. [हं. खेलना] खेलने के लिए। उ.— (क) नृप-कन्या तहँ खेलन गई—६-३। (ख) बीरा खायचले खेलन को मिलिके चारों बीर—१८६ सारा.। संज्ञा पुं.—खेलना, खेल । उ.—श्रवहीं नेकु खेलन सीखे हैं, यह जानत सब लोग—७७४।

खेलना—कि. श्र. [सं. केलि,केलन] (१) मन बहलाने के लिए दौड़ना-कूदना श्रादि । (२) भोग-विलास । (३) श्रा बहना।

कि. स.— मन-बहुलाव के साथ-साथ हार-जीत के विचार से कोई किया करना। (२) जी बहुलाना। (३) अभिनय करना।

खेलवाड़, खेलवार—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + वार (प्रत्य.)] (१) खिलाड़ी। (२) खेल, तमाशा। (३) विनोद।

खेलवाड़ी, खेलवारी—िव. [हिं. खेलवाड़ + ई प्रत्य)]
(१) बहुत खिलाड़ी। (२) बड़ा विनोदी, हँसमुख।
खेला—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेल] विनोद, मन-बहलाव।
खेलाइ—िक. स. [हिं. खेलाना (प्रे.)] बहलाना,

उत्तमाये रखना । उ.—नवल श्रापुन बनी नवेली नागर रही खेलाइ—२६७६।

खेलाड़ी—वि. [हिं. खेल + ग्राड़ी (पत्य.)] (१) खेल ने-बाला। (२) विनोद्धिय।

संज्ञा पुं. [हं, खेज] (१) खेलनेवाला व्यक्ति। (२) तमाशा करनेवाला। (३) ईश्वर।

खेलाना - कि. स. [हिं. खेत] (१) खेल में लगाना। (२) खेल में सम्मिलित करना। (३) बह-लाना।

खेलार—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + त्र्यार (भत्य.)] खिलाड़ी। उ.—कर लिए डफहि बजावे हो हो सनाक खिलार होरी की—२४०१।

खेलि — कि. श्र. [हं. खेतना] खेल-कूद कर। उ.— स्रदास भगवंत भजनु बिनु, चले खेलि फागुन की होरी— १-३०३।

खेलिये कि. श्र. [हिं. खेलना] मन बहलाश्रो, खेलो । उ.—श्रावहु हिलि मिलि खेलिये—१८१४। खेलिही—कि. श्र. [हिं. खेलना] खेल खेलना । उ.— साँभ भई घर श्रावहु प्यारे । दौरत कहीं चोट लिगिहै कहुँ, पुनि खेलिही सकारे—१०-२२६।

खेली—िक. श्र. स्त्री. [हिं. खेलना] दौड़ी-धूपी, कीड़ा की।

मुहा.—प्रान जात हैं खेली—प्राणों पर आ बनी है, प्राण निकलने ही वाले हैं। उ.—बिरह ताप तन अधिक जरावत जैसे दव द्रुम-वेली। सूरदास प्रभु - बेगि मिलावों, प्रान जात है खेली—६-६४।

खेलें—िक. श्र. [हिं. खेलना] खेलता है, कीड़ा करता है। उ.—सब रस की रस प्रेम है, (रे) बिषयी खेल सार। तन-मन-धन-जोबन खसे, (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५।

खेलीना — संशा पुं. [हिं. खिलीना] खिलीना, खेलने की चीज या साधन।

खेल्यौ—िक. श्र. [हिं. खेलना] खेलना, खेल करना, खेला। उ.—पुनि जब घष्ठ बरस की होइ। इत उत खेल्यौ चाहै सोइ—३-१३।

खेल्योई—कि. श्र. [हिं. खेलना] खेलना ही, खेल में

लगे रहना ही। उ.— रुहिठ करें तासों को खेले, रहे बैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ। स्रदास-प्रभु खेल्योई चाहत, दाउँ दियो करि नंद-दुहैया—१०-२४५। खेवक—संज्ञा पुं. [सं. दोपक] केवट, मल्लाह।

खेवनहार — संज्ञा पुं. [हिं. खेना + हार (प्रत्य.)] (१) खेनेवाला, मल्लाह, केवट। उ. — खेवनहार न खेवट मेरें, अब मो नाव अरी — १-१८५। (२) पार लगानेवाला।

खेवट, खेवटिया—संज्ञा पुं. [हिं. खेना] मल्लाह, माँभी। उ.—दई न जाति खेत्रट उतराई, चाहत चढ़यौ जहाज—१-१०८।

खेत्रना — कि. स. [हिं. खेना] नाव चलाना। खेत्रीया — संज्ञा पुं. [हिं. खेना] खेत्रेवाला, मल्लाह। खेत्रा — संज्ञा पुं. [हिं. खेना] बार, दफा, अवसर। उ. — जुग जुग बिरद यहै चिल आयौ, सत्य कहत अब होरे। स्रदास प्रभु पहिले खेना, अब न बने मुख मोरे — ४८८। (२) नाव खेते का किराया। (३) नदी पार करने का काम। (४) लदी हुई नाव।

खेवाई — संशा स्त्री. [हिं. खेना] (१) नाव चलाना। (२) नाव चलाने की मजदूरी।

खेस—संज्ञा पुं. [देश.] मोटे स्त की चादर।
खेसारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुसर] एक तरह की मटर।
खेह, खेहर—संज्ञा स्त्री. [सं. चार] धूल, राख, खाक,
मिटी। उ.—(क) सरवर नीर भरे, भिर उमड़े,
स्खे, खेह उड़ाहि—१-२६५। (ख) भई देह जो
खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दड़ी—६-१७०।
(ग) लेहु सँभारि सुखेह देह की को राखे इतने
जंजालहिं— ८०२।

मुहा.—बैरिन के मुख खेह — स्त्रियों की एक गाली।

उ.—तनक तनक कळु खाहु लाल मेरे ज्यों बिद्
श्रावें देह। सूर स्याम श्रब होहु सयाने बैरिन के मुँह
खेह—१००४। खेइ खाना—(१) धूल फाँकना,
व्यर्थ समय खोना। (२) बुरी दशा होना।

खेहु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेह] धूल, खाक, राख। उ.— जलके देतु श्रस्व यह लेहु। पितर तुम्हारे भए जु खेहु। सुरसरि जब भुव ऊपर त्रावै। •••। तबहीं उन संबं की गति होइ— ६-६।

खेंचना—िक. स. [हिं. खेंचना] पकड़कर घसीटना।
खेंचि—िक. स. [हिं. खेंचना] (१) खोंचकर, घसीट
कर। (२) लिखकर। उ.—(क) कोंड न समस्य
श्रघ करिवे कों खेंचि कहत हों लोको—१-१३८।
(ख) रेखा खेंचि, बारि बंधनमय, हा रघुचीर कहाँ हो
भाई —१-५१। (३) मंत्र श्रादि का प्रभाव लोटा
ले, प्रभाव दूर कर दे। उ.—इन द्योसिन रूसनो करित
हो करिहों कविंह कलोले। कहा दियो पिंद सीस
स्याम के खेंचि श्रापनो सो ले—२२५५।

खैए—िक. स. [हिं. खाना] खाइए, भोजन की जिए। उ.—सीतत कुंज कदम की छिहियाँ, छाक छहूँ रस खैऐ —४४५।

खेबे -िक. स. [हिं. खाना] खाना-पीना है। उ.-जननि कहति उठो स्याम, जानत जिय रजनि ताम, स्रदास प्रभु कृतालु तुमको कछु खैबे—२३२०।

खैर—संज्ञा पुं. [सं. खदिर] (१) एक तरह का बबूल। (२) कत्था जो पान में डालकर खाया जाता है। संज्ञा पुं. [देश.] एक छोटा पत्ती जो जमीन से सटाकर अपना भोपड़ा बनाता है।

संज्ञा स्त्री. [फा. खैर] चेम-कुशल, भलाई। श्राव्य.—(१) कुछ परवाह नहीं, कुछ चिंता नहीं। (२) श्रस्तु, श्रव्छा।

ख़ैर भैर-संज्ञा पुं. [श्रनु.] (१) शोरगुल । (२) हलचल ।

खैरा—िव. [हिं. खैर] कत्थे के रंग का, कत्थई। संज्ञा पुं.—कत्थई रंग का घोड़ा, कबूतर या बगला।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) तबले की एकताली दून। (२) एक छोटी मछली।

खैरात—संज्ञा पुं. [त्रा. ख़ैरात] दान। खैरियत—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़ैरियत] (१) कुशल। (२) भलाई।

खैरी—ित स्त्री, [हिं. पुं. खैर] कत्थई रंग की। संज्ञा स्त्री.—कत्थई रंग की गाय। उ.—िपयरी, मौरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती। दुलही, फुलही, भौरी, भूरी हाँकि ठिकाई तेती—४४५।

खैलर—संज्ञा स्त्री. [सं, द्वेल] मथानी। खैला—संज्ञा पुं. [सं. द्वेल] मथानी।

खेहैं—िक. स. बहु. [हिं. खाना] खायँगे, भच्चण करेंगे। उ.—या देही कौ गरब न करिये, स्यार-काग-गिध खेहैं—१-८६।

खेहै—कि, स. [हिं. खाना] (१) खायगा, भोजन करेगा।

3.—इतनो भोजन सब वह खेहै—१०१०। (२)
(आघात आदि) सहेगा, (प्रभाव आदि) पड़ने
देगा, (कसम, गम आदि) खायगा। उ.—(क)
नर-त्रपु धारि नाहिं जन हरि कौं, गम की मार सो
खेहै—१-८६। (ख) बड़े गुरू की बुद्ध पढ़ी वह
काहू को न पत्येहै। एकौ बात मानिहे नाहीं सबकी
सौहें खेहै—१२६३।

खोहों—िक. स. [हिं. खाना] खाऊँगा, भत्तग कहँगा।
उ.—(क) लागी भूख, चंद मैं खेहों, देहि देहि रिस
करि विरुक्तावत—१०-१८८। (ख) मैया मैं अपने
कर खेहों घरि दे मेरें हाथ—१०-३१२।

खेही—कि. स. [हिं. खाना] खात्रोगे, भन्नोगे। उ.— दूटे कंघ श्रद फूटी नाकिन, कौलों धों भुस खेही —१-३३१।

खोंइचा—संशा पुं. [हिं. खूँट] आँचल, किनारा। खोखना—कि. श्र. [खों खों से श्रनु.] खाँसना। खोंखल—वि. [हिं. खोंखला] खोंखला। खोंगा— संशा पुं. [देश.] रुकावट, श्रटकाव। खोंगाह—संशा पुं. [सं.] पीलापन लिये सफेद घोड़ा। खोंगह—संशा स्त्री. [सं. कुच](१) किसी चीज से रगड़ कर शरीर छिलना। (२) किसी चीज से फँसकर कपड़ा फटना।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) मुट्टी।(२) एक मुट्टी में जो पदार्थ आ जाय।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोंच] एक तरह का बगुला। खोंचा—संज्ञा पुं. [सं. कुच] वह बाँस जिसके सिरे पर जासा लगाकर पिचयों को फँसाया जाता है। खोंचिया—संज्ञा पुं. [हिं. खोंची] भिखारी।

खोंची—संशा स्त्री. [हं. खूँट] भीख। खोंटना—क्रि. स. [सं. खुंड] (साग ग्रादि वस्तुश्रों को) उपरी भाग नोचना।

खोंटा—वि. [हिं. खोटा] (१) जो शुद्ध न हो। (२) बुरा।

खोंडर, खोंड़र—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] पेड़ का पोला या खोखला भाग।

खोंड़हा खोंड़ा—वि. [सं. खुंड] जिसके ग्रंग (विशेषत: ग्रांग के दाँत) दूटे हों।

खोंतल—संज्ञा पु. [हिं. खोंता] घोंसला, खोंता। खोंता, खोंता। खोंता, खोंथा—संज्ञा पुं. [हिं. घोसला] चिड़ियों का घोंसला।

संशा पुं. [हिं, खोंचा] नुकी ली वस्तु में फँसने से कपड़े का फटा हुआ भाग।

खोंपना—कि. स. [हिं. खोभना] गड़ाना, चुभाना। कि. स. [हिं. खोंप] खोंप या खोंटा सिक्का। खोंपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोंता, खोंथा] वस्त्र का कील आदि से फटा हुआ भाग।

संशा पुं. [हिं. खोपना] (१) हल की लकड़ी जिसमें फाल लगता है। (२) छाजन का कोना।

खोंसत—िक. स. [हं. खोसना] ग्राटकाते हैं, घुसेड़ते हैं, खोंसते हैं। उ.—सखी री, मुरली लीजे चोरि। ""। छिन इक घर-भीतर, निसि बासर, घरत न कबहूँ छोरि। कबहूँ कर, कबहूँ ग्राधरनि, किट कबहू खोंसत जोरि—६५७।

खोंसना—िक. स. [सं. कोश + ना (प्रत्य.)] (१) किसी वस्तु को सुरिच्चत रखने विचार से जेब, टेंट या श्रंटी श्रथवा श्रन्य किसी वस्तु में घुसेड़ना, श्रटकाना या लपेटना । (२) धँसाना, चुमाना, घुसेड़ना।

खोत्रा—संज्ञा पुं. [हिं. खोवा] दूध से बना एक पदार्थ, खोवा, मावा।

खोइ—िक. स. [हिं. खोना] (१) खोकर, नष्ट करके। उ.—रंक सुदामा कियो इन्द्र-सम, पांडव-हित कौरव दल खोइ—१-६५। (२) मिटाकर, दूर करके। उ.—याकें मारें हत्या होइ। मनि लें छाँड़ो सोभा खोइ—१-२८६।

यौ.—जात खोइ—खो जाता है, दूर होता है, मिट जाता है। उ.—नंद को लाल उठत जब सोइ। ।।। मुनि मन हरत, जुवति जन केति क, रित-पित मान जात सब खोइ—१०-२१०।

खोइया— संज्ञा स्त्री. [हिं. खोई] (१) ऊख के नीरस डंउल। (२) धान की खीज, लाई।

खोइसि—कि. स. [हिं. खोना] खो दिया, नष्ट कर दिया। उ.—रे मन, जनम श्रकारथ खोइसि। हरि की भिक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि —१-३३३।

खोई—संशा स्त्री. [सं. चुद्र] (१) अखदंडों के वे डंठल जो रस पेल लिये जाने पर कोल्हू में रह जाते हैं, छोई। उ.—(क) यम ले ले त्रोटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६६। (ख) हरि-सरूप सब घट यों जान्यो। अख माहिं ज्यों रस है सान्यो। खोई तन, रस त्रातम-सार। ऐसी विधि जान्यो निरधार—३-१३। (२) भुने हुए धान की खील, लाई।

कि. स. [हिं, खोना] खो दिया, गवाँ दिया। उ.—जो रस सिव सनकादिक दुर्लभ सो रस बैठे खोई—२८८१।

खोऊँ —िक. स. [हिं. खोना] (१) खोऊँ, गवाँऊँ। (२) बिताऊँ। उ.—कछु दिन जैसे तैसे खोऊँ दूरि करौं पुनि डर कौं—७३८।

खोए—कि. स. [हिं. खोना] व्यर्थं कर दिये, बिता दिये, नष्ट कर दिये । उ.—किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए—१-५२।

खोखर—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया जाता है।

खोखला—िव. [हिं. खुक्ब —ेला (प्रत्य.)] (१) जिस वस्तु के भीतर कुछ न हो,जो वस्तु पोली हो । (२) जिस बात या कथन में कुछ सार न हो।

संज्ञा पुं.—(१) पोली या खाली जगह। (२) बड़ा छेद।

खोखा—संज्ञा पुं. [हिं. खुब्ख] वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो।

संज्ञा पुं. [बँ. खोका] बालक, लड़का।

खोचिकल—संज्ञा पुं. [देश.] घोंसला, खोंता। खोचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोंच] (बातों का) घाव, आघात, चोट। उ.—धृग वे मात पिता धृग भ्राता दंत रहत मोहिं खोंचन। सूर स्थाम मन तुमहिं लुभानों हरद चून रँग रोचन—१५१७।

खोज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोजना] (१) चिह्न, निशान, पता। उ.—(क) हम तिहुँ लोक माहिं फिरि आए। अस्व खोज कतहुँ नाहिं पाए—६-६। (ख) राखौं नहिं काहू सब मारौं। अज गोकुल को खोज निवारौं—१०४३।

मुहा. - खोज मिटाना — ऐसा नाश करना कि चिह्न तक न रहे।

(२) श्रनुसंघान, शोध। (३) पता पाना, द्वॅहना, तलाश। उ.—ये सब मेरेहि खोज परी। मैं तो स्याम मिली नहिं नोके श्राजु रही निसि संग हरी —१६१७।

मुहा.—परयो है खोज हमारे—हमारी खोज में है, हमारे पीछे पड़ा है। उ.—(क) नन्द घरनि यह कहित पुकारे। कोउ बरखत, कोउ अगिनि जरावत दई परयो है खोज हमारे—प्रध्य। (ख) स्वर्गिह गए कंस अपराधी परयो हमारे खोज। हिन्ट से टारि ध्यानह ते टारत वाऊ सबको चोज—३३४८।

(४) पहिए या पैर का चिह्न।

मुहा.—खोज मारना—पृथ्वी पर पड़े चिह्न इस तरह नष्ट करना जिससे उनके सहारे कोई कुछ पता न लगा सके।

खोजक—िव. [हं. खोज+ क (प्रत्य)] द्वॅं इनेवाला। खोजत—िक. स. [सं. खुज=चोराना] खोजते या द्वॅं इते हैं। उ.—(क) खोजत जुग गए बीति, नाल को अन्त न पायो—२-३६ । (ख) खोजत नाल कितो जुग गयौ—२-३७।

खोजना—क्रि. म. [सं.खुज=चोराना] द्र्हना, तलाश करना।

खोजिमिटा—िव. [हिं. खोज + मिटना] जिसका नाम-

खोजवाना—कि. स. [हिं. खोजना] खोज कराना, ढुँदवाना। खोजा—संज्ञा पुं. [फा. ख़्वाज:] (१) नपुंसक व्यक्ति। (२) सेवक। (३) सरदार।

खोजाना-कि. स. [हिं. खोजना] खोज कराना।

खोजि—िक. स. [हिं. खोजना] खोजकर, द्वॅडकर। उ.—के प्रभु हारि मानि के बैठो, के करी बिरद सही। सूर पतित जो भूठ कहत है, देखों खोजि बही—१-१३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] चिह्न, निशान, पता। उ.—राखौं नहिं काहू सब मारौं। वज गोकुल को खोजि (खोज) निवारौं—१०४३।

खोजी—वि. [हिं. खोज + ई प्रत्य.)] द्वँ इनेवाला। खोजु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] चिह्न, निशान, पता। उ.—छिन मैं वरिष प्रलय जल पाटौं खोजु रहे नहिं चीनो—६४५।

खोजो — कि. स. [हिं. खोजना] पता लगात्रो, खोज करो। उ. — जद्यपि सूर प्रताप स्थाम को दानव दूरि दुरात। तद्यपि भजन भाव नहिं ब्रज बिनु खोजो दीपै सात—३३५१।

खोट-मंज्ञा स्त्री. [सं. खोट-खोंड़ा (दूषित)] (१) दोष,ऐब, खुराईं। उ.—(क) पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यों न कोऊ खोट—१-१३२। (ख) सूरदास पारसके परसें मिटति लोह की खोट—१-२३२। (२) अच्छी चीज में खुरी का मिलाया जाना। (३) बुरी चीज जो अच्छी में मिलायी जाय।

वि.—बुरा, दुष्ट। उ.—हरि पटतर दे हमहिं लाजावत सकुच नहिं श्रावत खोट कवि.—१२६५। खोटत, खोटता—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोट] बुराई, खोटा-पन। उ.—श्रमरापति चरनन पर लोटत। रही नहीं मनमें कछु खोटत—१०६६।

खोटनि—सवि. वि. [सं. खोट + नि (प्रत्य.)] बुरों को, दुष्टों या पापियों को । उ.—ऐसौ श्रॅंघ श्रधम, श्रवि. बेकी, खोटनि करत खरे—१-१६८।

खोटपन—संज्ञा पुं. [हिं. खोटा + पन] खोटाई। खोटा—वि. पुं. [हिं. खोट] (१) बुरा, ऐब से युक्त। (२) जो असली या शुद्ध न हो। मुहा.—खोटा-खरा—बुरा-भला। खोटा खाना— ग्रनुचित उपायों से कमाकर खाना। खोटा-खरा कहना— बहुत डाँटना-फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटा-ई (प्रत्य.)] (१) बुराई, दुष्टता। (२) छल, कपट। (३) दोष, ऐब।

खोटाना—कि. श्र. [हिं. खुटाना] समाप्त होना। खोटापन—संज्ञा पुं. [हिं खोटा + पन (प्रत्य.)] खोटाई, दोष।

खोटी—िव. स्त्री. [हिं. पुं. खोटा] (१) अनुचित, दूषित। उ.—(क) जो चाहौ सो लेहु तुरत हीं, छाँड़ी यह मित खोटी—१०-१६३। (ख) खोटी करनी जाहि मेरे की सोई करे उपादि—११३२। (२) खरी, दुष्ट प्रकृति या स्वभाववाली। उ-—(क) बन भीतर जुवितन कों रोकत हम खोटी तुम्हरे ये हाल-१०१२। (ख) जे छोटी तेई हैं खोटी साजित माजित जोरी—१६२१।

खोटे—वि. [हं. खोटा] (१) ब्ररे, दुष्ट, जिसमें कोई दोष हो, दूषित, 'खरा' का उलटा। उ.— हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, भिक भिक डारि दयौ— १-६४। (ख) स्रदास प्रभु वै श्रित खोटे यह उनहीं ते श्रित ही खोटी—१४७६। (ग) परम सुसील सुलच्छन नारी तुमहिं त्रिमंगी खोटे हौ—२०६१। (घ) सब खोटे मधुबन के लोग -३०५२। (२) छल कपटयुक्त। उ.—श्रंजित के जल ज्यों तन छीजत खोटे कपट तिलक श्रक मालहिं—१-७४।

खोटो, खोटो—िव. [हिं. खोटा] दूषित, बुरा, दुष्ट। उ.—(क) चुगुल, ज्वारि, निर्दय, श्रापराधी, भूठौ, खोटो-खूटो—१-१८६। (ख) सूरदास गथ खोटो काते पारिब दोष धरे—पृ.३३१।

मुहा.—खोटौ खायौ है—बेईमानी या बुरी तरह से कमाकर खाया है। उ.—फाटक दै के हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी। धुर ही ते खोटौ खायौ है, लिए फिरत सिर भारी—३३४०।

खोड़—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] छेद जो लकड़ी सड़ने पर वृत्त में हो जाता है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटा] ऐवी या श्रज्ञात शक्तियों का कोप।

खोड़रा—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] छेद जो सड़ने पर चृत्त की लकड़ी में हो जाता है।

खोद—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ोद] सैनिकों का टोप। संज्ञा पुं. [हिं. खोदना] पूछ-ताँछ।

खोदई—संज्ञा पुं. दिश.] एक पेड़।

खोदना—िक. स. [सं. खुद = भेदन करना] (१) मिट्टी हटाना, गड़हा करना, खनना। (२) उखाड़ना, गिराना। (३) नक्काशी करना। (४) छेड़-छाड़ करना। (४) उसकाना, उत्तेजित करना।

खोदनी—संशास्त्री. [हिं. खोदना] खोदने की सींक या कील।

खोद-विनोद—संज्ञा पुं. [हिं. खोद+विनोद (श्रनु.)] बहुत जाँच-पड़ताल।

खोदवाना — किं. स, [हिं. खोदना] खोदने का काम कराना।

खोदाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना] (१) खोदने की किया। (२) खोदने की मजदूरी।

खोदि—िक. स. [हिं. खोदना] खोदकर, खनकर। उ. —कहो तो मृत्युहिं मारि डारि के खोदि पतालहिं पारों—६-१४८।

खोदें—कि. स. [हिं. खोदना] खोदने से, गड्ढा करने से। उ.—श्राज्ञा होइ जाहिं पाताल । जाहु, तिन्हें भाष्यो भूपाल। तिनके खोदें सागर भए—६-६।

खोना—िक. स. [सं. चोपण, प्रा. खेवंण] (१) गँवाना, जाने देना। (२) छोड़ आना। (३) खराब या नण्ट करना, बिगाड़ना। उ.—सर स्थाम गारी कहा दीजें इही बुद्धि है घर खोना—१०३७।

कि. श्र.—किसी वस्तु का छूट या निकल जाना। मुहा.—खोया जाना—हकका बक्का होना।

खोन्चा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख्वान्चा] बड़ा थाल जिसमें बेचने के लिए चीजें सजायी जायें।

खोपड़ा — संज्ञा पुं. [सं.खर्पर] (१) सिर की हड्डी। (२) सिर। (३) नाश्यित। (४) गिरी। (४) खप्पर जो भिखारियों के पास रहता है।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. खोपड़ा] (१) सिर। (२) सिर की हड्डी। मुहा.—श्रंधी (श्रोंधी) खोपड़ी—मूर्ख । खोपड़ी विवाना—बहुत बात करके परेशान करना । खोपड़ी चटकना—धूप या पीड़ा से सिर दुखना । खोपड़ी खुजलाना—मार खाने की इच्छा होना ।

खोपरा—संज्ञा पुं. [हिं. खोपडा] (१) गरी का गोला, गरी। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, ग्राम, ऊख-रस सीरा—१०-२११। (२) नारियल। खोपरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोपड़ी] (१) सिर की हड़ी, (२) सिर।

खोपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोपड़ा] (१) छाजन या छप्पर का कोना। (२) जुड़ा बँधी हुई वेगी।

खोभरा – संज्ञा पुं. [हिं. खुमना] (१) गड़ने या ठोकर व लगनेवाली चीज। (२) कूड़ा-करकट।

खोम—संज्ञा पुं. [त्र्र. कौम] समूह, मुंड। संज्ञा पुं. [सं.कोम] किले का बुर्ज।

खोया—संज्ञा पुं. [सं. जुद्र] गरमाकर गाड़ा किया हुआ दूध, मावा, खोआ।

कि. स.—'खोना' किया का भूतकाल।

खोयों — कि. स. [हिं. खोना] 'खोना' के भूत. 'खोया' का वज. प्र., व्यर्थ कर दिया, गॅवा दिया । उ.—(क) नारद मगन भए माया में, ज्ञान-बुद्धि-वल खोयो—१-४३। (ख) चोरी करी, राजहूँ खोयों, अल्प मृत्यु तव आइ तुलानी—६-१६०।

मुहा.—दई को खोयो—िस्त्रयों की एक गाली। उ.—सूर इते पर समुक्तत नाहीं निपट दई को खोयो —३०२१।

खोर—िव. [सं. खोर या खोट] लँगड़ा, लूला, श्रंगभंग।

उ.—प्रभु मोहिं राखिये इहि ठौर। "" पाँच पति
हित हारि बैठे, राक्रें हित मोर। धनुष-बान सिरान
कैंधों, गरुड़ बाहन खोर—१-२५३।

संज्ञा पुं. [हिं. खोट] दोष, ऐब। उ.—लखिंह साँचे नर को खोर—१२-३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर] (१) तंग या सँकरी गली, कूचा। उ. — लूट लूट दिध खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर— ८६४ सारा. (२) चारा देने की नाँद।

संज्ञा स्त्री. [सं. चालन, हिं. खोरना] नहान, स्नान।

खोरन—कि. श्र. [हिं. खोरना] नहाने के लिए। उ.— श्रातुर चली जमुन-जल खोरन काहू संग न लाई —२१७०।

खोरना—क्रि. श्र. [सं. चालन] नहाना, स्नान करना। क्रि. स. [हिं. खोलना] खोलना, प्रकट करना, बताना।

खोरा—वि. [सं. खोर या खोट] (१) लँगड़ा-लूला, श्रंग-भंग। (२) बुरा, खोटा।

खोराक — संज्ञा स्त्री. [फ़ा.](१) भोजन की सामग्री। (२) भोजन की मात्रा।

खोराकी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. खोराक+ई (प्रत्य.)] खोराक के लिए दिया जानेवाला धन।

वि.—जिसकी खोराक बहुत अच्छी हो।

खोरि—संज्ञा स्त्री. [सं. खोट या खोर] (१) ऐब, दोष, बुराई । उ.—(क) नृपति कहा मारग सम आह । चलत न क्यों तुम सूधे राह । कहा कहारिन, हमें न खोरि । नयो कहार चलत पग मोरि-५-४ । (ख) मेरे नैनन ही सब खोरि । स्याम बदन छिब निरिष्ट जु अटके बहुरे नहीं बहोरि—ए. ३३३ । (२) लँगड़ी, लूली, अंगभंग ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर, खोर] तंग या सँकरी गली। उ.—(क) भीर भई बहु खोरि जहाँ तहाँ —१०३७।

संज्ञा स्त्री. [सं. चौर या तुर] चन्दन का आड़ा टीका।

खोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोरा] (१) पानी पीने का छोटा बरतन। (२) छोटी बिंदियाँ जो माथे पर लगायी जाती हैं।

खोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर, खोरी] तंग गली । उ.—
(क) सूरदास प्रमु सकुचि निरित्व मुख, भजे कुंज की खोरी—१०-२६७ । (ख) प्रथम करी हिर माखन चोरी । ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, त्रापु भजे हिर त्रज-खोरी—१०-२६८ । (ग) जाकर हेतु निरंतर लीये डोलत ब्रज की खोरी—१०उ.-१५ । संज्ञा स्त्री. [सं. चौर या जुर] मस्तक पर लगा

चंदन का आड़ा या धनुषाकार टीका । उ.—सुभग कलेबर कुमकुम खोरी—३३४५।

खोरें—िक. श्र. [सं. चालन, हिं. खोरना] स्नान करती हैं, नहाती हैं, स्नान करें, नहायें। उ.—(क) रिव सों बिनय करित कर जोरे। प्रभु श्रांतरजामी, यह जानी, हम कारन जल खोरें— ७६८। (ख) ब्रज-बिनता रिव कों कर जोरें। सीत-भीति निहं छहों रितु, त्रिविधि काल जल खोरें— ७८२। (ग) कहा, चलो जमुना-जल खोरें—७६६।

खोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु के ऊपर से चढ़ाया हुआ आवरण, गिलाफ। (२) मोटी चादर जो ओढ़ने के काम आती है।

खोलत—िक. स. [हिं. 'खुलना' का स. 'खोलना'] मिले या जुड़े भागों को अलग करता है। उ.—तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत। लालच लागी कोटि देविन के, फिरत कपाटिन खोलत—१-१७७।

खोलना—िक. स. [सं. खुड, खुल = भेदन] (१) जुड़े हुए भागों को अलग करना। (२) बँधन तोड़ना। (३) बँधी हुई वस्तु अलग करना। (४) नया कार्य आरम्भ करना। (४) दैनिक कार्य आरम्भ करना। (६) सवारी चलाना। (७) गुप्त भेद प्रकट करना। (८) मन की बात कहना।

खोलि—कि.स. [हिं. खोलना] (१) (गुप्त बात को) प्रकट या स्पष्ट करके। उ.—सूर बिनती करें, सुनहु नँद-नंद तुम, कहा कहीं खोलि के ग्रॅंतरजामी —१-२१४। (२) बोलो, कहो। उ.—मुख तौ खोलि सुनौं तेरी बानी भली-बुरी कैसी घर केहें —११६२।

खोलिया— संज्ञा स्त्री. [देश.] बढ़ई का एक श्रीजार, रखानी।

खोली—कि. स. [हिं. खोलना] बन्धनमुक्त कर दी, उन्नति का श्रारम्भ कर दिया, उत्थान का द्वार खोल दिया। उ.—सोच निवार करो मन श्रानन्द मानौ भाग्यदशा विधि खोली—१० उ.-१०६।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खोल.] तिकए, लिहाफ या गहें का गिलाफ अथवा खोल।

खोले — कि. स. [हिं. खोलना] खोल दिये । उ. — सुरपितिहिं बोलि रघुवीर बोले । अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करी, सुनत तिन अभिय भंडार खोले — ६-१६३ ।

खोले—कि. स. [हिं. खोलना] खोलती है। उ.-संदूकन भरि धरे ते न खोले री—१५४६।

खोलों — कि. स. [हिं. खोलना] बंधन-मुक्त करो, खोल दो। उ.—जागे हो जुरावरे है नैना क्यों न खोलों —१६५६।

खोवत - कि. स. [हिं. खोना] खोते या नष्ट करते हैं। उ.—तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात—६१२४।

खोवन—वि. [हिं. खोना] खोनेवाला, नाश करने वाला। उ.—सूरदास रावन कुत्त-खोवन, सोवत सिंह जगायो—६-८८।

खोबहु — कि. स. [हिं. खोना] खोना, गँवाना, हाथ से निकल जाने देना। उ.—(क) बिनु रित-काल नगन निहं होबहु। ग्रारु मम मैंडिन को मित खोबहु—६-२। (ख) बृथा जनम जग मैं जिनि खोबहु हाँ ग्रापनों निहं कोई—७६५।

खोवनहारी—वि. [हिं. खोना + हारी (प्रत्य.)] खोने वाली, नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली । उ.—सुता बड़े बृपभानु की कुल खोवनहारी—१२४५।

खोवा—संज्ञा पुं. [सं. तुद्र, हिं. खोया] गरमाकर गाहा किया हुआ दूध, खोया, मावा। उ.—खोवा-मय मध्र मिठाई। सो देखत ग्रति रुचि पाई—१०-१८३।

खोबै—िक. स. [हिं. खोना] खोता है, गँबाता है। उ.—(क) निद्रा-बत्त जो कबहूँ सोवै। मिलि सो स्रिविद्या सुधि-बुधि खोबै—४-१२। (ख) देखिकै नारि मोहित जो होवै। स्राग्नौ मूल या विधि सो खोबै—८-११। (ग) कबहुँ स्रिजिर ठाढे हैं ऐसे निसि खोबै—२४७४।

खोह—संज्ञा स्त्री. [सं. गोह] (१) गुफा, कंदरा। (२) पहाड़ी गहरा गड्ढा। (३) दो पहाड़ों के बीच का तंग रास्ता, दर्श।

खोहिन — संज्ञा स्त्री. [हिं. खोह + नि (प्रत्य.)] खोह

सें, निर्जन स्थान में, एकांत में । उ.—सूर सुवस घर छों डि इमारो क्यों रित मानत खोहनि—२०१४।

खोहि—संज्ञास्त्री. [हिं. खेइ] धूल, खाक। उ. - सूर सुवस्तुहिं छाँड़ि श्रमागे हमहिं बतावत खोहि —३०२०।

खोही—संज्ञा स्त्री. [सं. खोलक] (१) पत्तों की छतरी।
(२) वर्षा या शीत से बचने के लिए सिर पर लपेटा
हुआ कंबल आदि। (३) वस्त्र का सिर या कंघे पर
पड़ा हुआ भाग। उ.—सुरंग केसरि खौरि कुसुम की
दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी फलकत पीतांबर
की खोही— ८३८।

संज्ञा स्त्री, [हिं. खेह] धूल, खाक।

खौं—संज्ञा स्त्री. [सं. खन] (१) गड्ढा । (२) गहरा गढ़ा जिसमें अन्न जमा किया जाय। (३) वृत्त का वह भाग जहाँ टहनी या पत्ती निकलती है।

खोंचा—संज्ञा पुं. [सं. षट् + च]साढ़ छः का पहाड़ा। खोंट—संज्ञा स्त्री. [हं. खोंटना] (१) नोचने-खसोटने की किया। (२) नोचने-खसोटने का शरीर पर चिह्न, खरोंट।

खोंड़ा—संशा पुं. [सं. खन या खात] (१) गड्ढा । (२) अनाज रखने का गड्ढा ।

खौफ-संज्ञा पुं. [ग्रा.] डर, भय।

खोर—संज्ञा स्त्री. [सं. चौर या चुर] (१) चंदन का आड़ा तिलक। उ.— (क) और बेस को कहै बर्राने सब ग्रंग ग्रंग केसरि खौर—३०३१। (ख) खौर कंसरि श्रति विराजत तिलक मृगमद को दियौ —१० उ.-२४। (२) एक गहना जो खियाँ माथे पर पहनती हैं।

खोरना – कि. स. [हिं. खौर] तिलक लगाना, चंदन का टीका लगाना।

खौरहा—िव. [हिं. खौरा+हा (प्रत्य.)] (१) जिस (पश्च)के बाल मड़ गये हों। (२) जिस (पश्च)को बाल माड़ने की खुजली का रोग हो।

खौरा—संज्ञा पुं. [सं. चौर] भयानक खुजली जिसमें पशुत्रों के बाल भड़ जाते हैं।

वि,—जिसे यह रोग हो।

खोरि—संज्ञा स्त्री. [सं. चौर या चुर, हिं. खौर] मस्तक पर लगा हुन्ना चन्दन का न्नाड़ा तिलक। उ.— (क) फिरत बननि बृन्दावन, बंसीबट, सँकेतबट, नागर किट काछे, खौरि केसरि की किए—४६०। (ख) चन्दन खौरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत—४७६। (ग) चंदन की खौरि किये नटवर काछे काछनी बनाइ री—८८१।

खोरी — संज्ञा स्त्री. [हिं. खोपड़ी] कपाल, खोपड़ी।
संज्ञा स्त्री. [देश,] राख।
संज्ञा स्त्री. [सं. चौर या चुर, हिं. खौर] मस्तक
पर लगा चंदन का आड़ा या धनुषाकार तिलक।
उ.—बरन बरन सिरपाग चौतनी कछि कटि छिबि
चन्दन खौरी की—२४०२।

खोरु—संज्ञा पुं. [देश,] बैल या साँड की बोली। खोलना—िक, स. [सं. द्वेत] (१) तरल पदार्थ का उबलना। (२) क्रोधित होना। खोलाना—ि कि. स. [हिं. खोलना] उबालना। खोहड़, खोहा—िव. [हिं. खाना] (१) बहुत खानेवाला। (२) दूसरे की कमाई खानेवाला।

ख्यात—िव. [सं.] प्रसिद्ध। ख्याति—संशा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि, नामवरी। ख्याल—संशा पुं. [श्र.] (१) ध्यान। उ.—श्रीरे कहति श्रीर किह त्रावित मन मोहन के परी ख्याल—११८३।

मुहा. — ख्याल करना — याद करना । ख्याल (पर चढ़ना) — याद ग्राना । ख्याल रखना— ध्यान रखना, देखभाल करते रहना । ख्याल रहना — याद बनी रहना । ख्याल से उतरना (उतर जाना) — मूल जाना । ख्याल परी हैं — पीछे पड़ गयी हैं, परेशान करने पर जतारू हैं । उ. — राधा मन में यहै विवारति । ये सब मेरे ख्याल परी हैं ग्रब ही बातन लै निरुवारति — १३० ⊏।

(२) अनुमान, अटकल, ३ दाज।
मुहा.— ख्याल बाँधना— अनुमान लगाना।
(३) विचार, सम्मित। (४) आदर।
मुहा,— ख्याल करना— रियायत करना। ख्याल

में लाना—(१) रियायत करना। (२) ध्यान देने योग्य समभना।

(४) एक विशेष गान। (६) लावनी गाने का एक दंग।

संशा पुं. [हिं. खेल] खेल, दिल्लगी। (उ०—(क) श्रानंदित ग्वाल-बाल करत बिनोद ख्याल, भुज भरि भरिधरि श्रंकम महर के - १०-३० । (ख) सूर प्रमु नंदलाल, मारचौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल बज जन उबारघौ--१०-६२। (ग) कृदि पड़े चिह कदम तें, तुम खेलत यह ख्याल-५८१ (घ) हरि छवि श्रंग नट के ख्याल— पृ. ३२८ । (ङ) श्रंतर्धान भये रचि ख्याल-१८१। (२) श्रनुचित करनी, करतूत, अद्भुत चरित्र। उ.-(क) मोकौं जिन बरजी जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल— ३४५। (ख) ऐसे ख्याल करे इन बहू बिधि कहत जु ग्रावे लाज— ७४२ सारा.। (३) लीला, माया, क्रीड़ा। उ.— (क)यह सुनि रकमिनि भई बेहाल। जानि परयौ निहं हरि कों ख्याल — १० उ.-३२। (ख) सुनहु सूर वह करिन कहिन यह, ऐने प्रभु के ख्याल — ५६८। (ग) जीव परयौ या ख्याल में श्रर गये दसादस---११७७

ख्याला—संशा पुं [हिं. खेत, खाल] (१) खेल, हँसी, कीड़ा, दिल्लगी। उ.—चक्रत भये नन्द सब महर चक्रत भये चक्रत नर नारि करत ख्याला—१४५। (२) लीला, माया। (३) करनी, करत्त्त, श्रद्भुत या श्रनुचित कृत्य। उ.—(क) नन्द महर की कानि करत हैं छाँड़ि देहु ऐसे ख्याला—१०३४। (ख) जोबन रूप देखि ललनाने श्रव हीं ते ये ख्याला—१०३८।

ख्याली—वि. [हिं. ख्याल] (१) कल्पित, अनुमित । (२) सनकी, बहमी ।

वि. [हिं. खेल] खिलाड़ी, कौतुकी । उ.— साँभ गये कहि श्राइहें मोंसों री श्राली। श्रनत बिरिम कतहूँ रहे बहु नायक ख्याली—२१७८।

ख्वाजा-संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मालिक। (२) सरदार। (३) फकीर। (४) नपुंसक सेवक।

ख्वान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] थाल, परात। ख्वाब—संज्ञा पुं [फा.] (१) नींद। (२) स्वप्न। मुहा.—ख्वाब होना (हो जाना)-पुन: प्राप्त न होना।

ख्वाय—क्रि. स. [हं. खिलाना] खिलाकर। उ.-छलं कियो पांडविन कौरव कपट-पासा ढरन। ख्वाय बिष, गृह लाय दीन्हों, तउन पाए जरन—१-२०२। ख्वार—वि. [फा.](१) नष्ट, बरबाद। (२) उपेचित।

I

ग— कवर्ग का तीसरा व्यंजन । इसका प्रयत्न श्रद्योष श्रहपप्राण है। इसका उच्चारण स्थान कंठ है। गंग—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगा] गंगा नदी। उ.—गंग प्रवाह माहिं जो नहाइ। सो पवित्र ह्वै सुरपुर जाइ — ६-६।

संज्ञा पुं.—(१) एक मात्रिक छन्द। (२) श्रकबर का दरबारी एक कवि।

गंगई—संज्ञा स्त्री. [त्रानु, गें गें] एक छोटी चिड़िया। गंगकुरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगा + कूल] एक तरह की हल्दी ।

गंगबरार — संज्ञा पुं. [हिं. गंगा + फा. बरार = बाहर या ऊपर लाया हुआ] वह भूमि जो नदी की धार या बाढ़ के हटने पर निकल आती है।

गँगरी — संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की कपास। गँगवा — संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़। गंगसूत — संज्ञा पुं. [सं.] भीषम।

गंगा—संशा स्त्री. [सं.] भारत की सर्वप्रधान नदी।

मुहा.—गंगा उठाना—गंगा जल छूकर कसम
खाना। गंगा पार करना—देश से निकालना। गंगा
नहाना— छुटी पाना। गंगा दुहाई—गंगा की कसम।
गंगा कैसो पानी— बहुत पित्रत्र और निर्मल, शुद्ध
आचरणवाला। उ.—तुम जो कहित हो, मेरो वन्हैया
गंगा कैसो पानी। बाहिर तस्न किसोर वयस वर, बाट
घाट का दानी—१०-३११।

गंगागति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मृत्यु। (२) मोच।
गगाचिल्ली—संज्ञा. स्त्री. [सं.] एक जलपची।
गंगाजमनी—वि. [हिं. गंगा + जमुना] (१) मिलाजुला, दुरंगा। (२) सुनहले रूपहले तारों का बना
हुआ। (३) काला-सफेद।

संज्ञा स्त्री.—(१) कान का एक गहना। (२) त्रारहर-उर्द की मिली-जुली दाल। (३) सुनहले-रुपहले तार का काम।

गंगाजल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंगा का जल। (२) एक महीन कपड़ा।

गंगाजली—संज्ञा स्त्री. [सं, गंगाजल] (१) सुराही या पात्र जिसमें गंगाजल भरा हो।

मुहा.—गंगाजली उठाना—गंगाजल से भरा पात्र हाथ में लेकर कसम खाना ।

(२) धातु की सुराही। संज्ञा पुं.— एक तरह का गेहूँ।

गंगाजाल—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + जाल] मछुत्रों का जाल जो घास से बनता है।

गंगाद्वार - संशा पुं. [सं.] हरद्वार ।

गंगाधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिवजी । (२) एक श्रोषध। (३) एक वर्णवृत्त।

गंगाधारी— संज्ञा पुं. [सं. गंगाधर] शिव, महादेव।

उ.—चन्द्र चूड़, सिखि-चन्द सरोरुह, जमुना प्रिय,
गंगाधारी—१०-१७१।

गंगापथ—संज्ञा पुं, [सं.] अकाश।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह के ब्राह्मण जो घाट पर दान लेते हैं। (३) एक वर्णसंकर जाति। गंगापूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विवाह के बाद की एक रीति।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गंगा किनारे मरने जाना। (२) मृत्यु।

गंगाल—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + त्रालय] पानी रखने का बड़ा कंडाल। गंगाला—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + त्रालय] गंगा का कछार।

गंगालाभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंगा-प्राप्ति, गंगा-किनारे सत्यु। (२) सत्यु।

गंगावतरण—संज्ञा पुं. [सं.] गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर त्राना।

गंगासागर- संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तीर्थ जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है। उ.—यह तनु त्यागि मिलन यों बिनहै गंगा सागर संग—२६०१। (२) एक तरह की मोटी जनानी घोती। (३) बड़ी टोंटीदार भारी।

गंगासुत—संज्ञा पुं. [सं. गंगाटी] एक बूटी।
गंगेटी—संज्ञा पुं. [सं गंगेय] गंगा-पुत्र भीष्म ।
गंगेरन—संज्ञा पुं. [सं. गंगेरुकी] एक पौधा।
गंगेरुवा—संज्ञा पुं. [सं. गंगेरुकी] एक पहाड़ी पेड़।
गंगेरुवा—संज्ञा पुं. [सं. गंगेरुक] एक पहाड़ी पेड़।
गंगेरु —संज्ञा स्त्री. [हिं. गॅगेरन] एक पौधा।
गंगोरा—संज्ञा पुं. [सं.] महादेव।
गंगोरा—संज्ञा पुं. [सं. गंगोदक] गंगा-जला।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री, [सं. गंगावतार] हिमालय का एक तीर्थ जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है। गंगोटक—मंद्रा एं [सं. गंगा करक] (१) गंगा-

गांगोदक-संछा पुं, [सं, गंगा + उदक] (१) गंगा-जल। (२) एक वर्णवृत्त।

गंगोल - संशा पुं. [सं.] एक मिण, गोमेदक। गंगोटी-संशा स्त्री. [हिं. गंगा + मिही] गंगा किनारे की बालू।

गंगोलिया—संज्ञा पुं. [हिं. गंगाल] एक तरह का खटा नीवू।

गंज-संज्ञा पुं. [सं. कंज या खंज] एक रोग जिसमें सर के बाल गिर जाते हैं।

संज्ञा स्त्री०— (१) खजाना। (२) ढर, राशि। (३) समूह, मुंड। (४) मंडार। (४) हाट, बाजार। (६) बनियों की श्राबादी। (७) मद्यपात्र। (८) मदिरालय।

संज्ञा पुं. [सं.] तिरस्कार। संज्ञा स्त्री. [देश.] एक लता। गंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अवज्ञा, तिरस्कार, निरा- दर। (२) नाश, हानि। उ.—(क) वृषभ-गंजन
भथन-केसी हने पूछ फिराइ—४६८। (ख) कालीबिष गंजन दह आए—५७८। (३) दुख, कष्ट।
(४) ताल का एक भेद।

गंजना — कि. स. [सं. गंजन] (१) निरादर करना। (२) नाश करना। (३) चूर-चूर करना।

गंजा—संज्ञा पुं. [हिं. गंज] गंज रोग। वि.—जिसे गंज रोग हो।

गँजाना—कि. श्र. [हिं. गँजना] (१) निरादर करना। (२) नाश करना।

कि. स. [हिं. गाँजना] हेर लगाना। गंजी—संशास्त्री. [हिं. गंज] (१) हेर, समूह। (२) शकरकंद।

संज्ञा स्त्री.— बनियायन । त्रि. [हिं. गाँजा] गाँजा पीनेवाला।

गँजीफा—संश पुं. [फ़ा, गंजीफ़ा] (१) एक खेल जो हद पत्तों से खेला जाता है। (२) ताश।

गँजेड़ी—वि. [हिं. गाँजा + एड़ी (प्रत्य.)] गाँजा पीने वाला।

गँठकटा— संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + काटना] गिरहकट।
गँठकोर— संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + छोरना] गिरहकट।
गँठजोड़ा - संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + जोड़ना] गँठबंधन।
गँठबंधन—संज्ञा पुं [हिं. गाँठ + बंधन] (१) विवाह
की एक रीति जिसमें वर के दुपट्टे से वधू के ग्राँचला
का छोर बाँधा जाता है। (२) दो व्यक्तियों का हर
समय का साथ।

गॅठि—संशा स्त्री. [हिं. गाँठ] गाँठ । उ.— ऋछत-दूब-दूब-दल बँधाइ, लालन की गॅठि जुराइ, इहे मोहि लाही नैनिन दिखरावी — १०-६५ ।

गँठुआ—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ] ताने-बाने के दूटे हुए तागों को जोड़ना।

गंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कपोल, गाल। (२) कन-पटी, कान के नीचे गरदन का भाग। उ.—(क) स्याम सुभग तनु, चुन्नत गंड मद बरषत्त थोरे थोरे —२७६३। (ख) रत्न जटित कुंडल स्वनन बर गंड कपोलिन भाई —३०३१! (३) गले में पहनने का गंडा। (४) फोड़ा। (४) चिन्ह, दाग। (६) गाँठ। (७) गेंडा।

गंडक — संज्ञा पुं. [सं.] (१) गले में पहनने का गंडा।
(२) गाँठ। (३) एक रोग जिसमें बहुत फोड़े निकलते हैं। (१) गेंडा। (१) चिन्ह। (६) एक नदी।
(७) गंडकी नदी का प्रदेश।

गंडाक- संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्त ।

गंडिकि गंडिकी—संज्ञा स्त्री. [सं. गंडिकी] एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलकर पटने के पास गंगा में गिरती है। सालग्राम की बहुत सी बटियाँ इसमें मिलती हैं। जड़ भरत ने इसी के किनारे आश्रम में तप किया था श्रीर यहीं हिरनी के बच्चे के प्रति मोह उनमें उत्पन्न हुआ था।

गँडदार—संज्ञा पुं. [सं. गंड या गँडासा — फ़ा दार (पत्य.)] हाथीवान, महावत ।

गंडदूर्जी—संशा स्त्री. [सं.] (१) गाँडर घास जिसकी जड़ 'खस' कहलाती है। (२) एक तरह की दूब। गंडिन —संशा पुं. [सं. गंड + नि (प्रत्य.] कनपटी में। उ.—गरिज घुमरात मद भार गंडिन स्रवत पवन ते बेग तेहि समय चीन्ही—२५६१।

गंडमंडल — संशा पुं. [सं.] कनपटी। उ.—(क) चितित कुंडल गंडमंडल, मनहुँ निर्तत मैन—१-३०७। (ख) चितित कुंडल गंडमंडल मलक लित कपोल —६२७।

गंडमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का रोग जिसमें गले में बहुत से फोड़े निकलते हैं।

गंडमूर्ख-वि. [सं.] बड़ा मूर्ख ।

गेंडरा—संज्ञा पुं. [सं. गंडाली] (१) एक घास। (१) एक तरह का धान।

गॅंडरो—संशा स्त्री. [हिं. गॅंडरा] गॅंडरा घास। गंडली—संशा स्त्री. [सं.]। (१) छोटी पहाड़ी। (२) शिव।

गंडस्थल— संज्ञा पुं. [सं.] कनपटी।
गंडा— संज्ञा पुं. [सं. गंडक = गाँठ] गाँठ।
संज्ञा पुं. [सं. गंडक = गाँठ] गाँठ।
संज्ञा पुं. [सं. गंडक = गाँठ] में पहनने का जंतर]
(१) बटे हुए तागे का जंतर जिसमें मंत्र पढ़कर गाँठ
जगांथी जाती है। (२) मंत्र पढ़कर बाँधा जानेवाला
तागा। (३) पशुत्रों के गले में पहनाने का पट्टा।

संज्ञा पुं. [सं. गंडक] गिनने के लिए चार-चार की संख्या।

संज्ञा पुं. [सं. गंड = चिन्ह] (१) आड़ी लकीरों की पंक्ति। (२) रंगीन धारी, कंठी। गंडारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कचनार। गंडाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाँडर घास। गंडासा—संज्ञा पुं. [हिं. गेंडी + श्रिस = तलवार]

चारा या घास काटने का श्रौजार या हथियार।
गांडिका — संज्ञा स्त्री. [सं.] चमड़े की छोटी नाव।
गांडिनी — संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गंडीर, गंडीरी—संशा पुं. [सं.] एक साग।

गंडुपद-संज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिसमें पैर बहुत मोटा हो जाता है।

गंडूक—संज्ञा पुं. [हिं. गंडूष] (१) चुल्ला । (२) कुल्ली।

गंडूपद—संज्ञा पुं. [सं.] केंचुआ। गंडुपदभव—संज्ञा पुं. [सं.] सीसा धातु।

गंडूष—संशा पुं. [सं.] (१) चल्लू, कुल्लू। उ.—
स्रदास प्रभु भलें परे फॅद, देड न जान भावते जी
कें। भरि गंडूष, छिरिक दै नैनिन, गिरिधर भाजि
चले दै कीके—१०-२८१। (२) हाथी की सूड़ की
नोक।

गेंडेरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या गंड] (१) ईख या गन्ने का छोटा दुकड़ा। (२) छोटा दुकड़ा। गंडोरी—संज्ञा पुं. [सं. गंडोल = ईख या गुड़] कच्चा खजूर।

गंडोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कच्ची शकर, गुड़। (२) ईख। (३) कौर, ग्रास।

गंतव्य — संज्ञा पुं. [सं.] लच्य। वि. — चलने योग्य।

गंता—संज्ञा पुं, [सं, गंत] जानेवाला।

गंदगी—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] (१) मैलापन । (२) ग्रिपावित्रता। (३) मैला।

संज्ञा पुं. [सं, गंघ] दुगंध ।

गंदना — संज्ञा पुं. [सं. गंध] (१) एक कंद। (२) एक घास।

गंदम—संज्ञा पुं. [देश.] एक पत्ती।
गॅदला—िव. [हिं. गंदा + ला (प्रत्य.)] मेला, गंदा।
गंदा—िव. [फ़ा.] (१) मेल-कुचेला। (२) अपवित्र।
(३) विनौना।
गॅदोल—संज्ञा पुं. [सं. गंघ] एक घास।

गद्राल-संज्ञा पुं. [फ़ा] गेहूँ।

गंदुमी—संज्ञा पुं. [फ़ा. गंदुम] (१) गेहुँ आँ, ललाई लिये भूरे रंग का। (२) गेहूँ या उसके आटे का बना पदार्थ।

गँदोलना -- कि. स. [फ़ा. गंदा] (पानी) गंदा करना।

गंध—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बास, महक । उ.— चाहत गंध बेरी बीर—सा. २८। (२) सुगंध, सुवास । उ.—माधी नेंकु हटकी गाइ। । । । छहीं रस जी धरौं त्रागें, तउ न गंध सुहाइ—१-५६ । (३) सुगंधित लेप या द्रव्य । (४) लेशमात्र संबंध। (१) गंधक।

गंधक — संज्ञा स्त्री. [सं.] एक खिनज पदार्थ। गंधकाष्ट — संज्ञा पुं. [सं.] त्रागर की लकड़ी। गंधकी — वि. [हिं. गंधक] गंधक के हल्के पीले रंग वाला।

संज्ञा पुं.—सफेदी लिये हल्का पीला रंग।
गांधकोिकल—संज्ञा पुं. [सं.] एक सुगंधित पदार्थ।
गांधगात—संज्ञा पुं. [सं. गंधगात्र] चंदन।
गांधचाहन—संज्ञा पुं. [सं. गंधमात्र—चाहने वाले]
गांधके चाहनेवाले भौरे। उ.— चाहत गंध बैरी
बीर। ग्रपनो हित चहत ग्रमहित होत छोड़त तीर
—सा. २८।

गंधत्राणा—संज्ञा पुं. [सं. गंध + त्राण] एक तरह की घास।

गंधद—संशा पुं. [सं. गंध+द] चंदन। गंधनाल—संशा पुं. [हिं.] नाक का छेद, नथुना। गंधपत्र—संशा पुं. [सं.] (१) सफेद तुलसी। (२) नारंगी। (३) बेल।

गंधप्रत्यय—संज्ञा पुं. [सं.] नाक। गंधप्रसारिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक जता। गधबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] आम। गंधबबूल - संज्ञा पुं, [सं. गंध+चबूल] एक तरह का बबूल।

गंधवेन—संज्ञा, पुं. [सं गंधवेणु] एक सुगंधित घास।
गंधमृग—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी मृग।
गंधमाद—संज्ञा पुं. [सं.] भौरा।
गंधमादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत। (२) भौरा।

(३) एक सुगंधित द्रव्य।

गंधरब—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्व] देवताश्रों का एक भेद। उ.—जच्छ, भृतु, बासुकी नाग, मुनि, गंधरब, सकल वसु, जीति में किए चेरे—६-१३०।

गंधरिबन — संज्ञा स्त्री. [हिं. गंधिवन] गंधर्व की स्त्री। गंधराज — संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह का बेला।

(२) एक सुगंधित द्रव। (३) चंदन।
गंधर्व, गंधर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवताओं की एक
जाति जो गाने में निपुण मानी गयी है। (२)
मृग। (३) घोड़ा। (४) प्रेत। (५) स्त्रियों की वह
अवस्था जब उनका स्वर विशेष मधुर होता है। (६)
एक मानसिक रोग। (७) ताल का एक मेद।
(८) विधवा का दूसरा पति।

गंधर्वनगर, गंधर्वपुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिथ्या अम।(२) हल्के बादलों से ढका चंद्रमंडल। (३) पश्चिम में संध्या की लाली। (४) मानसरोवर के निकट माना हुआ। एक नगर जिसकी रक्षा गंधर्व करते थे।

गंधव विद्या तंजा पु. [सं.] गान विद्या। गंधव विवाह—संज्ञा पुं. [सं.] वह विवाह जो वर-वधू माता-पिता की श्राज्ञा लिये बिना कर लें।

गंधवंवेद—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत शास्त्र। गंधवं — संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री. [सं. गधर्व + हिं. इन (प्रत्य.)]

(१) गंधर्व की स्त्री। (२) गंधर्व जाति की सुन्दर स्त्री। उ.—जो तुम मेरी रच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।

गंधर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंधर्व की स्त्री। वि. [सं. गंधर्व + ई (प्रत्य.)] गंधर्व संबंधी। गंधत्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वायु। (२) नाक।

(३) चंदन।

वि.—(१) गंध ले जानेवाला। (२) सुगंधित।
गंधवाह—संज्ञा पुं. [सं.] वायु।
गंधवाहपूत बांधव तासु पतनी भाइ—संज्ञा पुं. [सं.
गंधवाह (=वायु, पवन) + पुत्र (पवन का पुत्र,
भीम) + बांधव (=भाई, भीम का भाई=त्रजुन)तासु
पतिनी (=उसकी पत्नी=त्रजुन की पत्नी=सुमद्रा)
+ भाइ (=माई=सुमद्राका भाई=श्रीकृष्ण) श्रीकृष्ण।
उ.—गंधवाहन-पूत-बांधव तासु पतिनी भाई। कबै
द्रग भर देखवी जूसबै दुख विसराइ—सा. २२।
गंधवाही—संज्ञा पुं. [सं.] गंध का वहन करनेवाला।
गंधसार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंदन। (२) बेला।
गंधहर— संज्ञा पुं. [सं.] नाक।
गंधहरती—संज्ञा पुं. [सं.] मतवाला हाथी जिसके मस्तक
से मद बहता हो।

गंधा—वि. स्त्री. [स.] गंधयुक्त, गंधवाली। गँधात— कि. स. [हं. गँधाना] दुर्गंध करता है, गँधाता है। उ.—रुधिर-मेद, मल मूत्र, कठिन कुच उदर गंध-गंधात—२-२४।

गँधाना, गंधाना—क्रि. स. [हिं. गंध] गंध देना, दुर्गंध करना।

संज्ञा पुं. [सं. गंधन] रोला छुन्द ।
गंधार—संज्ञा पुं. [सं, गांधार] गांधार देश ।
गंधारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गांधारी] (१) धतराष्ट्र की स्त्री
जो दुर्योधन आदि कौरवों की माता थी । गांधार
देश के राजा सुबल इनके पिता ये । पित को श्रंधा
देखकर ये आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे
रहीं। (२) गांधार देश की स्त्री।

गंधाशन-संज्ञा पुं. [सं.] पवन।

गंधाष्ट्रक—संज्ञा पुं. [सं.] आठ गंध द्रव्यों से बना हुआ एक गंध।

गंधिनि, गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंधी] गंधी या अत्तार की स्त्री। उ.—दूलह देखोंगी जाय उतरे सँकेतबट केहि मिस देखन पाऊँ। ""। चन्दन अरगजा सूर केशरि धरि लेऊँ। गंधिनि हैं जाउँ निरिख नैन सुख देऊँ—ए. ३४६ (६१)।

गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा। गंधिया—संज्ञा पुं. [हिं. गंध] एक कीड़ा। संज्ञा स्त्री.—एक बरसाती घास।
गंधी—संज्ञा पुं. [सं. गंधिन्](१) तेल, इत्र म्रादि बेचने
वाला। (२) गंधिया घास। (३) गाँधिया कीड़ा।
गाँधीला, गंधीला—वि. [सं. गंध या हिं. गंदा] (१)
मेला, गंदा। (२) बुरी गंधवाला।
गंधेज —संज्ञा स्त्री [सं. गंध] एक तरह की घास।
गंधेला—संज्ञा पुं. [सं. गंध] एक माड़।
गंधेला, गंधेली—वि. [हिं. गंध] जिसमें बुरी गंध हो।

गंघन—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्व] देवतात्रों की एक जाति। उ.—गंध्रव ब्रह्मा-सभा में भारि। हॅस्यौ अप्सरा स्रोर निहारि—७-८।

गंध्रबपुर — संज्ञा पुं. [सं. गंधर्वपुर] (१) स्वर्ग। (२) गंधर्वीं का देश। उ.—गंधर्विन कें हित तम करी। तप कीन्हें सो देहें आग। ता सेती तुम कीनी जाग। जज्ञ कियें गंध्रवपुर जहो। तहाँ अगह मोनों तुम पैहो — ६-२।

गंभारी— ं ज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़ ।
गंभीर, गंभीर—वि. [सं] (१) गहरा, जिसकी थाह न
मिले । उ.—कुं जर कृत रिमत श्राति राजत तहँ सोनित
सित्त गँभीर—१० उ.-२। (२) घना, गहन । (३)
शांत, सौम्य । उ.—प्रमु कौ देखौ एक सुभाइ ।
श्रात गंभीर उदार-उदिघ हरि, जान-सिरोमनि राह
—१-८। (४) गूढ़, जिटला । (४) घोर, प्रचंड ।
(६) बलशाली, सशक्त, भारी, दृढ़ । उ.—ले ले
स्त्रीन हृदय तारावति, चुँवित भुजा गँभीर—१-२६।
(७) कठोर, धेर्ययुक्त, दृढ़ । उ.—तत्र कघो कर ले
लिखी हरि ज की पाती । पढ़ी परत निहं नेक रहे
गंभीर करि छाती—३४४३। (८) प्रसिद्ध, महत्वपूर्ण।
उ.—बड़ कुल, बड़े भूप दसरथ सिख, बड़ौ नगर
गंभीर—६-४४।

संज्ञा पुं.—(१) जंभीरी नीबू। (२) कमल। (३) एक तरह का मंत्र। (४) शिव। (४) एक राग। गंभीरवेदी—संज्ञा पुं. [सं. गंभीरवेदिन्] इतना मस्त हाथी कि अंकुश की मार से भी वश में न हो। गंभीरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा ढोल। गंभीरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा ढोल। गंवँ—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (१) दाँव, घात। (२) मतलब। (३) अवसर, मौका। (४) ढङ्ग, उपाय।

मुहा.— गाँवँ से—(१) ढङ्ग से, उपाय से। (२) धीरे से, चुपके से।

गॅंबइँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव] छोटा गाँव। गॅंबरद्ल—वि. [हिं. गँवार + दल] (१) गॅंबारों की तरह का भदा। (२) गॅंबार, उजड्ड।

गँवरमसल—संशा पुं. [हिं. गँवार + श्र. मसल] गँवारों की कहावत या उक्ति।

गँवहियाँ — संज्ञा पुं. [सं. गोध्न = प्रतिथि] मेहमान, प्रतिथि।

गँवाइ—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) गँवा देना, खो देना।

यौ.-जैहै गँवाइ-व्यर्थ हो जायगा। उ. स्रदास भगवंत भजन विनु जैहै जनम गँवाइ-१-३१७।

गँवाई — कि. स. [हिं. गँवाना] दूर की, खो दी, मिटा दी। उ.—(क) स्रदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (ख) रंच काँच-सुख लागि मूढ़-मिति, कंचन रासि गँवाई—१-३२८। (ग) "" भली करी हिर गेंद गँवाई—५२५।

गँवार—िक. स. [हिं. गँवाना] खो दिये, दूर किये। उ.—(क) पहुँचे श्राइ विभिन घन बंदा, देखत द्रुम दुख सबनि गँवाए—४४७। (ख) मुरली कौन सुकृति-फल पाए। श्रिधर-सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गँवाए—६६१।

गँवाना—कि. स. [सं. गमन, पुं. हिं. गतन] (१) (समय) बिताना या काटना। (२) (प्राप्त वस्तु) खो देना।

गँवायौ—कि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बिताया या काटा। उ.—स्रदास भगवंत-भजन-बिनु, नाहक जनम गँवायौ —१-७६।

गँवार—िव. [हिं. गाँव + त्रार (प्रत्य.)] (१) देहाती, त्रासभ्य। (२) मूर्ख, नासमभा। उ.— (क) इहि तन छन-भंगुर के कारन, गरवत कहा गँवार। (ख) एक हुँ त्रांक न हिर भजे, (रे) रेसठ सूर गँवार—१ –३२५। (३) अनाड़ी, अनजान।

गँवारता—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँवार + ता (प्रत्य.)]

गँवारि, गँवारी—संशा स्त्री, [हिं. गँवार] (१) देहाती

पन। (२) मूर्खता। (३) नासमभी। (४) गँवार स्त्री।

वि. स्थी. [हिं. गँवार + ई (प्रत्य.)] (१) गँवार की तरह का। (२) भदा। (३) नासमभ, मूर्ख। उ.— (क) बाँह पकरि तू ल्याई का। अप्रति बेसरम गँवारि —१०-३१४। (ख) वारों लाज भई मोकों बैरिनि में गँवारि मुख ढाक्यो — २५४६।

गँवारु—वि. [हं. गँवार + ऊ (प्रत्य.)] (१) गँवार की भद्दी रुचि का। (२) भद्दा। (३) जो सुरुचिपूर्ण न हो।

गँवावत—कि. स. [हिं. गँवाना] (समय) विताते या व्यर्थ खोते हैं। उ.—मैं-मेरी वरि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परत जम-डोरी—१-३०३।

गँवावै — कि. स. [हिं. गँवाना] (१) (समय) बिताता या काटता है। (२) व्यर्थ खो देता है, नष्ट कर देता है। उ.—(क) ग्रान देव हरि तिज भजे, सो जनम गँवावै—२-६। (ख) हरि की कृपा मनुष-तन पावै। मूरख विषय-हेतु सो गँवावै—४-१२।

गाँवहै - कि. स. [हिं. गॅवाना] (समय) वितावेगा या कारेगा। उ.—स्रदास भगवंत भजन विनु बृथा सुजनम गाँवहै — १ - ६।

गँवहों — कि. स. [हिं. गँवाना] दूर करूँगा, मिटाऊँगा। उ. — मो देखत मो दास दु खित भयो, यह कलंक हों कहाँ गँवहों — ७-५ ।

गँवेही — कि. स. [हिं. गँगना] (समय) नष्ट करोगे या व्यर्थ खोग्रोगे। उ. — सूरदास भगवन्त-भजन विनु, मिथ्या जनम गँवैही — १-३३१।

गँस, गंस —संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथि] (१) हेष, बैर। उ.—
(क) मरो वह कंस, निरवंस वाको होइ, कऱ्यो यह
गंस तोकों पठायो—५५१। (ल) अपने घर के तुम
राजा हो सबके राजा कंस। सूर स्याम हम देखत ठाढ़े
ग्रंब सीखे ये गंस—-१०६२। (२) चुमने या लगने
वाली चुटीली बात, श्राचेप, व्यंग्योक्ति। उ.—चलत
सो मोहित गित राजहंस। हँसत परस्पर गावत गंस
—१८२७।

संज्ञा स्त्री. [सं. कषा = चाबुक] तीर की नोक,

गॅसना—िक. स. [सं. ग्रंथन, हिं. गंस] (१) जकड़ना, श्रच्छी तरह कसना। (२) बिने हुए तागों को इस तरह कसना कि छेद न रह जाय।

कि. श्र.—(१) गँठ जाना, कस जाना। (२) (२) ठसाठस भर जाना, श्रच्छी तरह छा जाना।

गॅसी, गंसी—िक. स. [हं. गॅसना] (१) कस गयी, जकड़ गयी, खूब गॅठ गयी। उ.—बृन्दावन की माल कलेवर लता माधुरी गंसी। सूरदास ले भुज बीच राखी माधव मदन प्रसंसी—-१६८५। (२) मिली, कसी।

गँसीला—िव. [हिं. गाँसी] नुकीला, चुभनेवाला। वि. [हिं. गँसना] (१) गँठा हुआ, कसा हुआ। (२) जिसकी बुनावट गँठी हुई हो।

ग—संज्ञा पुं, [सं:] (१) गीत। (२) गंधर्व। (३) गुरु या दीर्घ मात्रा। (४) गऐश।

संज्ञा पुं, [सं.](१) गानेवाला मनुष्य।(२) जानेवाला मनुष्य।

गइंद्—संज्ञा पुं. [सं, गयंद] हाथी।

गइनाही—संशा स्त्री. [सं शान] जानकारी, ज्ञान। उ.— डसी री माई स्याम भुऋझम कारे। ""। फुरै न जंत्र मंत्र गइनाही चले गनी गुन डारे।

गईं — कि. श्र. स्त्री. [सं. गम] 'जाना' किया का भूत. स्त्री० बहु० रूप, प्रस्थानित हुईं।

गई — कि. श्र. [सं. गम] (१) 'जाना' किया का भूत. स्त्री. रूप, प्रस्थान किया। इसका प्रयोग संयोजक किया के रूप में भी होता है।

मुहा.—गई करना-छोड़ देना, ध्यान न देना। (२) भूजी, (संज्ञा) खोदी। उ.—मुरछि परी तन-सुधि गई, प्रान रहे कहुँ जाई—५८६।

गई बहोर—वि. [हिं. गया + बहुरि] खोई या बिगड़ी हुई वस्तु को फिर पाने या बनानेवाला।

गडंक — संज्ञा स्त्री. [देश.] एक घास। गड, गऊ—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] गाय।

शए—िक. श्र. [सं. गम, हिं. जाना] (१) जाना-क्रिया के भूतकालिक बहुवचन या श्रादरसूचक एक-वचन रूप, प्रस्थानित हुए, जाने पर। उ.—सरन गए को को न उचारची—१-१४। (२) बीते, व्यर्थ ही व्यतीत हुए। उ.— (क) सब दिन गए अले बे। (ख) कछ दिन घटि घट मास गए—१०८८। वि.—गया हुआ, खोया हुआ, नष्ट। उ.— गए राज का दुख नहिं को इ—१-२८६।

गऐ—िक, श्र. सिव. [सं. गम, हिं. जाना] (१) चले जाने पर, खो जाने पर, नष्ट होने पर। उ.—हिर रस तौ श्रव जाइ कहुँ लिहेंथे। गऐ सोच श्राऐ निहें श्रानँद, ऐसो मारग गहिये—२-१८। (२) बीतने पर, समाप्त होने पर। उ.—दिन दस गऐ विषय के हेतु…। —१०-४।

गगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) शून्य स्थान। (३) छप्पय छन्द का एक भेद।

गगनकुसुम — संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्राकाश-कुसुम। (२) त्र त्रसंभव बात।

गगनगढ़—संज्ञा पुं. [सं. गगन + गढ़] बहुत ऊँचा महल या किला।

गगनगति — संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राकाश में चलनेवाले पत्ती श्रादि। (२) सूर्य श्रादि प्रह। (३) देवता। गगनचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्ती। (२) प्रह। वि.—श्राकाश में चलनेवाले।

गगनचुंबी -वि. [सं.] बहुत ऊँचा।

गानधूल — संज्ञास्त्री, [सं. गगन + हिं. धूल] केतकी या केवड़े के फूल की धूल।

गगनध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) बादल। गगनपति—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र। उ.—रुद्रपति, छुद्र-पति, लोकपति, वोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगमवानी—१५२२।

गगनवानी—संशा स्त्री. [सं. गगनवाणी] श्राकाशवाणी। गगनवाटिका—संशा स्त्री. [सं.] (१) श्राकाश की वाटिका। (२) श्रसंभव बात।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गगन + भेड़] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है। गगनभेदी— वि. [सं.] बहुत ऊँचा। गगनवती—संज्ञा पुं. [सं. गगनवती] सूर्य। गगनवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] त्राकाशवाणी।
गगनस्पर्शी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।
गगनानंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक मात्रिक छन्द।
गगनांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रप्सरा।
गगनांबु—संज्ञा पुं. [सं. गगन + श्रंबु] वर्षा का जल।
गगनाप्गा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्राकाशगंगा।
गगनेचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रह, नचत्र। (२) पच्ची।
(३) देवता।

वि,—श्राकाश में चलनेवाला।
गगरा—संज्ञा पुं. [सं. गर्गर = दही मथने का वर्तन]
किसी भातु का कलसा।

गगरिया, गगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्गरी = दही मथने की हाड़ी] धातु का छोटा घड़ा, कलसी।

गच—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) किसी नरम वस्तु में पैनी वस्तु के धँसने का शब्द। (२) चूने, सुरखी आदि का मसाला। (३) इस मसाले से बनी पक्की जमीन। (१) पक्की छत।

गचकारी—संशास्त्री. [हिं. गच+फ़ा. कारी] गच पीटने का काम।

गचगर—संशा पुं. [हिं. गच + फ़ा. गर = बनानेवाला] कारीगर, थवई।

गचगीरी—संशा स्त्री. [हिं. गच + फ़ा. गीरी] गच बनाने का काम, गचकारी।

गचना—कि. स. [श्रनु. गच] (१) हुँस हूँ स कर भरना। (२) चुभाना। (३) वश में रखना।

गचाका—संज्ञा पुं. [हिं. गच से श्रनु.] गच से गिरने का शब्द।

क्रि. वि.—भरपूर।

गच्छ—संशा पुं. [सं.] (१) पेड़। (२) साधुत्रों का मठ। (३) एक ही साधु के शिष्य।

गच्छना, गछना — क्रि. श्र. [सं. गच्छ = जाना] जाना, प्रस्थान करना।

कि. स.—(१) निबाहना। (२) स्वयं भार लेना। गजंद—संज्ञा पुं. [सं. गयंद] हाथी।

गज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी, गयंद । उ.—बारबार गड संकर्षन भाषत लेत नहीं ह्याँ ते गज टारी—२५८६। (२) महिषासुर का पुत्र। (३) श्लीराम की सैना का एक बंदर। (४) ग्राठ की संख्या। (४) मकान की नींव। संज्ञा पुं. [फ़ा. गज़] (१) लंबाई नापने की एक नाप। (२) बैलगाड़ी के पहिये की लकड़ी। (३) सारंगी बजाने की कमानी।

गजत्रसन - संज्ञा पुं. [सं. गजाशन] पीपल का पेड़। गजक—संज्ञा पुं. [फ़ा. कजक] (१) तिल की पपड़ी। (२) जलपान। (३) चटपट खाने की चीज।

गजकुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी का उभरा हुन्ना मस्तक। गजकेसर—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का धान।

गजगित—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हाथी की चाल। (२) मंद और मस्तानी चाल। (३) एक वृर्णवृत्त।

गजगमन—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी की सी मंद श्रोर मस्तानी चाल।

गजगामिनि, गजगामिनी—वि. [हिं. गजगामी] मंद श्रोर मस्तानी चालवाली। उ.—खंजन मीन मराल हरन छिब भाव भेद गजगामिनि—ए० ३४४ (३४)। गजगामी—वि. [सं. गजगामिन्] जिसकी चाल मंद श्रोर मस्तानी हो।

गजगाह—संशा पुं. [सं, गज + ग्राह] (१) हाथी की भूल। (२) भूल।

गजगीन—संज्ञा पुं. [सं. गजगमन] हाथी की सी मंद-मस्तानी चाल।

गजगौनी—वि. स्त्री. [सं, गजगामिनी] हाथी की सी मंद-मस्तानी चालवाली।

गजगोहर—संशा पुं. [हिं. गज + फ़ा. गोहर] गजमुका। गजचम — संशा पुं. [सं.] (१) हाथी का चमड़ा। (२) एक रोग।

गजता—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथियों का मुंड।

गजदंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का दाँत। (२) दीवार में लगी खूँटी। (३) घोड़ा जिसके दाँत मुँह के बाहर निकले हों (४) दाँत के ऊपर का दाँत।

गजदंती — वि. [सं, गजदंत + ई (प्रत्य.)] हाथीदाँत का बना हुआ, हाथी दाँत का । उ. — कर कंकन चूरी गजदंती नख मनिमानिक मेटति देती।

गजदान—संशा पुं. [सं.] (१) हाथी का दान। (२) हाथी का मद।

गजधर—संज्ञा पुं. [हिं. गज + धर] राज, मेमार, थवई।
गजना—िक. त्रा. [हिं. गाजना] गरजना।
गजनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ी तोप जिसे हाथी खींचें।
गजनी—पंज्ञा स्त्रे. [सं. गज] हथिनी। उ.—जो राजत
तिहिं काल लाल लजना रसाल रस रंग। मानहु नहात
मदन बधु सजनी गज गजनी गज संग २४६०।
गजपित—संज्ञा पुं. [सं. गज + पित] (१) बहुत बड़ा
हाथी। (२) वह बड़ा हाथी जिसे प्राह ने पकड़
लिया था त्रीर जिसको छुड़ाने के लिए भगवान
विष्णु गहड़ छोड़का नंगे पैर दोड़े थे। (३) वह राजा
जिसके पास बहुत हाथी हों। (४) कलिंग देशीय
राजात्रों की उपाधि।

राजाश्रा का उपाध ।

गजपाँच — संज्ञा पुं [हिं. गज + पाँच] एक जलपत्ती ।

गजपाल — संज्ञा पुं. [सं.] महावत, हाथीवान । उ. —

क्रोध गजराज गजगाल कीन्हो — २५६१ ।

गजपुर — संज्ञा पुं. [सं.] धातुश्रों के फूँकने की रीति ।

गजपुर — संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर ।

गजबंध — संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का चित्रकाब्य ।

गजब — संज्ञा पुं. [श्र. गज़ब] (१) कोप, रोष । (२)

श्राफत, विपत्ति । (३) श्रंधेर । (४) श्रद्भुत बात ।

मुहा० — गजब का — श्रद्भुत, बहुत श्रिधक ।

गजबद्त-संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।
गजबाँक, गजबाग-संज्ञा पुं. [सं.गज + वाँक या बाग]
हाथी का श्रंकुश।

गजबेली - संशा स्त्री. [स. गज + बल्ली] एक तरह का लोहा।

गजमत्त्र, गजमत्य—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल ।
गजमित्ता, गजमित – संज्ञा स्त्री., पुं. [सं.] गजमुक्ता ।
गजमित्याँ—संज्ञा स्त्री. श्रह्म. [सं. गजमित्ता] गजमित्ता, गजमुक्ता । उ.—पहुँची करित, पदिक उर हिर-नल, कठुला कंठ, मंजु गजमित्याँ—१०-१०६।
गजमुक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] मोती जो हाथी के मस्तक से निकलता माना गया है ।

गजमुख—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।
गजमोचन—संज्ञा स्त्री. [सं.] गज को संकट से छुड़ाने
की किया। उ.—एहि थर बनी कीड़ा गजमोचन
श्रीर श्रमंत कथा स्नुति गाई—१-६।

संशा पुं. [सं.] विष्णु का वह रूप जो उन्होंने प्राह से गज को छुड़ाने के लिए धारण किया था। उ.—गजमोचन ज्यों भयो ग्रवतार। कहाँ सुनौ सो श्रव चितधार।

गजमोती—संज्ञा पुं. [ं. गजमौक्तिक, प्रा. गजमोत्तिय] गजमिण, गजमुक्ता।

गजर—संज्ञा पुं, [सं. गर्ज, हिं. गरज] (१) पहर-सूचक घंटे का शब्द। घंटे का शब्द। उ.—बोले तुमचुर चारो याम को गजर मारघी पौन भयौ सीतल तम तमता गई —१६०८। (३) जगाने की घंटी।

संशा पुं. [हिं. गजर-वजर] मिला हुआ लाल-सफेद गेहूँ।

गजरथ—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा रथ जिसे हाथी खीचें। गजर-बजर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) मिले हुए कई पदार्थ। (२) अंड-बंड चीजों का मेल। (३) भच्य-श्रभच्य।

गजरा—संशा पुं. [हिं. गाजर] गाजर के पत्ते।
संशा पुं. [हिं. गंज = समूह] (१) फूलों की
घनी गुँथी माला। (२) कलाई का एक गहना। (३)
एक रेशमी कपड़ा।

गजराज—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा हाथी। उ.—(क) धाए गजराज-काज, केतिक यह बाता—१-१२३। (ख) ज्यों गजराज-काज के स्त्रीसर स्त्रीरें दसन दिखावत —३०६३।

गजिरपु - संज्ञा पुं. [सं. गज+ रिपु=शत्रु] सिंह।
संज्ञा स्त्री.—पतली कमर या किट जिसकी उपमा
हाथी के शत्रु सिंह की पतली कमर से दी जाती
है। उ.—एक कमल पर धारे गजिरपु एक कमल
पर सिंस-रिपु जोर—सा. उ. ४७।

गजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गजरा] कलाई का एक स्त्राभूषण।

संशा स्त्री.:[हिं.गाजर] छोटी गाजर।
गजरीट—संशा स्त्री. [हिं.गाजर + श्रीटा] गाजर के
पौधे की पत्ती।

गजल-संज्ञा [फा. ग़ज़ल] श्रंगार रस की कविता। संज्ञा पुं. [सं० गज = करि = करी+ल = करील]

के को तन ते सुरभावे - सा. ८५। राजवद्न-संज्ञा पुं. [सं.] गर्णेश ।

गजवान-संज्ञा पुं. [हिं. गज + वान (प्रत्य.)] हाथी-वान, महावत।

गजशाला, गजसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. गज + शाला] वह स्थान जहाँ हाथी बाँधे जाते हैं।

गजही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाज + फेन] वह लकड़ी जिससे दूध मथकर फेना या मन्खन निकालते हैं। गजाधर—संज्ञा पुं. िसं. गदाधर विष्णु जिन्होंने गदा-

सुर की हिड्डियों से बनी गदा धारण की थी। मजानन-संशा पुं, िसं, गज + श्रानन] गणेश। गजा—संज्ञा पुं. फ़ा. गज नगाड़ा बजाने का डंडा। गजारि—संशा पुं. [सं, गज + अरि] (१) शाल। (२) ् एक वृत्त । (३) सिंह।

गजाशन-संज्ञा पुं. [सं.] पीपल ।

गजास्य—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश ।

गजी—संज्ञा पुं, [फ़ा, गज] गाढ़ा, मोटा कपड़ा । संज्ञा पुं. [सं. गज + ई (प्रत्य.) अथवा गजिन्] हाथी का सवार।

संज्ञा स्त्री, [सं.] हथिनी।

गर्जेंद्र — संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा हाथी। (२) ऐरावत। गडजर—संज्ञा पुं. [श्रनु.] दलदल, कीचड़। गज्जह — संशा पुं. [सं. गज + व्यूह] हाथियों का मुंड। गडमा—संशा पुं. [सं. गजन=शब्द] (१) पानी में छेटे-छोटे बुलबुलों का समूह। (२) गज।

संज्ञा पुं. [सं. गज] (१) ढेर, अंबार। (२) खजाना, भंडार। (३) धन-संपत्ति। (४) लाभ। गिमन-वि. [हिं. गछना] (१) घना। (२) मोटा कपड़ा, गाढ़ा।

गटई—संज्ञा स्त्री. [सं. कंठ, पु. हिं. घंट] (१) गला। (२) गिही। (३) गोटी।

गटकना-कि. स [हिं. गट से अनु.] (१) खाना, निगलना। (२) दबा लेना।

गटकि—कि. स. [हिं, गटकना] खाना, निगलना। उ,—लटिक निरंखन लग्यो मटक सब भूलि गयौ

करील, बबूल । उ.—पा रिपु ता महँ परत गजल हटक हैं के गयी गटिक सिल सों रहयों मीचु जागी -- 78081

गटकीला — वि. [हिं, गटक] खानेवाला। गटगट - संज्ञा पुं [अनु.] घूँट भरने का शब्द।

क्रि. वि.—(१) धड़ाधड़, लगातार। (२) घूँ टने का शब्द करते हुए।

गटना — कि. म्र. रिं. ग्रंथन, प्रा. गंठन] बॅधना। गटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) पदार्थों या प्राणियों की मिलावट । (२) सहवास, प्रसंग ।

गटा —संज्ञा पुं. [हिं. गट्टा] (१) कलाई, गट्टा। (२) गाँठ। गंटागंट — कि. वि. हिं. गटगट] (१) गटगट शब्द करके। (२) लगातार, धड़ाधड़।

गटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि, पा गंठि] (१) गाँठ। (२) समूह।

कि. श्र. [हिं. गठना] गँठी, बँघी। उ.—(क) श्रपनी रुचि जित-ही-जित ऐंचिति इंद्रिय-कर्म गटी। हों तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी -- 8-8-1

गट्ट-संज्ञा पुं. श्रिनु. निगलने का शब्द। गट्टा-संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ, प्रा. गंठ, हिं. गाँठ] (१) कलाई (२) पैर श्रौर तलुए के बीच की गाँठ। (३) गाँठ। (४) बीज। (५) एक मिठाई।

गट्टी-संशा स्त्री. [देश.] नदी का किनारा। गट्ठर, गट्ठा - संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ] बड़ी गठरी, बड़ा बोभ।

गठकटा -- वि. पुं. [हिं. गाँठ + काटना] (१) गिरहकट। (२) घोखा देकर रुपया ठग लेनेवाला।

गठजोरा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ जोड़ना] गठबंधन। गठन—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन] बनावट । गठना—कि. श्र. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन, हिं. गाँठना का श्रक. रूप (१) जुड़ना, सटना, मिलना। (२)मोटी सिलाई होना। (३) ऐसी बनावट होना जिसमें छेद न रहे। (४) गुप्त कार्य या विचार में सिमलित होना। (४) ठीक बनना। (६) संयोग होना। (७) गह्री मित्रता होना।

गठबंधन—संज्ञा पुं. [हिं गाँठ+बाँधना] विवाह की एक रस्म, गँठजोड़।

गठरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गट्ठर] (१) बड़ी पोटली। बोम, भार का मंमट। उ—सूरदास स्वामी के रँग रचि कहाँ घरेँ गठरी-३३१८। (२) जमा की हुई दौलत। उ—इह निगुन निमोल की गठरी श्रव किन करत घरी—३१०४। (३) तैरने की एक रीति।

गठताना, गठाना—िक. स. [हिं. गँठना] (१) मोटी सिलाई कराना। (२) जोड़ मिलवाना। (३) संयोग कराना।

गठाव—संज्ञा पुं. [हिं. गठना] गठन, बनावट । गठित—वि. [सं. ग्रंथित, पा. गठित] गठा हुआ। गठिबंध— संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथिबंध] गँठजोड़, गठबंधन। गठिया—संज्ञा स्त्री० [हिं. गाँठ] (१) छोटी गठरी। (२) एक रोग।

गठियाना — कि. स. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ लगाना।

(२) गाँठ में रखना या बाँधना। प्रिचन संदर्भ मिना संशिक्षणे किल्ला

गठिवन—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथिपर्णा] एक पेड़ ।

गठीला—वि. [हिं. गाँठ = ईला (प्रत्य.)] जिसमें कई गाँठें हों।

वि. [हिं. गठन] (१) गठा हुस्रा, सुडौल। (२) मजबूत, दइ।

गठौंद-रंज्ञा स्त्री [हिं. गाँठ+ बंघ] (१) गाँठ- बँघाई। (२) ग्रमानत, धरोहर, थाती।

गठौत, गठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. गठना] (१) मेल, मित्रता । (२) पक्की सलाह या बात, गुप्त चक, षड्यंत्र।

गड़ंग—संज्ञा पुं [सं. गर्व] (१) घमंड, शेखी, डींग। (२) अपनी प्रशंसा।

गड़ंगिया — वि. [हिं. गड़ंग] डींग हाँकनेवाला, शेखी बघारनेवाला, बढ़ बढ़कर बातें बनानेवाला।

गड़ंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाड़ना] वह वस्तु जो मंत्र पढ़कर गाड़ी जाय।

गड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्रोट, स्राड़। (२) घेरा। (३) गड्ढा। (४) गढ़, किला। गड़कना—क्रि, श्र. [स्रुनु.] गड़गड़ शब्द करना।

गड़क-संज्ञा पुं. [त्र्र. गर्क] (१) डुबाव। (२) डूबने या बूड़ने क शब्द।

गड़गड़ाना - कि. ग्र. [हिं. गड़गड़]गड़गड़ शब्द होना, गरजना, कड़कना।

कि. स.—गड़गड़ शब्द निकालना।
गड़गड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं. गड़गड़] नगाड़ा, हुग्गी।
गड़दार—संज्ञा पुं. [हिं. गठना + दार] (१) वह नौकर जो
मतवाले हाथी के साथ भाला लेकर इसलिए चलता
है कि उसे इधर-उधर भटकने न दे। (२) महावत।
गड़ना—कि. श्र. [सं. गर्त, प्रा. ग] (१) चुमना, घुसना,
भँसना। (२) चुमने की सी पीड़ा होना, दर्द करना।
(३) जमीन में दबना।

मुहा.—गड़े मुदें उखाड़ना—भूली हुई या दबी-दबाई पुरानी भगड़े की बात की फिर चर्चा चलाना।-(४) समा जाना, पैठना।

मुहा.—गङ् जाना—भेंपना, लजाना। लजा (ग्लानि) से गङ्ना—बहुत लजित होकर सिर नीचे कर लेना।

(४) खड़ा होना, जमीन पर ठहरना । (६) जम जाना, एक स्थान पर स्थिर होना ।

गड़पंख—संज्ञा पुं. [सं. गहड़+पंख] एक बड़ी चिड़िया। गड़प—संज्ञा स्त्री. [त्रानु.] पानी, कीचड़ त्रादि में डूबे का शब्द।

गड़पना —िक. स. [अनु. गड़प] (१) खा लेना। (२) किसी चीज को अनुचित रीति से हथिया लेना।

गड़बड़, गड़बड़ी—िव. [हिं. गड़=बड़ा ऊँचा] (१) ऊँचा-नीचा (२) ग्रस्तन्यस्त, ग्रंडबंड।

संज्ञा पुं.—(१) जटपटाँग काम, अन्यवस्था। (२) दंगा, संभट। (३) (रोग आदि का) उपद्रव।

गड़बड़ाना—िक. श्र. [हिं. गड़बड़] (१)चकर में श्रा जाना, भूल कर बैठना। (२) क्रम बिगड़ जाना, व्यवस्था ठीक न रहना। (३) नष्ट होना।

कि. स.—(१) (किसी को) चकर में डालना, भुलाना।(२) व्यवस्था या कम बिगाइना।(३) नष्ट करना। गड़वाना—िक. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम (दूसरे से) कराना।

गड़हा—संज्ञा पुं. [सं. गर्त, प्रा. गड्ड] गड्ढा।

मुहा,— गड़हा खोदना— बुराई करना। गड़हा

भरना (पाटना)—(३) घाटा पूरा करना। (२) रूखीसूखी खाकर पेट भरना। गड़हे में पड़ना—कठिनाई
या असमंजस होना।

गड़ाए—िक. स. [हिं. गड़ना] धँसाये हुए। उ.— श्रित संकट में भरत भँटा लों, मल में मूड़ गड़ाए —१.३२०।

गड़ाना—क्रि. स. [हिं. गड़ना] चुभाना, धँसाना। क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम कराना।

गड़ायट—वि. [हिं. गड़ना] गड़ने या चुभनेवाला। गड़ारी—संज्ञा स्त्री, [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा, वृत्त। (२) घेरा, मंडल।

संज्ञा स्त्री. [सं. गड = चिन्ह] आड़ी रेखाएँ। संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) कुएँ की चरखी। (२) चरखी के बीच का भाग जिस पर रस्सी रहती है। (३) एक घास।

गड़ाव-कि. स. [हिं. गड़ाना] गड़वा दो। उ. — पांडव-सुत अरु द्रौपदी कों मारि गड़ावौ — १-२३८। गड़ि—संज्ञा पुं [सं.] (१) बछड़ा। (२) एक बैल। कि. अर. [हिं. गड़ना] (१) गड़ने का चिन्ह बनना। उ.—बिनु गुण गड़ि माला रही ठाहिं कहुँ विहराने — २१३८। (२) चुमना, खटकना, बुरा लगना। उ.—हमरौ यौवन रूप आँखि इनके गड़ि लागत — १०२५।

गड़िबे—िक. श्र. [हिं. गड़ना] चुभना, धँसना, घुसना।
उ.—कठिन कठिन कली बीनि करत न्यारी प्यारी के
चरन कोमल जानि सकुच श्रित गड़िबेहि डराति
—१०६८।

गडुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेडुरी] एक पत्ती। गड़े- क्रि. त्र्र. [हिं. गड़ना] चुभे, धँसे, घुस गये। उ.-इहि उर मालन चोर गड़े—३१५१।

अड़ेरिया—संज्ञा पुं. [सं. गड्डरिक, पा. गड्डरिश्र] एक जाति जो भेड़ें पालती है। गड़ोना—िक्र. स. [हिं. गड़ाना] चुभाना, घंसाना।
गड़ना—संज्ञा पुं. [हिं. गाड़ना] एक तरह का पान।
संज्ञा पुं. [हिं. गड़ना] काँटा।

गड्ड—संज्ञा पुं. [सं. गर्च] समूह, गड्डी। संज्ञा पुं. [सं. गर्च= गड्डा] गड्डा।

गढ़ंत—वि. [हिं. गढ़ना] कलिपत, बनावटी। संज्ञा स्त्री.—बनावटी या कलिपत बात।

गढ़—संज्ञा पुं. [सं. गड़—खाई] (१) खाई । (२) किला, कोट। उ.—िनरभय देह, राजगढ़ ताकी, लोक मनन-उतसाहु—१-४०।

मुहा.—गढ़ तोड़ना (जीतना)— कठिन काम करना।

गढ़त, गढ़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़ना] गढ़न, ढाँचा।
गढ़ना—िक. स. [सं. घटन, प्रा. घडन] (१) काँट-छाँट
करना, रचना, बनाना। (२) सुडौल करना, ठीक
करना। (३) बात बनाना, कल्पना करना।
पदा—गट गट कर बातें करना—फठ-मठ की

मुहा.—गढ़ गढ़ कर बातें करन।—भूठ-मूठ की बातें गढ़ना।

(४) मारना, पीटना। (४) प्रस्तुतं या उपस्थित करना।

गढ़पति—संशा पुं. [हिं. गढ़+पति] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वना—िक. ग्र. [सं. गढ़=िकता] (१) किले में जाना। (२) रिचत स्थान में पहुँचना।

गढ़वार, गढ़वाल — संज्ञा पुं. [हिं. गढ़ + वाला] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वें—िकि. श्र. [सं. गढ़=िकला] (भयभीत होकर) किले में श्राश्रय लिया। उ.—गढ़वें भयौ नरक-पित मोसों, दीन्हें रहत किवार। सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हें पाप श्रपार—१-१४१।

संज्ञा पुं. (१) गढ़पति। (२) राजा। (३) सरदार।

गढ़ाई—संशा स्त्री. [हिं. गढ़ना] (१) बनाने या सुडौल करने का काम। (२) गढ़ने की मजदूरी।

गढ़ाऊँ—िक. स. [हिं. गढ़ाना] गढ़वाऊँ, बनाऊँ, तैयार कराऊँ। उ.—मैं निरबल बित-बल नहीं, जो श्रीर गढ़ाऊँ—६-४२। गढ़ाना — क्रि. स. [हिं. गढ़ना का प्रे.] (१) बनवाना, सुडोल करना।

कि. श्र. [हिं. गाढ़=कठिन] बुरा लगाना।

गढ़ाये — कि. स. [हिं. गढ़ाना] बनवाये, सुघटित कराये। उ. — कंचन कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये — ११३० ;

गढ़ि— कि. स. [हिं. गढ़ना] (१) बनाकर, रचकर। उ.—गढ़ि गढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरती पर डोलाइ, बलि हालक रे—१०-४७।

मुहा.—गहि गहि बात बनावत (बानित)—मूठ-मूठ की कल्पना करना, नमक-मिर्च लगाकर कोई बात कहना। उ.— (क) उनके चरित कहा कोड जाने, उनहीं कही तु मानित। कदम तीर तें मोहिं बुलायो, गहि गहि बातें बानित। (ख) जो जैसो तैसो त्यों चिलये हरि आगे गहि बात बनावत —ए. ३२६।

(२) लीन होकर, पगकर, मग्न होकर । उ.— यह चतुराई ऋधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढ़ि पढ़े हो पटी—२००८ ।

गढ़िया—संज्ञा पुं, [हिं. गढ़ना] गढ़नेवाला। (२) शिव।

गढ़ी—िक. स. स्त्री [हिं. गढ़ना] सुघटित की, रची, ठीकठाक की। उ.—(क) भई देह जो खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी। स्रदास प्रभु हिष्ट कृपा-निधि, मानौ फेरि बनाई गढ़ी—९-१७०। (ख) हों अपराधिनि चतुर विधाता काहे को बनाइ गढ़ी —२७६४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़] (१) छोटा किला। (२) मजबूत मकान।

गढ़ीश, गढ़ीस—वि. [हिं.गढ़ + सं. ईश] गढ़ का स्वामी या श्रिधकारी।

गढ़ें—कि. स. [हिं. गढ़ना] गढ़ता है, सोचता है, कर्न कल्पना करता है । उ.—जिय जिय गढ़ें, करें बिस्वासहिं, जौन लंका लोग—६-७५।

गढ़ेया—िव. [हिं. गढ़ना] गढ़नेवाला, बनानेवाला, रचनेवाला। उ.—ग्रानि धरयो नन्दद्वार, ग्राति हीं सुन्दर सुढार। ब्रज बधू कहँ बार-बार धन्य र गढ़ेया १०-४१—। गढ़ोई—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़] किले का स्वामी।
गढ़यौ—कि. स. [हिं. गढ़ना] गढ़ा, बनाया, रचा।
उ.—कनक-रतन-मनि पालनो, गढ़यो काम सुतहार
—१०-४२।

गण-संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, मुंड। (२) श्रेगी, कोटि। (३) तीन वर्णों का समूह। (४) शिव के पारिषद। (४) दूत, सेवक। (६) स्वपच्च के व्यक्ति। (७) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य। (८) समाज, संघ। (१) शासन के प्रबंधकों का संघ या मंडल। गणक-संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्योतिषी। (२) गणना या हिसाबिकताब करनेवाला।

गणतंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] प्रजा के प्रतिनिधियों का शासन, जनतंत्र, प्रजातंत्र।

गणन—संज्ञा पुं. बहु. [सं. गण] दूत, सेवक। उ.— गणन समेत सती तह गयी।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिनना। (२) गिनती।

गणना—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) गिनती। (२) हिसाब। (३) संख्या। (४) एक श्रतंकार।

गणनाथ, गणनायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश।
(२) शिव।

गणनायिका—संशा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गणनीय — वि. [सं.] (१) गिनने योग्य । (२) प्रसिद्ध । गणप, गणपति — संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश । (२) शिव ।

गाग्राज्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह राज्य जो प्रजा के प्रति-निधियों द्वारा चलाया जाता हो।

गणाधिप गणाध्यत्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गया का स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गिणिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेश्या । (२) एक वृत्त । (३) एक फूल । (४) धन के लोभ से प्रेम करने वाली स्त्री ।

गिशित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मात्रा, संख्या श्रीर पश्मिश की विद्या। (२) हिसाब।

गिश्तिज्ञ —िव. [सं.] (१) गिश्ति शास्त्र का जानने वाला। (२) ज्योतिषी।

गागेश—संज्ञा पुं. [सं.] एक देवता जिनका शरीर मनुष्य का श्रीर सिर हाथी का सा है। इनके चार हाथ, एक दाँत और तीन आँखे हैं। इनकी सवारी चूहा है। इनके हाथों मैं पाश, अंकुश, पद्म और परशु हैं। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं।

वि.—गणों का स्वामी या श्रिधकारी।
गण्य—वि. [सं.] (१) गिनने योग्य।(२) प्रसिद्ध, मान्य।
गत—वि. [सं.] (१) गया हुआ, बीता हुआ।

मुहा०-गत होना-मर जाना।

(२) रहित, हीन।

कि.स्र.-(१) व्यतीत हुये, बीत गये, स्रतीत हुए।
उ.—इहिं विधि भ्रमत सकल निसि दिन गत कछू
न काज सरत—१५५।(२) जाने पर, स्रस्त होने
पर। उ.—जनु रिव गत संकुचित कमल जुग निसि
स्रिल उड़न न पार्गे—१०-६५।

संज्ञा स्त्री—(१) दशा, अवस्था।

मुहा. -- गत का -- ठीक, काम का। गत बनाना-(१) दुर्गति करना। (२) मारना-पीटना। (३) हँसी उड़ाना।

(२) रूप, रंग, आकृति।

मुहा.—गत बनाना— (१) विचित्र वेश या धजा बनाना। (२) त्राकृति बिगाड़ना। (३) काम या उपयोग में लाना। (४) दुर्गति, दुर्दशा। (४) मृतक का क्रिया-कर्म। (६) नृत्य में शरीर का संचालन।

गतांक—वि. [सं.] जिसमें सद्गुण न रहे हों, गया-बीता, निकम्मा।

गतागत—वि. [सं.] श्राया- गया । संज्ञा पुं. [सं.] जन्म-मरण।

गतालोक—वि, [सं. गत + त्रालोक] (१) प्रकाशरहित। (२) महत्वहीन।

गति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) चाल, जाने की किया, गमन।
उ.—(क) प्राह गहयो गज-बल बिनु व्याकुल बिकल
गात, गित लंगी। धाइ चक्र लेताहिं उबारयो मारयो
प्राह-बिहंगी—१-२१। (ख) मधु मराल जुग पद
पंकज के गित-बिलास जल मीन—३०३८। (२)
हिलने- डोलने की किया या शक्ति। उ.—स्रवन
न सुनत चरन-गित थाकी, नैन भए जलधार—

११९८ । (३) अवस्था 'दशा । उ.—(क) सूर स्यामसुन्दर जो सेवे क्यों होवे गति दीन—१-४६ । (ख) ज्यों भुवंग तिज गयौ केंचुत्ती सो गति भई हमारी—३०५६ ।

मुहा—गतिकीनी—दुर्दशा की, ब्रिश दशा को पहुँचा दिया। उ.—श्रजामील तौ बिप्र तिहारौ हुतौ पुरा-तन दास। नैंकु चूक तैं यह गति कीनी पुनि बैकुं ठ निवास—-१-१३२।

(४) रूप, रंग, वेश। (५) पहुँच, प्रवेश। उ—गति नाहीं काहू की जहाँ—१० उ.-१२८। (६) प्रयत्न या युक्ति की सीमा। (७) सहारा, शरण । उ.—मेरी तौ गति - पति श्रनतिहं कहँ मुख पाऊँ (८) चेष्टा, कार्य । उ.— जेतिक श्रधम उधारे प्रभु तुम तिन की गति मैं नापी-१-१४०। (६) लीला, माया। उ.-(क) श्रविगत गति कछु क इत न श्रावै—१-२ । (ख) दयानिधि तेरी गति लिख न परै-१-१०४ । (ग) या गति की माई को जानै—२८८७ । (१०) रीति, ढंग। (११) सुधि, ध्यान। उ.—स्वन न सुनत देह-गति भूली गई विकल मति बौरी—८५३। (१२) चर्चा, प्रसंग, बात । उ.—जोग की गति सुनत मेरे श्रंग श्रागि वई - ३१३१। (१३) जीवास्मा का एक शरीर से दूसरे में प्रवेश। (१४) मृत्यु के बाद जीवात्मा की दशा। उ. कपट-हेत परसें बकी जननी-गति पावै--१-४। (१४) मो च, मुक्ति। (१६) कुश्ती का पैतरा। (१७) प्रहों की चाल। (१८) ताल-स्वर के श्रनुसार शरीर-संचालन ।

गति वधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] १) चेष्टा। (२) काम का रंग-ढंग या चाल-ढाल।

गतिशील—वि. [सं.] (१) जिसमें गति हो। (२) उन्नति करनेवाला।

गत्थ—िव. [सं.] (१) पूँजी, जमा। (२) माल।
गत्वर—िव. [सं.] (१) जानेवाला। (२) नाशवान।
गथ—संज्ञा पुं. [सं. प्रंथ, प्रा. गत्थ] पूँजी, गाँठ का
धन, धन संपत्ति। उ.—(क) घर मैं गथ निहं भजन
तिहारी, जीन दियें मैं छूटों। धर्म-जमानत मिल्यो न

चहें, तातें ठाकुर लूटो — १-१८५ । (ल) श्रित मलीन बृषभानु कुमारी।... .. श्रधोमुल रहति उपर निहं चितवति ज्यों गय हारे थिकत जुग्रारी—३४२५ । (२) व्यापार का सामान,पर्य द्रव्य । उ. — (क) तुम्हरो गथ लादो गयंद पर हींग मिरच पीपरि कहा गावति। (ल) स्रदास गथ खोटो काहे पारिल दोष घरे— पृ. ३३१ । (३) कुंड, गरोह। अना— कि.स. [सं.ग्रंथन] (१) एक चीज को दसरे

गश्चना—कि.स. [सं.प्रंथन] (१) एक चीज को दूसरे में जोड़ना या गूँथना। (२) गड़ गड़कर बातें करना। गश्च—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूँजी। उ.—ज्य़ों जुनारि रस- बींधि हारि गथु, सोचित पटिकि चिती--११--१। गथी—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूजी, जमा। उ.—भीनी कामरि काज कान्ह ऐसी नहिं कीजै। काच पोत गिर जाइ नंद घर गथी न पूजै—११२७।

गद—संशा पुं. [सं.] (१) विष । उ.—फुरे न मंत्र, ंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे। प्रेम-प्रीति विष हिरदे पारथी, डारत है तनु जारे—७४७। (२) रोग। (३) श्रीकृष्ण का छोटा भाई। (४) श्रीराम की सेना का एक बानर। (४) एक असुर। (६) मोटापा।

संज्ञा पुं. [श्रनु,] गुलगुली वस्तु पर कड़ी या गुल-गुली वस्तु के श्राघात का शब्द।

गदका - संज्ञा पुं. [सं. गदा या गदक, हिं. गतका] (१) खेलाने का डंडा। (२) एक खेला।

गदकारा — वि. पुं. [अनु. गद+कारा (प्रत्य.)] गुल-गुला, गुदगुदा।

गद्गद—वि. [सं. गद्गद] श्रद्धा, हर्ष श्रादि के श्रावेग से पूर्ण। उ.—गदगद बचन नयन जल पूरित बिलख बदन कुस गातें—सा. उ. ४६।

गद्गद्ग-संज्ञा पुं. [देश.] रत्ती का पौधा।
गद्ना-कि. स. [सं. गदन] कहना।
गद्वद्-वि [हिं. गुदगुदा] गुलगुला, मुलायम।

गद्म—संज्ञा पुं. [देश.] थाम, श्राइ, पुश्ता।

गद्र—संज्ञा पुं. [श्र. गदर] (१) हलचल, उपद्रव। (२) बगावत, विद्रोह।

संज्ञा पुं. [हिं. गदा] रुई की बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुर जी को पहनाते हैं। गदरा—िव. [हिं. गहर] जो श्रच्छी तरह पका न हो, श्रधपका।

गद्राना—िक, त्रा. [त्रानु, गद] (१) (फल त्रादि) पकने लगना। (२) युवावस्था में शरीर का पुष्ट होने लगना। (३) आँखें दुखने पर होना।

वि. — गदराया हुन्रा, पुष्ट।

दला—िव. [हिं. गंदा] मटमैला या गंदा (पानी)। गदलाना —िकि. स. [हिं. गदला] पानी गंदा करना।

कि. श्र.—(पानी का) गंदा या मैला होना।
गदर्पची सी — संज्ञा स्त्री. [हिं.] श्रनुभवहीनता की
जम्र जो १६ से २४ वर्ष तक मानी जाती है।

गदहपन—संज्ञा स्त्री. [हिं. गदहा+पन (प्रत्य.)] मूर्खता, अनुभवहीनता।

गदहा—संशा पुं. [सं.] रोग हरनेवाला, वैद्य।
संशां. [तं. गंभ, प्रा. गहह] (१) गधा,
खर, गदं। (२) सूखं, नासमम, अनुभवहीन।
गदांबर—संशा पुं. [सं.] मेश।

गदा—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) लोहे का एक प्राचीन शस्त्र जिसमें डंडे के एक सिरे पर लट्टू होता था। (२) लोड़ जो गदा के स्राकार का होता है।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] भिखमंगा।
गदाई—ित. [फ़ा.]गदा = फकीर + ई (प्रत्य.)] (१)
तुच्छ, नीच। (२) रद्दी, बेकार।

गदाका—िव. [हिं. गद] सुडौल शरीरवाला।
संज्ञा पुं.—जमीन पर पटकने की क्रिया।
गदाधर—संज्ञा पुं. [सं.] गदासुर की हिंडुयों की बनी
गदा धारण करनेवाले विष्णु।

गदाला—संज्ञा पुं. [हं. गदा] (१) हाथी पर कसने का गदा। (२) बहुत मोटा रुई का वस्त्र।

गदावारण—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाज । गदित—वि. [सं.] कहा हुआ। गदी—वि. [सं. गदिन्] (१) रोगी। (२) गदाधारी। गदेला—संज्ञा. पुं. [हं. गहा] (१) रुई का मोटा वस्त्र।

(२) हाथी की पीठ का गदा।

संज्ञा पुं. [देश.] छोटा बालक।
गदोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गदी] हथेली।
गद्गद—वि. [सं.] (१) अधिक हर्ष प्रेम, श्रद्धा आदि

के आवेग से ऐसा युक्त कि अपनी स्थिति का उसे ज्ञान न रहे। (२) अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग के कारण रका या अस्पष्ट। उ.—गद्गद सुर पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै—१-७२। (३) प्रसन्न, पुलकित।

संज्ञा पुं. [सं.] हकलाने का रोग।

गह—संज्ञा पुं. [श्रनु.] (१) मुलायम या गुदगुदी जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। (२) किसी चीज के हजम न होने पर पेट का भारीपन। (३) एक कित्पत जादू की लकड़ी जिसका स्पर्श करके मनुष्य मूर्ख हो जाता है।

मुहा.—गह मारना—वश में करना। गह मारा जाना—मूर्खं हो जाना।

वि. — मूर्ख, जड़।

शहर—िव. [देश.] (१) अधपका। (२) मोटा गद्दा।
गद्दा—संज्ञा पुं, [हिं. 'गद्द' से अनु.] (१) मोटा बिछीना
जिसमें रुई या पयाल भरा हो। (२) हाथी की पीठ का
मोटा बिछीना जिस पर हौदा कसा जाता है। (३)
घास, रुई आदि का बोभ। (४) गुदगुदी चीज
की पोली-पोली मार।

- गही—संज्ञा, स्त्री. [हिं. गहा] (१) छोटा गहा। (२) घोड़े, ऊँट आदि की काठी रखने की गही। (३) बैठने की छोटी गही। (१) किसी बड़े पदाधिकारी का पद। (१) राजवंश या शिष्यवंश-परंपरा। (६) हाथ-पैर की हथेली या गदेली।
- गद्दीनशीन वि. [हिं. गद्दी + फ़ा. नशीन] (१) जो सिंहासन पर बैठे। (२) उत्तराधिकारी।
- गद्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह रचना जिसमें वर्ण-मात्रा त्रादि का नियम न हो, पद्य का उलटा। (२) काव्य का एक भेद जिसमें छंद-वृत्त का नियम न हो। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

गद्यात्मक—िव. [सं.] गद्य का, गद्य में रचा हुआ। गधा—संज्ञा पुं. [हिं. गदहा] (१) खर, गदहा। (२) मूर्ख, अनुभवहीन।

गधेड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गधी + एड़ी (प्रत्य,)] फूहड़ या गँवार स्त्री।

गन—संज्ञा पुं. [सं. गण] (१) समूह, दल, जत्था। उ.—
(क) श्रीपति जू श्रारि-गन-गर्व प्रहारयौ—१-३१। (ख)
मदन रिस के श्रादि ते मिल मिली गुनगन ऐन—सा.
६६। (२) दूत, सेवक। उ.—गनन समेत सती तह गयी। तासौं दल्ज बात नहीं कही। (३) श्रेणी, कोटि।

(४) पत्तपाती। (४) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य।

गनक—संज्ञा पुं. [सं. गणक] ज्योतिषी। उ.—सुनि श्रानंदे सब लोग, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४।

गनगना—िक. श्र. [श्रनु. गनगन] (१) रोमांच होना। (२) जाड़े श्रादि से कॉॅंपना।

गनगौर—संज्ञा स्त्री. [सं, गण+गौरी] चैत्र के शुक्ता पत्त की तीज जब गणेश और गौरी की पूजा होती है।

गनत—िक. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] (१) गिनते
, मानते हैं, समभते हैं। उ. - तिनका-सौं अपने
जन को गुन मानत मेरु-समान। सकुचि गनत
अपराध - समुद्रहिं बूँद - तुल्य भगवान—१-८।
(२) ध्यान में जाते हैं,महत्व का समभते हैं। उ.—
राम भक्तवत्सल निज बानों। जाति, गोत, कुल,
नाम गनत नहिं, रंक होइ के रानों—१-११।

मुहा-—न गनत काहूँ—किसी को कुछ नहीं समसते, बदते या मानते हैं, बहुत तुच्छ समसते हैं। उ.—एक एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाय —१०-२६।

(३) गिनते-गिनते, हिसाब लगाते लगाते, जोड़ते-जोड़ते। उ.—श्रॅं खियाँ हरि दरसन की भूखी ""। श्रविध गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं भूँ खी—३०२६।

गनती—संशा स्त्री. [सं. गणना, हिं. गणना, गिनती] गिनती, गणना। उ.—(क) गाइ-गनती करन जैहें, मोहि ले नँदराइ—६७६। (ख) गनती करत ज्वाल गैयनि की, मोहिं नियरें तुम रही—६८०।

मुहा.—कौने गनती—किस हिसाब में, बिलकुल तुच्छ, नगरय। उ.—तुम हरता करता प्रभु जू, मातु-पिता कौने गनती—१२२८।

गनना—क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनती करना या हिसाब जगाना। संज्ञा स्त्री. [गिनना] गिनती।
गननाना—िक. श्र. [हिंगनगन (श्रनु.)] (१) शब्द
से भर जाना, गूँजना। (२) घूमना, चक्कर में श्राना।
गननायक—संज्ञा पुं. [सं गण+नायक] (१) गणेश। (२)
शिव।

गनप—संज्ञा पुं. [सं.गणप] गणेश । गनपति—संज्ञा पुं. [सं.गणपति] (१) गणों के नायक। (२) शिव। (३) गणेश।

गनराथ--संज्ञा पुं. [सं. गणराज] गणेश । गनहिं - कि. स. [हिं. गिनना] गिनते हैं, समभते हैं, मानते हैं। उ.-सूरदास प्रभु सदा भक्तवस रंक न गनहिं न राइ - २६३६।

संज्ञा पुं. सवि. [सं. गण + हिं. हिं (प्रत्य.)]

गनाइ — कि. स. [हिं. गिनाना] गिनाकर, गिनवा (लीजिए) । उ.—बहुत बिनय करि पाती पठई, नृप लीजें सब पुहुप गनाइ—५८२।

गनाना — कि. स. [हिं. गिनना] गिनती कराना। कि. श्र.—गिना जाना, गिनती होना।

गनायौ—िक. स. [हिं. गिनना] मानता है, सममता है। उ.—सर कहो मुसुकाय प्रानिपय मो मन एक गनायौ—सा. ६५।

गनाल—संशा स्त्री. [सं. गज + नाल] एक तोप। गनावत—क्रि. स. [हिं. गिनाना] गिनाते हैं, गिनती कराते हैं, महत्व समकाते हैं। उ.—मेंद्रा मदी मगर गुडरारो मोर श्रापु मनवाइ गनावत—६७८।

गनावन—कि. स. [हिं. गिनाना] गणना कराने (के लिए), हिसाब लगवाने (के उद्देश्य से) । उ.— कस्यप रिषि सुर तात, सु लगन गनावन रे—१०-२८। गनावे—कि. स. [हिं. गिनाना] (१) गिना रही है। (२) बता रही है, संकेत कर रही है। उ.— सूरज प्रभु मिलाप हित स्थानी अनमिल उक्ति गनावे —सा. १५।

गनि—िक. स. [हिं. गिनना] (१) समक कर, अनु-मान करके। उ.—श्रव मिथ्या तप, जाप, ज्ञान सव प्रगट भई ठकुराई। सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (२) गिनाकर, गणना करके। उ.—सूर-प्रभु चरित अनगित, न गनि जाहिं —४-११।

गिनका—संज्ञा स्त्री. [सं. गिणिका] (१) एक वेश्या जिसका उद्धार तोते को राम नाम पढ़ाते समय हो गया था। (२) वेश्या। उ.—गिनका सुत सोमा निहं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४। (३) धन के लोभ से प्रेम करने वाली स्त्री। (४) एक फूल। (४) एक वृच।

गिनके कि. स. [हिं. गिनना] गिनकर, गणना करके, हिसाब लगाकर। उ.—(नंद जू) ग्रादि जोतिसी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि ग्रायौ। लगन सोधि सब जोतिष गिनके, चाहत तुमहिं सुनायो—१००८६। गिनयत—िक. स. [हिं. गिनना](१) गिनते हैं, गणना करते हैं। उ.—कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जड कोउ करत बनाई। तदिप बिमुख पाँती सो गिनयत, भिक्त हृदय निहं ग्राई—१-६३। (२) मानते हैं, ध्यान देते हैं। उ.—तुम्हरी प्रीति हमारी सेवा गिनयत, यत नाहिन कार्ते—२५२८।

गनियारी — संज्ञा स्त्री. [सं. गिया गितिय] एक पौधा।
गनिय — क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनिए, गणना
कीजिए, शुमार लगाइए। उ.—कहा कृपिन की
माया गनिय, करत फिरत अपनी अपनी—१-३६।

गनी—िक. स. [हिं, गिनना] गिनी, गिनकर, गणना करके। उ.—श्रर्थ, धर्म श्ररु काम, मोत्त फल, चारि पदारथ देत गनी -१-३६।

संज्ञा स्त्री [हिं, गिनती] गणना, गिननी।

मुहा, — कहा गनी— क्या गिनती है, क्या समभा

जाता है, तुच्छ या नगण्य है। उ.—इन्द्र समान हैं

जिनके सेवक नर बपुरे की कहा गनी—१-३६।

वि. [श्र. ग़नी] धनी या धनवान ।
गनीम — संशा पुं. [श्र. ग़नीम] (१) लुटेरा। (२) शत्रु।
गनीमत— संशा पुं. [श्र. ग़नीमत] (१) लूट का माल ।
(२) मुफ्त या बेमेहनत का माल। (३) बड़ी बात,
संतोष की बात।

गतेस—संज्ञा पुं, [सं. गणेश] हिन्दु श्रों के पाँच प्रधान देवता श्रों में एक जिनको महादेवजी का 'पुत्र माना गया है श्रीर जो उनके गणों के श्रिधपित हैं।

गनस्वर—संज्ञा पुं. [सं. गर्गा + ईश्वर] गर्गों के नायक, गर्गेश जी | उ.—गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) — १०.४० |

गते—िक. सं. [हिं. गिनना] (१) समसे, माने, महत्व का जाने। उ.—(क) यह ब्रत धारे लोक मैं विचरे समकरि गने महामनि-काँचे—२-११। (ख) चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरिन गने—६-५३। (ग) रुक्म बरबस ब्याहि देहे गने पितिह न माइ— १०उ.-११३। (२) गिनता है। उ.—भूमि रेनु को उ गने, नद्यत्रनि गनि समुक्तावे। कहारे चहे अवतार, अन्त सोऊ नहिं पावे—२-३६।

गनैगी—क्रि.स. [हिं. गिनना] गिनेगा, मानेगा, समभेगा। उ.—जेइ निरगुन गुनहीन गनैगो सुनि सुन्दरि श्रलसात—२२८२।

गनो, गनौ—कि, [हिं, गिनना] (१) गिनो, गणना करो।(२) ध्यान लगात्रो। उ.—दिधसुत बाइन मेखला लैके बैठि अनईस गनौ री—सा. उ. ५२।

गनों—िकि. स. [हिं. गनना, गिनना] गिन लूँ, श्रनु-मानूँ, श्रमार लगाऊँ। उ. —िजहा रोम रोम प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हार—६-१४७।

गनी—कि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] समभो, मानों, स्वीकार करो। उ.—मोहिं बिधि, बिष्नु, सिव, इन्द्र, रिव सिं गनौ, नाम मम लेइ श्राहुतिनि डारौ —४-११।

गन्ना—संज्ञा पुं. [सं. कांड] ईख, ऊख । गन्नी—संज्ञा पुं. [हिं. गोन या गून = रस्सी] (१) टाट । (२) रीहा घास श्रादि से बना कपड़ा।

गप—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्प, प्रा. कप्प] (१) इधर-उघर की सत्य-त्रसत्य बात। (२) सारहीन बात। (३) भूठी बात। (४) भूठी सूचना। (४) डींग। संज्ञा पुं. [त्रानु.] (१) भटपट निगलने का शब्द। (२) खाने या निगलने की क्रिया।

गपकना—क्रि. स. [हिं. गप (श्रनु.) + करना] भट पट खा लेना या निगलना।

गपड़चौथ—संज्ञा पुं. [हिं. गपोड़=बातचीत + चौथ] सारहीन बातचीत।

वि.— जीप-पोत की हुई, ऊटपटाँग।

गपत—कि. स. [हिं. गपना] न्यर्थ की बात या बक-वाद करता है।

गपना—कि. स. [हिं. गप (अनु.)] व्यर्थ की बात या बकवाद करना।

गिया—िव. [हिं. गप] गप्पी, बकवादी। गिपहा—िव. [हिं. गप + हा (प्रत्य.)] गप्प हाँकने वाला, गप्पी।

गपोड़, गपोड़ा—संज्ञा पुं. [हि. गप] न्यर्थ की बात या बकवाद ।

वि.—भूठी बात करनेवाला।
गपोड़बाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं, गपोड़ा + फ़ा, बाजी] व्यर्थ की बकवाद।

गण्य—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गण] त्यर्थ की बात, बकवाद। गण्या—संज्ञा पुं. [त्रानु. गण] घोखा।

गणी—वि. [हिं. गप] (१) डींग मारनेवाला। (२) बकवाद करनेवाला। (३) क्ठा।

गाफा—संज्ञा पुं. [हिं. गप (श्रनु.)] (१) बड़ा सा कौर। (२) लाभ, फायदा।

गफ—वि. [सं. ग्रप्स=गुच्छा] घनी या गिमन (बुनावट)। गफलत— संज्ञा स्त्री. [त्र्य. गफ़लत] (१) जापरवाही।

(२) बेखबरी। (३) भूलचूक।

गिफिलाई—संज्ञा स्त्री. [फा. गाफिल] (१) श्रसावधानी। (२) बेखबरी। (३) अम, मोह।

गबड़ी, गबड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कबड़ी] एक खेल, कबड़ी का खेल।

गबदी—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ ।

गबद्द — वि. [हिं. गावदी] मूर्ख ।

गबन—संज्ञा पुं. [ग्र. गबन] चोरी से माल उड़ा देना। गबरगंड—वि. [हिं. गबर + सं. गंड] मूर्ख, नासमक। गबरहा—वि. [हिं. गोबर + हा (प्रत्य.)] गोबर मिला या लगा हुन्ना।

गबरा—िव. [हं. गब्बर] (१) घमंडी। (२) धनी। गबरू—िव. [फ़ा. खूबरू] (१) उठती जवानी का। (२) भोला भाला।

संज्ञा पुं.—पति, दूल्हा।
गवरून—संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़बरून] एक मोटा कपड़ा।
गडबर—वि. [सं. गर्व, पा. गब्ब] (१) घमंडी, अभि-

मानी। (२)चुप्पी साधनेवाला, काम टालनेवाला, महर। (३) मूल्यवान। (४) धनी।

गडभा—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गड्भ] (१) रुई का गहा। (२) चारे का गहा।

गभस्तल—संज्ञा पुं. [सं. गभस्तिमान] गभस्तिमान नामक द्वीप।

गभस्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किरण। (२) सूर्य। (३) हाथ।

संज्ञा स्त्री.—ग्राग्नि की स्त्री, स्वाहा।

गभस्तिमान्—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य। गभीर—वि. [सं. गंभीर] (१) गहरा। (२) घना। (३) घोर। (४) शांत, सौम्य।

गभुत्रार, गभुत्रार — वि. [सं. गर्भ, पा० गब्म + श्रार या वार (प्रत्य,)] (१) गर्भ काल का (बाल)। (२) जिसके जन्म-काल के बाल न कटे हों, जिसका मुंडन न हुआ हो। (३) छोटा, नादान।

गभुद्रारी—वि. स्त्री. [हिं. गभुद्रार] (१) गर्भ-काल की (बालों की लटें)। (२) नादान, छोटी।

गभुत्रारे—वि. [हिं. गभुत्रार] गर्भ के (बाल)। उ.—गभुत्रारे सिर केस हैं, बर घूँघरवारे— १०-१३४।

गम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह, मार्ग। (२) सहवास।
संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (किसी स्थान या विषय में)
प्रवेश, पहुँच, पैठ। उ.—(क) जहाँ न काहू को गम,
दुसह दारुन तम, सकल विधि विषम, खल मल खानि
—१-७७। (ख) श्रमुरपति श्रित ही गर्व घरयो।
तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को श्राउ !
(ग) स्वर्ग-पतार माहिं गम ताको—६-७४।

मुहा.—गम करना—चटपट खा लेना।
वि.—जो जानी जा सकें, जो ज्ञात हो सके। उ.
—प्रभु की लीला गम नहीं, कियो गब ऋति श्रंग
—४६२।

संज्ञा पुं. [त्र्रा, ग्राम] (१) दुख, शोक।

मुहा.—गम खाना — चमा करना, ध्यान न
देना। गम गलत — दुख भुलाने का प्रयत्न।
(२) चिंता, फिक्र।

गमक—संज्ञा पुं. [सं.](१) जानेवाला व्यक्ति।(२) सूचक, बतलानेवाला (व्यक्ति)। (३) एक स्वर से दूसरे पर जाने का एक भेद (संगीत)।(१) तबले की ध्वनि।

संज्ञा स्त्री. [सं. गमक = फैलनेवाला] सुगंध, महक।

गमकना—िक. श्र. [हिं. गमक] महकना, सुगंध फैलाना। गमकीला—िव. [हिं. गमक + ईला (प्रत्य.)] सुगंधित, महकनेवाला।

गमखोर—वि. [फा. गम + ख़्वार] सहनशील।
गमखोरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गम + ख़्वार] सहनशीलता।
गमगीन—वि. [फ़ा. गम + गीन] दुखी, उदास।
गमत—संज्ञा पुं. [सं. गमन या गमथ = पथिक] (१)

मार्ग, पथ। (२) व्यवसाय, धंधा। गमथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह, मार्ग। (२) व्यवसाय, धंधा। (३) राही, पथिक।

गमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाना, चलने की किया, यात्रा करना। उ.—ग्रस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हों—१-२६। (२) संभोग, सहवास। (३) राह, मार्ग। (४) सवारी।

गमनना – कि. श्र [सं. गमन] जाना, गमन करना। गमनपत्र—संशा पुं. [सं.] यात्रा का श्रिधकारपत्र। गमना—कि. श्र. [सं. गमन] जाना, चलना।

कि. श्र. [श्र. ग्रम = रंज + ना (प्रत्य.)] (१) शोक करना, दुख मनाना। (२) परवाह करना, ध्यान देना।

गमनाक — वि. [फा. गमनाक] दुख भरा। गमला — संज्ञा पुं. [१] छोटे पौधे लगाने का पात्र। गमाई – कि. श्र. [सं. गमन, हिं. गमना] बीत गयी, समाप्त हुई। उ. — तृतीय पहर जब रैनि गमाई – १०७२।

—सा. १६ l

गमाए कि. स. [हिं. गमाना] खोकर, खो दिये, गँवाए। उ.—कीन्ही प्रीति प्रगट मिलिबे की श्रॅं खिया समें गमाए।

गमागम—संज्ञा पुं. [सं. गम + श्रागम] श्राना, जाना। गमाना—कि. स. [हिं. गँवाना] खोना, गँवाना। गमार—वि. [हिं. गँवार] (१) गाँव का, देहाती।

(२) मूर्खं, ग्रसभ्य, उजड्ड।

गिमि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गम] पहुँच, प्रवेश, पैठ। उ. —तिहूँ भुवन भरि गिम है मेरो मो सम्मुख को आउ —२३७७।

गिमिना – िक. स. [हिं. गम = ध्यान देना] ध्यान देना। गमी — संज्ञा स्त्री. [त्र्य. गम, गमी [(१) शोक की त्र्यव-स्था। (२) मृत व्यक्ति का शोक। (३) मृत्यु।

गम्मत—संशा स्त्री. [मराठी] (१) विनोद, हँसी। (२) मौज, बहार।

गम्य—िव. [सं.] (१) जाने योग्य। (२) प्राप्य, लभ्य, लभ्य, लाध्य। उ.—तन-रिपु काम चित रिपु लीला ज्ञान गम्य निहं याते—३११५। (३) संभोग या सहवास के योग्य।

संज्ञा स्त्री. [सं.] पहुँच, प्रवेश, पैठ। उ.—तिहूँ भुवन भरि गम्य है जाको नर नारी सब गाउ —११५८।

गम्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] गमन।
गम्हीर—वि. [सं. गंभीर] गहन, जिसको पार करना
कठिन हो। उ.—आठ रिव लें देख तब तें परत नाहिं गम्होर—सा. ४४।

गयंद—संज्ञा पुं. [सं. गजेंद्र, प्रा. गयिंद, गइन्द्र] (१) हाथी, गज। (२) दोहे का एक भेद।

गय—संज्ञा पुं. [सं. गज, प्रा. गय] हाथी। उ.—(क) जो बनिता सुत-जूथ सके से, हय गय-बिमन घनेरा। सबै समपी सूर स्थाम की, यह साँची मत मेरो—१-२६६। (ख) अमरा सिव रिब सिस चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, मकान । (२) श्राकाश । (३) धन । (४) प्राण । (४) श्री रामकी सेना का एक बानर सेनापति (६) एक राजर्षि । (७) पुत्र, संतान । (८) एक श्रमुर । (६) गया तीर्थ ।

गयन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] (१) मार्ग, राह, गैंबा।
(२) गमन, प्रस्थान। उ.—ना कर बिलँब, भूषन
करत दूषन,चिहुर बिहुर ना ना करत गयन—२२१४।
गयनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गज + नाल] बड़ी तोप।
गयल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गैल] मार्ग, राह।
गयवली—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।
गयवा—संज्ञा स्त्री. [देश.] मोहेली मछ्बी।
गयशिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राकाश। (२) गया के
समीप एक पर्वत जो गय नामक श्रमुर के सिर पर
माना जाता है। (३) गया तीर्थ।

गया—संज्ञा पुं. [सं.] बिहार या मगध देश का एक पुरुष स्थान जो प्राचीन समय में प्रधान यज्ञस्थल था। यह तीर्थ श्राद्ध श्रोर पिंडदान के लिए बहुत प्रसिद्ध है। उ.—श्रस्व-जज्ञहु जो कीजे, गया, बनारस श्रक केदार—२-३।

संज्ञा स्त्री,—गया तीर्थ में की जानेवाली पिंडोदक श्रादि कियाएँ।

कि. श्र. [सं. गम] 'जाना' किया का भूतकालिक रूप, प्रस्थानित हुश्रा।

मुहा.—गथा-गुजरा (बीता)—बुरा, नष्ट-अष्ट । गयापुर—संज्ञा पुं. [सं.] गया तीर्थ । गयाल—संज्ञा स्त्री. [देश.] वह जायदाद जिसका कोई मालिक न हो ।

गयावाल—संज्ञा पुं. [हिं. गया+त्राज्ञ (प्रत्य.)] गया तीर्थं का पंडा।

गयो—िक. स्र. [हिं. गया] (१) प्रस्थानित हुस्रा। (२) बीत गया, समाप्त हुस्रा। उ.— जनम साहिबी करत गयौ—१६४।

गरंड—संज्ञा पुं. [सं. गंड = मंडलाकार रेखा] चक्की के चारो श्रोर का घेरा जिसमें पिसा श्राटा गिरता है। गरंथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ] पुस्तक, ग्रंथ।

गर—संज्ञा पुं. [हिं. गल] गला, गरदन। उ.—(क) कंचन मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ—१--१६६। (ख) लोचन सजल, प्रेम-पुलिकत तन, गर-श्रंचल, कर माल—१--१८९। (ग) सूर परस्पर करत कुलाइल गर-सग पहिरावैनी—६--११॥ (घ) मुंड-माला मनौ हर-गर—१०-१७०।

संज्ञा पुं. [सं.]—(१) कड्ग्रा ग्रोर मादक रस।
(२) एक रोग। (३) विष, जहर।
प्रत्य. [फ़ा.] बनानेवाला।

गरक—िव. [श्र. गर्क] (१) इवा हुश्रा। (२) नष्ट, बरबाद। (३) (काम में) जीन।

गरकाब—संज्ञा पुं. [हिं. गरक] दूबने का भाव। वि.—डूबा हुन्रा, निमग्न।

गरगज-संज्ञा पुं. [हिं. गह + गज] (१) किले की दीवारों पर तोपों के लिए बना बुर्ज। (२) ऊँचा टीला जहाँ युद्ध-सामग्री रखी जाती थी। (३) नाव की ऊपरी छत। (४) फाँसी का तख्ता।

वि.—बहुत बड़ा, विशाल।

गरगरा— संज्ञा पुं. [अनु.] गराड़ी, चरखी। गरगवा— संज्ञा पुं. [देश.] (१) नर गौरैया। (२) एक घास।

गरगाव—संज्ञा पुं. [फ़ा. गर्क, गरक़ाब] डूबने की किया या भाव।

वि.—(१) डूबा हुआ। (२) बहुत लीन। गरज—संज्ञा स्त्री. [सं, गर्जन] गंभीर शब्द।

संशा स्त्री. [श्र. गरज] (१) प्रयोजन, मतलब। उ.—प्रीति के बचन बाँचे बिरइ श्रनल श्राँचे श्रपनी गरज को तुम एक पाँइ नाचे—२००३। (२) श्राव-श्यकता। (३) चाह, इच्छा।

मुहा.—गरज का बावला—बहुत श्रधिक जरूरतमंद, जो श्रपनी इच्छा पूरी करने के लिए भला-बुरा सभी कुछ करने को तैयार हो।

कि. वि.—(१) निदान, श्राखिरकार। (२) श्रस्तु, श्रच्छा, खैर।

गरजत कि. श्र. [हिं. गरजना] (१) गंभीर श्रीर तुमुल शब्द करता है। उ.—गरजत क्रोध-लोभ की नारी, सूभत कहुँ न उतारी-१-२०६। (२)गर्व से लख-कारता है। उ.—कहा कहीं हरि केतिक तारे, पावन पद परतंगी। सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत श्रधम श्रनंगी—१-२१। (३) चटकता है, तड़कता है, कड़कता है।

गरजन—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन] (१) गरज,कड़क, गंभीर

शब्द। (२) गरजने का भाव। (३) गरजने की फिया।
गरजना—कि. श्र. [सं. गर्जन] (१) गंभीर शब्द करना।
(२) चटकना, तड़कना। (३) ललकारना, चुनौती
देना।

वि.—गरजनेवाला, जोर से बोलनेवाला। गरजमंद—वि. [फ़ा. गरज़मन्द] (१) जरूरतवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरजी—कि. श्र. स्त्री [हिं. गरजना] गंभीर शब्द करने लगी, जोर से बोली । उ.—धर-श्रम्बर लौं रूप निसाचरि गरजी बदन पसारि—६-१०४ । बि. [हिंगरज + ई(प्रत्य)] (१) सत्तलब गाँठनेवाला.

वि. [हिं.गरज़ + ई(प्रत्य.)] (१) मतलब गाँठनेवाला, प्रयोजन रखनेवाला।(२) चाहनेवाला,गाहक। उ.— तुम्हरी प्रीति ऊधो पूरव जनम की श्रव ज गये मेरे तनहु के गरजी—३१६२।

गरजू—िव. [हिं. गरजी] (१) मतलब रखनेवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरट्ट—संज्ञा पुं. [सं. यन्थ, पा. गठ, हिं. गट्ठ] समूह, सुंड।

गरत-- कि. ग्र. [हिं. गलना] गलता है, चीण होता है। उ.-- श्रव सुनि सूर कान्ह केहरि के बिन गरत गात जैसे श्रोरे-२८१८।

गरती—कि. श्र. [हिं. गलना] नष्ट होता, वृथा हो जाता। उ.—तुम गुन की जैसे मिति नाहिन, हों श्रिष्ठ कोटि बिचरती । तुम्हैं-हमें प्रतिबाद भए तें गौरव काको गरती—१-२०३।

गरद संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गर्द] धूल, राख, खाक।
मुहा, —गरद समोयी — धूल में मिला दिया,
नष्ट हो गये। उ. —सो भैया दुरजोधन राजा, पल
में गरद समोयी —१-४३।

संज्ञा स्त्री. [सं.] विष देनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष। (२) एक कपड़ा। ग्रद्त—संज्ञ स्त्री. [फा.] (१) धड़ ग्रोर सिर के बीच का ग्रंग, ग्रीवा।

मुहा, —गरदन उठाना—विरोध या विद्रोह करना । गरदन ऐंठना (मरोड़ना)—(१) गला दबाकर मार डालना । (२) कष्ट पहुँचाना । गरदन काटना—(१) सिरकाटना (२) हानि पहुँचाना।गरदन
मुकना—(१) नम्र या अधीन होना। (२) लिजत
होना।(३) बेहोश होना।(४) मरना। गरदन न
उठाना—(१) चुपचाप सहन करना। (२) लिजत
होना।(३) दुख या बीमारी से पड़े रहना।गरदन
नापना—अपमान करना। गरदन पर—िजम्मे,
उपर।गरदन पर बोम्ह रखना—भारी काम सौंपना।
गरदन पर बोम्ह होना—(१) बुरा लगना। (२)
भार होना। गरदन मारना— (१) मार डालना।
(२) बहुत हानि पहुँचाना।

(२) जुलाहों की एक लकड़ी, साल। (३) बरतन श्रादि का ऊपरी पतला भाग।

गरदना—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] (१) मोटी गरदन। (२) गरदन पर लगनेवाला सटका या थप्पड़।

गरदिनयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन + इयाँ (प्रत्य.)]
गरदन में हाथ डालने की किया।

गरद्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन](१) कुर्ते श्रादि का गला। (२) गले का एक गहना। (३) कारनिस, कगनी।

गरदर्प-संज्ञा पुं. [सं.] साँप। गरदा-संज्ञा पुं. [फ्रा. गर्द] धूल, मिट्टी। गरदान-वि. [फ्रा.] घूम फिरकर एक ही स्थान पर श्रा जानेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) एक तरह का कबृतर जो घूम फिर कर अपने स्थान पर आ जाता है। (२) शब्द रूपं-साधन। (३) फेर, चक्कर।

गरदानना-क्रि.स.[फ़ा, गरदान] (१) शब्द-रूप साधना।

(२) बार बार कहना। (३) मानना, श्रादर करना।
गरदुश्चा—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] एक तरह का ज्वर।
गरधरन—संज्ञा पुं. [सं.] विष धारण करनेवाले, शिव।
गरना—क्रि. श्र. [हिं. गलना] गल जाना।

कि. श्र. [हिं. गड़ना] चुभ जाना। कि. श्र. [हिं. गारना] (१) निचोड़ा जाना। (२) निचुड़ना।

गरनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर+नली] चौड़े मुँह की तोप। गरप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] विष पीनेवाले शिव। गरब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] (१) घमंड, श्रिभमान। (२) हाथी का मद।

गरबई—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्व.] गर्व का भाव। गरबगहेला—वि. पुं. [हिं. गर्व+गहना=ग्रहण करना] गर्वयुक्त, श्रभिमानी।

गरबत—िक. श्र. [सं. गर्व, हिं. गरबना] गर्व करता है, घमंड या श्रभिमान दिखाता है। उ.—इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार—१-८४।

गरबना—िक. श्र. [सं. गर्व.] गर्व या शेखी करना।
गरबाइ—िकि. श्र. [हिं. गरबाना] गर्व करना, घमंड में
श्राना। उ.—रूप जोबन सकल मिथ्या, देखि जिन
गरबाइ। ऐसे हीं श्रीभमान-श्रालस, काल प्रसिद्दे
श्राइ—१-३१५।

ग्रवाए—कि. त्र. [हिं. गरवाना] गर्व किया, घमंड में आये। उ.—मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय में गरवाए। जीत्यो जरामंघ, रिपु मारयो, बता करि भूप छुड़ाए —१-१०६।

गरबाऊ—िक. श्र. [हिं. गरबाना] गर्व हुश्रा, श्रिभमान किया। उ.—जब हिरनाच्छ जुद्ध श्रिभिलाष्यो, मन में श्रित गरबाऊ। धरि बाराह रूप सो मारघो, ले छित दंत श्रगाऊ—१०-२२१।

गरबाना—िक. श्र. [सं.गर्व.] श्रभिमान या घमंड करना।।
गरबानो, गरबानो—िक. श्र. [हिं. गरबाना] घमंड में
श्राया, श्रभिमान किया। उ.—भिक्त कब करिहो
जनम सिरानो। बालापन खेलत ही खोयो, तरुनाई
गरबानो—१-३२६।

गरबाही—संज्ञा स्त्री. [हिं, गलबाहीं] गले में बाँह डालने की किया।

गरिवत—िव. [सं. गर्व] गर्वयुक्त, श्रिभमानी । उ.—दाउँ परयो श्रिह जानि के, लियो श्रंग लपटाइ । काली तब गरिवत भयो, दियो दाउँ बताइ—५८६ । गरबीला—िव. [सं. गर्व.] श्रिभमानी, घमंडी ।

गरबीली—वि. स्त्री. [हिं. पुं, गर्वीला] श्रिभमानिनी, गर्व करनेवाली । उ.—दिध ले मथित ग्वालि गरबीली —१०-२६६। गरभ—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ] गर्भाशय। उ.-गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्नाम—१-४७। संज्ञा पुं. [सं. गर्व.] अभिमान, घमंड। गरभदान—सज्ञापुं. [सं. गर्भाधान] ऋतु प्रदान, पेट रखना। गरभाना—कि. अ. [हिं. गर्भ] (१) गर्भ से होना। (२)गेहूँ आदि के पौधों में बाल लगना। गरभी—वि. [हिं. गर्वी] अभिमानी।

गरभी—वि. [हं. गर्वा] श्रभिमानी।
गरम—वि. [फ़ा. गर्म (१) जलता हुश्रा, तस। (२) तेज,
जग्र। (३) श्रवल, जोरशोर का। (४) जिसके सेवन
मी बढ़े। (५) श्रावेशयुक्त, उत्साहपूर्ण, जोश
से भरा हुश्रा।

गरमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी। गरमागरमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम+गरम] (१) मुस्तैदी, जोश, उत्साह। (२) कहा-सुनी।

गरमाना—कि. अ. [हिं. गरम] (१) शरीर में गरमी आना, उष्ण होना।

मुहा.—टेंट (हाथ) गरमाना — पास में रूपया पैसा आना या होना।

(२) मस्ताना, मद से भर जाना। (३) क्रोध करना, भल्लाना। (४) कुछ परिश्रम करने के बाद पशुत्रों का तेजी पर ज्ञाना।

कि. स.—गरम करना, तपाना।
मुहा,—टेंट (हाथ) गरमाना-(१) रुपया देना।
(२) रिश्वत या इनाम देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी, उष्णता। गरमी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गर्मी] (१) ताप, उष्णता। (२) तेजी, उप्रता। (३) क्रोध, आवेश। (४) उमंग, जोश। (४) ग्रीष्म ऋतु।

गरा—संशा पुं. [देश. गर्रा] एक तरह का घोड़ा।
गरात—कि. अ. [अन.] भीष्ण ध्विन करता हुआ,
गरजता हुआ। उ.—सुनत मेघवर्तक साजि सैन ले
आए। । । घहरात तरतरात गररात हहर त
पररात भहरात माथ नाए—१४४।

गर्राना—कि. श्र. [श्रनु.] गरजना, गड़गड़ाना, गंभीर या भीषण ध्वनि करना।

गर्री—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया जिसका दर्शन

श्रथवा लड़ना श्रशुभ माना जाता है। इसे किलँहटी, गलगलिया या सिरोही भी कहते हैं। उ.—फटकत स्वन स्वान द्वारे पर, गररी करत लराई। माथे पर है काग उड़ान्यो, कुसगुन बहुतक पई—५४१। गरल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष, गर, जहर। उ.—

गरल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष, गर, जहर। उ.— श्रिह मयंक मकरंद कंद हित दाहक गरल जिवाए— २८५४। (२) साँप का विष। (३) घास का मुट्टा, श्रिटिया या पूला।

गरलधर—संज्ञा पुं. [सं.] (२) विषपान करनेवाले शिव। (२) साँप।

गरलारि— संज्ञा पुं. [सं.] मरकतमणि, पन्ना। गरवा—वि. [सं. गुरु] भारी, गरुत्रा।

संज्ञा पुं. [हिं. गला] गरदन, गला।

गरवाना—कि. श्र. [हिं. गर्व] घमंड करना, श्रभिमान या गर्व करना।

गरवाने—िक. श्र. [हिं. गरवाना] घमंड या श्रभिमान
में श्रा गये। उ.—कि कुसलातें, साँची बातें श्रावन
कहाी हरि नाथै। के गरवाने राजसभा श्रब जीवत
हम न सुहाथै—३४४१।

गरवानी—वि. [हिं. गरवाना] गर्व में चूर, श्रिभमान में भरा हुआ। उ.—हँसे स्थाम मुख हेरि के धोवत गरवानो—२५७५।

गरष्रत—संज्ञा पुं. [सं.] मोर, मयूर।

गरसना—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] (१) खाना, भच्चण करना। (२) पकड़ना, थामना, रोकना।

गरह— संज्ञा पुं. [सं. ग्रह] (१) ग्रह। (२) बाधा। वि.—बुरी तरह से पकड़ने या कष्ट पहुँचानेवाला। गरहन—संज्ञा पुं. [सं.] काली तुलसी।

संज्ञा पुं. [देश.] एक मछली। संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) चंद्र या सूर्य-ग्रहण। (२) पकड़ने की ऋिया।

गरहर—संज्ञा पुं. [हिं. गर = गल + हर] नटखट चौपायों के गले में बँधा हुआ काठ का दुकड़ा, कुंदा।

गरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।
संज्ञा पुं. [हं. गला] गरदन, गला।
गरागरो—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

गराज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्जन] गरज, गंभीर शब्द।
गराड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली या हिं. गड़गड़ (अनु.)]
काठ या लोहे की चरखी जो कुएँ में घड़े की रस्सी
डालने के लिए लगायी जाती है, घिरनी, चरखी।
संज्ञा स्त्री. [सं. गंड = चिह्न] रगड़ का चिह्न।
गराना—कि. स. [हिं. गलाना] (१) घुलाना। (२)
पिघलाना।

कि. स. [हिं. गारना] निचोड़कर दूर फेक देना।
गरानि, गरानी--संज्ञा स्त्री. [सं, ग्लानि] लज्जा।
गरारा-वि. [सं. गर्व, पु. हिं. गारो + ग्रार (प्रत्य.)]
प्रवल, प्रचंड, गर्वीला, उद्धत।

संज्ञा पुं. [श्र. गरगरा] (१) गरगर शब्द करके कुल्ली करना। (२) गरगरा करने की दवा। संज्ञा पुं. [हिं. घेरा] (१) ढीली मोहरी का पाय-जामा। (२) ढीली मोहरी। (३) चौड़ा थैला।

संज्ञा पुं. [अनु.] चौपायों का एक रोग ।

गराशे— संज्ञा स्त्री. [हिं. गराड़ी] कुएँ की चरखी ।

गरावन—संज्ञा पुं. [हिं. गड़ावन] एक तरह का नमक ।

गरावा—संज्ञा पुं. [देश.] कम उपजाऊ भूमि ।

गरास—संज्ञा पुं. [सं. प्रास] कौर, गस्सा ।

गरासना—कि. स. [हिं. प्रसना] (१) पकड़ना, थामना।

(२) खाना, भच्नण करना।

गरासी—वि. [सं. ग्रस्त, ग्रसित] पकड़ा या जकड़ा हुआ। उ.—श्रपनी सीतलता नहिं तर्जई जद्यपि विधु भयो राहु गरासी—३३१५।

गरि—िक. त्र. [हिं. गत्ना] गलकर, सड़कर।
यो.—जाउ गरि—गल जाय, सड़ जाय, नष्ट हो
जाय। उ.—पानी जाउ जीम गरि तेरी, त्रजुगुत बात
विचारी—६ ७६। गए गरि—नष्ट हो गये, दूर हो
गये। उ.—गज गीध - गनिका - ब्याध के त्रघ गए
गरि गरि गरि—१-३०६।

गरिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. गरिमन्] (१) भारीपन, गुरुता। (२) महिमा, गौरव। (३) गर्व, अहंकार। (४) आत्मप्रशंसा, शेखी। (४) आठ सिद्धियों में एक जिससे साधक अपने को जितना चाहे भारी कर सकता है।

गरिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ । गरियाना—कि. स्त्र. [हिं. गारी+स्त्राना (पत्य.)] गाली देना ।

गरियार—िव. [हिं. गड़ना-एक जगह रकना] श्रावसी। गरियाल्—संज्ञा पुं. [हिं. करिया, करियाल्] काला या नीला रंग।

वि.—काले-नीले रंग का।

गरिष्ठ—[सं.] (१) बहुत भारी। (२) जो जल्दी न पचे। संज्ञा पुं. — (१) एक राजा (२) एक दानव। (३) एक तीर्थ।

गरी— संज्ञा स्त्री. [सं. गुलिका, प्रा. गुडिया] (१) नारियल के भीतर का गूदा, गोला। (२) बीज की गूदी, गिरी, मींगी।

संज्ञा स्त्री. [सं.] देवताइ।

गरीब—िव. [त्रा. गरीब] (१) दीन-हीन । उ.—स्याम गरीबिन हूँ के गाहक । दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक—१-१६ । (२) निर्धन, दरिद्र । संज्ञा पुं. [सं.] एक राग ।

गरीबनिवाज, गरीबनेवाज—िव. [फा. गरीब+ निवाज] दीन का दुख हरनेवाला, दयालु। उ.— लीज पार उतारि सूर कों महाराज ब्रजराज। नई न करन कहत प्रभु, तुम हो सद। गरीबनिवाज-१-१०८।

गरीबपरवर—िव. [फ़ा.] दीनों को पालनेवाले। गरीबाना—िव. [फ़ा.] गरीबों की हैसियत का। गरीबामऊ—िव. [हिं. गरीब + मय (प्रत्य.)] गरीबों की हैसियत का।

गरीबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरीब + ई (प्रत्य.)] (१) दीनता, नम्रता। (२) दरिद्रता, निर्धनता।

गर्रायसी—िव. [सं.] (१) बड़ी भारी। (२) महान, प्रबत्त। (३) गौरवयुक्त, महत्वपूर्ण।

गरु, गरुअ,गरुआ—वि. [सं. गुरु] (१) भारी, वजनी। (२) गौरवयुक्त। (३) गंभीर, शांत।

गरुआई— संज्ञा स्त्री. [हैं. गरुआ] गुरुता, भारीपन।
गरुआना—िक. स्त्र. [सं. गुरु] भारी होना।
गरुड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पिचयों का राजा स्त्रीर विष्णु का वाहन। इसके पिता करयप थे स्त्रीर माता

विनता थी। यह सपीं का शत्रु समभा जाता है।
(२) उकाव पत्ती। (३) एक सफेद पत्ती जो पानी
के किनारे रहता है। (४) सेना के एक ब्यूह की
रचना। (५) एक तरह का प्रासाद। (६) श्रीकृष्ण
का एक प्रत्र। (७) छप्पय छंद का एक भेद।

गरुड़गामी—संज्ञा पुं [सं.] विष्णु, श्रीकृष्ण। उ.— (क) नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहिं पर, सकल श्रघ-इरन हरि गरुड़गामी—१-२१४। (ख) इहाँ श्रो कासों कैहों गरुषागामी।

गरुड़घंटा—संज्ञा पुं. [सं.] घंटा जिस पर गरुड़ की मूर्ति हो।

गरुड्ध्वज — संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु (२) वह स्तंभ जिस पर गरुड़ की आकृति बनी हो।

गरुड़पाश - संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का फंदा। गरुड़पुराण-संज्ञा पुं. [सं.] अठारह पुराणों में एक। गरुड़भक्त-संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़ के उपासक भक्त जो भारत में जगभग दो हजार वर्ष पूर्व रहते थे।

गरुड़्यान — संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।
गरुड़्रुत — संज्ञा पुं [सं.] सोलह अन्तों का एक छन्द।
गरुड़्ट्यूह् — संज्ञा पुं. [सं.] सेना की एक ब्यूह रचना।
गरुड़ासन — संज्ञा पुं. [सं. गरुड़ + आसन] वाहन
गरुड़। उ. — जिन स्त्रुननि जन की विगदा सुनि,
गरुड़ासन तिज धावै (हो) — १०-१२८।

गहत—संज्ञा पुं. [सं.] पंख, पन्न, पर। गहता—संज्ञा स्त्री [सं. गुहतर] (१) भारीपन, गुहत।। (२) बडप्पन, बडाई, महत्व।

गरुवा—वि. [सं. गुरु] (१) भारी, वजनी । (२) गंभीर, शांत । (३) गौरवयुक्त ।

गरुवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरुश्राई] भारीपन, गुरुता। गरुहर—संज्ञा पुं. [हिं. गरू + हर (प्रत्य.)] बहुत भारी बोभा।

गरू—वि. [सं. गुरु] भारी, वजनी । उ.—गरू भए महि मैं बैठाये, सिह न सकी जननी श्रकुलानी —१०-७८ ।

गरूर-संशा पुं. [श्र. गरूर] घमंड, श्रिभमान । उ.-

हरि सरि कटि तटि लरिक जाइ जिनि बिसद नितम्ब गरूर—२११६।

गरूरता, गरूरताई संज्ञा स्त्री. [हिं. गरूर] (१) घमंड। (२) मस्ती।

गरूरा — वि. [हिं. गरूर] श्रिभमानी।

गरूरियो—वि. [हिं. गरूरी] घमंडी, श्रभिमानी । उ.

— स्रोषधि बैद गरूरियो हरि नहिं माने मंत्र दोहाई — २८३९।

संज्ञा स्त्री.—ग्रभिमान, घमंड।

गरूरी--वि. [अ. गरूरी] घमण्डी, अभिमानी। संज्ञा स्त्री.-अभिमान, घमण्ड।

गरे—संज्ञा पुं. [सं. गल, हिं. गला] गला। उ.—िबच विच हीरा लगे (नन्द) लाल गरे को हार—१०-४०। मुहा.—गरे परी—अनिच्छित वस्तु, अनचाही चीज। उ.—सूरदास गाहक नहिं कोऊ दिखिश्रत गरे परी—३१०४।

गरेड़िया—संज्ञा पुं. [हिं. गड़रिया] वह व्यक्ति जो भेड़ें पालता हो।

गरेबान— संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेवान] (१) श्रंगे-कुरते श्रादि का गला। (२) कोट श्रादि का कालर। गरेरना—िक.स. [हं. घेरना] (१) घेरना। (२) रोकना। गरेरा—िव. [हं. घेरा] चकर या श्रुमावदार। गरेरी, गरेली—संज्ञा स्त्री. [हं. घेरा,] चरखी, घिरनी। वि.—चक्करदार, धुमावदार।

गरें—संज्ञा पुं. सिव. [हिं. गला] गले में, गरदन में।
उ.—मुकुट सिर घरें, बनमाल कौस्तुम गरें—४-१०।
गरें—कि. ग्रा. [हिं. गलता] गलता है, नष्ट होता है।
उ.—राजा कौन बड़ी रावन तें गर्वहिं गर्व गरें—१-३५।
गरेंगाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला] दोहरी रस्सी जो पशुत्रों के गले में डाली जाती है, पगहा।

गरोह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] फुंड, समूह, जत्था।
गर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वैदिक ऋषि जो श्रांगिरस भरद्वाज के वंशज और ऋग्वेद, छठे मंडल के
सेंतालीसवें सूक्त के रचियता माने जाते हैं। (२)
नंद जी के पुरोहित का नाम। उ.—गर्ग निरूपि
कह्यों सब लच्छनु, श्रबिगत हैं श्रबिनासी—१०-८७।

(३) बेल, साँड़। (४) गगोरी कीड़ा। (४) बिच्छू।

(६) केचुत्रा। (७) एक पर्वत। (८) ब्रह्मा का एक पुत्र। (१) संगीत में एक ताल।

बाजा। (३) गागर। (४) एक मछली।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दही मथने का बरतन। (२) गगरी, कलसी। (३) मथानी।

गर्ज—संज्ञा स्त्री. [हि. गरज] गंभीर या तुमुल शब्द । उ.—मनहुँ सिंह की गर्ज मुनत गोबच्छ दुखित तनु डोलत—३४२०।

संज्ञा स्त्री. [ग्र. ग़रज़] (१) मतलब, स्वार्थ।

(२) श्रावश्यकता, जरूरत । (३) चाह, इच्छा ।
गर्जंत—िक. श्र. [सं. गर्जन, हिं. गरजना] (१) गर्जंता
हूँ । (२) निर्भोक होकर विचरता हूँ । उ.—मोहिं बर
दियो देविन मिलि, नाम धरघौ इनुमंत । श्रंजिन
कुँवर राम को पायक, ताकैं बल गर्जंत—६-८-३ ।

गर्जत-क्रि. श्र. [हिं. गरजना] (१) गरजता है, गंभीर शब्द करता है। (२) गर्ब से बोजता है।

गर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] भीषण ध्वनि, गंभीर नाद। उ.—गर्जन श्री तरपन मानो गो पहरक में गढ़ लेइ —१० उ.-१६८।

यौ.—गर्जन-तर्जन—(१) तड्प। (२) डॉटडपट। संज्ञा पुं. दिश.] एक पेड़।

गर्जना — कि. श्र. [हिं. गरजना] घोर शब्द करना।
गर्जहिं — संज्ञा पुं. [सं. गर्जन+हिं (प्रत्य.)] गर्जना को,
गंभीर नाद को।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गरज़] मतलब, काम, स्वार्थ कामना। उ.—या रथ बैठ बंधु की गर्जाहें पुरवे को कुरु-खेत ?—१-२६।

गर्जि—िक. त्र. [हिं. गरजना] गंभीर ध्वनि करके, भीषण रूप से गरज कर। उ.—इतने में मेघन गर्जि बुप्टि करि तनु भीज्यों मों भई जुड़ाई—२८८५।

गर्जित—संशा स्त्री. [हिं. गर्जन] गर्जनपूर्ण।

गर्ना—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गड्ढा, गढ्हा (२) दरार। (३) घर। (४) रथ। (४) जलाशय। (६) एक नरक का नाम।

गर्द - संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] धूल, राख, भस्म।

मुद्दा.—गर्द उड़ाना— नष्ट करना। गर्द भड़ना

—मार की परवाह न करना। गर्द फॉकना—मारे

मारे घूमना। गर्द को पहुँचना—बराबरी न कर

सकना। गर्द होना—(१) तुच्छ ठहरना। (२) नष्ट

होना। गर्बोर, गर्बोरा—वि. [फ़ा. गर्बोर] जो गर्द से खराब न हो।

संज्ञा पुं.—पैर पोछना।
गर्दन—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] गला, गरदन।
गर्दना—संज्ञा पुं. [हिं. गरदना] मोटा गला।

गर्दभ — संज्ञा पुं. [सं.] (१) गधा, गदहा । उ. — हय-गयंद उतरि कहा गर्दभ-चिंद धाऊँ — १-१६६ ।

(२) सफेद कुमुद या कोई । (३) एक कीड़ा। गर्दिश, गर्दिस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) घुमाव, चकर। (२) विपत्ति।

गर्द्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोभ। (२) एक वृत्त । गर्द्धत, गर्द्धित—वि. [सं.] लुब्ध। गर्द्धी—वि. [सं. गर्द्धिन्] (१) लोभी। (२) लुब्ध।

गर्ब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] ऋहं कार, घमंड, ऋभिमान।
मुहा.—गर्व प्रहारथी—घमंड चूर कर दिया, गर्व
तोड़ दिया। उ.—ग्वालिन हेत धरथी गोबर्धन,
प्रगट इंद्र की गर्व प्रहारयी—१-१४।

गर्बगत—िव. [सं. गर्व + गत = रहित (प्रत्य.)] जिसका
गर्व नष्ट हो गया हो, गर्वरहित, गर्वहीन। उ.—
करनामय जब चाप लियों कर, बाँधि सुदृढ़ कटिचीर। भूमृत सीस निमत जो गर्बगत, पावक सींच्यों
नीर—६-२६।

गर्बना—िक. श्र. [सं. गर्व] गर्व या श्रभिमान करना।
गर्ब-प्रहारी—संज्ञा पुं. [सं. गर्व + हिं. प्रहारी] गर्व का
नाश करनेवाला, श्रभिमान तोड़नेवाला, गर्वनाशक।
उ.—जाकी विरद है गर्बप्रहारी, सो कैसें विसरें
—१-३७।

गर्ना है-गर्ब-संज्ञा पुं. [सं. गर्व+हिं= (प्रत्य.) + गर्व] गर्व ही गर्व, बहुत अधिक घमंड।

गर्भ-संज्ञा पुं. [सं.] (१) गर्भ के अंदर का बालक।

उ.—ब्रह्म बागा तें गर्भ उबारयौ, टेरत जरी जरी— १-१६। (२) गर्भाशय।

गर्भक—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्ता। गर्भकार—संज्ञा पुं. [सं.] पति या प्रेमी जि

गर्भकार—संज्ञा पुं. [सं.] पित या प्रेमी जिससे गर्भ रहे। गर्भकाल —संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऋतुकाल। (२) वह काल जब स्त्री गर्भवती हो।

गर्भकेसर — संज्ञा पुं. [सं.] फूजों के पतले सूत जिनसे पराग का मेल होने पर फल और बीज पुष्ट होते हैं।

गर्भकोष—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भाशय।

गर्भगृह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर का भीतरी भाग।

(२) श्राँगन। (३) तहखाना। (४) मंदिर की वह कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा हो।

गर्भज—वि. [सं.] (१) गर्भ से उत्पन्न, संतान।

(२) जन्मकाल से साथ रहनेवाला (रोग ग्रादि)। गर्भपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोंपल, कोमल पत्ता।

(२) फूल के भीतरी पत्ते जिनमें गर्भकेसर हो।

गर्भपात—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भ गिरना।

गर्भवती—वि. स्त्री. [सं.] जिसके पेट में बचा हो। गर्भाक—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक के श्रंक का वह भाग

जिसमें केवल एक दश्य होता है।

गुर्भाधान-रंज्ञा पुं. [सं.] (१) सोलह संस्कारों में पहला। (२) गर्भ की स्थिति।

राभीशय — संज्ञा पुं. [सं.] पेट का वह स्थान जिसमें बचा रहता है।

का पेड़।

संज्ञा स्त्री.—[सं.] प्राचीन काल की एक नाव। गर्भित—वि. [सं.] (१) गर्भेयुक्त। (२) भरा हुन्ना, पूर्ण। संज्ञा पुं. [सं.] काव्य में श्रुतिरिक्त वाक्य-दोष।

गरी—वि. [सं. गरहाधिक=लाख] लाख के रंग का।

संज्ञा पुं.—(१) लाख का रंग। (२) इस रंग का घोड़ा। (३) इस रंग का कबूतर।

संज्ञा पुं. [त्रानु.] बहते पानी का थपेड़ा। संज्ञा पुं. [हिं. गराड़ी] चरखी, फिरकी, घिरनी।

गरी—संज्ञा पुं. [हं. गरेरना] तार लपेटने की चरखी। गर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिमान, घमंड। (२) एक संचारी भाव जिसके अनुसार अपने को दूसरों से बड़ा समका जाता है।

गर्वप्रहारी - नि. [सं.] घमंड चुर करनेवाला। गर्ववंत - नि. [सं. गर्ववान का बहु गर्ववंतः] घमंडी, ग्रिममानी। उ.—गर्ववंत सुरपति चढ़ि ग्रायो। बाम करज गिरि टेकि दिखायौ।

गर्वाना—कि. स्र. [सं. गर्व.] गर्व या स्रिममान करना, धमंड दिखाना।

गर्वानी — कि. श्र. [हिं. गर्वाना] गर्व करने लगी, घमंड दिखाने लगी। उ. — कहा तुम इतनेहि को गर्वानी। जोवन रूप दिवस दसही को ज्यों श्रॅंजुरी को पानी।

गर्वानो—कि. श्र. [हिं. गर्वाना] गर्व किया, घमंड दिखाने लगा। उ.—यह सुनि हर्ष भयो गर्वानो जबहिं कही श्रकूर सयानी—२४६६।

गर्विणी—वि. स्त्री. [सं.] गर्व करनेवाली।
गर्वित-वि. [सं.] ग्रहंकारी, श्रिभमानी। उ. (क)
हस्ती देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मित है
थोरी—१-३०३। (ख) सूर सरस सरूप गर्वित
दीपकाष्ट्रत चाइ—सा. १८।

गर्विता—संज्ञा स्त्री [सं.] वह नायिका जिसे रूप, गुण

गर्विष्ठ—वि. [सं.] श्रहंकारी, श्रभिमानी।
गर्वी, गर्वीला, गर्वीले—वि. [सं. गर्वा-हिं. ईला (प्रत्य.)]
घमण्डी, श्रहंकारी। उ.—जिन वह सुधा पान मुख
कीन्हों वे कैसे कटु देखत। त्यों ए नैन भए गर्वीले
श्रव काहे हम लेखत।

गर्वे—संज्ञा पुं. सवि, [सं. गर्व] ग्रहंकार या ग्रिमान करे। उ,—गगन शिखर उतरे चढ़े गर्वे जिय धरई

—रद्ध। गर्हण—संज्ञा पुं. [सं.] निंदा, खुराई।

गहिंत-वि. [सं.] निन्दा के योग्य, बुरा। गहिंत-वि. [सं.] (१) जिसकी निंदा की जाय,

निदित । (२) बुरा, दूषित ।

गहा — वि. [सं.] निंदनीय, नीच।

गल-संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला, कएठ।

मुहा.—गल गाजना—हषित होना। गल गाजे—
गरजते हैं। उ.—ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजे, प्रभु
हाँकें रथ याने—१-२७५। गल गाजि—(१) हषित
होकर। उ.—धाये मब गलगाजि के ऊधो देखो
जाइ—३४४३। (२) क्रोध से गरज कर। उ.—
खंभ फारि, गल गाजि मत्त बल, क्रोधमान छिबि
बरन न त्राई—७-४।

(२) एक मछली। (३) एक बाजा। (४) राल। गलकंबल — संज्ञा पुं. [सं.] य के गले का निचला भाग, भालर।

गलगंजना—िक. श्र. [हिं. गाल + गाजना] जोर से बोलना, भारी शब्द करना।

गलगंड—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक रोग।

गलगल— संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) एक छोटी चिड़िया। (२) बड़ा नीबू।

गलगला—िव. [हिं. गीला] भोगा हुआ, तर। गलगलाना—िक. आ. [हिं. गलगला] गीला होना। गलगाजना—िक. आ. [हिं. गाल + गाजना] (१) गाल बजाना। (२) खुशी से किलकारी मारना।

गलजँदड़ा—संज्ञा पुं. [सं. गल + यंत्र या पं. जंदरा]

(१) सदा साथ रहनेवाला । (२) गले की पट्टी । गलजोड़, गलजोत-संज्ञा स्त्री. [हिं. गला+जोड़ या जोत]

् (१) वह रस्सी जिससे दो बैलों के गले बाँधे जायँ।

(२) गखे का हार, सदा साथ रहनेवाला व्यक्ति। व.— जो सहा न जा सके।

गलभंप—संशा पुं, [हिं. गला+भंग] लोहे की भूल जो युद्ध में हाथियों को पहनायी जाती है।

गलतंग— वि.—[हिं. गला + तंग] जिसे सुधि न हो। गलतंस—संशा पुं. [सं. गलित + वंश] (१) मनुष्य जो निसन्तान मरे। (२) ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति जिसके कोई सन्तान न हो।

गलत—वि.—[ग्र. गलत] (१) जो शुद्ध न हो । (२) जो सत्य न हो, मिथ्या।

गलतफहमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गलत + फहम] अम, गलती।

गलतान—वि. [फ़ा, गलताँ] चक्कर मारता या लुढ़-कता हुआ।

गलती—संज्ञा स्त्री. [श्र. ग़लत + ई (प्रत्य.)] (१) भूल-चूक। (२) श्रश्चिद्ध।

गलथन, गलथना—संज्ञा पुं. [सं. गलस्तन, पा. गलत्थन, गलथन] बकरी के गले के स्तन या थन जिनमें दूध नहीं होता।

गलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिरना (२) गलना।
गलना—कि. आ. [सं. गरण = तर होना] (१)
पिघलना, घुल जाना। (२) चीएा होना। (३) शरीर
सूख जाना। (४) सरदी से ठिठुरना। (४) व्यर्थ
हानि होना, बेकार हो जाना, कुछ स्वार्थ न निकलना।
गलफाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल+फाँसी] (१) गले
की फाँसी। (२) दुखदायी वस्तु या काम।

गलबल—संज्ञा पुं. [अनु.] को लाइल, खलबली । उ— गलबल सब नगर परयो प्रगटे जदुबंसी। द्वारणल इहै कहें जोघा को उबच्यो नहीं, काँघे गजदंत धारे सूर ब्रह्म अंसी—२६१०।

गलबहियाँ, गलबाहीं—संशा स्त्री. [हिं. गला + बाँह] गले में बाह डालना, कंठालिंगन।

गलमुँद्री—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+मुद्रा] (१) गाखा बजाने की मुद्रा। (२) व्यर्थ बकवाद करना।

गलमुद्रा — संज्ञा स्त्री. [सं. गल + मुद्रा] शिवभक्तों की गालबजाने की मुद्रा।

गलवाना — क्रि. स. [हिं. 'गलाना' का प्रे.] गलाने का काम करना।

गलशुंडी संज्ञा स्त्री. [सं०] जीभ की तरह का मांस का दुकड़ा जो जिह्ना की जड़ के पास रहता है।

गलिसरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+श्री] गले का एक गहना।

गलसुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल + सुई] छोटा तिकया जो गाल के नीचे रखा जाता है।

गलस्तन—संज्ञा स्त्री, [सं.] बकरियों के गले के थन जो व्यर्थ होते हैं।

गलस्वर—संज्ञा युं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।
गला—संज्ञा युं. [सं. गल] (१) गरदन, कंठ।

मुहा.—गला काटना— (१) मार डालना। (२)
बहुत दुख देना। (३) श्रन्याय से माल हड़प लेना।
(४) बुराई करना। गला घुटना—(१) दम घुटना।
(२) बड़े कष्ट का जीवन व्यतीत करना। गला
छूटना—मंभट से पीझा छूटना। गला दबाना
(घोटना)—(१) गला दबाकर मार डालना। (२)
श्रनुचित दबाव डालना। गला फाड़ना—बहुत जोर
से चिल्लाना। गलाबँघना—मजबूर हो जाना। गले का
हार—बहुत प्यारा। गले पड़ना—(१) न चाहने
पर भी कोई भार माथे मदा जाना। (२) भोगने या
सहने को तैयार होना। गले मद्ना—(१) इच्छा
के विरुद्ध देना या सोंपना। (२) इच्छा के विरुद्ध
विवाह कर देना। गले लगाना—(१) श्रालिंगन
करना। (२) इच्छा के विरुद्ध सोंपना।

(२) कंठस्वर। (३) कपड़े का भाग जो कंठ पर रहता है। (४) बर्तन का भाग जो उसके मुँहड़े के नीचे होता है।

गलाना—िक. स. [हिं. गतना] (१) पिघलाना, नरम या द्रव करना। (२) पिघलाकर धीरे धीरे जुस या चय करना। (३) (रुपया) व्यर्थ खर्च करना।

गलानि—संशास्त्री. [सं. ग्लानि] (१) दुख या पछ्न तावे की कज्जा या खिन्नता। (२) दुख, खेद।

गिलति—िव. [सं.] (१) गला या पिघला हुम्रा। (२) प्रयोग या उपयोग के कारण जो चुस्त या कठिन न हो, जिसका बहुत उपयोग हो चका हो। (३) जीर्ण-शीर्ण, पुराना।(४) चुम्रा या गिरा हुम्रा। (४) नष्ट-भ्रष्ट। (६) परिपक्व, परिपुष्ट। उ.—दान लेहों सब म्रंगिन को। म्रिति मद गिलत तालफल ते गुरु जुगल उरांज उतंगिन को। (७) बिखरा हुम्रा, म्रस्तव्यस्त साज-श्टंगारवाला। उ.—ल्लूटी लट ल्लूटी नक बेसि मोतिन की दुलरी। म्रस्न नैन सुख सरद निसा-कर कुसुम गिलत कबरी—२१०६। (म) शिथिल, क्लांत, थका हुम्रा। उ.—सुधि न रही म्रिति गिलत गात भयो जनु डिस गयौ म्रह्मो—२५६७।

गिलित यौवना—संज्ञा स्त्री, [सं,] वह स्त्री जिसका बौवन दल गया हो।

गलिन, गलिनि— सं। स्त्री. [सं. गल, हिं गली] गिलियाँ, तंग रास्ते। उ.—सो रस गोकुल-गलिनि वहावें—१०-३।

गलियारा—संज्ञा पुं. [हिं. गली + त्रारा (प्रत्य.)] पतली गली, तंग रास्ता।

गली—संज्ञा स्त्री. [सं. गल] (१) खोरी, कूचा, तंग रास्ता। उ.—श्राजु मेरी गली होके करत बंसी सोर —सा. ६१। (२) मौहल्ला।

मुहा.—गली गली फिरना—(२) जीविका के लिए भटकना। (२) बहुत साधारण होना।

क्रि. स. भूत. [हिं. गलना] (१) गल गयी, घुल गयी। (२) चीण या नष्ट हो गयी।

गत्तीचा — संज्ञा पुं, [फ़ा ग़ालीचा] जन या सूत का मोटा बिछीना जिस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे हों।

गलीज—वि. [श्र. गलीज़] मैला-कुचैला। संज्ञा पुं.—गंदगी, मैल।

गलीत—ि वि. [त्रा. शालीज़ = मैला था त्रशुद्ध] मैला- कुचैला, बुरी दशा को प्राप्त ।

गलेबाजी—संशास्त्री. [हिं. गला + बाजी] डींग, बढ़ बढ़कर बातें करना।

गलौ—संज्ञा पुं. [सं. ग्लौ] चंद्रमा।

गल्प—संज्ञा स्त्री. [सं. जल्प या कल्ग] (१) सूठी कथा। (२) डींग, शेखी। (३) कहानी।

गह्म-संज्ञा पुं. [सं.] गाल । संज्ञास्त्री. [हिं. गाल या गल्प श्रथवा फ़ा. गिला] बात, चर्चा।

गह्मा—संज्ञा पुं. [त्र्रा. गुल, हिं. गुला] शोर, हुन्नड़ ।
संज्ञा पुं. [फ्रा. गल:] मुंड, समूह ।
संज्ञा पुं. [हिं. गाल] अन्न जो एक बार चक्की में
पिसने के लिए डाला जाय, मुट्टी भर अन्न, कौरी।
संज्ञा पुं. [त्र्रा. गल:] (१) फसल, पैदावार।
(२) अन्न, अनाज। (३) धन की गोलक।

गवँ, गवँही—संज्ञा स्त्री. [सं. गम, प्रा. गवँ] (१) घात, श्रवसर। (२) मतलब, प्रयोजन।

मुहा०—गवँ से—(१) घात या श्रवसर देखकर। (२) चुपचाप, धीरे से। गव—संज्ञा पुं. [सं. गवय] एक बंदर जो श्रीराम की सेना में था।

गवई—संज्ञा स्त्री, [हिं, गाँव] छोटा गाँव। उ.—श्रव हरि क्यों बसें गोकुल गवई—३३०४।

गवच्छ-संग्रा पुं. [सं. गवाज] एक बंदर जो श्रीराम-चंद्र की सेना में था। उ.—नल-नील-द्विविद-केसरि गवच्छ। कपि कहे कछुक, हैं बहुत लच्छ-१-१६६।

गवन—संज्ञा पुं, [सं. गमन] (२) चलना, जाना, प्रस्थान।
उ.—तहाँ गवन प्रभु सूरज कीन्हो—२६४३। (२)
वधू का पहिली बार पति के घर जाना, गौना। (३)
गवन का वेग या गति। उ.—छाँ इ सुल्ल्हाम ग्रुक्
गरुइ तजि साँवरौ पवन के गवन तें श्रिष्ठिक घायौ
— १:४।

गवनचार — संज्ञा पुं. [सं. गमन + श्राचार] वध् का पति के घर पहली बार जोना, गौना।

गवनना कि. श्र. [हिं. गवन] जाना, प्रस्थान करना। गवना संज्ञा पुं. [हिं. गौना] वधू का पहली बार पति के घर जाना।

गवनीं — कि. श्र. स्त्री. [हिं. गवनना] प्रस्थान किया, (श्रन्य स्थान को) गयीं। उ.—(क) गृह गृह तें गोपी गवनीं जब—१०-३२। (स्त्र) मुरकी सब्द सुनत बन गवनी पति सुत गृह बिसरायें — ३०६०।

गवने— कि. श्र. [हिं, गमना या गवनना] गये, चक्ते गये, यात्रा की, प्रस्थान किया। उ.—(क) पठवी दूत भरत कों ल्यावन, बचन कह्यो विलाखाई। दसरथ-यचन राम बन गवने, यह कहियो श्ररथाइ— ६-४७। (ख) जब तें तुम गवने कानन की भरत भोग सब छाँड़े — ६-१५४।

गवय संज्ञा पुं. [सं.] (१) नील गाय । (२) एक बानर जो श्रीराम की सेना में था। (३) एक छंद। गवाँए-कि. स. [हिं. गवाँना] खो दिये, खो बेठे। उ.—स्रदास तेहिं बनिज कवन गुन मूलहु मौंक गवाँए—३२०१।

गवाँना-क्रि, स. [हिं, गवना का प्रे.] खोना, नष्ट करना।

गवान गवास, गवाह ं हैं. में गवाना (१) कोटी सिवकी मंगस्या। (२) एक बानर जो श्रीराम की सेना में था।

राजा तो — ं ं तो हैं। १०० हैं सम्बद्धाः (२) एक सता। राजायः (२) स्व हैं हैं। स्व स्थानाः राजाकर, साने के सित्र में रित्र करके १३ - मान्य हैं स्थान स्थानत, प्रक्रियर्थकः स्थानित हैं हैं।

गवारा ि. [का.] (१) मनभाता, रविकर।(२) शंगीकार, रवनेवाला।

गवास, गवासा नरंदा युं. [स. गवारात] कसाई। संशास्त्रों. [हि. गाना] गाने की इच्छा।

गवाह — तंशा पुं. [ता.] साकी, साकी। गत्राही—मंशास्त्री. [हि. गवाह वा वयान, साची का कथन, साक्य।

गर्नोश-संशा पुं. [सं. गथेश] (१) गोस्तामी। (१) विष्यु। (३) साँग।

गवेषता विशेष विशेष विशेष गवेषो गवेसी विशेष गोषण विशेष है नेपाला। गवेसना - विशेष विशेष विशेष करना।

गावना] गानेवाला, गायक।

गर्वेहा-वि. [हि. गाँव + ऐंहा (प्रत्य.)] (१) गाँव का रहनेवाला। (२) गाँवार, असभ्य।

गन्य—वि. सं.] गाय से प्राप्त तृथ, दही, घी, गोबर मादि पदार्थ।

संशा पुं. [सं.] (१) गायां का समृह। (२) पंचगव्य – गाय से मिलनेवाले पाँच पदार्थ – दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र।

गश-संशा पुं. [फ़ा. गश] मूच्छां, बेहोशी। गश्त-संशा. पुं. [फ़ा.] (१) घूमना-फिरना। (२) घूम घूम कर पहरा देना।

गश्ती—वि. [फ़ा.] (१) घूमनेवाला । (२) कई व्यक्तियों के पास भेजा जानेवाला (पत्र त्रादि)। संज्ञा स्त्री.—व्यभिचारिणी स्त्री।

गसना—िक. स. [सं. गुथना] (१) गाँउना, जोड्ना। (२) गठी हुई बुनावट करना।

गसीला—वि. [हं. गसना] (१) गठा हुआ। (२) गठी हुई बुनावट का (कपडा)।

गस्सा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास, श्रा. गास, गस्स] कौर, ग्रास, नेवाला ।

गह—संशा स्त्री. [सं. ग्रह] (१) मूठ, कब्जा, दस्ता। (२) कोठरी की ऊचाई। (३) खंड, मंजिल।

गहकना - कि. त्र. [सं. गद्गद] (१) चाह या लालसा से ललकना। (२) उमंग या उत्साह भरना।

गहगह—वि. [सं. गद्गद्] (१) चाह से युक्त। (२) उत्साह या उमंग से भरा हुआ।

कि. वि.—खूब धूमधाम से।

गहगहा—िव. [सं. गद्गद] (१) उमंग या त्रानंद से युक्त। (२) जो खूब धूमधाम से हो।

गहगहात—िक. श्र. [हिं. गहगहाना] (१) प्रफुल्बित होकर, उमंग से भरा हुश्रा। उ.—बायस गहगहत सुभ बानी विमल पूर्व दिसि बोले। श्राजु मिलाश्रो स्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले —१० उ. -१०६। (२) खूब विस्ता हुश्रा, बड़ी धूमधाम श्रोर जोरशोर के साथ। उ.—गहगहात किलविलात श्रंध-कार श्रायो। रिव को रथ सूमत नहिं, धरिन गगन छायो—६-१३६।

गहगहाना—िक. त्र. [हिं. गहगहा] (१) त्रानंद या उमंग में भरा हुत्रा। (२) फसल का अच्छा होना। गहगहे—िकि. वि. [हिं. गहगहा] (१) बड़ी प्रफुल्लता या उमंग के साथ, अच्छी तरह। (२) खूब धूम-धाम श्रोर जोरशोर से। उ.—जाजन बाजें गहगहें (हो), बाजें मंदिर भेरि—१०-४०।

गहगहो — वि. [हिं. गहगहा] सानंद, प्रकुल्लित, उत्सा-

हित। उ.—माधव जू श्रावनहार भये। श्रंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये।

गहडोरना—िक. स. [श्रनु.] पानी मथकर गंदा करना।
गहत —िक. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ते, रोकते या
ग्रहण करते ही, थामते ही । उ.—िरपु कच गहत
द्रुपदतनया जब सरन सरन किह भाषी। बढ़े दुकूल-कोट
श्रंबर लों, सभा माँभ पित राखी—१-२७। (२) धारण
करता है।

गहति — कि. स. [हिं. गहना] पकड़ता, रोकता या ग्रहण करता है, थामता है। उ. — चिरजीवो सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वे पाइ — ६ ८३।

गहन—िक. स. [हिं. गहना] परुड़ ने अथवा अहण करने (के लिए), घरने या थामने (के लिए)। उ.—(क) इंद्र-भय मानि, हय गहन सुत सौ वहाौ, सो न लें सक्यो, तब आप लीन्हों—४-११। (ख) सकल भूषन मनिनि के बने सकल आँग, बसन बर अहन सुंदर सुहायौ। देखि सुर असुर सब दौरि लागे गहन, कहाौ में बर बरों आप भायौ— ८-८।

वि. [सं.] (१) गहरा, श्रथाह । (२) घना, दुर्गम। (३) कठिन, जटिल । (४) घना, निविड़ । संज्ञापुं.—(१) गहराई, थाह । (२) दुर्गम स्थान । (३) ग्रुप्त स्थान । (४) जल ।

संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) ग्रहण। उ.—बड़ो.
पर्व रिव गहन कहा कहाँ तासु बड़ाई—१० उ.-१०५।
(२) कलंक, दोष।(३) दुख।(४) बंधक, रेहन।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना = पकड़ना] (१) पकड़।
(२) हठ, जिद, ग्रड़। उ.—एक गहन धरी उन्हरू किर मेटि बेट विधि नीति—३४७८। (३)
घास खोदने का एक ग्रीजार।

गहना—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण = धारण करना] (१)
ग्राभूषण, ग्रतंकार। (२) बंधक, रेहन।
क्रि. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] पकड़ना,
थामना।

गहिन संशा स्त्री. [सं. ग्रहण] टेक, हठ, जिद । उ.—
(क) छिव तरंग सरितागन लोचन ए सागर जनु प्रेम
धार लोभ गहिन नीके अवगाही । (ख) हरि पिय

बुम जिनि चलन कहो। यह जिनि मोहिं सुनावहु बिल जाउँ जिनि जिय गहिन गहो—२४५५।

गहनु—संज्ञा पुं, [सं. ग्रहण] (१) प्रहण। (२) कलंक। गहने—क्रि. वि. [हिं. गहना = बंधक] बंधक या रेहन के रूप में।

गहबर, गहबरा—िव. [सं. गहर] (१) गहन, दुर्गम। उ.—तुम जानकी, जनकपुर जाहु। कहा श्रानि हम संग भरिमहो, गहबर बन दुख-िसंघु श्रथाहु—१-३४। (२) दुखी, व्याकुल। (३) घ्यान में जीन, बेसुध। गहबरना—िक. श्र. [हिं. गहबर] (१) घबराना। (२) जी भर श्राना।

गहबराना—िक. स. [हिं. गहबर] घबरा देना, व्याकुल करना।

गहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी; श्रथवा सं. ग्रह; श्रथवा फ़ा. गाह = समय] (१) देर, विलंब । उ. — (क) कत हो गहर करत बिन काजें, बेगि चलौ उठि घाइ — १०-२०। (ख) गहर जिन लावहु गोकुल जाइ। तुमहिं विना ब्याकुल हम हो इहें यदुपित करी चतुराई। (ग) गहर करत हमको कहा मुख कहा निहारत — २५७६। (२) टालना, बहाना करना । उ. — देहो दिध कौ दान नागरी गहर न लाश्रो चित्त— सारा. ८७६।

वि. [सं. गहर] दुर्गम, कठिन।
गहरना—कि. श्र. [हिं. गहर = देर] देर लगना, विलंब
करना।

कि. श्र. [श्र. कहर] (१) भगड़ा करना, उलमना। (२) कुड़ना, खीभना, भुँभलाना।

गहरा—वि. [सं. गंभीर, पा. गहीर] (१) जिसकी थाह सरलता से न मिले। (२) जिसकी सतह बहुत नीचे हो। (३) बहुत ज्यादा।

मुहा.—गहरा श्रमामी—बड़ा धनी । गहरा हाथ मारना— (१) पूरा वार करना। (२) बहुत धन पा जाता। (३) बड़े मूल्य या काम की चीज पाना।

(४) मजबूत, दृढ़। (४) गाढ़ा, जो पतला न हो।

मुहा.— गहरी घुटना (छानना)— (१) बहुत
मेल-जोल होना। (२) घुलघुल कर बातें होना।
गहराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहरा + ई (प्रत्य.)] गहरापन।

गहराना—िक. श्र. [हिं. गहरा] गहरा होना।

कि. स.—खूब गहरा करना या बनाना।

कि. श्र. [हिं. गहर] नाराज होना, खीभना।

गहरानी—िक. श्र. [हिं. गहर, गहराना] नाराज हुई,

स्ठ गयी, श्रप्रसन्न हुई। उ.—श्रधर कंप, रिस भौंह मरोरयो, मन ही मन गहरानी—१८६५।

गहरात्र—संज्ञा पुं. [हिं. गहरा + श्राव (प्रत्य.)] गहरापन।
गहरि—िक. श्र. [हिं. गहर = फगड़ा] फगड़ा करके,
रूठ कर, खीफकर। उ.—तुम सौं कहत सकुचत
पहरि। स्थाम के गुन नहीं जानित जात हम सौं गहरि
— ५६०

गहरु—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी श्रथवा फा. गाइ = समय] देर, विलंब। उ.—(क) सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यों किहिं जुग इतौ सहयौ—१-४६। (ख) माखन बाल गोपाल हिं भाव। भूखे छिन न रहत मन मोइन, ताहि बदौं जो गहरु लगावे—१०-२३५। (ग) ऊधौ ब्रज जिनि गहरु लगावहु—२६२६। (घ) नव श्रीर सात बीस तो हिं सो भित का हे गहरु लगावित—सा. उ.—११।

गहरे — कि. वि. [हिं. गहरा] श्रच्छी तरह, ख्व। गहवा — संज्ञा पुं. [हिं. गहना = पकड़ना] सँडसी। गहवाना — कि. स. [हिं. गहाना] पकड़ाना।

गहाइ—िक. स, [हिं. गहाना] पकड़ाकर, थमाकर। उ.
—कही तो तानों तुन गहाइ के, जीवत पाइनि
पारों—६ १०८।

गहाई—संशास्त्री [हिं. गहना] पकड़ने का कार्य या भाव, पकड़ा

गहाऊँ — क्रि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] पक-डाऊँ, थमाऊँ, उठवाऊँ । उ.— (क) श्राजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ । तो लाजों गंगा जननी कों, संातनु सुत न कहाऊँ—१-२७०। (ख) जो तुमरे कर सर न गहाऊँ गंगा-सुत न कहाऊँ — सारा. ७८०।

गहागह—िक. वि. [हिं. गहगह] धूमधाम से। गहाना—ि कि. स. [हिं. गहना = पकड़ना] पकड़ने या थामने को प्रेरित करना।

गहायो-कि. स. भूत. [हिं. गहाया] पकड़ाया, धरने को प्रेरित किया। उ.—श्रति कृपालु श्रातुर श्रवलिन को

उयापक श्रंग गहायौ-२६६८।

गहावत — कि. स. [हिं. गहना = पकड़ना का प्रे. 'गहाना'] पकड़ाते हैं, थमाते हैं। उ.—(क) सिखवित चलन जसोदा मैया। अरवराइ कर पानि गहा-वत डगमगाइ धरनी घरे पैया—१०-११५। (ख) सुफलकसुत ए सिख ऊधौ मिली एक परिपारी। उनतौ वह कीन्ही तब इमसौं, ए रतन छुँड़ाइ गहावत मारी—३०५६।

गहावन — कि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] पक-डाने की, थमाने की | उ.—िनज पुर श्राइ, राइ भीषम सौं, कही जो बातें हरि उचरी | सूरदास भीषम परितज्ञा, श्रास्त्र गहावन पैज करी—१-२६८ |

गहावे—िक. स. [हिं. 'गहना'—पकड़ना का प्रे.]गहाती है, पकड़ाती है, थमाती है। उ.—कबहुँक पल्लव पानि गहावे, श्राँगन माँक रिंगावे—१०-१३०। गहासना—िक. स. [सं. ग्रसना] पकड़ना।

गहि—िक. स. [हिं. गहना] रोककर, टेककर, पकड़कर, थामकर। उ.—गहि सारँग, रन रावन जीत्यी, खंक विभीषन फिरी दुहाई—१-२४।

गहिए—िक. स. [हिं. गहना] पकिंख्, धरिए, थामिए। उ.—जो तुम जोग सिखावन श्राए निर्गुन क्यों करि गहिए।—२६८७।

गहिबो—कि. स. [हिं. गहना] पकड़ना, घरना।

मुहा.—चित गहिबो—ध्यान में लाना, खपाल करना, विचार में रखना। उ.—धोष बसत की चूक हमारी कछ न चित गहिबो— ३३१५।

गहियत—िक-स. [हिं. गहना] पकड़ता है, थामता है। उ.—िफिरि फिरि वहह अविध अवलंबन बूड़त ज्यों तृन गहियत—३३००।

गहिये—िक. स. [हिं. गहना] प्रहण की जिए, पकड़िए, प्रावह प्रमाहए, स्वीकारिए। उ. — (क) दुख, सुख, की रित, भाग श्रापनें श्राइ परें सो गहिये—१-६२। (ख) गऐं सोच श्राऐं निहं श्रानँद ऐसी मारग गहियें —२-१८।

गहियौ—िकि. स. [हिं. गहना] पकडूँ गा, ग्रहण करूँ गा। उ,—ये सब बचन सुने मनमोहन यहै राह मन गहियौ--१०-३१३।

गहिर, गहिरा—िव. [हिं. गहरा] जिसकी थाह सरजता से न मिले, श्रथाह । गहिराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहराई] गहरापन । गहिराच—संज्ञा पुं. [हिं गहरा] गहरापन । गहिरो, गहिरो—िव. [हिं. गहरा] जहाँ पानी ज्यादा हो, गहरा। उ.—श्रागें जाउँ जमुन-जल गहिरो, पाछैं सिंह जुलागे—१०-४।

गहिला - वि. [हिं. गहेला] पागल, उन्मत्त ।
गही — कि. स. [हिं. गहना] रोकी, पकड़ी, हाथ में
ली। उ.— (क) दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिं
बसन बढ़ायौ — १३२। (ख) सृकुटी सूर गही कर
सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ. १६।
गहीर—वि. [हिं. गहरा] अथाह, गहरा।

गहीली--वि. स्त्री. [हिं. गहेला, गहिला] (१) घमंड में चूर रहनेवाली, श्रीभमानिनी। उ. (क) राधा हरि के गर्व गहीली—१३०६। (ख) हम तें चूक कहा परी जिय गर्व गहीली—१७१५। (ग) यह तो जोवन रूप गहीली संका मानत हर की— पृ. ३१७ (६८)। (२) पगली, जनमत्त।

गहु—संशा स्त्री. [सं. गहर या हिं. गँव] छोटा रास्ता, ली।

गहूँ—िकि. स. [हिं. गहना] पकड़ूँ, थामूँ। उ.—िचत्र गुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी—१-१४३। गहूरी—संज्ञा स्त्री [हिं. गहना = रखना] दूसरे के माल की रचा की मजदूरी।

गहे—िक. स. [हिं. गहना] (१) पकड़े, रोके या थामे हुए। उ.—कोध-दुसासन गहे लाज यह, सर्व श्रंध-गित मेरी—१-१६५। (२) किसी के द्वारा पकड़े या असे जाने पर। उ.—ग्रह गहे गजपति मुकरायी— १-१०। (३) ग्रहण करने पर। उ.—ऐसो को जुन सरन गहे तें कहत सूर उतरायी—१-१५।

गहेजुश्रा—संज्ञा पुं. [देश.] छछूँदर। गहेलरा—वि. [हिं. गहेला] (१) पागल, उन्मत्त। (२) मूर्ख, गँवार।

गहेला—वि. [हिं. गहना=पकड़ना+एला (प्रत्य.)]

(१) हठी, जिही। (२) घमंडी, श्रिभमानी। (३)

गहें — कि. स. [हिं. गहना] गहते हैं, रोकते हैं, पक-इते हैं। उ. (क) गहें दुष्ट द्रुपदी की सार्ग, नैनिन बरसति नीर—१-३३। (ख) "चंद्र गहें ज्यों केत —१-२६६।

गहै — क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ता है, थामता है। उ. — स्रदास सब सुखदाता-प्रभु-गुन बिचारि नहिं चरन गहै — १-५३। (२) प्रहण करता है, प्राप्त करता है। उ. — श्रीर कछू विद्या नहिं गहें — ५-३।

गहैया—वि. [हिं. गहना + ऐया (प्रत्य.)](१) पकड़ने-वाला। (२) मानने या स्वीकार करनेवाला।

गहोगे—कि. स. [हिं. गहना] पकड़ोगे, थामोगे। उ. —बाबा नंदिह पालागन किह पुनि पुनि चरन गहोगे —२६३२।

गहों—िकि, स. [हिं. गहना] पकडूँ, थामूँ। उ.— स्रदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहों —१-१६१।

गहोंगी—कि. स. [हिं. गहना] गहूँगा, पकडूँगा। उ. —मैया री मैं चंद तहोंगो। कहा करों जलपुट भीतर कों, बाहर व्यों कि गहोंगी—१०-१६४।

गहो—िक. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] (१ पकड़ो, रोको, थाम लो। उ.— क) सूर प्रतित तुम प्रतित-उधारन, गहो बिरद की लाज—१-१०२। (ख) श्रजहूँ सूर देखिबो करिहो, बेगि गहो किन बाँह— १-१७५। (२) अपनाओ, स्वीकार करो। उ.—अव तुम नाम गहो मन नागर—१-६१।

गह्यो गह्यो —िक. स. [हिं गहना] (१) पकड़ा, थामा, अंगीकार किया। उ.—(क) स्याम गह्यो भुज सहज हीं क्यों मारत हमकों — २५७७। (ख) सार को सार, सकत सुख को सुब, हनूमान-सिव जानि गह्यो — २-८। (२) प्रहण किया, उठाया। उ.—सक को दान-बित,मान ग्वारिन लियो गह्यो गिरि पानि जस जगत छायो — १-५।

गहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल, वन। उ.—कटि-तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता-बंधु-समेत। सूर गमन गहर को कीन्हों जानत पिता अचेत—६-३६।
(२) श्रंधकारमय श्रोर श्रनजाना गूढ़ स्थान। (३)
बिल, स्राख। (४) विषम स्थान। (४) गड्ढा,
गहरा स्थान। उ.—श्रित गहर में जाइ परी हम—
२४३३। (६) कुंज। (७) साड़ी। (८) गुप्त
स्थान। (६) दंभ। (१०) रोना। (११) गूढ़ार्थक
वाक्य (१२) जटिल विषय। (१३) जल।

वि.—(१) दुर्गम, जटिल (२) छिपा हुआ। गांग—वि. [सं.] गंगा-संबंधी।

संज्ञा पुं.—(१) भीष्म। (२) वर्षा का जल।
(३) कार्तिकेय। (४) एक मछली। (५) सोना।
गांगायिन—संज्ञा पुं. [सं.](१) भीष्म। (२) कार्ति
केय। (३) एक ऋषि।
गांगेय—संज्ञा पुं. [सं.](१) भीष्म। (२) कार्तिकेय।

(३) एक मछली। (४) सोना। (४) धत्रा।
गांग्य — बि. [सं. गंगा] गंगा-संबंधी।
गाँछना—कि. स. [सं. गुत्सन] (माला श्रादि) गूँधना।
गाँज—संज्ञा पुं. [फा. गंज] (१) राशि। (२) डंठला
या लकड़ी का तले ऊपर लगा हुआ ढेर।

गाँजना—िक. स. [हिं. गाँज] ढेर लगाना।
गाँजा—संज्ञा पुं. [सं. गंजा] एक नशीला पौधा।
गाँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि, प्रा. गंठि] (१) गिरह, ग्रंथि।
मुहा—गाँठ खुलना— समस्या या उलक्कन दूर
होना। गाँठ खोलना (छोरना)—उलक्कन मिटाना।
मन की गाँठ खोलना—(१) जी खोलकर बात
करना (२) इच्छा पूरी करना। मन में गाँठ करना
(पड़ना)—खुरा मानना। गाँठ पर गाँठ—(१) उलक्कन
बढ़ना। (२) द्वेष बढ़ना।

(२) कपड़े में कुछ खपेटकर लगायी हुई गिरह।

मुहा.—गाँठ काटना—(१) गाँठ काट लेना।
(२) सौदे में ठगे जाना। गाँठ करना—(१) अपने
पास इकट्ठा करना। (२) याद रखना। गाँठ का—
अपना, अपने पास का। गाँठ का पूरा— धनी।
गाँठ खोलना—अपने पास का धन खरचना। (बात)
गाँठ बाँधना—ध्यान रखना। गाँठ में—पास में।
गाँठ से—पास से।

(३) बोस, गठरी। (४) शरीर के अंगों का जोड़। (४) ईंख आदि की पोर। (६) गाँठ की बनावट की चीज आदि।

गाँठकट—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ+काटना] (१) गाँठ काटनेवाला। (२) ठग।

गाँठना—िक. स. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन]। (१) गाँठ जगाना, साँटना। (२) टाँकना, गूथना। (३) जोड़ना। (४) क्रम से लगाना।

मुहा.—मतलब गाँठना—काम निकालना।

(४) श्रपनी तरफ मिला लेना। (६) तय कर लेना। (७) दबाना, दबोचना। (८) वश में करना।

गाँठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ, गिरह, ग्रंथि, फंदा। उ.— (क) बचन बाँह ले चलो गाँठि दे, पाऊँ सुख ग्रांति भारी—१-१४६। (ख) ग्रांचल गाँठि देशी दुख भाज्यो सुख जु ग्रांनि उर पैठ्यो—६-१६४।

मुहा.—कहा गाँठि को लागत-पास का क्या खर्च होता है, क्या जमा जथा खर्च होती है। उ.—इतनो कहा गाँठि को लागत जो बातनि जस पाइए—१६८८। गाँठि परी—श्रोर जकड़ गयो, मामला पेचीदा होगया। उ.—कठिन जो गाँठि परी माया की तोरी जाति न भटकें —१-२६३। गाँठि को स्थापने पास की। उ.—स्र मुगंध गँवाइ गाँठि को रही बौरई मानि—१५७२। (२) किसी कपड़े में लपेटकर लगायी हुई गाँठ। उ.—होती नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरती—१-२६७। (३) बाँस, ऊल श्रादि की गाँठ। उ.—मुरली कौन सुकृत फल पाये।...। मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाये—६६१।

गाँठिकटा—संज्ञा पुं. [हि. गाँठ + काटना] जेब काटने वाला, गिरहकट। उ.—बटपारी, ठग, चोर, उचका गाँठिवटा, लठबाँसी— १-१८६।

गाँठी — संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ । उ. — मेरो जिव गाँठी बाँघो पीतांवर की छोर — मद०।

मुहा.—गाँठी को — अपना, अपने पास का। उ.
—हों तो गयौ गुपालिहं भेंटन और खर्च गाँठी को
—१० उ.—५०। गाँठि दे राखित — छिपा कर या
हंद करके रखती है। उ.—दिध माखन गाँठी द

राखित करत फिरत सुत चोरी १०-३२४

(२) हाथ की कोहनी में पहनने का एक गहना।

(३) गँठीला डंठल ।

गाँडर—संज्ञा स्त्री. [सं, गंडाली] (१) एक घास । (२) एक तरह की गँठीली दूब।

गाँडा—संज्ञा पुं. [सं. कांड या खंड] (१) कटा हुआ खंड। (२) गँडेरी। (३) ईख, गन्ना। संज्ञा पुं. [सं. गंड] चक्की की मेड़।

गांडीव—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन के धनुष का नाम। गांडीवी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन। (२) अर्जुन नामक वृत्त।

गाँथना कि. स. [सं. ग्रंथन] (१ (माला आदि) ग्रंथना। (२) गाँठना, जोड़ना, सीना

गांदिनी, गांदी—संशा स्त्री. [सं.] (१) श्रकर की

गांधर्व — वि. [सं] गंधर्व का, गंधर्व जातीय।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंधर्व विद्या। (२) गान
विद्या। (३) विवाह का एक प्रकार। (४) घोड़ा।
गांधर्वी — संज्ञा पुं. [सं.] दुर्गी।

गांधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंधु नद का परिचमी अदेश। (२) इस प्रदेश का निवासी। (३) गंधरस। गांधारी— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गांधार देश की स्त्री। (२) धतराष्ट्र की पत्नी जो गांधार देश के राजा सुबबा की पत्री थी।

गांधी—संज्ञा स्त्री. [सं. गांधिक] (१) हरे रंग का एक बरसाती कीड़ा। (२) एक घास। (३) हींग।

संज्ञा पुं. [सं. गांधिक] (१) इत्र तेल बेचते, वाला, गंधी। (२) गुजराती वैश्यों की एक जाति। गांभीय—संज्ञा पुं. [सं.](१) गहराई। (२) गंभीरता।

(३) स्थिरता। (४) भीरता। (४) (विषय की) जटिखता।

गाँव—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम, प्रा. गावँ] किसानों की बस्ती, खेड़ा।

मुहा. — गँवई-गाँव — देहात। गाँव - गिराव — जमींदारी। गाँव मारना—डाका डाजना। —संशा स्त्री. [हिं. गाँसना] (१) संकट, आपित, बाधा । उ.—श्रजहूँ नाहिं डरात मोहन, बचे कितने गाँस—१०—४२७। (२) गुप्त बात, भेद, रहस्य । उ.—जोबन दान लेहिंगे तुम सौं। चतुराई मितनवित है हम सौं। इनकी गाँस कहा री जानी। इतनी कही एक जिय मानी—११६१। (३) गाँठ, फंदा, गठन, बनावट। उ.—इतने सबै तुम्हारे पास। निरित्त न देखहु श्रंग श्रंग श्रव चतुराई की गाँस —११३२। (४) रोकटोक, बंधन, प्रतिबंध। (४) चैर, ईव्यां, द्वेष। (६) तीर या बरछी की नोक। (७) नुकीला हथियार, छुरी, बर्छी। उ.—भुजा धरे रज श्रंग चढ़ायौ, गाँस धरे हरि ऊपर श्रायौ-२६०६। (৯) देखरेख, निगरानी।

सहा.—गाँस करि राखी—ध्यान में रखी, मन में बैठा जी । उ.— तुम वह बात गाँस करि राखी, हम कहँ गई भुताइ।

शाँसना — कि. स. [हिं. ग्रंथन] (१) गुँथना, गाँउना। (२) चुभोना, श्रार-पार करना। (३) कसना (४) देखरेख में रखना, वश में करना, दबोचना। (६) दूसना, ठूसकर भरना (७) छेद बंद करना।

गाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँस] (१) तीर या बरछी की नोक। (२) तीर। उ.—स्रदास सोई पै जानें जा उर लागें गाँसी— ३१३३। (३) गाँठ, गिरह। (४) कपट। (४) ईप्यां, द्वेष। (६) वश, श्रिधकार। सुहा.—जोर करेंगो गाँसी—जबरदस्ती वश में करेंगा, हठपूर्वक श्रिधकार था शासन जमायगा। उ.—पावेगो पुनि कियौ श्रापनो जोर करेंगो गाँसी। गाँइ—िक. स [हिं. गाना] (१) मधुर स्वर से गाकर। (२) सविस्तार वर्णन करके। उ.—पारथ के सार्थि हिर श्राप भए हैं। भक्त-बछल नाम निगम गाइ गये हैं—१-२३।

संज्ञा स्त्री. [सं. गौ, हिं. गाय] गाय । उ.—
(क) माधो ज, यह मेरी इक गाइ। श्रव श्राज तें श्राप
श्रागें दई, लें श्राइए चराइ—१-५१। (ख) माधो
सखा स्थाम इन कहि कहि श्रपने गाइ-खाल सब
धेरो—२५३२।

गाइयै—िक. स. [हिं. गाना] प्रशंसा या बडाई कीजिए, बखानिए। उ.—हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि-गुन गाइये—उ.—३-११।

गाइबो—िक. स. [हिं. गाना] (गीत) गाया। उ.— जन मन भयो सूर आनँद हरिष मंगल गाइबो— १० उ.–२४ (८)।

गाई — कि. स. [हिं. गाना] प्रार्थना करने जगीं, स्तुति की। उ.—राजरविन गाई व्याकुल है, दें दें तिनकों धीरक। मागध इति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर पीरक—१-११२।

गाई—िक. स. [हिं. गाना] (१)मधुरस्वर में अलापी।
(२) विस्तार के साथ वर्णन की। उ.—एहि थर
बनी कीड़ा गज-मोचन श्रीर श्रनंत कथा खुति गाई
—१-६

गाउँ—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम] (१) गाँव, खेड़ा।
उ.—प्रमु जू, यौं किन्ही हम खेती। बंजर भूमि,
गाँउ हर जोते, श्रम् जेती की तेती—१-१८५। (२)
जमीन, जायदाद। उ.—द्याऊँ तो हिं राज-धन-गाँऊँ
-४-६। (३) राज्य, राजधानी। उ.—भर्ले राम की
सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५।

गाउ—िक. श्र. [हिं. गाना] गा रहे हैं, मधुर स्वर से बोल रहें हैं। उ. - कुसुमसर रिपु नंद बाहक हहर हरिषत गाउ—सा. उ.-४०।

गाऊँ—िक. स. [हिं. गाना] प्रशंसता हू, बखानता हूँ, स्तुति करता हूँ। उ.—सूर कूर, श्रांधरो, में द्वार परथो गाऊँ—१-१६६।

गाऊ—िक. स. [हिं गाना] गाते हैं, बखानते हैं। उ.— स्रदास प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाऊ— १०-२२१।

गाए—कि. स. [हिं. गाना] गाये गये, सविस्तार वर्णित किये गये। उ.—दीनबंधु हरि, भक्तकृपानिधि, बेद-पुरानिन गाए (हो) — १-७।

गाएं—िक, स. सिव. [हिं. गाना] गाने से, वर्शन करने या बखानने से। "उ—जो सुख होत गुपाल हिं गाएँ — २-६।

गाऊघप—वि. [हिं. खाऊ+ गप्प (१) जमा मार लेने-वाला। (२) खूब खरचने-उड़ानेवाला।

गागर, गागरा, गागरि, गागरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गगर, पा. गगर, हिं. गगरा] घड़ा, गगरी । उ.— (क) पुलिकत सुमुखी भई स्याम रस ज्यों जल में काँची गगरि गरि—१०-१२०। (ख) ज्यों जल माँह तेल की गागरि बूँद न ताको लागी—३३३५। (ग) मटकति गिरी गागरी हिर तें अप ऐसी बुधि ठानति।

गाछ—संज्ञा पुं. [सं. गच्छ] पौधा, पेड़ ।

गाछो—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाछ + ई (पत्य)] (१) कुंज, बाग। (२) (खजूर की) कोंपज। (३) बोरा या गदा जो पशुश्रों की पीठ पर रखा जाता है।

गाज — संज्ञा स्त्री. [सं, गर्ज] (१) गरज, शोर । (२) बिजली गिरने का शब्द । (३) बिजली, बज्र ।

मुहा.—गाज पड़ना—बिजली गिरना, वज्रपात होना। (किसी पर) गाज पड़ना—ग्राफत ग्राना। (किसी बात पर) गाज पड़ना—समुल नष्ट होना। गाज मारना—(१) वज्रपात होना। (२) ग्राफत ग्राना। जिय गाज—जी में भय उत्पन्न होना, भयानक संकट पड़ना। उ.—चक्र धरे हिर ग्रावहीं सुनि ग्रसु-रन जिय गाज—१० उ.-८।

संज्ञा पुं. [अनु. गजगज] फेन, साग।

माजत—िक. श्र. [हिं. गाजना] (१) (प्रसन्न होकर)

हुंकारते हैं । उ.—िजिहें जल तृन, पसु, दाह वृद्धि,

श्रपनें सँग श्रोरिन पारत । तिहिं जत गाजत महावीर

सब, तरत श्राँखि निहं मारत—६-१२३ (२) कोध से

गरजता है । उ.—(क) रावन तब लौं ही रन गाजत।

जब लौं सारँगधर कर नाहीं सारँग-बान बिराजत।

तैसें सूर श्रसुर श्रादिक सब सँग तेरे हैं गाजत—

६-१३०। (ख) निसि दिन कलमलात सुन सजनी

सिर पर गाजत मदन श्रर—२७६४।

गाजिति—िक, श्र. [हिं, गाजिना] गरजकर, शब्द करके।
यो,—गाजित-बाजित—धूमधाम के साथ। उ.—
मुरली मोहे कुँवर कन्हाई। । गाजित-बाजित,
चढ़ी दुहूँ कर, श्रपनें शब्द न सुनत पराई—६५४।

गाजन—संज्ञा. पुं. [सं. गर्जन, पा. गर्जन] गर्जन, हुंकार, जोर का शब्द, ध्वनि। उ.—सुनत बन मुरली धुनि की बाजन। पिर्दा गुंज को किल बन कूँजत, श्रह मोरनि कियो गाजन—६२२।

कि. स्त्र. [हिं. गाजना] गरज कर।

प्र०-ग्राए गाजन—गरजने ग्राये हैं, भयंकर ध्वनि करके डराने ग्राये हैं। उ.—ब्रज पर बदरा श्राये गाजन—२८१७। लागे गाजन—गरजने लगे हैं। उ.—ब्रज पर बहुरो लागे गाजन—१० उ.-६६।

गाजना—कि. श्र. [सं. गर्जन, पा. गर्जन] (१) शब्द करना, गरजना। (२) प्रसन्त होना।

मुहा.—गलगाजना — (१) प्रसन्न होकर हुंकारना या किलकारी मारना। (२) क्रोध से गरजना। गाजनु—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन, पा. गर्जन] गरज, हुंकारने की किया। उ.—सूरदास नागर बिन श्रव यह कौन सहै सिर गाजनु —२८७२।

गाजर- संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] एक पौधा, उसकी जह । गाजा-संज्ञा पुं. [हं. गाज] गरज, ध्वनि।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़ाज़ा] मुँह पर मलने का पाउडर।
गाजी—संज्ञा पुं. [ग्र. ग़ाज़ी] (१) धर्मयुद्ध करनेवाले
इस्लामी वीर। (२) वीर।

कि. श्र. [हिं. गाजना] (१) गरजने खगी। (२) हर्षित हुई।

मुहा.—सर्वाहिनि के सिर गाजी—सबको यरास्त करके हर्षित हुई, सबको चुनौती देकर किलकारी भरी। उ.—सुफत भयो पछिलो तप कीन्हो देखि सुरूप काम-रति भाजी। जगत के प्रभु बस किये सूर सनि सबहिं सुद्दागिन के सिर गाजी—३०६४।

गाजु—िक. त्र. [हिं. गाजना] गरजा कर, चिक्काया कर, वकाकर। उ.—राखौ रोकि पाइ बंधन के, त्रह रोकौ जल नाजु। हो तौ तुरत मिलौंगी हरिकों, तू घर बैठौ गाजु—८०८।

गाज—कि. श्र. [हिं. गाजना] गरजते हैं, हुंकारते हैं। उ.—(क) बिप्र सुदामा को निधि दीन्हीं, श्रर्जुन रन मैं गाजें—१-३६। (ख) माई री ए मेघ गाजें— रूद्रश्री

गाजै—िक. श्र. [हिं. गाजना] (१) हुंकारे, गरजे, चिल्लाये। (२) प्रसन्न हुए।

मुहा.—गल गाजै—हर्षित होकर किलकारता है। (किसी पर) गाजै—परास्त कर सकता है, चुनौती देता है, बहुत बढ़कर है। उ.—तेज प्रताप राइ केसो को तीनि लोक पर गाजै—२६३२।

गाटर, गाटी—संज्ञा पुं. [हिं. कहा] छोटा खेत।

गाठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] ग्रंथि, बंधन। उ.—प्रभु कव देखिही मम श्रोर। जान श्रापुन श्रापु ते गिरनाथ गाठी छोर—सा. उ. ४२।

पाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्त, प्रा. गड्ड] (१) गड्ढा, गढ़ा।
(२) श्रव रखने का गड्ढा। (३) कुएँ की टाला।
(४) खेत की मेंड, बाढ़।

गाड़ना—िक. स. [हिं. गाड़ = गड़ढा] (१) गडढा खोद कर किसी चीज को मिट्टी ग्रादि से दबा देना, तोपमा। (१) गड़ढा खोद कर किसी चीज को इस तरह खड़ा करना कि वह मजबूती से जमी रहे। (३) किसी चीज को उसके नुकीले भाग की तरफ से धँसाना। (४) (किसी बात या रहस्य को) छिपाना या प्रकट न करना।

गाडर—संज्ञा स्त्री. [सं. गडडरी या गड्डरिका] (१) भेड़। (२) गाँडर घास जो मूँज की तरह होती है। गाड़रू—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष भाड़ने

गाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शकट, प्रा. सगड़] बैलगाड़ी, छकड़ा। उ.—सीधो बहुत सुरासुर नंदे गाड़ा भरि

संज्ञो पुं. [सं. गत्ती, प्रा. गडड] (१) छिपकर बैठने का गडढा (२) कोल्हू के नीचे का गडढा ।
गाड़ि—कि. वि. [हिं. गाड़—गडढा, गाड़ना] जमीन में गाड़िकर। उ.—(क) भैया बंधु कुटुंब घनरे, तिनतें कछु न सरी। मरती बेर संग्हारन लागे, जो कछु गाड़ि घरी—१-७१। (ख) कबहूँ पाप करें पाबत घन, गाड़ि धूरि तिहिं देत—२-१५। (ग) सूर जोग-धन राख मधुपुरी कुबिजा के घर गाड़ि —२००४।

गाड़िएं—िक. स. [हिं. गाड़ना] गढ़े में दबा दीजिए, तोपिए। उ.—ये पांडव क्यों गाड़िए, घरनीधर डोलें— १-२३८।

गाड़ी—संशा स्त्री. [सं. शकट, प्रा. सगड़] सवारी जिसे घोड़े या बैल खीं वते हैं।

कि. स. [हिं. गाइना] (१) गड़े में गाइकर, तोप कर। (२) जनरदस्ती रोककर। उ.—मोको बैरी भए कुटुँव सब फेरि फेरि ब्रज गाइी। जो हों, कैसेहुँ जान पावती तौ कत स्रावत छाड़ी—२७०१।

गाड़ू—संज्ञा पुं. [सं. गारुड़] मंत्र, जादू। उ.—कळु पहि-पहि कर, अंग परिस करि, विष अपनौ लियौ भारि। स्रदास प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि —७५६।

गाड़े—संज्ञा पुं. [सं. गर्त. प्रा. गड्डा, हिं. गाइ] गड्ढा, गहरा गढ़ा। उ.—गृह गृह प्रति द्वार फिरचौ, तुमकों प्रभु छाँड़े। श्रंघ श्रंघ टेकि चले, क्यों न परे गाड़े —१-१२४।

गाढ़—िव. [सं.] (१) बहुत अधिक। (१) दृदं, मजबूत।
(३) घना, गाढ़ा। (४) गहरा, अधाह। (५) दुर्गम।
संशा पुं.—(१) आपित्त, संकट। उ.—(क) उत्तटी
गाढ़ परी दुर्बासें दहत सुदरसन जाकों—१-११३५ (ख)
डसी री माई स्थाम भुजंगम कारे। ''सूरस्थाम गारुड़ी
विना को जो सिर गाढ़ उतारे। (ग) जहँ-जहँ गाढ़
परे तहँ आवे—६७०। (घ) जब-जब गाढ़ परित है
हमको तहँ करि लेत सहैया—२३७४। (२) जुकाहों
का करघा।

गाढ़ा — वि. [सं. गाढ़] जो कम पतला हो। (२) जिसके स्त खूब घने मिले हों। (३) घनिष्ट, गहरा। (४) घोर, कठिन।

संशा पुं.—(१) हाथ के सूत का मोटा कपड़ा।

गाढ़ी—िव. स्त्रो. [हिं. गाढ़ा] (१) बढ़ी चढ़ी, घोर, कठिन। उ.—एती करबर हैं टरी, देविन करी सहाय। तब तें श्रब गाढ़ी पड़ी, मोकों कछु न सुमाइ—५८६। (२) बहुत बढ़ी हुई, श्रत्यंत। उ.—धेनु दुइत श्रितिहीं सित बाढ़ी। मोहन कर तें घार चलति, परि मोहनि

मुख श्रित ही छिबि गाही—७३६।(३) घनी, गहरी, घोर। उ.—मानहु मेघ घटा श्रित गाही—१०उ-२।

गाढ़े—िव. [हिं. गाहा] (१) घनिष्ट, गूड़। (२) बढ़े-चढ़े, घोर, कठिन, विकट। उ.—सूर उपँग-सुत बोहत नाहीं श्रित हिरदे हैं गाढ़े—२६६६।

मुहा.—गाहे की कमाई—मेहनत से कमाई हुई दोलत। गाहे के मीत, साथी या संगी—संकट समय के मित्र, विपत्ति में साथ देनेवाले। उ.—गोविंद गाहे दिन के मीत। गज अरु ब्रज, प्रहलाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत—१-३१। गाहे दिन—संकट के दिन, विपत्ति काल। गाहे में—विपत्ति या संकट के दिनों में।

कि. वि. [हिं. गाढ़ा] (१) दृढ़ता से,मजबूती से। उ.—(क) पहुँची आइ जिलेदा रिस भरि, द्वोउ भुज पकरे गाढ़े—४१३। (ख) हार सहित आँचरा गह्यो गाढ़े एक कर गह्यो मदुकिया मेरी। (२) अच्छी तरह, खूब।

गाहें—िव. सिव. [सं. गाह, हिं. गाहा] विपत्ति के दिनों में। उ.—इमारे निर्धन के धन राम। चोर न लेत, घटत निर्हं कबहूँ, आवत गाहें काम—१.६२।

कि. वि. [हं. गाढ़ा] दृदता से, जोर से,
मजबूती से । उ.—(क) इक कर सौ भुज गिह गाहें
करि, इक कर लीन्ही साँटी— १० २५५। (ख) दो उ
भुज धरि गाढ़ें करि लीन्हें, गई महरि के आगैं—
१०-३१७। (ग) लिए लगाइ कठिन कुच कें विच,
गाढ़ें चापि रही अपनें कर—१०-३०१। (२) अच्छी
तरह, भली भाँति, खूब, ऊँचे (स्वर) से । उ.—
बरजित है घर के लोगिन कों हरुऐ लें लें नामिहें।
गाढ़ें बोलि न पावत कोऊ डर मोहन बलरामिहें
—५१५।

गाहो — वि. [हिं. गाहा] गहरा, गृह, बहुत श्रिधिक, खूब बढ़ा हुआ। उ.—(क) गाहो मान दूरि करि डारघो हरष भई मन बाम—२१५१। (ख) बहुरि सखी सुफलक सुत श्रायो परघो संदेह जिय गाहो—२६७१। (ग) नाम सुदामा कहत नाथ जो दुखी श्राहि श्रांति गाहो—१०३,-७७।

गाहो — वि. [हिं. गाहा] कठिन, विकट, प्रचंड, घोर।
उ.—(क) सुनियत हैं, तुम बहु पतितिन कों, दोन्हों है
सुखधाम। अब तो आनि परयो है गाहो सर पतित
सों काम—१-१७६। (ख) इत पारथ गांगेय बली
उत जुरो जुद्ध अति गाहो — सारा.७८१।

गाणपत्य — त्रि. [सं,] गणपति-संबंधी। संज्ञा पुं. — गणेश-उपासक-संप्रदाय।

गात—संज्ञा पुं. [सं. गात्र, पा॰ गत्त] (१) शरीर, श्रंग।

उ.—(क) प्राह गहयो गज बल बिनु ब्याकुल, बिकल
गात गित लंगी। धाइ चक्र लेत हि उबारयो, मारयो

प्राह बिहंगी—१-२१। (ख) स्रदास प्रभु बोलि न
श्रायो प्रेम पुलिक सब गात—२५३१। (२) शरीर
के गुप्तांग। (३) स्तन, कुच। (४) गर्भ।

गातन—संज्ञा पुं. सिव. [हिं. गात] शारीर में । उ.— पाये जानि सकल सुनि मधुकर जे गुन साँवरे गातन—३०२५।

गाता—संशा पुं. [हिं. गात] शरीर, श्रंग। उ.—नैन श्रत्तसात श्रति, बार-बार जमुहात, कंठ लगि जात, हरषात गाता—४४०।

संज्ञा पुं, [सं. गातृ (गाता)] गानेवाला, गवैया] संज्ञा पुं, [सं. गत्ता] दफ्ती, कुट।

गाती—संज्ञा स्त्री. [सं. गात्री या गात्रिका] (१) चहर जो शरीर या गले में बाँधी-लपेटी जाय। उ.— सारी सुमग काछ सब दिये। पाटंबर गाती सब दिये। (२) गाती या चादर शरीर के चारो और लपेटकर गले में बाँधने का ढंग।

गातु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोयल । (२) भौरा । (३) गंधर्व । (४) गानेवाला । (४) गान । (६) पथिक । (७) पृथ्वी ।

गाते — संज्ञा पुं. [हिं. गात] शरीर । उ.—गदगद बचन
नैन जल पूरित बिलखि बदन कृस गाते— ३४६१ श्रीर
सा. उ.—४६।

गात्र— संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रंग, देह, शरीर । उ.—पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ श्रपनो गात्र—१-२१६ । (२) हाथी के श्रगले पैरों का ऊपरी भाग।

गाथ — संज्ञा पुं. [सं. गाथा] (१) गान, गीत । उ.— सूर स्थाम हों ठगी महानिसि पढ़ि जु सुनाये प्रात के

गाथ—२७३६। (२) स्तोत्र। (३) यश, प्रशंसा।
उ.—(हरि) पतित-पावन, दीनबन्धु ग्रानाथिन के
नाथ। संतत सब लोकिन स्त्रुति, गावत यह गाथ
—१-१८२। (४) वचन, वाणी, कथन। उ.—
तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनो सूर मम गाथ। तू
कृत मम जस जो गावेगौ सदा गहै मम साथ—
सारा.११०४।

गाथक—संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गायक।
गाथना—कि. स. [हिं. गाँथना] गूँथना, गाँथना।
गाथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्तुति। (२) श्लोक।
(३) रचना जिसमें दान, यज्ञ ग्रादि का वर्णन हो।
(४) श्रायावृत्ति। (४) एक प्राचीन भाषा जिसमें
पाली ग्रौर संस्कृत के विकृत शब्द-रूप रहते थे।
(६) गीत। (७) कथा, वृत्तांत।
गाथी—संज्ञा पुं. [सं. गाथिन] सामवेद-गायक।

गाद्-संज्ञा स्त्री. [सं. गाध = जल का तल] (१) तरल पदार्थ की निचली गाड़ी चीज, तलछट। (२) तेल की कीट। (४) गाड़ी चीज।

गादुड़—िव. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] कायर। संज्ञा पुं.— (१) अड़ियल बेल। (२) गीदड़। संज्ञा पुं. [सं. गड्डर] भेड़ा, मेढ़ा।

गादर—वि. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] (१) कायर, भीरु। (२) सुस्त, महर। संज्ञा पुं.—(१) अड़ियल बेला। (२) गीदड़। वि. [हिं. गदराना] गदराया हुआ।

गादा—संज्ञा पुं. [सं. गाधा = दलदल] (१) अधपका अन्त । (२) कची फसला । (३) हरा महुआ।

गादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गदी] (१) एक पकवान। (२) गदी।

गादुर—संज्ञा पुं. [सं. कातर, प्रा. कादर] चमगादड़। गाध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान, जगह। (२) जल की थाह (३) नदी का बहाव। (४) लोभ।

वि.— (१) जो बहुत गहरा न हो। (२) थोड़ा।

गाधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गायत्री-स्वरूपा महादेवी। गाधि—संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र के पिता जो कुशिक राजा के पुत्र थे।

गाधितनय, गाधिपुत्र, गाधिसुत — संशा पुं. [सं.] विश्वामित्र।

गाधी - संज्ञा स्त्री. [हिं. गद्दी] गद्दी। गाधेय - संज्ञा पुं, [सं,] विश्वामित्र।

गान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाने की किया, गाना। (२) गाने की चीज, गीत।

गानत—कि. स. पुं. [हिं. गाना] गाते हैं। उ.—परे रहत द्वारे सोभा के वोई गुन गनि गानत—पृ. ३२८। गानित—कि. स. स्त्री. [हिं गाना] गाती हैं। उ.—ग्वालन संग रहत जे माई, यह कहि कि गुन गानित —१८०४।

गाना - कि. स. [सं. गान] (१) ताल, स्वर दे ध्यान से मधुर ध्वनि निकालना। (२) मधुर ध्वनि करना। (३) विस्तार के साथ वर्णन करना।

मुहा.—श्रपनी गाना—(१) श्रपन दुखड़ा रोना।
(२) श्रपनी बात कहना। श्रपनी ही गाना—श्रपने
. मतलब की कहना।

(४) स्तुति या प्रशंसा करना। संज्ञा पुं.—(१) गाने की क्रिया, संगीत। (२) गाने की चीज, गीत।

गानि—कि. स. [हिं. गाना] बलान कर, प्रशंसा करके। उ.—तेहि समय सुख स्थाम स्थामा सूर क्यों कहै गानि— पृ. ३४३ (२२)।

गानी — कि. स. [हिं. गाना] वर्णन की, गायी, सिवस्तार कही। उ.— (क) तब पठयो ब्रज-दूत, सुनी नारद-मुख-बानी। बार बार रिषि-काज, कंस अस्तुति मुख गानी—५८१ (ख) जो तुम अंग अंग अवलोक्यो धन्य धन्य मुख अस्तुति गानी—१३१६।

गाने—कि. स. [हिं. गाना] गाये, बखान किये। उ.-ताही के जाहु स्याम जाके निसि बसे धाम मेरे गृह कहा काम सूरदास गाने—१६५२।

गाने — कि. स. [हिं. गाना] गाता है, स्नुति करता है।

उ. — बार बार स्थाम राम अक्रूरिह गाने। अबहिं
तुम हरष भए तबहिं मन मारि रहे, चले जात
रथिं बात, बूमत हैं बानें — २५५७।

गान्यौ — कि. स. भूत. [हिं. गाना] गाया, बखान किया

स्तुति की। उ.—गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यौ — पृ. ३४० (५७)।

गाफिन—वि. [ग्राफिल] (१) बेसुध, बेखबर। (२) लापरवाह, ग्रसावधान।

गाब-संज्ञा पुं. दिश.] एक पेड़।

गाभ—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गब्म] (१) पशुत्रों का गर्भ। (२) नया कल्ला, कोंपल। (३) बरतन का साँचा।

गाभा — संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गढ्म] (१) नया कल्ला, कोंपला। (२) पेड़ के डंठल के बीच का भाग या हीर। (३) लिहाफ आदि से निकली हुई पुरानी रुई। (४) कच्ची खेती।

गाभिन, गाभिनी—वि. स्त्री. [सं. गर्भिणी, पा. गिंभणी] मादा पशु जिसके पेट में बच्चा हो।

गाम—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम] गाँव। उ.—""
सुन दिन हरि त्र्याये निज धाम। तौलों घर घर प्रति
दुर्गा कौ पूजन कियो सब गाम—सारा-६५१।

गाभिनी—सं. स्त्री. [सं.] एक तरह की नाव।
गाभी—वि. [सं. गामिन्] (१) चलनेवाला, चालवाला।
उ.—तिनको कौन परेखो की जै हैं गरुड़ के गामी
—३०८०। (२) संभोग या रमण करनेवाला।

गामुक-वि. [सं.] जानेवाला।

गाय—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] (१) गैया, गऊ।

मुहा.—गाय की तरह काँगना—बहुत डरना,

थरीना। गाय का बिछिया श्रीर बिछिया का गाय
के तले करना— थोड़े में काम चलाने के लिए
हेरा-फेरी करना।

(२) बहुत सीधा श्रादमी, दीन मनुष्य। क्रि.स. [हिं. गाना] गाकर, बखान करके। उ.—नंद महर को गारी गाय—२४०६।

गायक - संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गवैया। गायगोठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाय+सं. गोष्ठ] गैयों का बाड़ा, गोशाला।

गायत — वि. [श्र. गायत] बहुत, श्रस्यंत ।

गायताल—संज्ञा पुं. [हिं. गाय + तल] (१) निकम्मा बैल या चौपाया। (२) बेकार या रही चीज। वि.—निकम्मा, बेकार, गया-गुजरा, रही।

गायत्र—संज्ञा पुं. [सं.] गायत्री छंद। गायत्री—संज्ञा पुं. [सं. गायत्रिन्] खेर का पेड़। संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वैदिक छंद। (२)

एक पवित्र मंत्र। उ.—ितन गायत्री सुने गर्ग सो प्रभु गित त्रगम त्रपार—२६२६। (३) खैर। (४) दुर्ग। गायन—संज्ञा पुं. [सं.](१) गानेवाला, गायक, गवैया।

(२) गाकर जीविका कमानेवाला। (३) गीत, गान।

(४) स्वामी कार्तिकेय।

संज्ञा स्त्री, बहु [ब्रज. गैयन] गैयाँ। उ.—गायन घर घर घर चरावत लोभ नचावन हारे—सा. उ. ⊏।

गायब—वि. [श्र. गायव] लुप्त, श्रंतर्थान।

गायवाना—िक. वि. [हिं. गायव] चुपके से, घीरे धीरे, अनुपस्थिति में।

गायिका — संज्ञा स्त्री, [सं. गायक] गानेवाली।

गायिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गानेवाली स्त्री, गायिका। (२) एक मात्रिक छंद।

गायो—कि. स. [सं. गान, हिं. गाना] स्तुति की, बखान किया, प्रशंसा की। उ.—(क) कोपि कौरव गहे केस जब सभा में, पाँडु की बधू जस नेंकु गायो। लाज के साज में हुती ज्यों द्रौपदी, बढ़यों तन- चीर नहिं श्रंत पायो—१-५। (ख) सरन गए राखि लेत सूर सुजस गायो—१-२३।

संज्ञा पुं. सिन. [हिं. गैया] गाय (का) । उ. गायौ घृत मरि धरी कटोरी—३६५।

गार—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] गाली। संज्ञा पुं. [त्र्र.] (१) गड्ढा। (२) गुफा।

गारङ्क—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष उतारने वाला।

गारत-वि. [श्र. गारत] नष्ट, बरबाद।

गारता - कि. स. [सं. गालन = निचोड़ना] (१) पानी या रस निकालना या निचोड़ना। (२) विसकर मिलाना। (३) त्यागना, दूर करना।

कि. स. [सं. गत] (१) गताना, घुताना।
मुहा.—तन [देह या शरीर] गारना—तप करना
जिससे शरीर गते या कष्ट हो।

(२) नष्ट करना, बरबाद करना।

गारभेली—संज्ञा स्त्री. [देश.] फालसे की जाति का एक जंगली फल।

गारा—संज्ञा पुं. [हिं. गारना] गाड़ा चूना या मिट्टी जो जोड़ाई या पलस्तर के काम आता है।

संज्ञा पुं. [देश.] नीची भूमि जिसमें पानी न टिके। गारि—क्रि. स. [सं. गालन = निचोड़ना] निकालना, त्यागना, दूर करना।

कि. स. [हिं. गारना] (१) गलाना, घुलाना।
मुहा.—तन (तनु) गारि—तप द्वारा शरीर को कष्ट
देकर या गला कर। उ.—(क) तब तन गारि बहुत
स्म कीन्हों सो फल पूरन दैन। (खं) सरद ग्रीसम डरत
नाहीं, करति तप तनु गारि—७८१।

(२) नष्ट करके, खोकर मिटाकर, समाप्त करके। उ.—ससि-गन गारि रच्यो विधि श्रानन, बाँके नैननि जोहै—१०-१५८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] (१) दुर्वचन, शाप। उ.— बंस निर्वेस करि डारिहों छिनक में गारि दे दे ताहि त्रास दीन्हो—२६०२। (२) उत्सवों में गाये जाने वाले गीत जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती है। उ.—(क) गावत नारि गारि सब दे दे—६-२५। (ख) सजन प्रीतम नाम ले ले दे परस्पर गारि —१०-२६।

गारियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. गाली] (१) गालियाँ, दुर्वचन। (२) गीत जो उत्सवों में गाये जाते हैं जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती हैं, उत्सवों में गायी जानेवाली गालियाँ। उ.—ग्राई जुरि जुनती दूहूँ दिसि मनों देति ग्रानँद गारियाँ— पृ. ३४८ (४)।

गारी—संशा स्त्री. [हिं. गाली] (१) गाली, दुर्वचन, अपशब्द। उ.—(क) गारी देहि प्रांत उठि मोको सुनत रहत यह बानी— २६३६। (ख) नारी गारी बिनु नहिं बोले पूल करें कलकानी। घर में आदर कादर कोसों खीमत रैन बिहानी। (२) कलंकजनक आरोप। उ.—(क) स्रस्याम हिं बरिज के मेट्यो अब कुल-गारी हो—१-४४। (ख) खीम कहाो ताहि क्यों हहाँ ल्यायो मुमे मम पिता-मात को लगें गारी— १० उ.—५६।

मुहा.—गारी त्रावै (पड़े, लगे)—कलक लगता है, लांछन लगता है। उ.—लोचन लालच भारी। इनके लए लाज या तन की सबै स्याम सौं हारी। बरजत मात पिता पित बांधव त्ररु त्रावे कुल गारी। तदिप रहत न नंद नँदन बिनु कठिन प्रकृति हठ धारी। हाथ रहेगी गारी—गाली देकर व्यर्थ ही पछ्ताना होगा। उ.—त्रब दुख मानि कहा धौं करिही हाथ रहेगी गारी—२६३८। गारी लाना—कलंक या दाग लगाना।

(३) एक गीत जो उत्सवों में स्त्रियाँ गाती हैं जिनमें दी हुई गालियाँ प्रिय लगती हैं। उ.—िनर्भय स्त्रभय-निसान बजावत, देत महर कों गारी—१०-४।

कि. स. [सं. गल] गलाया, घुला दिया।

मुहा.—कीन्हो तनु गारी—तप करके या कष्ट सहकर, सारा शरीर गला कर। उ.—(क) ब्रत-साधित नीकें तन गारी—७६६। (ख) घटरित तप कीन्हो तनु गारी—१००५।

गारुड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र जिसका देवता गरुड़ हो, साँप का विष उतारने का मंत्र। उ.—श्रावित लहर मदन विरहा की को हिर बेगि हँकारे। सूरदास गिरिधर जौ श्राविहं हम सिर गारुड़ डारे—३२५४।

गारुड़ि, गारुड़ो, गारुड़िक—संज्ञा पुं. [सं. गारुडिन्]
(१) मंत्र से साँप का विष उतारनेवाला, साँप
भाड़नेवाला। उ.—(क) कृष्त सुमंत्र जियावन मूरी
जिन जन मरत जिवायो। बारंबार निकट स्ववनन है
गुरु गारुड़ी सुनायौ—२-३२। (ख) श्रौरे दसा भई
छिन भीतर, बोले गुनी नगर तें। सूर गारुड़ी गुन
करि थाके, मंत्र न लागत थर तें—७४४। (ग)
चले सब गारुड़ी पछिताइ। नैकुहूँ नहिं मंत्र लागत
समुिक काहु न जाइ—७४५। (घ) डसी री स्याम
भुत्रंगम कारे। ""। सूर स्याम गारुड़ी बिना को,
जो सिर गाढ़ उतारे—७४७। (२) मंत्र से साँप
पकड़नेवाला, सँपेरा।

गारुत्मत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मरकत, पन्ना। (२) गरुड़ जी का अस्त्र।

गारुरी—संशा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष अतारने

वाला। उ.—डसी री माई स्थाम भुत्रंगम कारे। "। त्रानहु बेगि गारुरी गोबिंदहिं जो यहि बिषहिं उतारे। गारे—िक. स. [सं. गल] गलाती या धुलाती हैं।

मुहा.—तनु गारै—शरीर गलाती या चीण करती हैं। उ.—नैनन ते बिछुरी भी हैं भ्रम सिस श्रजहूँ तन गारै—३१८६।

गारो, गारो—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] (१) गर्व, ऋहंकार, अभिमान। उ.—(क) छुद्र पतित तुम तारि रमापित, अब न करो जिय गारो—१-१३१। (ल) बिदुर दास के भोजन कीन्हों, दुरजोधन को मेट्यो गारो—१-१७२। (ग) देखत बल दूरि करयो मेघनाद गारो। (घ) हमको नँदनंदन को गारो—६८७। (ङ) बात सुनत रिस भरयो महावत तुमहि कहा इतनो रे गारो—२५६०। (२) मान, प्रतिष्ठा। उ.—जो मेरो लाल खिमावे। सौ अपनो कियो फल पावे। तेहि देहों देस-निकारो। ताको अज नाहिंन गारो—१०-१८३।

कि. स. [हिं. गारना, गलाना] गलास्रो, गलाकर समाप्त करो, तप द्वारा चीण करो। उ.-(क) राम-नाम सरि तऊ न पूजें, जो तन गारो जाइ हिवार—२-३। (ख) जप-तप करि तनु स्रव जिन् गारो—७६७।

गारों— कि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ दूँ, धँसा दूँ। उ.—कहो तो परवत चाँपि चरन तर, नीर-खार में गारों—६-१०७।

गार्गी — संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गग गोत्र की एक प्रसिद्ध विदुषी। (२) याज्ञवल्क्य की एक स्त्री। (३) दुर्गी। गार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गर्ग गोत्रीय व्यक्ति। (२) एक प्राचीन वैयाकरण।

गार्गी—कि. स. भूत. [हिं. गलाना] नष्ट किया, खोया, बरबाद किया। उ.—श्राछी जनम श्रकारथ गार्गी। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जन्म जुवा ज्यों हारगी—१-१०१।

गाहिस्थय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गृहस्थाश्रम । (२) गृहस्थ के मुख्य क । वि.—गृहस्थी संबंधी ।

गाल—संज्ञा पुं. [सं. गंड, गल] (१) गंड, कपोता।
मुहा.—गाल फुलाना—(१) गर्व प्रकट करना।
(२) रूठकर बोलना। गाल बजाना—(१) बढ़ बढ़

कर बातें करना। (२) व्यर्थ बकबाद करना। गाल बजैहै—बढ़ बढ़कर बातें करेगी, डींग मारेगी। उ.
—देखहु जाइ चिरत तुम वाके जैसे गाल बजैहै—
१२६३। गाल में जाना—मुँह में जाना। काल के
गाल में जाना—मृत्यु के मुख में पड़ना, मरना।
गाल मारना—(१) डींग डाकना। (२) व्यर्थ की
बकवाद करना।

(२) बड़बड़ाने या मुँहजोरी करने का स्वभाव।
मुहा.— गाल करना—(१) मुँहजोरी करना,
निसंकोच ग्रंडबंड बकना। (२) बहुत बढ़ बढ़ कर बातें
करना, डींग हाँकना। बहुत करत हैं गाल— निसंकोच
ग्रंडबंड बकते हैं। उ.—ग्राई हँसत कहित हिर एई
बहुत करत हैं गाल—२४२७। करि करि गाल—
बहुत बढ़ बढ़कर बातें करके, खूव डींग हाँककर।
उ.—बेगि करो मेरों वहाँ पकवान रसाल। वह
मघवा बिल लेत है नित करि करि गाल।

(३) मध्य भाग, बीच का ग्रंश। (४) फंका, कीर। मुहा.—गाल मारना—कौर मुँह में रखना।

(४) श्रन्न जो एक बार में चक्की में डाला जाय। संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की तंबाकू।

गालगूल—संशा पुं. [हिं. गाल (श्रनु.)] व्यर्थ की गपशप, श्रंडबंड बात।

गालबंद — संज्ञा पुं. [हिं. गाल + बंद] एक बंधन।
गालमसूरी — संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की मिठाई।
उ.—(क) ग्रह तैसिये गालमसूरी। जो खातहिं मुखदुख दूरी — १०-१८३। (ख) दूध बरा, उत्तम दिधबाटी, गालमसूरी की हिच न्यारी — १०-२२७।

गालव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि। (२) एक प्राचीन वैयाकरण। (३) एक पेड़।

गाला—संज्ञा पुं. [हिं. गाल=प्रास] (१) कपास की डोंड़ी से निकली हुई रुई। (२) धुनी हुई रुई की पूनी।

मुहा.— रुई का गाला (गाला सा)— बहुत सफेद। -संज्ञा पुं. [हिं. गाल] (१) बड़बड़ाने या मुँह-जोरी का स्वभाव। (२) कौर, श्रास।

गालिब—वि. [श्र. ग़ालिब] विजयी, श्रेष्ठ।
गालिम—वि, [श्र. ग़ालिब] प्रबल, बली।

गाली—संशा स्त्री. [सं. गालि] (१) दुर्वचन, श्रपशब्द।

(२) कलंक, कलंकसूचक ग्रारोप।

गालीगलीज—संशा स्त्री. [हिं. गाली + श्रनु. गलीज] गाली की श्रदला-बदली, तू-तू मैं-मैं।

गालीगुफ्ता—संज्ञा पुं .[हिं. गाली+फा. गुफ्तार=कहना]

(१) दुर्वचन, अपशब्द। (२) त्-त् मैं-मैं।

गालना—िक. ग्र. [सं, गल्प = बात] बात करना। गालू — वि. [हिं गाल + ऊ (प्रत्य.)] (१) बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला, गाल बजानेवाला। (२) डींग

हाँकनेवाला, डींगिया।

गालोड्य — संज्ञा पुं. [सं.] कमलगद्दा।
गाल्हना—िक. श्र. [हिं. गालना] बात करना।
गाव—संज्ञा पुं. [सं. गो या फ़ा. गाव] गाय-बैला।
गावकुशी— संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] गोवध।
गावकुस—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा + कुश] लगाम।
गावकोहान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] घोड़ा जिसके कृबड़ हो।
गाव खाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] घोड़ा जिसके कृबड़ हो।
गाव खाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] गोशाला।
गावड—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीवा] गला, गर्दन।
गावत—िक. स. [हिं. गाना] (१) गाते हैं। (२)
प्रशंसा करते हैं, बखानते हैं। उ.—(क) कमल नैन
की लीला गावत कटत श्रनेक विकार—२-२। (ख)
बारंबर ग्यान गीता को ब्रज बनितनि श्रागे गावत
—२६८६।

गावतिकया—संशा पुं. [फ़ा.] बड़ा तिकया, मसनद। गावति—कि. स. [हिं. गाना] गाती है। उ.—श्रति श्रनुराग परस्पर गावति, प्रफुल्लित मगन होति नँद-घरनी—१०-४४।

गावते—िक. स. [हिं. गाना] गाते हैं। उ.—कबहुँक काहू भाँति चतुर चित स्रति ऊँचै सुर गावते—२७३५। गावदी—िव. [हिं. गाय+दी या सं. धीर] (१) मूर्ब,

नासमभा। (२) कुंठित बुद्धि का।

गावदुम—िव. [फ़ा.] (१) ढालू । (२) चढ़ाव-उतार।
गावन—संज्ञा स्त्री. [सं. गान, हिं. गाना] गाने की
किया, गाना। उ.—(क) द्वारें ठाढ़े हैं द्विज बावन।
चारौ बेद पढ़त मुख त्रागर, श्रति सुकंठ-सुर-गावन
—८.१३। (ख) सुरदास निस्तिरिहें यह जस करिकरि दीन-दुखित जन गावन—६-१३१। (ग) श्रमर-

नगर उत्साह अपसरा-गावन रे — १०-२८। (घ) बेनु पानि गहि मोको सिखावत में । गावन गौरी — २८७७।

गावनो - क्रि. स. [हिं. गाना] गाना, बखान करना। उ. -- सूर स्याम सुपेमं उमँग्यौ हरि जस सु लीला गावनो -- २२८०।

गाविह — कि. स. [हिं. गाना] प्रशंसा काता है, बला-नता है। उ. — जो गाविह ताकी गित होइ — २-४। गाविहोंगे — कि. स. [हिं. गाना] गायँगे। उ. — तैसेइ मोर पिक करत कुलाहल हरिष हिंडोला गाविहेंगे — २८८।

गावहु—संज्ञा पुं. [हिं, गाना] गात्रो । उ. —विल-विल जाउँ मधुर सुर गावहु—१०-१७६ ।

गावें — कि. स. [हिं. गाना] स्वर निक खते हैं, बखानते हैं। उ.—भक्त बछता है विरद हमारी, बेद सुमृति हूँ गावें — १-२४४।

गावै—िकि. स' [हिं. गाना] (१) गाता है। (२) स्तुति करता है, प्रशंसा करता है। उ.—जरासंघ बंदी कटें नृप कुल जस गावै—१-४।

गावैगो—कि. स. [हिं. गाना] गायगा, पहेगा, पाठ करेगा। उ.—त् कृत मम जस जो गावैगो सदा रहे मम साथ—सारा. ११०४।

गात्री—िक. स. [हिं. गाना] गाम्रो, मधुर स्वर निकालो, श्रालापो। उ.—गावौ हरि कौ सोहिलौ (हो)—१०-४०।

गास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] संकट, दुख । उ , — श्रजहूँ नाहिं डरात मोहन बचे कितने गास ।

कि. स. [हिं. प्रसना] प्रसे हुए है, गाँसे है। उ.—सिंधु-सुत-धर सुहित सुत गुन गहक गोपी गास —सा. उ. ४२।

गासिया—संज्ञा पुं. [श्र. गाशियः] जीनपोश ।

गाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुर्गम या गहन स्थान। (२) गहन स्थान में विचरनेषाता मनुष्य।

संशा पुं. [सं. श्राह] (१) गाहक। (२) घात। (३) श्राह, मगर।

गाहक—संज्ञा पुं. [सं. ग्राहक, प्रा. गाहक] (१) खरी-दनेवाला, मोल लेनेवाला । उ. —स्रदास गाहक नहिं कोऊ दिखिश्रत गरे परी—३१०४ । (२) चाहने वाल, श्रमिलाषी, प्रेमी, इच्छुक । उ.—(क) स्याम गरीबिन हूँ के गाहक । दीनानाथ हमारे ठाकुर, सांचे प्रीति निवाहक—१-१६ । (ख) इम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक—१-२६ । (ग) सुर नर सब स्वारथ के गाहक—द-६ । (घ) तुम श्रल्ति सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत श्राधो—३२४४ ।

गाहकी—संशा स्त्री, [हिं, गाहक] (१) बिकी, खरीदारी। (२) ग्राहक की रुचि।

गाहकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्राहकता] (१) खरीदारी। (२) कदरदानी, चाह।

गाहत—िक. स. [हिं. गाहना] भाडता है, श्रोहने में लगा है। उ.— भारि भूरि मन तौ तू लै गयो बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५।

गाहन-संज्ञा पुं. [सं,]स्नान करना।

गाहना — क्रि. स. [सं. श्रवगाहन] (१) थाह लेना, श्रवगाहना। (२) विलोडना, मथना। (३) साडना, श्रोहना। (४) दूर दूर पर खेत जोतना।

गाहा— संज्ञा स्त्री. [सं. गाथा, प्रा. गाहा] (१) कथा, चूत्तांत। (२) एक छंद।

गाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना] गिनने का एक मान जो पाँच पाँच का होता है।

गाहे— कि. स. [हिं. गाहना] माड़ने से, श्रोहने की किया से। उ.—यह भ्रम तौ श्रव हीं भिज जैहै ज्यों पयार के गाहे—३०६७।

गिंजना—िक. श्र. [हिं. गींजना] कपड़े श्रादि का सिकुड़ जाना, गींजा जाना।

गिंजाई—संशा स्त्री. [सं. गृंजन] एक बरसाती कीड़ा। गिंडनी—संशा स्त्री. [देश,] एक साग।

गिंडुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. इँडुरी] गेंडुरी, बिडई। उ. —नीके देह न मेरी गिंडुरी—८५४।

गिंदौड़ा, गिंदौरा— संज्ञा पुं. [हिं. गेंद] गलाकर बड़े पेड़े के आकार में ढाली हुई शकर।

गिंदौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गिंदौड़ा, गिंदौरा] गला-कर बड़े पेड़े के आकार में जमाई हुई चीनी। उ.— पेठा पाक जलेबी कौरी। गोंदपाक तिनगरी, गिंदौरी —३६६।

गित्रान—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञान] जानकारी। गिउ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गला, गरदन। गिचिपच, गिचरपिचर, गिचिरपिचिर—वि. [श्रनु.]

(१) बहुत ज्यादा मिलाजुला। (२) अस्पष्ट। गिजगिजा—वि. [अनु.] (१) बहुत मुलायम। (२) मुलायम मांस-सा।

गिजा—संज्ञा स्त्री. [श्र. ग़िज़ा] भोजन। गिटिकरी, गिटकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिट्टी] कंकड़ी। गिट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेरू + ड़ा (प्रत्य.)] (१) कंकड़ी।

(२) ठिकरे का दुकड़ा। (३) फिरकी, रील। गिठुम्रा— संज्ञा पुं. [देश.] जुलाहे का करघा। गिड़िगड़ाना—कि. म्र. [म्रनु.] बहुत दीनता से किसी बात के लिए प्रार्थना करना।

गिड़िंगिड़ाहट — कि. श्र. [हिं. गिड़िंगड़ाना] (१) दीनता सं युक्त प्रार्थना। (२) दीनता का भाव।

गिड्राज—सज्ञा पुं. [सं. ग्रहराज] सूर्य। गिड्डा—वि. [देश.] नाटा, ठिगना।

गिद्ध—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र] (१) एक मांसाहारी बड़ा पत्ती जिसकी दृष्टि बहुत तेज होती है। (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था।

गिद्धराज — संज्ञा पुं. [हं. गिद्ध + राज] जटायु जिसे भगवान ने तारा था।

गिध—संज्ञा पुं. [सं. एघ, हिं. गिद्ध] (१) गिद्ध, गीध पद्धी। (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था।

गिधए—िक. श्र. [हिं. गीधना] लुब्ध हुए, परच गये, रीक गये। उ.—सारँगरिपु के रहत न रोके हरि स्वरूप गिधए री—पृ. ३३५ श्रीर सा. उ. ७।

गिनगिनाना—िक. श्र. [श्रनु. गनगन = कॉंपना] (१) बल लगाते समय कॉंपना। (२) रोंगटे खड़े होना। कि. स. [हिं. गिन्नी = चक्कर] कककोरना।

गिनत—िक. स. [हिं. गिनना] महत्व देते हैं, मान करते हैं, कुछ समस्ते हैं, मानते हैं। उ.—ऊँच-नीच हिर गिनत न दोइ—७-२।

गिनती—संज्ञा स्त्री. [हं. गिनना + ती (प्रत्य.)] (१) गणना, शुमार।

मुहा.— गिनती में श्राना (होना)—कुछ समभा जाना, कुछ महत्व का होना। किहिं गिनती मैं श्राऊँ

—िकस काम या महत्व का समका जाऊँ । उ.-रजनीमुख त्रावत गुन गावत, नारद तुं बुर नाऊँ । दुमही
कही कुपानिधि रघुपति, किहिं गिनती में त्राऊँ—
६-१७२। गिनती कराना—िकसी विशेष कोटि या
वर्ग में समका जाना। गिनती कराने (गिनाने) के
लिए—नाम मात्र के लिए। गिनती होना—कुछ
समका जाना।

(२) संख्या, तादाद।

मुहा.--गिनती के-बहुत थोड़े।

(३) उपस्थिति, हाजिरी। (४) एक से सौ तक की श्रंकमाला।

गिनना—िक. स. [सं. गणन] (१) गणना करना।

मुहा.—िगनिगन कर सुनाना (गालियाँ देना)—

बहुत अधिक और चुभती हुई गालियाँ देना। गिनगिन कर लगाना (मारना)—खूब मारना। गिनगिन

कर दिन काटना—बहुत कष्ट के दिन बिताना। दिन
गिनना—(१) आशा या सुख के दिनों की प्रतीचा

बेचैनी से करना। (२) बेचैनी से समय काटना।

(२) हिसाब लगाना। (३) मान या प्रतिष्ठा के

योग्यं समभना ।

शिनवाना, शिनाना—िक्र. स. [हिं, शिनना (पे.)] (१) शिनने का काम कराना। (२) अपने को या श्रन्य किसी को गिनती में शामिल कराना।

गिनि—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] गिनकर, गणना करके। उ.—चार पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिर गिनि श्रानै—१-६०।

गिन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धिरनी] चक्कर, चक्कर देने की किया।

गिय— संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गला, गरदन।
गियाह—संज्ञा पुं. [सं. हय (?)] एक तरह का घोड़ा।
गिर—संज्ञा पुं. [सं. गिरि] (१) पहाड़। (२) एक
तरह के संन्यासी। (३) एक भैंसा।
गिर्यह—संज्ञा स्त्री [देश] एक संज्ञती।

गिरई—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।
गिरगिट, गिरगिटान—संज्ञा पुं. [सं. कृकलास या गलगित] छिपकली की जाति का एक जंतु जो कई रंग बदल सकता है, गिरदौना। उ.— (क) नृगतें गिरगिट कीन्हे ताको को किर सकें बखान

—१०-उ.-३६ । (ख) कृष्न भिक्त बिन बिप साप तैं गिरगिट की गति पाये—सारा. ८२२।

मुहा.—-गिरगिट की तरह रंग बदलना—बात, नियम या सिद्धांत से जल्दी जल्दी हट जाना।

गिरिगिरो—संज्ञा स्त्री [श्रनु.] एक खिलौना जो चिकारे की तरह का होता है। उ.—फूले बजावत गिरिगिरी गार मदन मेरि घहराई श्रापार संतन हित ही फूल डोल।

गिरजा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पची।

संज्ञा स्त्री, [सं. गिरिजा] पार्वती जी।

गिरजापित-पतनी पित जा सुत-गुन—संशा स्त्री. [सं. गिरिजा (पार्वती जी) + पित (पार्वती के पित = शिव जी) + पत्नी (शिव की पत्नी=गंगा) + पित (गंगा का पित = समुद्र) + जा=पुत्री (समुद्र की पुत्री शिक्ति या सीप) + सुत (शिक्ति का पुत्र मोती) + गुण (मोती का गुण—प्रातःकाल शीतल हो जाना)] शीतलता । उ.—गिरजापित-पतनी-पित-जा-सुत-गुन गुनगनन उतारै—सा. ६।

गिरजापति पितु पितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा = पार्वती + पति (पार्वती के पति शिव) + पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल)] कमला। उ.—गिरजापति पितु पितु से दोऊ कर-बर देख विचारो—सा. १०३।

गिरजापित पितु पितु पितु— संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा-पित = शिव जी+पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल) + पितु (कमल का पिता समुद्र)] समुद्र । उ.—गिरजापित पितु पितु पितु ही ते सौ गुन सी दरसावै—सा. १५ ।

गिरजापित भूषन—संज्ञा, पुं. [सं. गिरिजा = पार्वती + पित (पार्वती के पित शिव) + भूषण (शिव का भूषण = चंद्रमा)] चंद्रमा। उ.—(क) गिरजा-पित भूषन पै मानहु मुनि भष पंक प्रकासी—सा. १३ (ख) गिरजापित भूषन जिन देखे ते कह देखत हैं नम तारो—सा.१११।

गिरत — कि. श्र. [हिं. गिरना] गिर पड़ता है। उ.— जरत ज्वाला, गिरत गिरि तें, स्वकर काटत सीम —१-१०६। मुहा.—गिरत-परत-—गिरता-पड़ता, उतावली से, हड़बड़ी में। उ.—व्रजवासी नर-नारि सब गिरत-परत चले धाइ—५८९।

गिरतनया—संशा स्त्री [सं. गिरि+तनया = पुत्री] पार्वती जी।

गिरतनया-पितभूषन—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि + तनया = पुत्री (पर्वत की पुत्री पार्वतीजी) + पित (पार्वती के पित शित्र) + भूषण (शिव का भूषण विभूति = राख—विभूति का अर्थ 'आग' भी होता है)] आग। उ.—गिरतनयापित-भूषन जैसे विरद्द जरी दिन रातें —सा. उ. ४६।

गिरद्— श्रव्यः [हिं. गिर्द] श्रासपास, चारो श्रोर। गिरदा— संज्ञा पुं. [फा. गिर्द] (१) घेरा, चक्कर । (२) तिकया। (३) काठ की थाली। (४) ढाल। (४) ढोल श्रादि का मुहेरा।

गिरदान—संज्ञा पुं. [हं. गिरगिट] गिरगिटान।
गिरघर, गिरघारन, गिरघारी—संज्ञा पुं. [सं. गिरि+
धर](१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होंने
गोवर्द्धन उठाया था। उ.—जो तिय चढ़त सीस गिरधर के सो श्रव कंठ गहोरो—सा. उ. ५२। (३)
हनुमान जी।

गिरना—िक. ग्र. [सं. गलन] (१) ऊपर से नीचे श्रा जाना।(२) खड़ा न रह सकना, जमीन पर पड़ जाना।(३) ग्रवनित होना।(४) जलधारा (नाली, नदी ग्रादि) का बड़े जलस्थान में मिलना।(४) प्रतिष्ठा, शक्ति श्रादि कम होना।

मुहा.—गिरे दिन—दुर्दशा का समय।

(६) किसी पर टूटना, भपटना। (७) अपने स्थान से हटना या भड़ना। (६) रोग होना। (६) सहसा आ जाना। (१०) युद्ध में मारा जाना।

गिरनाथ—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + नाथ (शंकर = भव = संसार)] संसार। उ.—प्रभु कब देखिही मम श्रोर। ज्ञान श्रापन श्राप ते गिरनाथ गाठी छोर—सा.उ.४२। गिरफ्त —संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गिरफ्त] (१) पकड़, पकड़ने

(फ्त — सज्ञा स्त्रा. िफ़ा. गिरफ़्त] (१) पकड़, पकड़ का भाव। (२) पकड़ने की किया।

गिरफ्तार—वि. [फ़ा. गिरफ्तार] (१) जो पकड़ा या केंद्र किया गया हो । (२) ग्रसा हुआ।

गिरफ्तारी—संज्ञा स्त्री [फ़ा, गिरफ़्तारी] (१) पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया। गिरवर—सज्ञा पुं. [सं. गिरि + वर] श्रेष्ठ पर्वत। गिरवान—संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] सुर, देवता।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेबान] (१) ग्रंगे या कुरते का गला या कालर। (२) गला, गरदन।

गिरवाना - क्रि. स. [हिं. गिराना] गिराने का काम कराना, गिराने की प्रेरणा देना।

गिरवीं — वि. [फ़ा.] बंधक, गिरों, रेहन।
गिरह — संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) गाँठ, ग्रंथि। (२) जेब, खरीता। (३) दो पोरों के जुड़ने का स्थान। (४) कलाबाजी, उलटने की किया।

गिरहकट-वि. [फ़ा. गिरह + हिं. काटना] जेब काटने वाला।

गिरहदार—वि. [फ़ा.] गाँठदार, गँठीला।
गिरहवाज—वि. [फ़ा. गिरह + बाज़] एक कबूतर जो उड़ते उड़ते कलाबाजी खा जाता है। उ.—देखि नृप तमकि हिर चमिक तहाँई गये दमिक लीन्हों गिरह बाज जैसे—२६१५।

गिरहर—वि. [हिं. गिरना + हर (प्रत्य.)] गिरनेवाला, ध्रवनित की स्रोर बढ़ता हुस्रा।

गिरही — संज्ञा पुं. [सं. गृहिन्] घरबारी, गृहस्थ। गिराँ — त्रि. [फ़ा. गराँ] (१) मँहगा। (२) जो हलका न हो, भारी। (३) जो भला न लगे, अत्रिय।

गिरा-संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बोलने की शक्ति। उ.—
गिरा-रहित बुक ग्रसित श्रजा लों श्रंतक श्रानि प्रस्यो
—१-२०१। (२) जीभ। (३) वचन, वाणी। उ.—
(क) श्रमृत गिरा बहु बरिष सूर प्रभु भुज गहि पार्थ
उठाए—१-२६। (ख) गदगद गिरा सजल श्रित लोचन हिय सनेह-जल छायो—६-५५। (४) भाषा, बोली। (४) कविता। (६) सरस्वती देवी।

शिराइ—क्रि. स. [हिं. गिराना] किसी ऊँचे स्थान से फेंक कर।

प्र०—देहु गिराइ— उपर से फेंक दो। उ.— पर्वत सो इहिं देहु गिराइ—७-२। दियौ गिराइ— फेंक दिया, गिराया। उ.— ग्रसुरनि गिरि तें दियौ गिराइ—७-२। गिराऊँ—िकि. स. [हिं. 'गिरन।' का सक.] (१) नीचे डाल दूँ, पतित कराऊँ। (२) युद्ध में मार डालूँ। उ.—स्यंदन खंडि, महारिथ खंडों, कि।ध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

गिराए—क्रि. स. [हिं. गिराना] खड़ी चीज को तोड़ कर जमीन पर गिरा दिया । उ.—नगर-द्वार तिन सबै गिराए—४.१२।

गिराना — कि. स. [हिं. गिरना का सक.] (१) नीचे फेंकना या डालना। (२) घटाना या अवनत करना।

(३) बहाना। (४) शक्ति, मान आदि कम करना।

(४) रोग उत्पन्न करना। (६) सहसा प्रकट करना।

(७) लड़ाई में मार डालना।

गिरानी—संशा स्त्री, [फा.](१) महँगी। (२) अकाल ।

(३) कमी, घटी। (४) किसी चीज का भारीपन। गिरापति—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

गिरापितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरा + वितृ] ब्रह्मा।

गिरायो — कि. स. [हिं. गिराना] गिराया, फेंका, डाल दिया, छोड़ दिया। उ. — लगत त्रिसूल इंद्र मुरभायो । कर तें अपनी बज्र गिरायो — ६-५।

गिराव—संज्ञा पुं. [हिं. गिरना + त्राव (प्रत्य.)] गिरने की किया या भाव, पतन।

गिरावट — संज्ञा स्त्री. [हिं. गिराव] गिरने की किया। गिरास — संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] कौर, ग्रास।

गिरासना — कि. स. [सं. प्रसना] भन्नण करना, खा जाना, प्रस लेना।

गिराह - संज्ञा पुं. [सं. ग्राह] मगर, ग्राह।

गिराहिं — कि. ग्र. [हिं. गिराना] गिरते हैं, पतित होते हैं। उ. — बहुरि कह्यो सुरपुर कछु नाहिं। पुन्य-छीन तिहिं ठौर गिराहिं — १-२९०।

गिरि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत, पहाड़। (२) गोवर्द्धन। उ.—(क) सक्र को दान-बिल मान ग्वारिन लियो, गह्यो गिरि पानि, जस जगत छायो—१-४। (ख) गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्ह्यो—१-१७। (३) एक तरह के संन्यासी।

कि. श्र. [हिं. गिरना] गिरकर, गिरने पर | उ.— धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागे डार—१-८८ |

गिरिजा—संशा स्त्री. [सं.] (१) हिमाचल कन्या पार्वती, गौरी। (२) गंगा। (३) चमेली।

गिरिजापति-भष — संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा + पति (गिरिजा के पति शिव) + भष=भद्य (शिव का मद्यण विष)] विष। उ.—गिरिजापति-भष बीच को न सो हुँ गै मोंको माई — सा. ६३।

गिरिजापति रिपु — संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा + पति (शिव) + रिपु (शिव का शत्रु कामदेव)] काम। ज.—गिरिजापति-रिपु नल सिख ब्यापतु वसत सुधा पिय कथा सुनाई—मा. उ. ३०।

गिरिधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होंने गोवर्द्धन को उठाकर व्रज-वासियों की रक्ता की थी। उ.—सूरदास ए रीभे गिरिधर मनमाने उनही के-सा. उ. 🗆।

गिरिधारन—संज्ञा पुं. [सं. गिरिधारिन्] गोवर्द्धन पर्वत को उठानेवाले श्रीकृष्ण। उ.—कवहुँ न रिफए लाल गिरिधरन, विमज विमल जस गाइ - १-१५५। गिरिधात—संज्ञा पुं. [सं.] गेरू।

गिरिधारन—संज्ञा पुं. [सं. गिरिभारिन्] श्रीकृष्ण।
गिरिधारी – संज्ञा पुं. [सं. गिरिधारिन्] श्रीकृष्ण।

गिरिध्वज —संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

गिरिनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती (२) नदी। (३) गंगा नदी।

गिरिनंदी—संशा पुं. [सं. गिरिनंदिन्] शिव के गगा। गिरिनाथ—संशा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

गिरिपति—संज्ञा पुं, [सं.] (१) शिव। (२) गगेश जी।

उ. — जौ गिरिपति मिस घोरि उदि घ में, लै सुरतरु
विधि हाथ। मम कृत दोष लिखें बसुधा भरि, तऊ
नहीं मिति नाथ—१-१११।

गिरिपथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो पर्वतों के बीच का मार्ग, दर्रा। (२) पहाड़ी मार्ग।

गिरियाज,गिरियाजा—संज्ञा पुं. [सं.] एक वनस्पति या श्रोषध। गिरियाज,गिरियाजा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा पर्वत। (२) हिमालय। (३) गोवर्द्धन पर्वत। उ.—गोपनि सत्य मानि यह लीनो बड़े देव गिरियाजा—६१६। (४) सुमेरु पर्वत। गिरिवरधारी—संज्ञा. पुं. [सं. गिरिवर + धारी = धारण करनेवाले] गोवर्द्धन को उठानेवाले श्रीकृष्ण । गिरिव्रज—संज्ञा पुं. [सं.] जरासंघ की राजधानी । गिरिश्टंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहाड़ की चोटी। (२) गणेश जी।

गिरिसुत—संज्ञा पुं. [सं.] मैनाक पर्वत । गिरिसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती ।

गिरींद्र— संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा पर्वत । (२) हिमा-लय। (३) गोवर्द्धन पर्वत । (४) शिव जी।

गिरी— कि. हा. स्त्री. [हिं. गिरना] नीचे त्रापड़ी। संज्ञा स्त्री. [हिं. गरी] अखरोट आदि की गरी।

गिरीश,गिरीस—संज्ञा पुं. [सं. गिरि+ईश] (१) शिव, भव। उ. - भानुश्रंस गिरीस श्राखर श्रादि श्रंग प्रकास—सा उ.४१। (२) हिमालय पर्वत। (३) सुमेरु पर्वत। (४) कैलाश पर्वत। (४) गोवर्द्धन पर्वत।

गिरे—िक. श्र. [हिं. गिरना] (जमीन पर) श्रा पड़े, गिर पड़े। उ.—यह सुनत तब मातु धाईं, गिरे जानि भहरि—१०-६७।

गिरेबान — संशा पुं. [फ़ा. गरेबान] कुरते, कोट आदि का गला।

गिरेयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेराँव (पत्य.)] गले की रस्सी।
वि. [हिं. गिरना] जो गिरने को हो, जो गिर
रहा हो, गिरनेवाला।

गिरों— वि. [फा.] रेहन, बंधक, गिरवीं। गिरिंट—संज्ञा पुं. [हिं. गिरगिट] गिरगिटान। गिर्द— अव्य. [फा.] आसपास, चारो और। गिर्दावर—वि. [फा.] (१) घूमनेत्राका। (२) दौरा करके जाँचनेवाला।

गिरयौ—िक, स्र. [हिं, गिरना] मारा गया, मरकर गिरा। उ.—कनक-मृग मारीच मारयौ, गिरयौ लघन सुनाइ—६६०।

गिल-संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मिटी। (२) गारा। संज्ञा पुं. [सं.](१) मगर, ग्राह। (२) वह जो निगल लेया भच्या कर ले।

गिलई — कि. स. [हिं. गिलना] निगल ले, खा डाले। गिलगिल—संज्ञा पुं. [सं.] नक, मगर।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री. [त्रानु.] एक चिड़िया।
गिलटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि] (१) शरोर के संधि-स्थानों की गाँठ। (२) शरीर के संधि स्थानों का सूजा हुत्रा भाग जो गाँठ के त्राकार का हो जाता है।
गिलन— संज्ञा पुं. [सं.] निगलना।

गिलना—कि. स. [सं. गिरण] (१) निगलना। (२) मन में रखना, प्रकट न करना।

गिलिबिला—िवि. [श्रनु.] पिलिपिला, मुलायम। गिलिबिलाना—िकि. श्र. [श्रनु.] श्रस्पष्ट बात कहना। गिलिम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गिलिमि = कंवल] (१) ऊनी कालीन। (२) मुलायम बिछोना या गहा।

वि.—जो बहुत मुलायम या कोमल हो।
गिलगिल-संज्ञा पुं. [देश.] एक कपड़ा।
गिलहरा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक कपड़ा। (२)
पान का बेलहरा।

गिलहरी — संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि = चुहिया] एक छोटा जंतु, गिलाई, चिखुरी।

गित्ता — संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) उलाहना। (२) शिका-यत, निंदा।

गिलान, गिलानि—संज्ञा स्त्री [सं. ग्लानि] (१) घृणा, नफरत। (२) लज्जा।

गिजाफ — संशा पुं. [अ. शिजाफ़] (१) तिकए आदि का खोल। (२) बड़ी रजाई। (३) स्थान। गिलाव, गिलावा— संशा पुं. [फा. गिल + आब] गारा। गिलि— कि. स. [हिं. गिलना] (१) निगल कर, बिना दाँतों से चबाये गले में उतार कर। (२) नष्ट हो गथी, प्रभावरहित हो गयी। उ.— बेनु के राज में श्रीषधी गिलि गईं, होइहँ सकल किरपा तुम्हारी — ४-११।

गिलिम—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिलम] (१) उनी कालीन। (२) मुलायम गदा या विद्धीना।

गिलिहै—िक. स. [हिं. गिलना] मन ही मन में खेगी, प्रकट न करेगी। उ.—की घोँ हमहिं देखि उठि हमकों मिलिहै की घोँ बाति उचारि कहैगी की मन ही गिलिहै—१२६५।

गिली—संज्ञा स्त्री [हिं. गुल्ली] गुल्ली डंडे के खेल की छोटी गुल्ली।

गिले—िक. स. [हिं. गिलना] (१) निगल गये।

उ.—(क) आज जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक

मार्यो। पन्नग-रूप गिले सिसु गोसुत, इहिं सब साथ

उचारयो—४३३। (२) गुप्त रखा, प्रकट न किया।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) उलाहना। उ.—

खरिक हू निहं मिले कहै कह अनमले करन दे गिले

तू दिननि थोरी। (२) शिकायत, निंदा।

गिलेफ — संज्ञा पुं. [हिं. गिलाफ] सकिए आदि का खोल। गिलो, गिलोय— संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] गुरुच, गुडूची। गिलोला— संज्ञा पुं. [फ़ा. गुलेला] मिट्टी की छोटी गोली जो गुलेल से फेकी जाती है।

गिलीरी—संशा स्त्री. [देश.] पान या मलाई का बीड़ा जो तिकोना-चौकोना होता है।

गिल्यान—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्लानि] घृणा, नफरत । उ. —ताके मन उपजी गिल्यान । मैं कीन्ही बहु जिय की हान ।

गिल्ला—संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) उलाहना। (२) शिकायत, निंदा।

गिल्ली—संशा स्त्री [हिं० गुल्जी] गुल्ली । गिल्णा, गिल्णाु—संशा पुं. [सं.] गवैया ।

गींजना—िक. स. [हिं. मींजना] मोसना, दबाना, मलना, मसलना।

गींव —संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव] गर्दन, गला।

गी—संशा स्त्री. [सं.] (१) बोलने की शक्ति। (२) सरस्वती।

गीउ-संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव] गरदन।

गीठम - संज्ञा पुं. [देश.] घटिया कालीन या गलीचा। गीड़, गीड़र—संज्ञा पुं. [हिं. कीट=मैल] श्राँख का मैल, मैल।

गीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाना, गाने की चीज।
मुहा,—गीत गाना —बड़ाई करना। श्रपना ही
गीत गाना—श्रपनी ही हाँके जाना।

(२) बड़ाई, यश। (३) गीत का नायक। गीता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उपदेश। (२) भगवद् गीता। उ.—(क) वेद, पुरान, भागवत, गीता, सबकी यह मत सार —१-६८। (ख) समुफति नहीं ग्यान गीता की हरि मुसुकानि अरे-३१५०।(३) एक राग।(४) एक छंद।(४) कथा वृत्तांत।

गोति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गान, गीत । उ.—(३) चर श्रचर-गित विपरीत । सुनि बेनु-किलगत गीति — ६२३ । (ख) सूर बिरह ब्रज भलो न लागत जहीं ब्याहु तहीं गीति—३१६३ । (२) एक छंद ।

गीतिका—संशा पुं. [सं.] (१) एक छंद। (२) गाना। गीतिरूपक - संशा पुं. [सं.] रूपक जिसमें गद्य कम श्रीर पद्य श्रधिक हो।

गीदड़, गीदर—संशा पुं. [सं. ग्रध्र। फ्रा. गीदी] सियार। वि.—कायर, डरपोक, श्रसाहसी।

गीध—संशा पुं. [सं. ग्रध्न, हिं. गिद्ध] (१) गिद्ध पची।

(२) जटायु पत्ती जिसको भगवान ने तारा था।
गोधना—कि. श्र. [सं. गृध = लुब्ध] ल ल चना, परचना।
गीधि—कि. श्र. [हं. गीधना] ल ल चकर, परचकर।
उ.—जानि जुपाए हों हरि नीकें। चोरि चोरि दिधि
मालन मेरी, नित प्रति गीधि रहे हो छोंकें-१०-२८७।

गोधिनी—संशा स्त्री. [हिं. पुं. िद्ध] गिद्ध की मादा। उ.— बग-बगुली श्रक गीध गोधिनी श्राइ जन्म लियौ तैसी—२-२४।

गीधे—िक. श्र. [हिं. गीधना] ललचाये, परचे। उ.

— (क) इंद्री लई नैन श्रव लीने स्यामिंह गीधे भारे

— ए. ३२०। (ल) श्रव हिंर कौन के रस गीधे

— ३२३६। (ग) लोचन लालच ते न टरे। हिंर सारँग सोंसारँग गीधे दिध सुत काज श्ररे—मा.उ.६।

गीध्यो—िक. श्र. भूत. [हिं. गींधना] परच गया, ललचा

गया, लिस रहा। उ.—(क) गीध्यो दुष्ट हेम तस्कर ज्यों, श्रति श्रादुर मितमंद — १-१०२। (ल) धोलें

ही घोलें डहकायो। समुक्ति न परी, विषय-रस गीध्यो

हिर-हीरा घर माँक गेँवायो— १-३२६। (ग) स्याम

रूप में मन गीध्यो भलो बुरौ कही कोई—१४६३।

गीर— संज्ञा स्त्री. [सं. गिर या गी:] वाणी।
गीरवाण, गीरवान— संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] देवता।
गीर्ण—वि. [सं.] (१) जिसका वर्णन किया गया हो।
(२) निगला हुआ।

गीर्वाण-संशा पुं. [सं.] देवता, सुर।

गीला — वि. [हिं. गलना] भीगा हुन्रा, तर, नम। संज्ञा पुं. [देश.] एक जाता।

गीलापन - संशा पुं. [हिं. गीला + पन (प्रत्य.)] नमी। गीली—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक बड़ा पेड़ ।

वि. स्त्री. [हिं. पुं. गीला] भीगी हुई, तर। उ.—(क) पग द्वे चलति ठठिक रहे ठाटी मौन घरे हरि के रस गीली—१३०६ । (ख) कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे लटिक रही लट गीली-१८४६। गीव, गीवा—संशा पुं. [सं. शीवा] गरदन, गला। गुंग, गुंगा-वि. [हिं. गूँगा] जो बोल न सके, मूक, गूँगा। उ.—भिक्त बिन बैल बिराने हुँ हो। पाउँ

चारि, सिर सृंग गुंग मुख, तब कैसें गुन गेही - 8-338 1 संज्ञा पुं.—गूँगा मनुष्य। उ.—बोलै गुंग, दंगु

गिरि लंघे अरु आवे अंघी जग जोइ--१-६५। गुंगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूँगा] दोसुहाँ साँप।

वि. स्त्री. - जो (स्त्री) बोल न सके। गुँगुत्राना—कि. श्र. [श्रनु.] (१) श्रच्छी तरह न जलना। (२) गूँगे की तरह अस्पष्टशब्द निकालना। गुंचा - संशा पुं, [श्र.] (१) कली । (२) नाच रंगा गुंची - संज्ञा स्त्री. [हिं. घूँघची] घूँघची की लता। गुंज-संशा स्त्री. [सं. गुंजन] (१) भौरों की गुंजार।

उ.—(क) नित प्रति श्रति जिमि गुंज मनोहर, उड़त जु प्रेम-पराग - २-२२। (ख) गये नवकुंज कुसुमनि के पुंज ऋलि करें गुंज सुख इम देखि भई लवलीन— सा. उ.-४८। (२) श्रस्पष्ट गुंजार। उ.—श्रति विल-च्छन गुंज जोग मति लाए- २६६१। (३) कलखा (४) घुँघची की लता या उसका फल। (५) एक गहना। संशा पुं.—सलई नामक पेड़ा

गुंजत-कि. श्र. [हिं. गुंजना] गुनगुनाते हैं, भनभनाते हैं। उ. - जहँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि प्रभा प्रकास । प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुवास-१-३३७।

गुंजन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुंजार, भनभनाहट । (२) ऋानंद ध्वनि, कलरव।

गुनाना। (२) मधुर या भ्रानद-ध्वनि निकालना, कलरव करना /

गुंजनिकेतन-संशा पुं. [सं.] भौरा। गुंजरत-कि. श्र. [हिं. गुंजारना] (१) (भौरे) गूँजते हैं, भनभनाते हैं। उ. - गूँगी बातिन यौं श्रनुरागित, भॅवर गुंजरत कमल मौं बंदहिं - १०-१०७। (२) बोलते हैं, ध्वनि करते हैं, गरजते हैं। उ.—गर्जत गगन गयंद गुंजरत श्ररु दादुर किलकार---२८९३। गुंजरना - कि. श्र. [हिं. गुंजार] (१) भौरों का गूँजना या भनभनाना। (२) शब्द करना, गरजना।

गुंजरे—संज्ञा पुं. [सं. गुंजान] गुंजार। गॅजहरा - संज्ञा पुं. [हिं. गंजार] बचों का कड़ा। गुंजा-संज्ञा स्त्री [सं.] (१) घुँव वी नाम की लता। (२) घुँघची के लाल दाने। उ.—ज्यों कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिट होत लौलीन । त्यौं सठ बृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत विषय-श्राधीन - १-१०२। गुंजाइश, गुंजाइस — संज्ञा पुं. [फ़ा. गुंजाइश] (१) स्थान, श्रॅटने की जगह। उ.—जनम साहिबी करत गयो। काया-नगर बड़ी गुं जाइस, नाहिंन कल्लु बढ़यो

—१६४। (२) समाई, सुबीता। गुंजान—वि. [फ़ा.] घना, सघन । गुंजायमान-वि. [सं.] (१) गूँजता या ध्वनि करता हुआ। (२) बोलता या शब्द करता हुआ। 👚

गुंजार - संशा पुं. [सं. गुंज + श्रार] (१) भौरों की गूँज, भनभनाहट। उ.—जहँ बृदाबन श्रादि श्राजिर जह कुं जलता बिस्तार। तह बिहरत प्रिय प्रियतम् दोऊ निगम भंग-गुंजार । (२) मधुर ध्वनि, कलस्व । गुंजारना कि. श्र. [हिं. गूँजना] गूँजना। गुंजारित, गुंजित—वि. [सं. गुंजित] भौरों आदि की गुंजार से-युक्त।

गुंजिया - संज्ञा स्त्री, [हिं, गूँज] एक गहना। गुंजैं-िक. श्र. [हिं. गुंजना] (भौरे) भनभनाते या गुनगुनाने हैं। उ.—बृथा बहति जमुना तट खगरो वृथा कमल फूलें श्रिलि गुंजें—२७२१। गुंटा—संज्ञा पुं. [देश.] छोटा तालाब। गुंजना—कि. श्र. [सं. गुंज] (१) भनभनाना, गुन- गुंठा—संज्ञा पुं. [हिं. गठना] नाटा घोड़ा, टाँगन।

संज्ञा पुं, [सं.] कसेरू का पौधा। वि.—महीन पिसा हुग्रा।

गुंड — पंजा पुं. — म तार राग का एक भेद । उ.— राग रागिनी सँचि मिलाई गावें गुंड मलार— २२७६। गुंडई — संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा + ऋई (पत्य.)] गुंडापन । गुंडरी — संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा] गुंडापन। गुंडती — संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडती] (१) फेंटा । (२) गेंडरी।

गुंडा—िव. [सं. गुंडक=मिलन] (१) दुराचारी, कुमार्गी। (२) भगड़ा करनेवाला। (३) छैला। गुंडापन—संशा पुं. [हिं. गुंडा+ान] बदमाशी। गुंडो—संशा स्त्री. [हिं. गुंडाो] इँडरी, गेंडरी। गुंथना—िक. श्र. [सं. गुरस=गुच्छा] (१) (तागों, वालों श्रादि का) उलभना। (२) मोटी सिलाई करना। (३) लड़ने को भिड़ना।

गुंदल संशा पुं. [सं. गुंडाला] एक घास।
गुंदहि कि. स. [हिं. गूँधना] गूँधते हैं। उ.—
बाजीपति अग्रज अंबा तेहि. अरक थान सुत माला
गुंदहिं १०-१०७।

गुँधना—िक. श्र. [सं. गुध = कीड़ा] (श्राँटे श्रादिका पानी से) साना या माड़ा जाना।

कि. श्र. [सं. गुत्सा = गुच्छ] (बाल श्रादि का) गूँथना।

गुँधवाना — कि. स. [हिं. गूँधना] गूँधने का काम कराना या इसकी प्रेरणा देना।

गुँधाई— संशास्त्री. [हिं गूँधना] गूँधने की किया, भाव या मजदूरी।

गुँघावट—संशा स्त्री [हिं. गूँघना] (१) गूँघने की किया। (२) गूँघने की रीति।

गुंफ-संशा पुं. [सं.] (१) फँसाव, गुत्थमगुत्था। (२)
गुच्छा। (३) गलमुच्छा। (४) अलंकार।
गुंफन-संशा पुं. [सं.] उलमाव, गूँधना।

गुंफित—िव. [सं. गुंफन] गुँथा हुन्ना, उलमा हुन्ना।
गुंबज, गुंबद—संज्ञा पुं. [फा. गुंबद] गोल छत।
गुंबा—संज्ञा पुं. [हिं गोल+त्रांब] गोल सूजन जो
चोट लगने से सिर या माथे पर न्ना जाय।

गुँभी, गुंभ—संज्ञा पुं० [सं गुंफ - गुच्छा] श्रंकर, गाभ। उ.—टरति न टारे वह छिबि मन में चुभी।...। स्रदास मोहन मुख निरस्तत उपजी सकत तन काम गुँभी—१४४६।

गुआ-संशा पुं. [सं. गुत्राक] (१) चिकनी सुपारी। (२) सुपारी।

गुआर, गुआरि, गुआरी, गुआलिन—संज्ञा स्त्री. [सं. गोराणी, हिं. ग्वार] एक पौधा, कौरी, खुरथी। गुइयाँ—संज्ञा. स्त्री., पुं. [हिं. = गोहन=साथ] साथी, सखी, सहचर, सहेली।

गुग्गुर, गुग्गुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पेड । (२) एक सुगंधित द्रव्य।

गुच्ची — संज्ञा स्थी. [श्रानु.] छोटा गड्ढा। वि. — बहुत छोटी, नन्ही।

गुच्चीपारा, गुच्चीपाला—संज्ञा पुं. [ःहिं. गुच्ची+गरना] लडकों का एक खेल।

गुच्छ, गुच्छक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुच्छा। (२) घास की जूरी। (३) भाड़। (४) हार। (४) मोर की पूँछ।

गुच्छा—संज्ञा पुं. [सं. गुच्छ] (१) पत्ती, या किसी चीज का समूह। (२) फुलरा, फुँदना।

गुच्छी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुच्छ] (१) कंजा । (२) एक साग।

गुच्छेदार—िव. [हिं. गुच्छा] जिसमें गुच्छे हों।
गुजर—पज्ञा पुं. [फ़ा. गुजर] (१) निकास। (२)
पहुँच, प्रवेश। (३) निर्वाह, काम चलना।
गुजरना—िक. श्र. [हिं. गुजर+ना प्रत्य.)] (१)

समय कटना । (२) स्राना-जाना ।

मुहा.—गुजर जाना—मर जाना । (३) निर्वाह होना, निभना, काम चलना ।

गुजर-बसर — संज्ञा पुं. [फा.] निर्वाह, काम चलाना।
गुजराती—वि. [हिं. गुजरात] गुजरात का।
संज्ञा स्त्री.—गुजरात की भाषा।

गुजरान — संज्ञा पुं. [हिं. गुजर] निर्वाह, निवाह।
गुजराना — कि. स. [हिं. गुजारना] बिताना, काटना।
गुजरिया — संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] ग्वालिन, गोपी।

गुजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] (१) एक तरह की पहुँची। (२) एक रागिनी।
गुजरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. गूजर] (१) गूजर का खड़का।
(२) ग्वाला।

गुजरेटी, गुजरेठी—संज्ञा. स्त्री [हिं. गूजर] (१) गूजर की बेटी। (२) ग्वालिन, गोपी।

गुजारना—िक. स. [फ़ा.] बिताना, काटना। गुजारा—मंज्ञा पुं. [फ़ा. गुज़ारा] (१) निर्वाह। (२) निर्वाह की वृत्ति। (३) नाव की उत्तराई।

गुजारिश, गुजारिस — संज्ञा स्त्री. [फ़ा, गुजारिश] प्रार्थना, निवेदना, विनय।

गुजारी—संशा स्त्री. [सं.] (१) गूजरी। (२) एक राशिनी।

गुडम्हा—संज्ञा पुं. [सं. गुह्मक] (१) एक घास। (२) गूदा।

वि.— गुप्त, छिपा हुआ, अप्रकट।
गुम्मरोट, गुम्मरोट, गुम्मोट — संज्ञा पुं. [सं. गुह्य, प्रा.
गुम्म + सं. आवतं] (१) काड़े की सिकड़न। (२)
सित्रयों की नामि के आसपास का भाग।
गुम्मा—संज्ञा पुं. [हें. गोमा] एक पक्रवान, गुम्मिया।
उ.—गुम्मा इलाचीपाक अमिरती—३६६।
गुम्माना—कि. स. [सं. गुह्य] छिपाना, लुकाना।
गुम्मिया—संज्ञा स्त्री. [सं. गुह्यक, प्रा. गुज्मत्र, गुज्मा]

(१) एक पक्रवान, पिराक। (२) एक निठाई।
गुटकना—िक. श्र. [श्रनु.] गुटरगूँ करना।
कि. स. — (१) निगलना (२) खा लेना।
गुटका—संज्ञा पुं. [सं. गुटिका] (१) गोटी, बटी। (२)

छोटे श्राकार की पुस्तक। (३) लट्टू। (४) एक मिठाई।

गुटरगूँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कबूतरों की बोली । गटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोटी, बटी । (२) एक सिद्धि जिसमें गोली मुँह में रखने पर साधक सब जगह जा सके श्रीर कोई उसे देख न पावे।

गृष्टु—संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ=समूह] मुंड, दल।
गुट्ठल—िव. [हि. गुठली (१) जो तेज या पैना न हो।
(२) जड़, मूर्खं। (३) गुठली के आकार का।
संज्ञा पुं.—(१) गाँठ, गुलथी। (२) गिलटी।

गुड़ी—संशा स्त्री. [हिं. गाँठ] गोल या लंबी गाँठ। गुडली—संशा स्त्री. [सं. गुटिका] फल का कड़ा बीज। गुडाना—कि. ग्र. [हिं. गुडली] (१) गुडली-सी बँध जाना। (२) बेकार या निकम्मा हो जाना।

गुडंबा — संज्ञा पुं, [हिं, गुड़ + ग्राँब, ग्राम] गुड़ की चाशनी में उबाली हुई कचे ग्राम की फाँकें।

गुड़—संज्ञा पुं. [सं.] ऊल का जमाया हुन्ना रस। उ.—
(क) रस ले ले त्रौटाइ करत गुड़ (गुर) डारि देत हैं
लोई। फिर त्रौटाये स्वाद जात है, गुड़ तें खाँड़ न
होई—१-६३। (ख) दानव प्रिया सेर चालीसो सुरभी
रस गुड़ सीचो—सा. ६०।

मुद्दा -- कुल्हिया में गुड़ फूटना-- (१) गुप्त रूप से काम होना। (२) छिपाकर पाप होना। गुड़ भरा हँ सिया - ऐसा काम जिसे न करने से जी ललचाये श्रीर करने से संकोच हो। जो गुइ खायगा सो कान छेदायेगा — जिसे लाभ होगा, उसे कष्ट भी सहना पड़ेगा। गुड़ खायगा, श्रुँचेरे में श्रायगा — जिसे लाभ होगा वह कष्ट सहकर भी समय-कुसमय काम करेगा। गुड़ दिखाकर ढेला मारना = कुछ लालच देने के बाद रूखा या कठोर व्यवहार करना। गुड़ दिये मरे तो जहर वयों दे —जब सीधे से काम चल जाय तो कठोर बर्ताव क्यों किया जाय। गुड़ खाना गुलगुलों से परहेज (घिनाना)—कोई बड़ी बुराई करना पर उसी ढंग की छोटी बुराई करने में संकोच करना। गूँगे का गुड़—विषय या वस्तु का अनुभव करना परन्तु उसे शब्दों में उचित ढंग से समभा न पाना । चोरी का गुड़-छिपाकर पाया हुआ बेमेंहनत का माल। उ.—मिसरी सूर न भावत घर की चोरी को गुड़ मीठो—सा. ६०। जहाँ गुड़ होगा, चीटियाँ (मिवलयाँ) त्राजायँगी - पासमें धन या दूसरों के लाभ की चीज होगी तो लाभ उठानेवाले बिना बुलाये श्रपने श्राप जुट श्रायँगे।

गुड़मुड़— हंशा मुं. [श्रनु.] वह शब्द जो बन्द चीज (जैसे पेट, हुक्का) में हवा के चलने से होता है। गुड़गुड़ाना—क्रि. श्र. [श्रनु॰ गुड़गुड़] गुड़गुड़ शब्द होना। गुड़धनिया, गुड़धानी—संशा स्त्री. [हिं. गुड़ + धान] मिठ ई जो भुने हुए गेहुँ श्रों को गुड़ में पागने से बनती है।

गुड़ना—कि. श्र. [हिं.गोड़ना] बेकार या खराब होना।
गुड़रा, गुड़रू—संज्ञा पुं. [देश.] गड़री चिड़िया।
गुड़हर गुड़हल—संज्ञा पुं. [हिं. गुड़ + हर](१) श्रड़हुल
का पेड़ या फूल। (२) एक वृत्त जिसकी पत्तियाँ

चवाने के बाद गुड़ का स्वाद ही नहीं आता।
गुड़ाकेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) अर्जुन।
गुड़िया, गुड़िला—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गुड़डा]
कपड़े, मोम आदि की बनी छोटी पुतली जिससे
बच्चे खेलते हैं।

मुहा.—गुड़िया सी - छोटी और सुन्दर। गुड़ियों का खेल - बहुत सरज काम।

गुड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुड़डी] पतंग, चंग । उ.—(क)
बंधी दृष्टि यो डोर गुड़ी बस पाछे लागति धावति—
१४३१। (ख) परवस भई गुड़ी ड्यों डोलति परति
पराये कर ज्यों—ए. ३३२।

गुड़ीला—िव. [हिं. गुड़ + ईला (प्रत्य.)] (१) गुड़ सा मीठा। (२) उत्तम, बहिया।

गुड़्ची, गुड़्ची — संशा स्त्री. [हिं. गुरुच] एक बड़ी लता, गिलोय।

गुड्डा—संज्ञा पुं. [सं. गुह=खेलने की गोली] कपड़े, मोम आदि का बना पुतला जिससे बच्चे खेलते हैं। मुहा.—गुड्डा बाँधना—बुराई या निन्दा करना। संज्ञा पुं. [हिं. गुड्डी] बड़ी पतंग।

गुड्डी — संज्ञा स्त्री. [सं. गुह + उड्डीन] पतंग, चंग।
उ.—(क) स्रिति स्राधीन भई संग डोलित ज्यों
गुड्डी बस डोर—ए. ३३३। (ख) हम दासी बिन
मोल की ऊधो ज्यों गुड्डी बस डोर—३३२०।

गुढ़, गुढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. गूढ़] छिपने का स्थान।
गुढ़ना—कि. श्र. [हिं. गुढ़] छिपना, लुकना।

गुढ़ि—कि. स. [हिं. गढ़ना (अनु०)] गढ़ गढ़ कर, ठीक ठाक करके। उ.—कन्हेया हालक रे। गढ़ गुढ़ि ल्यायी बाढ़ई घरनी पर डोलाई बिल हालक रे—१०-४७। बुढ़ो—संज्ञा स्त्री. [सं. गूढ़] गाँठ, गुत्थी। गुगा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु की विशेषता।

(२) निपुणता, चतुरता। (३) कला, विद्या, हुनर।

(४) प्रभाव, ग्रसर। (४) शील, सद्वृत्ति।

मुहा.— गुण गाना — प्रशंसा करना। गुण मानना

— ग्रहसान मानना।

(६) विशेषता, खासियत। (७) तीन की संख्या।

(म) रस्सी, डोरा। (१) धनुष की डोरी। प्रत्य.—एक प्रत्यय जो संख्यावाची शब्दों के ग्रंत में रहता है।

गुगाक — मंत्रा पुं. [सं] वह ग्रंक जिससे किसी ग्रंकको गुगा किया जाय।

गुणकर—वि. [सं.] लाभदायक।
गुणकरी, गुणकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।
गुणकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संगीतज्ञ। (२) रसोइया।
(३) पाकशास्त्रज्ञ। (४) भीमसेन।

गुणकारक, गुणकारो—वि. [सं.] लाभदायक।
गुणगौरि, गुणगौरी-—संज्ञा स्त्री. [सं. गुणगौरि] (१)
गौरी के समान सौभाग्यवती स्त्री। (२) एक व्रत
जो सौभाग्यवती स्त्रियाँ चैत की चौथ को करती हैं।
गुणप्राहक, गुणप्राही—वि. [सं.] गुण या गुणी का भ्रादर
करनेवाला।

गुणज्ञ—ित. [सं.] (१) गुण कः पारखी। (२) गुणी।
गुणज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुण की परख।
गुणन—संज्ञा पुं. [सं.] गुणा, जरब।

गुंगिनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नाटकीय अनुष्ठान जो नट कार्यारम्भ के पूर्व विष्न शांति के लिए करते हैं। गणनफल —संज्ञा पं िसं ो वह संख्या जो गणा करने

गुणनफन्न — संज्ञा पुं. [सं.] वह संख्या जो गुणा करने पर निकले।

गुणवन्त —िव. [सं.] गुणवान, गुणी।
गुणवती —िव. स्त्री. [सं.] जो गुणवान हो।
गुणवाचक—िव. [सं.] गुणसूचक।
गुणवान—िव. [सं.] गुणवाला।
गुणवान—िव. [सं.] गुणवाला।
गुणसागर—िव. [सं.] गुणों का समुद्र, गुणिनिध।